दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण

प्रो० हीरालाल जी के आक्षेपों का निराकरण

रामप्रसाद शास्त्री

तृतीय अंश

सिद्धांतप्रमुखनैकगहनागमरहस्यानुभवी शांतिस्वभावसौम्यमुखाकृति
पंचाचारसमाचरित स्वपदनिष्ठ पंचमकालीन सकल मुनिगणगुरु
परमपूज्य प्रातःस्मरणीय चारित्रचक्रवर्ति
श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी महाराज

पूज्यश्रीकी सम्मति द्वितीय भागमें है।

* प्रस्तावना *

—यानी—

॥ सुवासित—पुष्पसार ॥

जैनधर्ममें मतभेद की विचार धारा अति प्राचीन नहीं है तो अर्वाचीन भी नहीं है। असलियत में मतभेद का बीजारोपण पूज्य श्री पञ्चम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी और सम्राट श्री चन्द्रगुप्त महाराज के समय में १२ वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा था तब हुआ तब तक जैनधर्म में किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं था। इस बात की साक्षी निष्पक्ष इतिहास गवेषियों द्वारा गवेषित और सशोधित ऐतिहासिक सामग्री है।

श्री १००८ भगवान् महावीर स्वामी दीक्षावस्था से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक दिगम्बर भेष में ही रहे यह जनधर्म के निष्पक्ष आम्नायियो को मान्य है। अत जब महावीर स्वामी ने दिगम्बर वृत्ति से ही निर्वाण साधना की है तो यह बात स्पष्ट ही निकल आती है कि दिगम्बर धर्म ही श्री महावीर स्वामी का सच्चा अनुयायी धम है। और प्राचीनता में तो वह इतना प्राचीन है कि जिसका समय श्री १००८ भगवान् ऋषभदेव का दीक्षा समय है जो कि वर्ष और पल्यों से भी मापित न होकर सागरों से मापित है। इस समय भी इस धर्म की प्राचीनता के चिन्ह जो कुछ मिल रहे हैं उन बहुतों का सङ्कलन इस दिगम्बर जैन सिद्धात दर्पण के द्वितीय अश-गत प्रधानतया पूज्य मुनि श्री १०८ कुन्थु सागर जी महाराज आदि के लेखों में विद्यमान है। उन सबसे यह बात स्पष्ट समझ में आ जाती है कि दिगम्बर जैनधर्म ही सत्य परीक्षण में अति प्राचीन है। इसलिये इसके जो सिद्धात हैं वे भी उसी के साथी होने से वैसे ही अति प्राचीन हैं। उनका नवीन रीति से सृजन श्री आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने या किन्हीं दूसरे आचार्य ने किया हो यह कदापि भी सम्भवित और सङ्गत नहीं हो सकता।

उपलब्ध लिखित ग्रन्थों में श्री षटखण्डागम अति प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है जो कि सूत्र रूप से उपलब्ध है। उसके सूत्रों का पूर्वापर पर्यवेक्षण नहीं करके तथा दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्य मान्य प्राचीन ग्रन्थों का भी पूर्वापर ससबद्ध पद्धति से नयभङ्गी और प्रमाणभङ्गी के साथ पूरा विचार नहीं करके जो कुछ अपनी समझ के अनुसार प्रोफेसर हीरालाल जी ने स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति, केवली—कवलाहार, और वेद वैषम्य का अभाव इन चार विषयों पर प्रकाश डाला है उन सभी का अच्छी तरह से समाज के प्रमुख विद्वानों ने दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण के प्रथम और द्वितीय अशगत अपने लेखों से अच्छी तरह खण्डन कर दिया है। तथा उनमें खण्डन

पद्धति को लिये इस दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण के तृतीय अंश में अनेक मान्य प्रौढ विद्वानों के प्रमाण कोटि को लिये लेख और मान्य पञ्चायतों तथा विद्वानों और त्यागियों की अमूल्य सम्मतियां हैं। उन पूर्व अंशोंगत लेख और इस तृतीय अंश गत लेख तथा सर्व सम्मतियों से यह बात निश्चित हो जाती है कि श्री प्रोफेसर हीरालाल जी साहब ने जिन गहन विषयों में जो विचार उपस्थित किये हैं वे शास्त्रीय और बौद्धिक विवेचन पद्धति से बहुत ही असम्बद्ध हैं। इसलिये किसी हालत में भी मान्य नहीं हैं।

श्री प्रोफेसर हीरालाल जी को इस गहन विषय में कदम उस समय रखना था जब कि वे अपने सैद्धांतिक शास्त्रीय अध्ययन का अनुभव प्रौढ विद्वानों की सहायता से कर लेते। अथवा उस विषय को पूर्व सिद्धांत के पारगामी प्रौढ अनुभवी विद्वानों के समक्ष रखकर उस विषय का निर्णय करा लेते तो आप वस्तुस्थिति पर अवश्य पहुच जाते, परन्तु आपने इन दोनों मार्गों में से एक का भी आश्रय न लेकर जो अपनी समझ को ही सर्वेसर्वा मान्य कर उलटा मार्ग ग्रहण किया है उसी का परिमार्जन इन तीनों अंशों में है और वह आपकी तथा समूचे जैन समाज की हित दृष्टि को लेकर है। न कि प्रोफेसर हीरालाल जी को समाज की दृष्टि से गिराने की नीयत से है श्री बम्बई दिगम्बर जैन पञ्चायत का यही अभिप्राय पहले रहा है तथा वह ही अब भी है।

इसी उद्देश को लेकर इस पञ्चायत ने यह काम अपने हाथ में लिया है, इसलिये समाज—मान्य विवेकी महानुभावों की दृष्टि में यह बम्बई दिगम्बर जैन पञ्चायत गौरव की दृष्टि से देखी जा रही है। तथा इस पञ्चायती कार्य के उद्देश की पूर्ति में जिन धनिक, विद्वान, और श्रद्धालु महानुभावों ने सहयोग देकर अपना कर्तव्य पूर्ण किया है वे सभी समूचे जैन समाज की दृष्टि में अवश्य ही गौरव के पात्र हैं क्योंकि पंचायत इन सबके समुदाय का ही तो नाम है। इसलिये समाज में जब पञ्चायत का गौरव है तो इन सभी सञ्चालकों का गौरव स्वयमेव अनायास ही है।

इस तृतीय अंश के चार लेखों को छोड़कर बाकी के लेख और सम्मतियां द्वितीयांशगत लेखों के साथ ही आ गये थे। परन्तु असुभीते के कारण पं० अजितकुमार जी शास्त्री उन सब लेखों और सम्मतियों को जल्दी नहीं मुद्रित कर सके। इधर पाठकों और कुछ लेखकों की अत्यन्त प्रेरणा होने लगी कि तृतीयांश जल्दी प्रकाशित होना चाहिये। इन सब कारणों को लेकर द्वितीयांश के लिये जितने भी लेख आये थे उनमें से उस समय जितने लेख मुद्रित हो चुके थे उनको द्वितीयांश में ले लिया अवशिष्ट जो लेख और सम्मतियां रह गई थीं वे सब इस तृतीयांश में हैं। इस तृतीयांश में कुछ नवीन लेख और प्रकाशित हो रहे हैं। उनमें पहला लेख श्री १०८ पूज्य वीर सागर जी मुनिराज का है जो कि वह प्रोफेसर हीरालाल जी के मान्य अक्षेपों के खण्डन पर समुचित प्रकाश डाल रहा है तथा उन सब विषयों में भी केवली के कवलाहार विषय में जैसा कुछ अनेक आगम युक्तियों को लिये उसमें प्रकाश है वह अन्य विद्वानों के इस विषयक लेखों से विशेषता लिये विशेष स्थान रखता है। दूसरा लेख श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक सूरिसिंह जी महाराज का इस विषय की प्रधानता लिये हुये हैं कि द्रव्यमनुष्यों का द्रव्यस्त्रियों में समावेश है। तीसरा लेख श्रीमान

पूज्य देवेन्द्र कीर्ति जी भट्टारक महाराज का है उनने छोटे कलेवर से भी प्रतिपाद्य विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है और चौथा लेख पंडित वर्द्धमान जी शास्त्री शोलापुर का है जो कि प्रो० हीरालाल जी के तीनों प्रश्नों के समाधान का खास स्थान रखता है।

इन लेखों के अलावा एक मेरा लेख है जो कि वह षटखण्डागम के सूत्र ९३वे में संजद शब्द के न होने के निर्णयार्थ तथा गोम्मटसार के टीकाकारों की कोई भी भूल नहीं है इत्यादि विषय को लेकर प्रोफे० हीरालाल जी के मुख्य आक्षेप वेद वैषम्य के खण्डन के साथ द्रव्य स्त्री के मोक्ष जाने में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की सभी कथा मान्यता है इत्यादि प्रमाणीक सामिग्री को लेकर सप्रमाण गवेषणा लिये हुये है और इसी के साथ इस लेख के पूर्व में 'पज्ज०' शब्द के होने या न होने के विषय को लिये विद्वानों की प्रश्नोत्तर रूप लेख माला है। पूर्वोक्त लेखों के सिवाय अन्य अनेक विद्वानों के लेख हैं जिनमें से कुछ लेख सम्मति रूप में संक्षिप्त हैं और कुछ जरा विस्तृत हैं। किन्तु प्रत्येक लेख अपने अपने रूप में सुन्दर है। इन लेखों के होने से इस तृतीय अंश की उपादेयता विशेष रूप से बढ़ जाती है जो कि मुख्य विशेषता को लिये समयोपयोगिता की सची सुदर्शक है।

इस तृतीयांश में कृतज्ञता धन्यवाद का विषय वह ही है जो कि द्वितीयांश गत है अतः पुनरुक्तता के भय से उसको यहां स्थान नहीं दिया है इसके लिये यदि किन्हीं महानुभावों को यह अनुचित प्रतीत हुआ हो तो उस निमित्त मैं क्षमा प्रार्थी हूं।

—रामप्रसाद जैन शास्त्री, सम्पादक।

—श्री षटखण्डागम के ९३ वें सूत्रके संजद शब्द पर विचार—

[लेखकः— श्रीमान् पं० रामप्रसाद जी जैन शास्त्री, सम्पादक]

श्री धवला टीका सहित षटखण्डागम शास्त्र ताड़ पत्रों के ऊपर कनड़ी लिपि में लिखे हुये मूलबद्री में विराजमान हैं। उन पर से अनेक प्रतियां कागज पर देव नागरी लिपि में लिखकर उत्तर हिन्दुस्थान में आई तथा देव नागरी और कनड़ी में कागज ही पर लिखकर मूलबद्री में विराजमान की गई हैं। उन किन्हीं प्रतियोंमें षटखण्डागमके सूत्र ९३ वें में 'संजद' शब्द नहीं है। बाद को मालूम हुआ है कि ताड़पत्र प्रतियों में 'संजद' शब्द है।

ताड़पत्र की उन दो प्रतियों के सिवाय एक और ताड़पत्र की प्रति है जो कि उन दो प्रतियों की अपेक्षा प्राचीन है परन्तु उसमें वह पत्र नहीं है तथा और भी इधर उधर के कुछ पत्र नहीं हैं। कागज पर जो प्रतियां लिखी गई हैं वे किस प्रति के आधार से लिखी गई हैं इसका भी कुछ निर्णय आज नहीं हो रहा है। कारण कि वे लिपि कर्ता विद्वान (गजपति शास्त्री) आज बहुत वर्षसे इस जगतमें नहीं है। (फिर भी इस समय कागज प्रतियों की नकल करने वाले विद्वानोंमें से श्रीमान पं० नेमिराजजी शास्त्री हैं उनका कहना है कि तीनों ताड़पत्र प्रतियों से मिलान करके कागज की प्रतियां लिखी गई थीं) और जो दो कनड़ी प्रति जिनमें कि 'संजद' शब्द पाया जाता है वे सर्वथा शुद्ध भी नहीं है इसलिये सम्भवित है कि कनड़ी लिपि की उन प्रतियों में प्रति लेखक के प्रमाद से चलती कलम से सूत्र ९३वें में 'सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी' के आगे 'संजद' शब्द लिखने में आ गया हो। ऐसी परिस्थिति में अनायास ही यह बात उपस्थित हो जाती है कि ग्रन्थ कर्ता की सूत्र लेखन शैली तथा सैद्धांतिक अनुसृति को लिये सूत्रों गत अभिप्राय और धवला टीकाकार की धवलागत कथन पद्धति का अनुसरण किस लक्ष्य की तरफ संलग्न है। इन तीन हेतुओं को पुरस्सर कर इस विषय के निर्णय के लिये मैं अपने अभिप्राय पहले कितने ही लेखों में प्रकाशित कर चुका हूं अब इस विषय में उन हेतुओं के साथ और भी विशेष मनन करने पर जो कुछ विशिष्ट निर्णय किया है उन सब की समष्टि इस लेख में है।

सूत्र लेखनशैली से विचार—इस विषयमें सबसे प्रथम दृष्टि इस बात पर जाती है कि सूत्रकार ने जिन जिन सूत्रों में संख्या को लेकर गुणस्थानों का प्रतिपादन किया है वहां वहां उस संख्या के हिसाब से उन उन गुणस्थानों के नाम गिनाये हैं। जैसे कि—

'णेरइया चउट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति' ॥२५॥

'तिरक्खा पंचसुठाणेसु मिच्छाइट्ठी सासण सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदत्ति २६

'मणुस्सा चोद्दसु गुणट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठि सासण-

सम्माइट्ठि सम्मामिच्छाइट्ठि असञ्जदसम्माइट्ठि सञ्जदासंजदापमत्त सञ्जदा .... अजोग केवलित्ति ॥२७॥ 'देवाच्दुसुठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठि सासण सम्माइट्ठि सम्मामिच्छाइट्ठी असञ्जदसम्माइट्ठित्ति ॥२८॥

इस प्रकार संख्या शब्द के द्वारा प्रत्येक गतियों मे सूत्रकार ने गुणस्थान पृथक२ गिनाकर निर्णय कर दिया है कि इस इस गति में ये ये गुणस्थान हैं और उनका क्रम भी इसी प्रकार है अन्यथा नहीं है। ऐसा निर्णय करके आगे सूत्रकार ने जहा कहीं भी गुण—स्थान गिनाये हैं वहा तीन गुणस्थानो स ऊपर 'पहुडि' और 'जाव' शब्द को लेकर ही गिनाये हैं। इस क्रम का कहीं भी उल्लङ्घन नहीं किया है। अब सूत्र ६३वें मे यदि 'सञ्जद' शब्द होता तो ४ (चार) गुणस्थान हो जाते ऐसी हालत में सूत्रकार यहा भी 'पहुडि' और 'जाव' शब्द के द्वारा सूत्र का निर्माण करते परन्तु यह बात वहा है नहीं अर्थात सूत्र में तीन ही गुणस्थान हैं चौथा गुणस्थान 'सञ्जद' नहीं है। तथा सूत्र १२८ मे भी 'चदुसु' शब्द से चार सख्या का निर्देश है इसलिये वहा भी सूत्रकार ने चार गुणस्थान अलग २ गिनाये हैं। जैसे सूत्र — 'जहाक्खादविहार-सुद्धि सञ्जदा चदुसुट्ठाणेसु उवसंतकसाय वीतरायछदुमत्था खीणकसायवीयरायछदुमत्था खीणकसाय वीयरायछदुमत्था सयोगिकेवलि अजोगकेवलित्ति ॥

इस सब लिखान से यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि सख्याओं क स्थान का छोड़कर जहा कहीं भी तीन से आगे के गुणस्थान गिनाये हैं वे सब 'पहुडि' और 'जाव' शब्द के द्वारा ही गिनाये हैं। सूत्र ६३वें में यदि 'सञ्जद' शब्द होता तो यहां भी 'पहुडि' और 'जाव' शब्द के द्वारा ही 'सञ्जद' शब्द का समावेश करते परन्तु सूत्रकार ने वैसा यहा किया नहीं है। इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि सूत्र ६३वें में 'सञ्जद' शब्द नहीं है। ताड़पत्र प्रतियों में जो 'सञ्जद' शब्द दृष्टिगोचर हो रहा है वह प्रति—लेखकों के विशेष विचार नहीं करने से आ गया है। परन्तु वास्तव में सूत्रकार की सूत्र लेखन शैली से सूत्र ६३वें में 'सञ्जद' शब्द नहीं है यह स्पष्ट प्रतीति गोचर है।

सैद्धांतिक अनुसृति को लिये सूत्रों गत सैद्धांतिक दृष्टि से जो कुछ अभिप्राय है वह स्पष्ट है कि जहां कहीं भी मानुषी के १४ गुणस्थान सूत्रों में दृष्टिगोचर हो रहे हैं वहा किसी भी स्थल पर मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द नहीं है केवल मानुषी शब्द ही वहा है इसलिये केवल मानुषी शब्द भाव स्त्री का वाचक है और सिद्धात में भावस्त्री को वेद वैषम्य दृष्टि सापेक्ष १४ गुणस्थान होते ही हैं। परन्तु मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द हो तो वह मानुषी द्रव्यस्त्री होती है द्रव्य-स्त्री के पाच ही गुणस्थान होते हैं ऐसा सैद्धान्तिक निर्णय है।

सूत्र ६३वें में मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द दृष्टि-गोचर हो रहा है इसलिये यहा द्रव्यस्त्री का प्रकरण होनेसे १४ गुणस्थानों को ग्रहण करने वाला 'सजद' पद नहीं है।

शङ्का—पर्याप्त शब्द द्रव्य शरीर का बोधक है यह बात किस प्रमाण से सिद्ध है ?

समाधान—सूत्र ६२—

'पर्याप्तिनामकर्मोदयशरीरनिष्पत्त्यपेक्षया'

इस धवला भाष्य से पर्याप्त शब्द द्रव्य स्त्री का बोधक है। यह बात पं० वशीधर जी इन्दौर, प० कैलाशचन्द्र जी, प० फूलचन्द्र जी, प० पन्नालाल जी सोनी आदि सर्व विद्वानों को मान्य है। परन्तु विवाद इस बात का रह जाता है कि सूत्र ६३वें में

'पर्याप्त शब्द से द्रव्य पुरुष के शरीर का ग्रहण है या द्रव्य स्त्री के शरीर का ?

उपर्युक्त चारों विद्वानोंका कहना है कि आलापाधिकार धवलाकी मुद्रित द्वितीय पुस्तकके ५१४ पत्रमें-

तासिंचेव पज्जत्ताणं भण्णमाणे अत्थि चोद्दस गुणट्ठाणाणि ।

ऐसी पंक्ति आई है। उसका आशय वेद वैषम्य सम्मत सैद्धांतिकदृष्टि से द्रव्य पुरुष का शरीर लिया गया है इस बात की पुष्टि मुद्रित राजवार्तिक पत्र ३३१ की—

मानुषी—पर्याप्तिकासु चतुर्दशापि गुणस्थानानि सन्ति भावलिङ्गापेक्षया, द्रव्यलिङ्गापेक्षेणतु पञ्चाद्यानि,

इस पंक्ति से है। ऐसी अवस्था में सूत्र ६३वें में भी मानुषी के साथ में पर्याप्त शब्द आया है इसलिये वहां भी भावस्त्री का ग्रहण है और भावस्त्री का ग्रहण होने से सूत्र ६३वें में 'संजद' पद रहे तो कोई आपत्ति नहीं।

इस बात का समाधान ऊपर दिया जा चुका है कि इस विवादस्थ (निर्णेय) स्थल को छोड़कर जहां कहीं भी सूत्रकार ने मानुषी के १४ गुणस्थान बतलाये हैं वहां मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द कहीं भी नहीं है। परन्तु इस सूत्र में मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द है। अतः यह बात अनायास ही आ जाती है कि—जहां मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द नहीं है वहां भावस्त्री का विषय है परन्तु सूत्र ६३वें में मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द है इसलिये सूत्रकार के मत से यहां का विषय द्रव्य स्त्री का है जब द्रव्यस्त्री का विषय है तो सूत्रकार के मत से यहां 'संजद' शब्द की स्थिति नहीं ठहरती।

टीकाकारों ने जो मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द लगाकर मानुषी के १४ गुणस्थान बतलाये हैं उसका अभिप्राय यह है कि पर्याप्ति शब्द की व्यवस्था सैद्धान्तिक दृष्टि से दो प्रकार की मानी गई है एक पर्याप्ति नामकर्मोदय से, दूसरी शरीर निष्पत्ति की अपेक्षा से श्री वीरसेन स्वामी और श्री अकलङ्कदेव को तो दोनों ही प्रकार की व्यवस्था चरितार्थ करनी चाहिये क्योंकि वे टीकाकार हैं टीकाकारों को तो नयभङ्गी से सभी व्यवस्थायें चरितार्थ करनी ही पड़ती हैं।

टीकाकारों ने जो मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द नियोजित किया और वहां १४ गुणस्थान भी बतलाये हैं वह केवल पर्याप्ति नामकर्म की अपेक्षा से है। कारण कि जीव विपाकी प्रकृतियों की स्पष्टता जीव परिणाम में ही स्पष्ट होती है। भाववेद जीव परिणाम है और सिद्धांत में पर्याप्ति को जीव विपाकी माना ही है और जीव विपाकीपन पर्याप्ति में पर्याप्ति नामकर्म के उदय से ही बनता है। शरीर पूर्ति में जो जीव विपाकीपन है वह पर्याप्ति नाम कर्मोदय सापेक्ष है। यह कार्य में कारण सापेक्ष व्यवहार है। परन्तु पर्याप्ति की मुख्यता शरीर पूर्ति पर ही ली गई है, नहीं तो शरीर की पूर्ति जब तक नहीं हो तब तक उसको अपर्याप्त (निर्वृत्यपर्याप्त) क्यों कहा जाय।

इससे स्पष्ट है कि शरीर निष्पत्ति की अपेक्षा वेद साम्य में ही ली गई है वेद वैषम्य में जो शरीर निष्पत्यपेक्षा है वह गौण रूप से है। वह गौण रूपता से भी इसलिये ली गई है कि भाववेद का आधार उस हालत में द्रव्यवेद और द्रव्य पुरुष का शरीर है। यह बात जो मैं ने लिखी है वह मेरी कल्पना की नहीं है किन्तु इस बात को श्री वीरसेन स्वामी ने ही श्री अकलङ्क देव के राजवार्तिक गत ३३१ वीं पंक्ति से पर्याप्ति नामकर्मोदय को चरितार्थ किया है क्योंकि वीरसेन स्वामी के सन्मुख वह राजवार्तिक की पंक्ति

थी। और शरीर पूर्ति के पक्ष को लेकर सूत्र ६३ के 'हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्ते' इस पंक्ति से श्री वीरसेन स्वामी ने यह बात अच्छी तरह से सूचित कर दी है कि सूत्र ६३ का प्रकरण द्रव्य स्त्री का है। यह द्रव्य स्त्री का प्रकरण क्यों है इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कि भाष्यकार ने— 'अस्मादेवार्षाद् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येत' इस पंक्ति में—'द्रव्यस्त्री' शब्द का प्रयोग किया है। यदि सूत्र में द्रव्य स्त्री का प्रकरण न होता तो भाष्यकार इस पंक्ति गत द्रव्य स्त्री का प्रयोग न करते परन्तु इस पंक्ति में 'द्रव्यस्त्री' शब्द का प्रयोग किया है इसलिये स्पष्ट है कि यह सूत्र द्रव्यस्त्री प्रकरण का है। दूसरे—'हुण्डावर्पिण्या स्त्रीषु' इत्यादि वाक्य में स्त्री शब्द का प्रयोग किया है, मानुषी शब्द का प्रयोग नहीं किया है। स्त्री शब्द स द्रव्य स्त्री ही ली जा सकती है क्योंकि स्त्री शब्द से सर्व सामान्य में द्रव्यस्त्री की ही प्रसिद्ध है। तथा तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय दो के सूत्र ५२ की सर्वार्थसिद्धि टीका में—

स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायत्यस्या गर्भ इति स्त्री।

ऐसी पंक्ति है, इसका हिन्दी अर्थ यह है कि स्त्री वेद के उदय से गर्भ का पालन, वर्द्धन जिसमें हो वह स्त्री' है।

वेद शब्द सिद्धांत में द्रव्य और भाव, के भेद से दोनों प्रकार का माना गया है यह बात गोम्मटसार जीवकांड वेदमार्गणा में निरूपण की गई है—

पुरिसित्थि संढवेदोदयेण भावे, णामोदयेण दव्वे गाथा २७० से तथा तत्वार्थ सूत्र में अध्याय २ सूत्र ५२ के—'नामकर्मणश्चारित्रमोहविकल्पस्य नोकषायोदयस्य चोदयाद्वेदत्रयस्यसिद्धिर्भवति। वेद्यत इति वेदो लिंगमित्यर्थस्तल्लिंगं द्विविधं द्रव्यलिंगं भाव—लिंगं चेति।

इस प्रकार राजवार्तिकसे भी स्पष्ट है कि वेद को। भावलिङ्ग ही नहीं माना है किन्तु द्रव्यलिङ्ग भी माना गया है। 'स्त्री वेदोदयात् स्त्यायत्यस्या गर्भ इति स्त्री, यहा की व्याख्या से स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्त्री शब्द बिना किसी विशेषणके द्रव्य स्त्री ही माना जाता है।

जब वेद के द्रव्य और भाव दोनों अर्थ हैं तो सत् प्ररूपणा प्रथम पुस्तक के सूत्र ८७ की उत्थानिका 'स्त्रीवेदविशिष्टतिरश्चा विशेषप्रतिपादनार्थं, इसमें तथा सूत्र ८८ के 'विशिष्ट वेदादिषु' भाष्य में जो वेद है वह भाववेद ही क्यों लिया जा सकता है। वहां भी तिरश्ची से सर्व साधारण में तथा सिद्धांत में द्रव्यवेद का ही बोध होता है।

इस सर्व कथन से यह बात सहज ही निकल आती है कि सूत्र ६३वें में जो पर्याप्त मनुष्यणी का ग्रहण है वह द्रव्य स्त्री का ही है। क्योंकि पर्याप्त मनुष्यणी को ही लक्ष्य करके श्री वीरसेन स्वामी ने-हुण्डावसर्पिण्या इत्यादि पंक्ति में पर्याप्त मनुष्यणी के पर्यायवाची स्त्री शब्द को ग्रहण किया है जो कि ऊपरके लिखान प्रमाणसे द्रव्यस्त्री का ही बोधक है।

दूसरे—'हुण्डावसर्पिण्या' इत्यादि शब्द द्वारा जो शङ्का भाष्य में उठाई है वह श्वेतांबर पक्ष को लेकर उठाई गई है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से द्रव्यस्त्री को मोक्ष मानी है और उन में भी श्री मल्लिनाथ तीर्थङ्कर को स्त्री माना है। जब सूत्र ६२वें में स्त्री को अपर्याप्त दशा में चतुर्थ गुणस्थान का निषेध किया गया है तब यह बात स्वय सिद्ध हो जाती है कि—जिसके पूर्व भव में सम्यक्त्व है वह जीव स्त्री की पर्याय में पैदा नहीं होता। और जब स्त्री पर्याय में पैदा नहीं होता तो उसके अपर्याप्त दशा

में सम्यक्त्व नहीं होता है। परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय में हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से अछेरा (अन होनी बात का होना) होने के कारण मल्लिनाथ तीर्थंकर स्त्री हुये हैं ऐसी दशा में यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि-तीर्थङ्कर प्रकृति वाले जीव के पूर्व भव का सम्यक्त्व होगा तभी वह आगे के जन्म में पंच कल्याण वाला तीर्थङ्कर होगा। अत. सिद्ध है कि पूर्वभव के सम्यक्त्व का सहयोग उस जीव को अपर्याप्त दशा में भी है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय मान्य इसी मन्तव्य को लेकर भाष्यमें 'हुण्डावसर्पिणी' इस पंक्ति द्वारा शङ्का उठाई गई है उसी का समाधान भाष्य में—'इतिचेन्-न उत्पद्यते, कुतोवसीयते ? अस्मादेवार्षात —इन वाक्यो से किया है।

शङ्का—इस आर्ष सूत्रमें ऐसा कौन सा वाक्य है जिससे कि यह समाधान हो जाता है ?

इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि इस आर्ष सूत्र में 'णियमा पज्जत्तियाओ' यह वाक्य पड़ा है, इसमे अपर्याप्त दशा में सम्यक्त्व का स्पष्ट निषेध हो जाता है।

इस सब लिखान से यह बात सहज समझ में आ जाती है कि सूत्र में पर्याप्त मनुष्यणी से द्रव्य स्त्री का ही ग्रहण है। यदि यहा पर्याप्त मनुष्यणी से भावस्त्री का ग्रहण होता तो भाष्यकार स्पष्ट लिख देते कि 'भाववेदात' अर्थात् यहा का प्रकरण भाववेद का होने से यह शङ्का नहीं हो सकती। परन्तु भाष्यकार श्री वीरसेन स्वामी ने वैसा भाववेद का हेतु दिया नहीं। इससे साफ सिद्ध है कि—पर्याप्ति विशिष्ट मानुषी यहा भावस्त्री नहीं है किन्तु द्रव्य स्त्री है।

यहा एक शङ्का यह उपस्थित होती है कि यदि इस सूत्र ९३वे में 'सञ्जद' पद न होता तो भाष्यकार इस सूत्र ९३वें के भाष्यमें 'अस्मादेवार्षात द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येत' यह शङ्का न उठाते। इसका समाधान पहले कई लेखों में दिया जा चुका है तथा दिगम्बर जैन सिद्धात दर्पण के ४५वें और ४६वें पत्र में भी वह समाधान मुद्रित है। फिर भी यहा सबको सरल रीति से जानकारी के लिये और लिख देते हैं वह समाधान इस प्रकार है—

'निर्वृत्ति' शब्द का किसी भी सिद्धान्त ग्रन्थ में या कोषो में मोक्ष अर्थ नहीं होता किन्तु—'निवृति' (जो द्वित्वतकारात्मक नहीं है) उसका मोक्ष अर्थ होता है। और द्वित्वतकारात्मक 'निर्वृत्ति' शब्द का 'निष्पत्ति-प्राप्ति अर्थ होता है। ऐसी दशामें उस पंक्ति का अर्थ यह होता है कि—

इसी आर्ष प्रमाणसे द्रव्यस्त्री को निष्पत्ति (प्राप्ति) सिद्ध है।' यह सिद्धात वाक्य है शङ्का वाक्य नहीं है।

श्री वीरसेन स्वामी ने यह पंक्ति क्यो लिखी जब कि 'हुण्डावसर्पिण्या' इत्यादि पंक्ति से शङ्का उठाने के कारण ही वह बात सिद्ध हो जाती है ?

इसका समाधान यह है कि श्री वीरसेन स्वामी के समक्ष सूत्र में 'सञ्जद' शब्द नहीं था इसलिये उन को यह बात सिद्ध करनी थी द्रव्य स्त्री के पाच गुणस्थान ही होते हैं। सूत्र में सञ्जद शब्द न होने से ही जोर के साथ श्री वीरसेन स्वामी ने यह बात इस पंक्ति से सिद्ध की है कि यहा का प्रकरण द्रव्यस्त्री का ही है। यदि यहा का प्रकरण भावस्त्री का होता तो इस सूत्र ९३वें मे 'सञ्जद' शब्द के अवश्य दर्शन होते परन्तु सूत्रगत यह बात नहीं है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि यहा का प्रकरण द्रव्यस्त्री का है और द्रव्यस्त्री के पाच ही गुणस्थान होते हैं। यह जैन सिद्धात का निष्कर्ष है।

इस लिखान से यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि—यह दूसरी पंक्ति 'अस्मादेवादूद्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येत्' सिद्धांत वाक्य है। इस पंक्ति को सिद्धांत वाक्य समझ कर ही शङ्काकार शङ्का करता है कि—

इतिचेत्—न सवासस्त्वादप्रत्याख्यान-गुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः भावसंयमस्तासां सवाससामपि अविरुद्धः।

इस बड़ी शङ्का पंक्ति में—'न' शब्द का सम्बन्ध 'अनुपपत्तेः' क्रिया के साथ है, क्योंकि 'न' अव्यय है और क्रिया विशेषण भी है इसलिये 'अनुपपत्तेः' कृदन्त क्रिया के साथ 'न' शब्द को संयोजित करने से 'नानुपपत्तेः' ऐसा शब्द हो जाता है फिर उस शङ्का वाक्य का अर्थ इतिचेत्-यदि ऐसा है तो वस्त्र सहित होने से पंचम गुणस्थानवर्तिनी स्त्रियों के संयम असिद्ध नहीं है, क्योंकि भाव संयम उनके वस्त्रसहित होने से भी विरुद्ध नहीं पड़ता है अर्थात् उनके वह बन जाता है।

इस शङ्का का समाधान श्री वीरसेन स्वामी ने दिया है कि—

'न तासां भावसंयमोऽस्ति भावासंयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः'

अर्थात् उनके (द्रव्यस्त्रियों के) भाव संयम नहीं होता क्योंकि असंयम का अविनाभावी वस्त्र का उनके ग्रहण है।

फिर आगे चौदह गुणस्थानों को लेकर वादी ने शङ्का की है वह सम्यक्त्व मार्गणा, क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम आदि मनुष्य प्ररूपणा के स्थलों को देखकर ही शङ्का की गई है यह बात वहां की धवला टीका से स्पष्ट है।

अब यहां के आगे के अर्थात् चौदह गुणस्थान परक शङ्का समाधान से यह बात मालूम होती है कि यदि सूत्र में 'संजद' पद होता तो वादी 'संजद' पद को लेकर ही शङ्का करता तथा श्री वीरसेन स्वामी भी सूत्र गत 'संजद' पद के होने पर द्रव्य स्त्री के चौदह गुणस्थान क्यों न स्वीकार कर लेते, जबकि वे आर्ष पद्धति से समाधान कर रहे हैं।

इन सभी बातों से स्पष्ट मालूम होता है कि सूत्र में 'संजद' शब्द नहीं है और यहां का कथन भावस्त्री का न होकर द्रव्य स्त्री का ही है।

इस स्थल का अन्य समाधान— ताड़पत्र प्रतियों में 'निर्वृत्ति' शब्द न होकर 'निर्वृति' और निर्वृति, ये दो प्रतियों के अलग अलग (पृथक् पृथक्) शब्द हैं इनमें से भी किसी का मोक्ष अर्थ नहीं होता फिर भी हम थोड़ी देर के लिये 'तुष्यतु सज्जनः' इस सौहार्दिक न्याय से इन तीनों में से किसी शब्द के होने पर उसका मोक्ष अर्थ मान लें जैसे कि कोई शुष्क वैयाकरणी सिद्धांत शास्त्र गत अर्थ की और कोष गत अर्थ की अवहेलना कर केवल सानुपसर्ग धातुज व्युत्पत्तिक अर्थ खेंचातानी से कर लेते हैं तो भी अपना जो सैद्धान्तिक अभीष्ट है उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। कारण सूत्र ९३वें के भाष्य में जो — 'हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्ते' इस पंक्ति परसे जो शङ्का उठाई गई है वह सम्यक्त्व को लेकर के अपर्याप्त अवस्था सम्बन्धी शङ्का है। उसका जो समाधान आर्ष शब्द द्वारा दिया गया है वह सूत्र गत 'पर्याप्त' शब्द को लक्ष्य करके ही दिया गया है यह बात सुस्पष्ट है। परन्तु सूत्रमें स्त्री के पर्याप्त अवस्थामें 'असञ्जद सम्माइट्ठि'

चौथे गुणस्थान का उल्लेख है। ऐसी दशा में वादी की शंका उपस्थित होती है कि चतुर्थ स्थान में उपशम क्षायोपशम और क्षायिक सम्यक्त्व भी द्रव्य स्त्री के पर्याप्त अवस्था में अनायास ही प्राप्त हो जाता है। और क्षायिक सम्यक्त्व वाला जीव उसी भव से या चौथे से मोक्ष जाता है चौथे भव का उल्लङ्घन करता नहीं। यह गोम्मटसार सम्यक्त्व मार्गणा में ६४५ वीं गाथा के आगे—

दसणमोहेक्खविदेसिज्झदि एक्केवतदियतुरियभवे।
णादिक्कदि तुरियभव ण विणस्सदिसेससम्मत्तं व ॥

यह गाथा है। इस गाथा गत—'एक्केव' शब्द का अर्थ 'उसी भव मे' ऐसा होता है। श्री प० खूबचन्द्र जी शास्त्री ने भी इस शब्द का यही अर्थ किया है ऐसी अवस्था में वादी के द्वारा यह शका उपस्थित की जाती है कि जब इस सूत्र से पर्याप्त मानुषी के (द्रव्यस्त्री के) क्षायिक सम्यक्त्व होना भी सिद्ध है। और क्षायिक सम्यक्त्व वाला जीव उसी भव में मोक्ष भी जा सकता है तो द्रव्यस्त्री को उसी भव से मोक्ष जाना स्वय सिद्ध है।

श्री वीरसेन स्वामी ने इसी भव को लेकर 'अस्मादेवार्षाद्द्रव्यस्त्रीणा निर्वृत्ति· सिद्ध्येत' इस पंक्ति से शङ्का उठाई है कि इसी आर्ष सूत्र से द्रव्यस्त्री को मोक्ष सिद्ध है। और फिर इसका समाधान 'इतिचेन्न सवासस्त्वादप्रत्याख्यान — गुणस्थिताना सयमानुपपत्ते' पंक्ति द्वारा किया है।

यहा पर यह बात अवश्य ही ध्यान देने योग्य है कि श्री वीरसेन स्वामी शकाकार की शकाओं का समाधान कर रहे हैं यह आर्ष पद्धत्ति को लेकर ही कर रहे हैं। 'हुण्डावसर्पिण्या' इत्यादि पंक्ति गत जो शका उपस्थित थी उसका समाधान सूत्र ६३वें में 'पज्जत्तियाओ' (पर्याप्त) शब्द देखकर आर्ष शब्द द्वारा समाधान किया है। इसी तरह शङ्काकार की इस शंका का समाधान भी इसी आर्ष पद्धति से दिया जायगा तभी शङ्काकार उनके समाधान को मान्य कर सकेगा अन्य नहीं।

ऐसी हालत में स्पष्ट मालूम होता है कि इस सूत्र में ऐसा कोई शब्द अवश्य है कि जिसको लेकर श्री वीरसेन स्वामी 'सवासस्त्वादप्रत्याख्यान गुणस्थिताना सयमानुपपत्ते' ऐसा समाधान कर रहे हैं।

विशेष विचार पूर्वक दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि सूत्र में पांचवा गुणस्थान वाचक एक 'सजदासजद' पद पडा है जिससे कि आर्ष सङ्गत समाधान हो जाता है। नहीं तो शङ्काकार (वादी) वीरसेन स्वामी के घर की मानी हुई बात भी कब स्वीकार कर सकता है। यह षटखण्डागम बहुत प्राचीन ग्रन्थ है इसलिये इसके विषय को शकाकार मानने को तैयार हो सकता है। तभी समाधान कर्ता ने इस ग्रन्थ के सूत्रगत 'सञ्जदासञ्जद' को लेकर 'अप्रत्याख्यानगुणस्थिताना शब्द द्वारा समाधान दिया है।

इस सब उपर्युक्त प्रतिपादित विषय से यह निष्कर्ष अनायास ही निकल आता है कि सूत्र में 'सञ्जद' पद नहीं है। सूत्र में यदि 'सजद' पद होता तो वीरसेन स्वामी ऐसा समाधान कभी नहीं करते अर्थात द्रव्यस्त्री को मोक्ष जाना स्वीकार कर लेते। परन्तु वहा 'सजद' पद नहीं है इसलिये द्रव्य स्त्री को मोक्ष भी इस सूत्र ६३ से सिद्ध नहीं है।

भाष्यकार ने सयमानुपपत्तिमे जो 'सवासस्त्वात' हेतु दिया है उससे दो बाते सिद्ध की हैं। उनमें से एक तो यह बात सिद्ध की है कि वस्त्रधारण करनेवाले किसी को भी सयम नहीं होता अर्थात पाचवा

गुणस्थान तक ही होता है। दूसरे स्त्री वस्त्र को त्याग नहीं कर सकती इसलिये उसके पांचवां गुणस्थान ही हो सकता है।

अब 'भावसंयमस्तासां सवाससमप्यविरुद्धः' यह दूसरी शंका इस बात को सूचित करती है कि वस्त्र-सहित होने से भले ही दिखाऊ द्रव्यरूप पांचवा गुणस्थान मानो परन्तु भाव की अपेक्षा तो उनके संयम हो सकता है अर्थात् संयम होना उनके विरुद्ध नहीं है। इसका समाधान धवलाकार ने लज्जा, कायरता, आततायी दुराचारी दुष्टों द्वारा शील-खण्डन का भय, आदि के कारण स्त्रियां वस्त्र नहीं छोड़ सकतीं इस बात को लक्ष्य करके 'न तासां भाव-संयमोऽस्ति' इत्यादि रूप से समाधान किया है।

असलियत में देखा जाय तो जो वस्त्रधारी हैं उन सभी को यह समाधान लागू पड़ता है कारण कि जो कायर हैं परीषह नहीं सह सकते तथा ममत्व परिणामी हैं वे ही वस्त्र का त्याग नहीं कर सकते और जो वस्त्र का त्याग नहीं कर सकते वे कभी भी संयम के धारक नहीं होते। क्योंकि वस्त्रधारी के परिणाम इतने उज्ज्वल नहीं होते जिससे कि उनके संयम की प्राप्ति होकर वे संयत हो सकें। दिगम्बर मुनि के ऊपर कोई वस्त्र डाल दे तो वह उनका इच्छानुसारी वस्त्र नहीं है। किन्तु वह उनके ऊपर परिणाम मलिनता का साधन होने से उपसर्ग है। इसलिये मुनि परिणाम मलिनता के साधन वस्त्र का कदापि ग्रहण नहीं करते हैं।

जो लोग वस्त्र को परिणाम उज्ज्वलता का साधन समझते हैं वे उस विषय के तत्त्वचिंतन से कोसों दूर हैं। क्योंकि वस्त्र ग्रहण में पहले ही आत्मबल का अभाव सूचित होता है और अन्तरङ्ग लोभ का अनुभव होता है अतः सवस्त्र संयत कैसे हो सकता है? संयत होने के लिये तो तिल तुष मात्र भी परिग्रह का ग्रहण नहीं होता फिर वस्त्र ग्रहण तो संयम का साधक भी क्यों कर हो सकता है? क्योंकि संयत के तो शरीर से भी जब निस्पृहता है तब वस्त्र से स्पृहता क्योंकर सम्भावित हो सकती है?

इस प्रकरणमें यहां एक शंका यह उपस्थित होती है कि दिगम्बर सम्प्रदाय में द्रव्यस्त्रियों को क्षायिक-सम्यक्त्व नहीं होता है कारण कि—श्रीपूज्यपादकृत सर्वार्थसिद्धि में "क्षायिकं पुनर्भाववेदेनैव" इस प्रकार लिखा है।

उसका समाधान यह है कि—जिस सम्यक्त्व से मोक्ष जाना माना है वह क्षायिक सम्यक्त्व द्रव्यस्त्री के नहीं होता है ऐसा भी सर्वार्थसिद्धिकार का आशय हो सकता है, नहीं तो द्रव्यस्त्री के क्षायिक सम्यक्त्व तो अवश्य होता है इसके लिये निम्न-लिखित प्रमाण श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड सम्यक्त्व-मार्गणा गाथा ७०४ की जीवतत्त्व प्रबोधिका टीका का मुद्रित प्रति ११४१ पत्र में लिखा है—

क्षायिकसम्यक्त्वं तु असंयतादिचतुर्गुणस्थान-मनुष्याणां, असंयत—देशसंयतोपचारमहाव्रतमनु-ष्यिणीनां च कर्मभूमिवेदकसम्यग्दृष्टीनामेव केवली-श्रुतकेवलिद्वयश्रीपादोपान्ते सप्तप्रकृतिनिरवशेषक्षये भवति।

इस प्रमाणित टीका के प्रमाण से यह बात निश्चितरूप से समझ में आ जाती है कि द्रव्यस्त्री के क्षायिक सम्यक्त्व अवश्य होता है। इस टीका में 'देश संयतोपचार महाव्रत' पद है वह द्रव्यस्त्री को छठे गुणस्थान आदि का निषेधक है। इसी तरह सूत्र ९३ में भी यह बात सिद्ध होती है कि वहां

चतुर्थ गुणस्थान है और चतुर्थगुणस्थान में क्षायिक सम्यक्त्व भी होता है अतः द्रव्यस्त्री के वहां पर क्षायिक सम्यक्त्व भी प्राप्त हो जाता है। और क्षायिक सम्यक्त्व होने से सम्यक्त्व मार्गणा की 'दंसण मोहे खविदे सिज्झदि एक्केव' इस गाथा के अनुसार द्रव्यस्त्री को तद्भव-मोक्षगामी भी होना चाहिये। परन्तु वहां 'संजदासंजद' (पांचवा) गुणस्थान इस बात को रोकता है कि द्रव्य स्त्री को उसी भव में मोक्ष नहीं होता जैसे कि देशसयतोपचार महाव्रत' शब्द उपर्युक्त टीकामें द्रव्यस्त्री को उसी भव में मोक्ष जाना रोकता है।

गोम्मटसार और गोम्मटसार की टीका तो श्री षटखण्डागम के आश्रय से ही निर्मित हुई है। नहीं तो टीकाकार की इतनी शक्ति कहां थी कि बिना किसी प्राचीन प्रमाण के ऐसा लिख देते। सर्वार्थ-सिद्धिकार ने जो भावस्त्री का क्षायिक सम्यक्त्व लिखा है वह सिर्फ कारण के निकट कार्य होने की संभवित अपेक्षा से लिखा है। इस लिये यहां पर आचार्यों के मत भेद का परस्पर कोई विरोध भी नहीं आता है।

जो एकान्त पक्ष को लेकर हठग्राही हैं वे भले ही विरोध समझें परन्तु जो आचार्यों के मत भेद को समन्वित करने वाले हैं उनके मंतव्य से न यहां विरोध आता है और न ऐसे स्थलों पर दूसरी जगह ही विरोध आता है।

इस सर्व उपर्युक्त विस्तृत लेख से स्पष्ट है कि सूत्र ९३ में 'संजद' शब्द नहीं है और इस में चूंचां करने की कहीं भी गुञ्जायश नहीं है।

इति 'संजद'पद निराकरणक प्रथम प्रकरण :

यहां शायद कोई एक हमारे परम मित्र विद्वान् सिद्धांतशास्त्री यह कहें कि जीवकाड सम्यक्त्वमार्गणा गाथा ७०४ की टीका में द्रव्यस्त्री को क्षायिक सम्यक्त्व लिखा है वह टीकाकार की गलती है। जैसी की जीवकाड गति मार्गणा की १५८ वीं गाथा की टीका में मनुष्यणी को गणना को द्रव्यस्त्री की गणना लिखकर गलती की है। तथा इसी तरह पर्याप्त प्ररूपणा प्रकरणकी गाथा १२७ मे 'सव्वइत्थीण' गाथापाठ को देखकर टीकाकारो ने सर्व देव मनुष्यो की स्त्रिया अर्थ किया है वहां 'संढ इत्थीण' गाथा का पाठ सुधार कर 'नपुंसक और स्त्रिया अर्थ करना चाहिये।

इसी तरह कर्मकाड सत्व स्थान प्रकरण की गाथा ३८१ वीं जीवतत्व प्रबोधिनी टीका मे गलती की है। क्योंकि तीर्थंकर सत्व प्रकृति से पूर्व मिथ्या दृष्टि ने नरक आयु का बंध कर लिया हो वह पहली दूसरी तीसरी नरक पृथ्वी में जाता है। परन्तु यहां क्षायिक सम्यग्दृष्टि का प्रकरण चला आ रहा है। इस लिये तीनो नरको मे तीर्थंकर सत्व प्रकृति के जीव को सस्कृत टीकाकारो ने क्षायिक सम्यक्त्व सहित उत्पन्न करा दिया। इस प्रकार तीन जगह गोम्मटसारके टीकाकार की भूल सिद्धात परीक्षा भाग १-पत्र ४७, ४८, ४६, आदि में दिखलाई है। परन्तु वह गोम्मटसार के टीकाकार की भूल नहीं है किन्तु टीका और मूलग्रथ के आशय समझने की भूल है।

पहले स्थल की भूल यो नहीं है कि गोम्मटसार जीवकाड गति मार्गणा की १५६ की गाथामें सामान्य मनुष्य राशि का प्रमाण बतला कर 'पचम कदि घण समपुण्णा' गाथा के चतुर्थ पद से पर्याप्त मनुष्यो की

सख्या का वर्णन किया है और 'पचम कृति घन' कितना प्रमाण वाला होता है इस बात के निर्णय के लिये 'तललीन मधुग विमलं' इत्यादि १५७ वी गाथा लिखी है। उसके हिसाब से पर्याप्त मनुष्यों की अर्थात् द्रव्य मनुष्यों की २९ (गुनतीस) अङ्क प्रमाण सख्या बतलाई है।

फिर आगे चल कर गाथा १५८ में यह बात बतलाई है कि पर्याप्त मनुष्यों की जितनी सख्या है उसमें तीन हिस्सा मनुष्यनियो की सख्या है और एक हिस्सा पर्याप्त मनुष्यों (द्रव्य मनुष्यों) की संख्या है।

यहा पर यह विचारने की बात है कि इस गाथा मे जो मनुष्यणियोका ग्रहण है वह द्रव्य मनुष्यणियों का है या भाव मनुष्यणियो का है ? ऊपर की गाथा और इस १५८ वीं गाथा के हिसाब स तो यही अर्थ निकलता है कि यहा मनुष्यणी स द्रव्यमनुष्यणीका ही ग्रहण है क्योंकि ऊपरकी गाथाओं मे जो गणना की है वह पर्याप्त मनुष्यों की अर्थात द्रव्य मनुष्यो की गणना की है और उसी में से तीन भाग सख्या मनुष्यणी की बतला रहे हैं। इस लिये अनायास ही यह आ जाता है कि यह गणना द्रव्य मनुष्यणियों की है। गाथा १५८ में पर्याप्त मनुष्यणियों का एक अंश छन्दोभङ्ग न होने के अभिप्राय से मनुष्यणी हो लिया है जो कि सम्बन्धित गाथाओं के अभिप्राय से यह बात स्वयमेव ही सिद्ध है। और विग्रह गति में भी जिस शरीर को जीव छोड़ता है उसी शरीर का आकार बना रहता है इसलिये शरीराकार की अपेक्षा उपचार से पर्याप्त 'द्रव्यशरीर' वहा भी है। और निर्वृत्यपर्याप्ति तो पर्याप्ति ही है क्योंकि जब तक शरीर की पूर्ति नहीं होती तभी तक उसका नाम निर्वृत्यपर्याप्ति है। इसलिये इस १५८ वी गाथा में संस्कृत या भाषा टीकाकारो ने जो मनुष्यणी का अर्थ द्रव्यको किया है वह ठीक ही किया है उनको वास्तव में कोई भी भूल नहीं है। संस्कृत टीका श्री चामुण्डराय कृत कनड़ी टीका के आश्रय से लिखाई गई वह कनड़ी टीका श्रवण वेल गोला के शास्त्र भण्डार में ताड़पत्र पर है। ताड़पत्र ५८ पंक्ति नं १ (द्रव्यस्त्री पर परिमाणमुक्कु) ऐसा लिखा हुआ पाठ है यह बात श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंह जी महाराज ने ता० २६-१-१९४६ की चिट्ठी के द्वारा सूचित की है इससे भी यह बात प्रामाणिक मानी जाती है कि— यहा संस्कृत टीकाकारों की भूल नहीं है श्री चामुण्ड-राय महाराज तो खास श्री नेमिचन्द्र सिद्धात चक्र-वर्ति के शिष्य थे। इसलिये उनस इतनी बड़ी भूल कैसे हो सकती है ? अर्थात यहां कोई भी भूल गोम्मटसार के टीकाकारों की नहीं है। यहा इतनी बात विशेष और है कि इस स्थल को छोड़कर के अन्य जहा कहीं भी गोम्मटसार में मनुष्यणी शब्द आया है वह सर्वत्र भावस्त्री अर्थ का ही सूचक है। श्री षटखण्डागम में तो कहीं भी मनुष्यणी शब्द द्रव्य की वाचक नहीं आया है।

दूसरा स्थल—'सव्व इत्थीणं' में इतना विवेक है कि द्रव्यस्त्री में द्रव्यनपुंसक का भी ग्रहण होता है क्योंकि जगत में जितने हिजड़े (नपुंसक) होते हैं वे सभी स्त्री रूप में रहते हैं तथा उनके हावभाव भी द्रव्यस्त्रियो सरीखे होते हैं इसलिये उनकी गणना द्रव्यस्त्रियों में ही आ जाती है और द्रव्यस्त्रियो की सख्या का जो प्रमाण है उसके अन्तर्गत (भीतर) ही द्रव्यनपुंसकों की सख्या आ जाती है इसलिये ग्रन्थ-कारों ने द्रव्यनपुंसको की सख्या छोड़ दी है ऐसी धारणा निर्मूल हो जाती है। अर्थात मूल ग्रन्थकारों

के मत से द्रव्यनपुंसकों की सख्या छूटी नहीं है। टीकाओं में यह बात किसी कारण से रह गई है। नहीं तो वहा भी यह बात अवश्य आनी चाहिये। 'सण्ढइत्थीण यह पाठ तो अवश्य नहीं है कारण कि यदि ऐसा पाठ होता तो ग्रन्थकार उन नपुंसको की सख्या रूप गणना अवश्य करते। अर्थात ऐसी मोटी भूल ग्रन्थकारों की दृष्टि में कभी न रहती। और रत्नकरण्ड श्रावकाचार की 'सम्यग्दर्शनशुद्धा' इत्यादि गाथा के हिसाब से मनुष्य गति में द्रव्य—नपुंसक अवश्य ही हैं। नहीं तो उनका वर्णन गाथा में नहीं आता, पुरुषों में तो उनका समावेश होता नहीं क्योंकि उनका पहनाव और चाल चलन सब पुरुषो का सा न होकर स्त्रियो का सा ही है इसलिये उनका समावेश द्रव्यस्त्रियों में है ऐसा होने से उनको सख्या रूप गणना रह गई हो यह बात भी दूर हो जाती है। रत्नकरण्ड में उनका वर्णन द्रव्य स्त्रियों से भेद दिखाने की विवक्षा को लेकर पृथक किया है और सिद्धात ग्रन्थो में उनको द्रव्य स्त्रियों में समाविष्ट कर अभेद विवक्षा से वर्णन है यह निष्कर्ष स्वयमेव ही निकल आता है।

तीसरी टीकाकारों की भूल गिनाई है वहां पर हमारे मित्र सिद्धात शास्त्री जी ने गहरा विचार नहीं किया है। किन्तु उनने टीकाकारों की भूल इस धुन में हठात् भूल दिखाने के लिये 'क्षपित सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टात्रिंशतशतकेऽपि त एव त्रयो भङ्गाः' इस पंक्ति के आदि की पक्ति 'कृतकृत्यवेदकतीर्थसत्वमनुष्यस्य गतिद्वयजननसम्भवात्' यह पक्ति छोड़ दी है। यदि इस पंक्ति का आश्रय भी लेकर शास्त्री जी 'यो बद्धनरकायुस्तीर्थसत्वः स प्रथमपृथिव्या द्वितीयाया तृतीयाया वा जायते' इस पक्ति का अर्थ बैठाल लेते तो उनको यह लिखने की कोई गुञ्जाइश सिद्धात परीक्षा भाग १ के पत्र ४१वे में न रहती कि — यहा सस्कृत टीकाकार ने क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव को पहले दूसरे और तीसरे नरक में उत्पन्न कर दिया मैं शास्त्री जी से पूछ सकता हूं कि—कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वी तीर्थंकर सत्व प्रकृति वाला मनुष्य क्या चौथी आदि नीचे की नरक भूमि में भी उत्पन्न होता है? जब वहा नहीं उत्पन्न होता है तो कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वी तीर्थ सत्व का तीन नरक तक ही स्थान रहता है। और क्षायिक सम्यक्त्वी तीर्थ सत्व का पहली नरक भूमितक रहता है। इससे सिद्धात दृष्टिमे यह अनायास ही निष्कर्ष निकल आता है कि तीर्थङ्कर सत्व प्रकृति के साथ क्षायिक सम्यक्त्वी होगा तो वह पहली नरक पृथ्वी मे जन्म लेगा। और कृतकृत्य वेदक के साथ तीर्थङ्कर प्रकृति सत्व वाला होगा वह दूसरी तीसरी नरक पृथ्वी में भी जन्म लेगा। इस 'यो बद्धनरकायुस्तीर्थ सत्वः स प्रथम पृथिव्या द्वितीयाया तृतीयाया वा जायते' पक्ति में खास क्षायिक सम्यक्त्वी तो लिखा नहीं है।

इसलिये इस स्थल पर भी आपका दिया हुआ यह आक्षेप सिद्ध नहीं होता कि सस्कृत टीकाकार ने यहा यह भूल की है। ऊपर से वेदक सम्यक्त्व के साथ तीर्थ सत्व का और क्षायिक सम्यक्त्व के साथ तीर्थ सत्व इन दोनो का वर्णन चला आ रहा है। इसलिये नरक भूमियों में जहा जैसा सिद्धात दृष्टि से वर्णन है वहा वैसा अर्थ स्वयमेव ही आ जाता है।

अत. कहना होगा कि यहा भी टीकाकारों ने कोई भूल नहीं की है। केवल आपकी ही पूर्वापर से ग्रन्थ के सम्बन्ध नहीं लगाने की भूल है। इन तीनों स्थलो में से ऊपर का जो इस लेख का मुख्य स्थल है

वहा तो किसी अश मे भी भूल नही है क्योंकि वहा तो षटखण्डागम के सूत्र ६३ से उसका सम्बन्ध बैठ जाता है। मेरा तो इस विषय में स्पष्ट सिद्धांत है कि गोम्मटसार के टीकाकारों ने वहीं भी भूल नहीं की है। कारण कि जो षटखण्डागम सूत्रों का और गोम्मटसार का अभिप्राय (मत) है। अन्य ग्रन्थों से कहीं मतभेद पडता है वह उनकी अलग २ आचार्य परम्परा का कुछ कहीं सैद्धान्तिभेद के होनेसे मतभेद दीखता है।

यहा अवश्य ही एक बात ध्यान में देने योग्य है कि पर्याप्त विशेषण रहित मनुष्यणियो के अर्थ में षटखण्डागम और गोम्मटसार का एक ही मत है अर्थात दोनो ग्रन्थकार पर्याप्त विशेषण रहित मनुष्यणी का अर्थ भावस्त्री ही मानते हैं। परतु *गोम्मटसार के टीकाकारों ने जहा कहीं इस नियम* का निर्वाह दूसरी तरह भी किया है उसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

असयतमनुष्या प्रथमोपशमवेदकक्षायिकत्रय च सम्भवति तथापि एको भुज्यमानपर्याप्तालाप एव, योनिमतीना च पञ्चमगुणस्थानादुपरि गमनासम्भवात् द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नास्ति।

यहा पर 'मानुष्या' अकेला शब्द दीख रहा है। इसलिये 'भावस्त्री' इस 'मानुष्या' शब्द का अर्थ होना चाहिये परन्तु साथ ही लिखा है कि 'भुज्यमान-पर्याप्तालाप एव' इससे स्पष्ट अर्थ द्रव्यस्त्रीका हो जाता है क्योंकि मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द होने से द्रव्यस्त्री का ही अर्थ सूचित होता है। इसी का स्पष्ट कारण आगे के 'योनिमती' शब्द से हो जाता है। और मानुषी का भावस्त्री तो होता ही है। इसलिये भावस्त्री अर्थ भी यहा लिया जा सकता है। परतु मुख्यता से पर्याप्त और योनिमती शब्द होने से द्रव्यस्त्री अर्थ ही यहा है। अत टीकाकारों के ऐसे ही स्थल दूसरी तरह निर्वाह के समझे जाते हैं, जो षटखण्डागम में तो सर्वत्र एक ही नियम रहा है कि जिस जिस जगह मानुषी के चौदह चौदह गुणस्थान गिनाये हैं वहा कहीं भी उसके साथ 'पर्याप्त' शब्द नहीं है। परन्तु 'मनुष्य' के साथ 'पर्याप्त' शब्द अवश्य है इस लिये उस उस स्थल पर सर्वत्र ही मानुषीसे भावस्त्री और पर्याप्त मनुष्यसे द्रव्य मनुष्य का ग्रहण हुआ है वह वेद वैषम्य की अपेक्षा से हो है। जैसे द्रव्य मनुष्य के भाववेद स्त्री होता है उसी तरह द्रव्य मनुष्यके भाववेद नपुसक होता है। इसी लिये नपुसक वेद को यानी भाव नपुसक को भाव-स्त्री वेद के समान श्रेणी आरोहण में लिया गया है। नपुसक द्रव्यवेदको तो किसी भी दिगम्बर श्वेताबर आदि जैन फिरके में मोक्ष का अधिकारी नही माना है। परन्तु द्रव्यस्त्री के लिये मोक्ष की अधिकारितामे दिगम्बर श्वेताबर सम्प्रदायमें मतभेद अवश्य है।

इसी लिये दिगम्बर सम्प्रदाय मे मनुषिणी के साथ पर्याप्त शब्द नियोजित न करके उसका भावस्त्री भेद कर दिया है और भावस्त्री को मोक्ष जाना माना है और द्रव्यस्त्री को मोक्ष का निषेध किया है। यह मणुसिणी के साथ पर्याप्त शब्द रहने न रहने का अटल सिद्धात हैं। भाव नपुसक का अलग विवेक इस लिये नही किया गया है कि उसका समावेश द्रव्य मनुष्य के भाववेद में वेद वैषम्य की अपेक्षा से हो ही जाती है। इसलिये यह ही निश्चित है कि पर्याप्त मनुष्य में पुरुषवेदी के साथ नपुसक वेदी को जो लिया है। वह वेदवैषम्य से ही लिया है, न कि पर्याप्त मनुष्य को ही भाव पुरुष वेदी और

भाववपुंसक वेदी मान लिया है। मनुष्य के साथ पर्याय शब्द है इस लिये वह तो स्वयं द्रव्यवेदी है परन्तु भाव वेद उसके वेद साम्य और वेद वैषम्य से तीनों प्रकार के होते हैं।

दोनों सम्प्रदायों का द्रव्यस्त्री मोक्ष में विवाद है। इस लिये दिगम्बर सम्प्रदाय में मनुषिणी क साथ पर्याप्त शब्द न लगा कर भावस्त्री का विवेक मोक्षाधिकार में सूचित किया है।

वास्तव में देखा जाय तो द्रव्यस्त्री को मोक्ष जाना श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने भी नहीं माना है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जो द्रव्यस्त्री को मोक्ष जाना माना है वह हुडावसर्पिणी काल का अपेक्षा से ही माना हुआ प्रतीत होता है कारण कि उनके सिद्धात ग्रथों में द्रव्यस्त्री को अरहंत, चक्रवर्ति, वासुदेव, गणधर श्रुत केवली होने आहारक ऋद्धि होने आदि का निषेध किया है। क्योंकि उनके मान्य ग्रंथ प्रवचन सारोद्धार के तीसरे भाग के ५४४ और ५४५ पृष्ठ में इस प्रकार की गाथा है।

अरहत चक्कि केसव बलि संभिन्नेयचारणे पुव्वा।
गणहर पुलाय आहारगच न हु भवियमहिलाणं ॥

अर्थात् भव्यस्त्री अर्हंत, चक्रवर्ति, नारायण, बलभद्र, संभिन्नश्रोता, चारण ऋद्धिधारी १४ पूर्व पाठी, गणधर, पुलाक तथा आहारक ऋद्धिधारी नहीं होती है।

अतः इस गाथा से स्पष्ट सिद्ध होता है कि द्रव्य स्त्री अर्हंत अवस्थाको ही जब प्राप्त नहीं होती तो फिर मोक्ष उसको कैसे मानी जा सकती है। महिला शब्द का अर्थ द्रव्यस्त्री होता है।

श्रीनेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ति ने भी—

कम्मभूमि महिलाणं

इस गोम्मटसार कर्मकांड की ३२ वीं गाथा में द्रव्यस्त्री के लिये महिला शब्द का प्रयोग किया है। और कर्मकाड की ३०१ गाथा में छहे सहननों का उदय लिखा है वहां 'मणुसिणि एत्थी सहिदा' इस गाथा प्राप्त 'मनुसिणी' शब्द है इससे स्पष्ट है कि भावस्त्री के छह सहनन होते हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी वज्रवृषभनाराच सहनन से ही मोक्ष होती है। ऐसा स्पष्ट उल्लेख अमोलिक ऋषिकृत टीका सहित उववाईस सूत्र पत्र २० प्रश्न न० १६ में इस प्रकार स्पष्ट लिखा है कि—

'जीवाण भन्ते सिज्झमाणा कयरंसि संघयणे सिज्झन्त ? गोयमा ? वईरोसणाय संघयणे सिज्झन्ति।

उववाइसूत्र शास्त्राकार श्री० ऐ० दि० जैं० सरस्वती भवन बम्बई जनरल न० ३५८२ क० न० २३३ में यह पुस्तक दर्ज है।

दूसरा प्रमाण प्रवचनसारोद्धार भाग चौथा समहणी सूत्र पत्र ८५ मे—

छेवट्ठेण उ गमई चउरो जा कप्पकीलियाईसु।
चउसुदुदु कप्प वुड्ढी पढमेण जाव सिद्धीवि ॥

यह गाथा है इसमें स्पष्ट लिखा है कि वज्रवृषभनाराच सहनन से ही मोक्ष होती है। तथा 'स्त्री नरक में भी गमन करती है। तो छठे नरक से आगे गमन नहीं करती' यह बात भी प्रकरण रत्नाकर ग्रन्थ के चौथे भाग के संग्रहणी सूत्र पृष्ठ १०० को निम्न—लिखित गाथा स सिद्ध है।

असन्निसिरसवपक्खीससीह उरगिछिजतिजाछट्ठि।
कमसो उक्केसेण सत्तमपुढवो मणुयमच्छा ॥

इस गाथा में नरक की छठी भूमि तक स्त्री के गमन का विधान है।

तथा किस किस सहनन से कौन कौन से नरक तक गमन होता है वह प्रवचनोद्धार के चौथे भाग संग्रहणी सूत्र की निम्न लिखित गाथा में बताया है-

दो पढमपुढविगमन छेवट्ठे कीलियाइ सङ्घयणे।
इक्किक्क पुढविवुड्ढी आइसिलेस्साउ णरएसु ॥२३६॥

इस गाथा से स्पष्ट है कि—वज्रनाराचसहनन से नरक की छठी भूमि तक गमन है तथा ऊपर की 'असन्निसिरीसिवपक्खी उरगिङ्कि जंति जाछट्ठिं। इस गाथा से स्त्री छठे नरक तक ही जाती है।

इन सभी श्वेताम्बर आगमिक प्रमाणों से निष्कर्ष निकल आता है कि स्त्री के वज्रर्षभनाराच नामक पहला सहनन नहीं होता किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार दूसरा वज्रनाराचसहनन तक होता है। जब स्त्री के पहला वज्रर्षभ नाराचसहनन नहीं होता तो उसको मोक्ष भी नहीं हो सकती इस सब कथन से स्पष्ट सिद्ध है कि—द्रव्यस्त्री को मोक्ष जाने का विधान श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सिद्धांत में नहीं है किन्तु यापनीय सङ्घ के हिसाब से है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो सिर्फ हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से ही अछेरा (अन होनी बात का हो जाना) रूप दोष से द्रव्य स्त्री को मोक्ष माना गया है। उसी बात को लेकर के इतना बड़ा तूमाल पीछे के शास्त्रों में लिखा गया है कि—

मरुदेवी को हाथी पर बैठे २ ही तथा मृगावती को चन्दना के पैर दाबते दाबते, चन्दना के केवल—ज्ञानिनी मृगावती द्वारा अपने पैर दबाये जाने रूप अविनय का पश्चात्ताप करते हुये, और एक बुढ़िया को उपाश्रय में बुहारी देते देते ही केवलज्ञान होगया आदि बहुत सी बातें भोले भाइयों को समझाने के लिये लिख दी हैं। इन बहुत सी असम्भव बातों का स्पष्ट उल्लेख दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण के द्वितीय अंश के 'सत्पथ प्रदीप' लेख में है। अतः पुनरुक्त होने से यहां उन सभी श्वेताम्बर मान्य सिद्धांत विरुद्ध असम्भव बातों का उल्लेख नहीं किया है।

दिगम्बर जैन धर्म में ऐसा सिद्धांत के विरुद्ध अछेरा नहीं हो सकता है इसलिये हुण्डावसर्पिणी-काल में भी द्रव्य स्त्री को मोक्ष नहीं मानी है। यह बात कर्म सिद्धांत से क्यों नहीं हो सकती इसका अच्छा उत्तर श्री पण्डित अजितकुमार जी शास्त्री ने अपने सत्पथ प्रदीप लेख के पत्र २३२ में आबाधा-काल को लेकर दिया है। इससे स्पष्ट है कि दिगम्बर जैनधर्म में कर्म सिद्धांत सापेक्ष कहीं भी विशृङ्खलता या त्रुटि नहीं है।

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में जब कर्म सिद्धांत से द्रव्य स्त्री को मोक्ष नहीं है तथा उनके प्रामाणिक ग्रन्थों में जो वेद वैषम्य के दर्शन हो रहे हैं तब यह बात अनायास ही निकल आती है कि उनके यहां भाव स्त्री को मोक्ष माना है और भाव नपुंसक को भी मोक्ष का विधान है अन्यथा वेद वैषम्य का विधान भी किस हेतु से माना जाय। शास्त्रों में कोई निरर्थक विधान हो यह तो कभी माना जा नहीं सकता। जहां कहीं भी जो कुछ विधान होता है वह किसी न किसी की सार्थकता लिये ही होता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में—वेद वैषम्य विधान—बृहत्कल्प सूत्र के उद्देश चार में देखिये—

तिविहम्मिवि वेदम्मि तियभङ्गो कायव्वो ॥५१४७॥

इसकी टीका—'स च नपुंसकवेद. त्रिविधेपि वेदे भवति। यत आह—त्रिविधेऽपि वेदे प्रत्येक त्रि-वेदभङ्ग. कर्तव्यो भवति। कथमिति चेदुच्यते-पुरुष वेदः वेदं वेदयति, पुरुषवेदः स्त्रीवेदं वेदयति पुरुषो नपुंसक

वेदं वेदयति । एवं स्त्री नपुंसकयोरपि वेदत्रयोदयो मन्तव्यः। (सिद्धांत परीक्षा भाग १ श्री पं० फूलचन्द जी द्वारा दिये गये उत्तर का पत्र १४ और १५)।

तत्वार्थभाष्य की सिद्ध सेनी टीका—'लिंग त्रिविधं स्त्रीत्वादि तदधीनत्वाल्लिंगमुच्यते, यस्मात्पुरुषलिंग निवृत्तावपि प्रकट्यामपि कदाचित् स्त्रीलिङ्गमुदेति न च स्पष्टं बहिरूप लभ्यते नपुसक लिंग वा आदि।

सिद्धांत परीक्षा भाग १ श्री प० फूलचन्द जी शास्त्री द्वारा दिये गये उत्तर का पत्र ५८।

इन प्रमाणों को नवीन बतलाकर के हटाया नहीं जा सकता।

दिगम्बर सम्प्रदाय में तो वेद वैषम्य का कथन बहुत प्राचीन है। इस वेद वैषम्य के विषय में प्राचीन परमागम रूप—

पुंवेदं वेदतो जे पुरसा खवगसेढिमारूढा।
सेसोदयेणवि तहा झाणवजुत्ताय तेदु सिज्झति॥

यह प्रमाण गाथा है।

तथा षटखण्डागम के सूत्रों मे- -पर्याप्त विशेषण रहित मानुषी के जो १४ गुणस्थान का जहां जहां वर्णन है वहां सूत्रकार के मत से भावस्त्री को ग्रहण किया है। अत इस प्राचीन ग्रन्थ से भी वेद वैषम्य सिद्ध है। इन्हीं प्राचीन प्रमाणों का आश्रय लेकर के जीवकाण्ड वेदमार्गणा—

'पुरिसिच्छि संढवेदोदयेण' इत्यादि २७०वीं गाथा वेदवैषम्य की प्रतिपादक है। तथा आचार्य अमितगति कृत पञ्चम संग्रह 'स्त्रीनपुंसका जीवा सदृशा द्रव्यभावतः जायन्ते विसदृशाश्च कर्मपाक नियंत्रिता' अध्याय १ गाथा १६९ से १९४ तक में वेद वैषम्य का स्पष्टीकरण है। यह सब वेद वैषम्य का विषय दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों आगम से सिद्ध होने पर भी प्रोफेसर हीरालाल जी ने अपनी निजी बौद्धिक युक्ति से वेद वैषम्य को उड़ाना चाहा है परन्तु वह उनकी युक्तियों से उड़ नहीं सका है।

प्रोफेसर हीरालाल जी अपने युक्तिवाद में कहां पर स्खलित हुये हैं वह स्थल ध्यान देने लायक है, आपने वेद वैषम्य को खण्डन करने के लिये श्री गोम्मटसार कर्मकाण्ड गत प्रत्येक कर्मोदय के नोकर्म दर्शक प्रकरण में से वेदों के नोकर्म विधान की—

थी पुंसढसरीरं ताण णोकम्म दव्वकम्म तु ॥७६॥

यह गाथा और उसकी टीका—

'स्त्रीपुंवेदयोः स्त्रीपुंशरीरे नोकर्म द्रव्यकर्म भवति। नपुंसकवेदस्य तद्द्वय नपुंसक शरीरं च॥'

इस गाथा की टीका से अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिये श्री प्रोफेसर जी समझाते हैं कि—"पुरुष शरीर सांगोपांग होगा तो वहां पुरुष वेद का उदय होगा और पुरुष शरीर मे विकलता होगी तो वह नपुंसक होने से वहां नपुंसक वेद का उदय होगा इसी तरह स्त्री का शरीर सांगोपांग होगा तो स्त्रीवेद का उदय होगा यदि उस शरीर में विकलता होगी अर्थात वह नपुंसक हो जायगा तो उसके नपुंसकवेद का उदय हो जायगा।"

इस प्रकार प्रोफेसर जी के विधान का टीका में पड़े हुये 'तद्द्वय' शब्द से खण्डन हो जाता है कारण कि यदि टीका में नपुंसक वेद के उदय के लिये नपुंसक शरीर ही होता तो आपका किया विधान अवश्य ही बन जाता परन्तु वहां तो 'तद्द्वयं' यह एक शब्द और पड़ा है जो कि नपुंसकवेद के उदय को स्त्री शरीर और पुरुष शरीर से पृथक २ बतला रहा है। ऐसा होने से सिद्धांत ग्रन्थों से सम्मत वेद वैषम्य अनायास ही सिद्ध है। इसलिये मानना पड़ेगा कि वह

कल्पना प्रोफेसर जी की निराधार ही कल्पना है।

तथा इस उपर्युक्त गाथा और टीका से सिद्ध हो जाता है कि भाव वेदोदय की और पुरुष तथा नपुंसक के शरीरोत्पत्ति में कारण नहीं है। किन्तु शरीर ही वेदोदय की उत्पत्ति में कारण है। वेदों की आनुपर्विक व्यवस्था जीवकांड के टीकाकारों ने जो की है वह भी आपकी कल्पना को सिद्ध नहीं करती है। वह क्यों नहीं करती है उसका उत्तर टीका के आधार से निम्न प्रकार है—

पुंवेदोदयेन निर्माण-नामकर्मोदय युक्तांगोपांग-नामकर्मोदयवशेन श्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिंगांकितशरीराविष्टो जीवो भवप्रथमसमयादि कृत्वा तद्भवचरम-समयपर्यंत द्रव्यपुरुषो भवति ॥

यहां पुंवेदोदयेन शब्द में जो तृतीया है उसे आपने हेत्वर्थ में समझ रक्खा है। परन्तु यहां तृतीया हेत्वर्थ में न होकर सहयोग में है। सहयोग में क्यों है? इसका उत्तर यह है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने से वर्तमान की पर्याय में जो भाववेद है वह नवीन भव की प्राप्ति के पूर्व समय तक तो रहता ही है परन्तु नवीन भव पर्याय धारण करते ही बदल जाता है अर्थात् द्रव्य स्त्री से और भाव स्त्री से देव पुरुष होने के पूर्व पहला भाववेद नष्ट हो जाता है अर्थात् देव पर्याय में दोनो पुरुष वेद साथ साथ ही उत्पन्न होते हैं। यदि एक वेद दूसरे के बदलने में अर्थात् उत्पन्न कराने में हेतु होवे तो ऐसे स्थल पर कहना होगा कि द्रव्यवेद ही भाववेद उत्पत्ति का कारण हो सकेगा परन्तु यह बात नहीं है किन्तु द्रव्य, वेद की उत्पत्ति के समय जो भाववेद होगा उसका सहयोग देव योनि और भोग भूमियां में अवश्य ही रहेगा।

परन्तु कर्मभूमि की मनुष्य तिर्यञ्च पर्याय में हर समय सहयोग रहे भी और न भी रहे। इसलिये वेद प्रकरण में जो बात प्रोफेसर हीरालाल जी ने निश्चय कर रक्खी है वह नहीं ठहरती।

इस उपर्युक्त लिखान से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देव पर्याय नरक पर्याय और भोग भूमियों के भव की आदि से अंत तक जो द्रव्यवेद रहता है वह ही भाववेद रहता है वहां पर पर्याय भर भाववेद बदलता नहीं इसलिये वेद अपरिवर्तन का नियम वहां ही लागू है। परन्तु कर्मभूमि के सञ्ज्ञी पर्याप्त मनुष्य के और सञ्ज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच के यह नियम लागू नहीं है। क्योंकि पंच संग्रह के—

नान्तर्मुहूर्तका वेदास्ततः सन्ति कषायवत्।
आजन्ममृत्युतस्तेषामुदयो दृश्यते यतः ॥१-१८१॥

इस श्लोक में और 'त्रयाणां वेदानांक्रमेणैव प्रवृत्तिर्नाक्रमेण पर्यायत्वात् कषायवत् नांतर्मुहूर्तस्थायिनो वेदा आजन्मन आमरणात्तदुदयस्यसत्वात्' इस धवला की पंक्ति में कहीं भी जीव की पर्याय विशेष नहीं लिखी है: किन्तु सामान्य कथन है। इसलिये जहां जैसा अर्थ सम्भव होगा वहां वैसा अर्थ शास्त्र और लोक-दृष्टि को देखकर लगाया जा सकेगा।

यदि हमारे समाज के मान्य सैद्धान्तिक शास्त्रियों का यह ही अभिमत हो कि कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंचों के भी भाववेद बदलता नहीं है तो वह सिद्धांत भी अपने अभीष्ट सिद्धि का बाधक नहीं कारण कि जिस समय द्रव्यवेद का निर्माण होगा उसके उस समय में जो भाववेद उस जीव के होगा वह सहयोगिता कर द्रव्यवेद के साथ जन्म पर्यंत रह सकेगा। इस तरह भी सैद्धांतिक वेद वैषम्य सिद्ध हो है। टीका में—पुंवेदोदयेन इत्यादि तृतीया है वह हेतु

बाधक सिद्धांत दृष्टि से नहीं है किन्तु वहां सहयोगार्थक ही तृतीया है। इसलिये प्रोफेसर हीरालाल जी वहां हेत्वर्थक तृतीया मानकर जो अर्थ समझ रहे हैं वह बात सैद्धांतिक प्रकाश में किसी प्रकार भी नहीं ठहरती। तथा आपके मन्तव्य में आपका युक्तिवाद भी नहीं ठहरता।

इसी प्रकार से उदीरणा के विषय में भी जो प्रोफेसर हीरालाल जी धवला टीका का आश्रय ले कर समझ रहे हैं वहभी उसीके आधारसे बाधित है-

धवला टीका— 'उदय उदीरणाणं को विसेसो ? उच्चदे जे कम्मक्खधा ओकड्ड कड्डणादिपओगेण विणा-ठिदिक्खयंपाविदूण अप्पप्पणो फल देति कम्मक्खधा-णमुदओत्ति सण्णा। जे कम्मक्खधा महंतेसु ठिदि अणुभागेसु अवट्ठिया ओकड्डिदूण फलदाइणो कीरंति तेसिं मुदीरणात्ति सण्णा अपक्वपाचनस्य उदीरणा व्यपदेशात्।

इस धवला में उदय उदीरणा का भेद बतलाया गया है उदीरणा लक्षण में-एक-'महन्तेसु' पद आया है और वह आगे के 'ट्ठिदि अणुभागेसु' इस समभिव्रत पद का विशेषण है। विशेष्य और विशेषण को साथ लेकर सब उदीरणा सम्बन्धी वाक्य के अर्थ से प्रगट होता है कि जिन कर्मों की स्थिति और अनुभाग महान है अर्थात् बहुत विपुलता लिये हुये हैं उनकी क्रम से अपनी फल देने रूप शक्ति को एकदम खींच कर अपने समय से पहले फल देने वाला बना देना है उसका नाम 'उदीरणा' है।

इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि जिन कर्मों मे विपुल फल देने रूप शक्ति पड़ी है, उन कर्मों को उस समस्त विपुल शक्ति सहित जल्दी फल देने रूप बना देना है वह उदीरणा है। क्योंकि उदीरणा का अर्थ अपक्व पाचन लिखा है। इसका और भी स्पष्टीकरण यह होता है कि जो शक्ति सत्ता में मौजूद थी और विपुल होकर क्रम क्रम से फल देने के समय से पहले एक ही समय खींच कर आ जाने से उसका परिणाम उदय की अपेक्षा उत्कट होने से वेदना को एकदम जागृत करने वाला हो जाता है। इसी कारण वेदनीय कर्म की जहा तक उदीरणा है वहा तक भूख और प्यास आदि की बाधा है। नहीं तो उदय तो हमेशा रहता है इस लिये हर समय ही वेदना होना चाहिये।

छठे गुणस्थान के अन्त में वेदनीय की उदीरणा व्युच्छित्ति होने से ऊपरले गुणस्थानों में वेदनीय जन्य कोई भी बाधा नहीं होती, यह स्पष्ट उदय और उदीरणा का विवेक है। इसका दृष्टान्त यह समझना चाहिये कि रेलगाड़ी अपनी रफ्तारसे धीरे धीरे चल कर खडी होगी तो उसमें मुसाफिरों को कष्ट नहीं होगा किन्तु उस रफ्तार को जल्दी खींच कर एक दम गाड़ी खड़ी की जायगी तो उस से एक दम बड़ा भारी धक्का लगेगा और मुसाफिरोंको बहुत तकलीफ पैदा हो जायगी। यही सब इस विषय में समझने योग्य है।

मित्र प्रोफेसर हीरालालजी ने जो जो विचार शका के रूप में उपस्थित किये थे उनका समाधान इन तीनों दिगम्बर जैन सिद्धात दर्पण के लेखो से अच्छी तरह हो जाता है। आशा है कि आप अपने मन्तव्यों पर इन लेखों का प्रकाश डाल कर जो सैद्धान्तिक समुचित स्थिति है उस पर स्थित होंगे।

मित्रत्व के सम्बन्ध में आपके प्रति ये कुछ शब्द और हैं अच्छा होता कि आप दिगम्बर और श्वेताम्बर मत के एकीकरण दृष्टि में उभय सिद्धांतोंक

वास्तविक गहरी दृष्टि डाल कर उसी सिद्धांतोक्त मर्यादा से विषय विवेचन करते तो आपका मन्तव्य अवश्य ही सिद्ध हो जाता। परन्तु सिद्धात मर्यादासे हटकर आपका लेख होनेके कारण तो दोनो सम्प्रदायो के मेल मे एक खाई सरीखा उलटा अन्तर पड़ गया है वह इस लेख के निष्पक्ष मनन करने से आपके ध्यान में अवश्य आ सकेगा। फिर भी जो इन विषयों मे शकायें होवें ममक्ष या पत्रो द्वारा निर्णय कर सकेंगे।

इस लेख में या और इसी सम्बन्ध के अन्य लेखों मे किसी के भी प्रति कोई कटुक शब्द उपयुक्त नहीं किया गया है फिर भी उस विषय में क्षमा मागना आत्म परिणाम की निर्मलता का सूचक है अत: वह प्रार्थनीय है।

सूत्र ६३ में भाववाद के पक्ष को लेकर जो महानुभाव 'संजद' शब्द की स्थिति मान रहे हैं वे भी इस निष्पक्ष लेख का विचार करके मेरे विचार के साथ मिलने की कोशिश करेंगे या मुझे समझाने के लिये पौष्टिक अकाट्य प्रमाण देकर मुझे अपनी तरफ मिलाने की कोशिश करेंगे। क्यो कि दोनों तरफ पक्षपात का विषय तो है नहीं, सैद्धान्तिक मर्यादित निर्णय ही यहा का विषय है।

भाववेद मानने वाले मित्र विद्वानों के प्रति सस्नेह एक प्रश्न यह है कि यदि यह षट्खडागम का विषय-सर्वथा आप लोगों की दृष्टि में भाववेद का ही है तो इस ग्रथ से प्राचीन या इस ग्रथ के समकालीन कौन से ग्रथ का ऐसा विषय है कि जो द्रव्यस्त्री के पाच गुणस्थान का प्रतिपादन करता है।

इस ग्रन्थ के ६३ वें सूत्र में जब 'सजद' शब्द नहीं रहता है तब तो यह बात इसी ग्रन्थ से सिद्ध हो जाती है क्योंकि सूत्रकार की दृष्टि से यह सूत्र ६३ का द्रव्यस्त्री का तो सिद्ध ही है जिसकी सिद्धि के इस लेख में कई अकाट्य प्रमाण दिये जा चुके हैं। क्यों कि सूत्रकार के मतसे जहा मानुष और मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द है वहा द्रव्यवेद है और जहा उनके साथ पर्याप्त शब्द नहीं है वहां भाववेद है।

जब सूत्र ६३ में 'सजद' शब्द नहीं रहता है तो द्रव्यस्त्री के पाच गुणस्थान सिद्ध होने के सबब प्रतिपक्ष को यह कहने की गु जाइश भी नहीं रहती है कि-'प्राचीन ग्रन्थमे तो द्रव्य और भावका कहीं भी कथन नहीं है यह बात तो कुन्द कुन्द स्वामी से प्राप्त है, प्रति—पक्ष का जो यह कहना है वह दिगम्बर सम्प्रदाय का और उस सिद्धात का सादित्व का सूचक होता है सो यह मान्यता तो आपको भी पसद नहीं है। दूसरे इस ग्रथमें सर्व भाववेद का ही विषय माना जाय तो वेद वैषम्य से जिस द्रव्यस्त्री का भाव-वेद पुरुषवेद है उसके चौदह गुणस्थान प्राप्त होने से द्रव्यस्त्री के १४ गुणस्थान-षड्खडागम के सूत्रों मे अनायास ही आजायगे। फिर उसके निवारण का उपाय आपके पास क्या हो सकता है उसे आप गभीरता से विचार में लावेंगे।

इस विषय में आप यह कहें कि चौदह गुणस्थान विधायी सूत्रो में पर्याप्त मनुष्य मे भाववेदी पुरुष और भाववेदी नपु सक का ग्रहण है, परतु यह बात आपकी वेदवैषम्य से सिद्ध है जो कि अपनको भी मान्य है। किंतु यहा यह नहीं है कि-पर्याप्त मनुष्य ही भाववेदी है। यदि ऐसा होता तो सूत्रकार के मतसे उन चौदह गुणस्थान विधायी सूत्रो में मानुषी के साथ भी पर्याप्त शब्द अवश्य दृष्टि-गोचर होता परतु सो तो वह बात उन सूत्रों में है नहीं इससे

स्पष्ट है कि—उन सूत्रों में पर्याप्त मनुष्य से द्रव्य पुरुष का ही ग्रहण है। और द्रव्य पुरुष के वेदवैषम्य से सभी तरह के भाव चौदह गुणस्थानों के साधक हैं। यद्यपि द्रव्य पुरुष में वेदवैषम्य से भावस्त्री का भी ग्रहण हो जाता परन्तु उस के विषय से ग्रंथकार को स्पष्टीकरण अलग करना इष्ट था जो कि मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द न होने से भावस्त्री के १४ गुणस्थान का विधायी है और परमत सम्मत द्रव्यस्त्री के १४ गुणस्थान का निषेधक है। यदि परमत को द्रव्यस्त्री के १४ गुणस्थान मान्य न होते तो चौदह गुणस्थान विधायी सूत्रों में भावस्त्री वाचक 'मानुषी' शब्द की जरूरत भी नहीं थी क्योंकि वहां मनुष्य और मनुष्य पर्याप्त इन दो से ही सिद्धांत दृष्टि में कोई आपत्ति उपस्थित नहीं होती। कारण कि तीनों भाववेद की अपेक्षा से तो विपक्षी भी चौदह गुणस्थान मानते हैं।

इसलिये मित्रभाव वेदियों के जो इस विषय में प्रश्नोत्तर हैं वे कोई भी नहीं ठहरते हैं। अच्छा हो कि हमारे मित्रभाव वेदी और मित्र प्रो० हीरालाल जी के इस लेख के विषय का गहरा विचार करेंगे और जो समीचीन वस्तु है उस पर पहुंचेंगे। अलमिति विस्तरेण।

---

* श्री वीतरागाय नमः *

* प्रकाशक के दो शब्द *

श्रीयुत प्रोफे० हीरालाल जी के मन्तव्य का प्रतिवाद करने की समाज को क्यों आवश्यकता ज्ञात पड़ी इसका खास कारण यह है कि प्रोफे० साहब ने अपना मत निर्णयात्मक करके ही रखा है ऐसा स्थानीय समाज को ज्ञात पड़ने से उसे अपना कर्तव्य समझकर प्रतिवाद करना पड़ा। यदि प्रोफेसर साहब अपने मन्तव्यो को शङ्का रूप समझते थे तो समाज के विद्वानों के जरिये अपनी समाज के अन्दर ही यह बात रखते तो ऐसा न करना पड़ता। उपरोक्त आवश्यकतानुसार समाजके त्यागी विद्वानों से १ हैंड बिल द्वारा अपील की गई कि सब महानुभाव अपने अपने लेख प्रोफेसर हीरालाल के मन्तव्य के विरोध मे लिखकर भेजे। इस अपील को मान देते हुये बहुत सख्या मे त्यागियो तथा विद्वानो ने ट्रैक्ट सम्मतिया, गम्भीरतापूर्वक, मधुरशब्द और तात्त्विक-भाषा मे आर्ष प्रणीत उदाहरणो के साथ लिखकर भेजी हैं। यह सब आपको ट्रैक्ट पढ़ने स मालूम हो जावेगा। आशा है कि प्रोफे० साहब भी यह दोनो ट्रैक्ट ध्यान से पढ़कर मन मे शान्ति लाते हुये अपने मन्तव्यो को जरूर बदल कर पेपरों द्वारा प्रकाशित कराके समाज में शांति कायम करेंगे।

साथ में यह भी प्रकाशित करें तो बहुत अच्छा कि "मुझे दि० जैनधर्म व आर्षप्रणीतमार्ग श्रद्धापूर्वक मान्य है। जो कुछ मेरी शङ्का थी वह सब निवृत्त हो गई।"

साथमें समाजका भी यह कर्तव्य हो जाता है कि उपरोक्त बात प्रोफेसर साहब की तरफ से प्रकाशित हो जाने पर कोई भी सज्जन आगामी किसी प्रकार से लेख माला न चलावें और प्रोफे० साहब के प्रति पूर्ण सहानुभूति, मैत्रीभाव रखें।

दो ट्रैक्ट निकलने का कारण यह हुआ कि पहले ट्रैक्ट का आकार (साइज) बहुत छोटा होनेस पुस्तक बहुत मोटी मालूम पड़ती इसलिये छोटी साइज के ट्रैक्ट में श्रीमान पं० मक्खनलाल जी मुरेनावालों का ही लेख है। दूसरी बड़ी साइज के ट्रैक्टोमे सब महानुभावो के ट्रैक्ट व सम्मतिया हैं। पाठक वर्ग दोनो ट्रैक्टो को एकाग्रचित्त से वाचन करें तो आशा है वे अवश्य लाभ उठावेंगे तथा ट्रैक्ट व सम्मतिया भेजने वालो ने जो अपना अमूल्य समय निकालकर यह कार्य किया है इसकी जरूर प्रशंसा करेंगे।

ट्रैक्ट को छोटा करने मे हम असमर्थ रहे हैं

इसका यही कारण है कि सब महानुभावो ने यह भाव प्रकाशित किये कि हमारे ट्रैक्ट में कुछ कम ज्यादा न करके जैसा है वैसा ही छपना चाहिये। इस बात पर पूरा ध्यान रखना पड़ा है।

हम समझते हैं कि यह दोनों ट्रैक्ट अपनी इष्ट साधन की सिद्धि में अपूर्व मान पावेंगे पाठक वर्ग इसके गुणो की ओर लक्ष्य देकर सम्पूर्ण पढकर धर्म लाभ उठावेंगे। ट्रैक्ट के छापने में बहुत सावधानी रखी गई है फिर भी कुछ प्रमादवश त्रुटि आ गई हो तो उसको लक्ष्य में न रखकर सार ग्रहण करेंगे ऐसी नम्र प्रार्थना है। साथ में जिन २ महानुभावों ने विविध प्रकार से इसमें तन, मन, धन तथा विद्या से सहायता दी है उन सबके हम पूर्ण आभारी हैं और आशा करते हैं कि आगामी समय पर धर्म रक्षार्थ ऐसी ही समाजको सहायता देवेंगे।

जुहारुमल मूलचन्द बम्बई,

—संयोजक का कुछ निवेदन—

* ⋙※⋘ *

समस्त विद्वानों व पञ्चायतों की सेवा में निवेदन है कि बम्बई समाज के लिखने पर आप महानुभावों ने अपना समय निकाल कर ट्रैक्ट व सम्मति लिख कर भेजी है उनके हम बहुत आभारी हैं। वह ट्रैक्ट और सम्मतियां प्रायः सब छप गई हैं कुछ रह गई हैं क्योंकि उनकी भाषा कुछ कठोर थी अतः हम उनसे क्षमा चाहते हैं।

यद्यपि लेखों व सम्मतियों मे आशयान्तर रूप कुछ हेर फेर नहीं किया गया है परन्तु सम्भव है कि कुछ शब्द रूपमें हो गया होगा। यह हेर फेर करने का खास कारण लेखककी भाषा सरल करने केलिये होगा सो कोई भी सज्जन बुरा न समझेंगे। हमने जो यह कार्य किया है वह सिर्फ इन तीनो पुस्तको को एक शास्त्र रचना ही समझ कर किया है। शास्त्रो में कटुक आक्षेप रूप भाषा नहीं होनी चाहिये।

विशेष रूप से प्रोफे० हीरालाल जी साहब से भी सविनय निवेदन है कि अपनी शक्ति अनुसार प० अजितकुमार जी ने लेखो की भाषा बहुत सम्भालकर छापी है फिर भी कहीं कुछ कटुक शब्द आ गया हो तो क्षमा करेंगे। हमारे भाव आपके सम्बन्ध में कुछ न्यून नहीं हैं।

दूसरा निवेदन करना भी बहुत आवश्यक है वह यह है कि आपके जरिये समाज मे जो वातावरण पैदा हो गया है वह दिगम्बर आम्नाय के ह्रास का मुख्य कारण है सो कृपया उसे हटा लेवें। आप भी हमारी समाजके विद्वानोंमें से एक हैं। इस विषयमें समाजके समस्त विद्वान तथा छोटी या बड़ी व समस्त पञ्चायत आपसे असहमत हैं। समाज का कोई भी व्यक्ति आपसे सहमत नहीं है। यह अनुमान यहां आये हुये बाहर के सहस्त्रो पत्रो पर से है। एक पत्र भी आपकी सहमति मे नहीं आया है। तथा आपसे चर्चा भी समक्ष में व पेपरो में हो चुकी है। कुछ

कमी नहीं रही है। सब तरह के दृष्टांत, युक्ति आगम छानछान कर आपके व दिगम्बर जैन समाज के सामने रख दिये गये हैं इसलिये आपको धर्म के नाते अपना मन्तव्य बदल देना ही श्रेयस्कर है। जहां धर्म का अवर्णवाद होता हो वहां अपने वचनों का पक्षपात कि 'हमारी विद्वत्ता हेय होगी समाज हमें सम्मानित दृष्टि से नहीं देखेगा' यह ध्यान न रखकर अपना कर्तव्य पालन योग्य है। खोटा पक्ष छोडना चातुर्य व श्रेयस्कर विद्वत्ता है। धर्म का पक्ष लेने से समाज में आपकी कीर्ति व सम्मान बहुत ज्यादा बढेगा। क्योंकि निष्पक्षपाती व्यक्तिकी बड़ाई संसार करता है। पक्षपात सब तरह से हानिकारक है।

आपने जो भगवान कुन्दकुन्द जैसे प्रमुख आचार्य के ऊपर भी अपने अनुचित वाग्बाण छोडे यह आपको योग्य न था। मान लिया कि आप विद्वान हैं किन्तु श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अगाध ज्ञान की तुलना में तो आपकी विद्वत्ता समुद्र में एक बून्द के समान है। प्रखरवक्ता प्रख्यात अनुभवी आध्यात्मिक विद्वान श्री कान जी ऋषि से जाकर श्री कुन्दकुन्दाचार्य के विषय में कुछ ज्ञात कीजिये आपको अपनी गलती ज्ञात हो जायगी। प्रातः स्मरणीय श्री आचार्यवर कुन्दकुन्द स्वामी ने इस पञ्चमकाल में विदेह क्षेत्र मे जाकर साक्षात श्री १००८ पूज्य देवाधिदेव तीनों लोक के नाथ तीर्थंकर महाराज सीमंधर स्वामी के पादमूल मे बैठकर धर्म का श्रवण किया था उनके महान सैद्धांतिक ज्ञान को आप विद्वान की सहायता से धवला का सम्पादन द्वारा प्राप्त स्वल्प सैद्धांतिक बोध की तराजू से तौलने चले हैं यह आपका अति-साहस है।

भिन्न भिन्न दिगम्बर जैन आचार्य ने अपनी २ शैली से, अपनी विवक्षा से नय अनुसार पदार्थ-विवेचन किया है यदि उस पर उसी के अनुसार दृष्टि न डाली जाय तो उसका न तो रहस्य प्राप्त होता है और न जिनवाणी का अविरोधी विवेचन का पता लगता है आप जिज्ञासु बनकर उसका स्वाध्याय करें। समालोचक बनकर आप यदि उसका अध्ययन करेंगे तो आपको अपने हृदय की छाया वहां पर दीख पड़ेगी। समालोचक यदि ग्रन्थकर्ता की कोटिका हो तब तो वह समालोचना करने का पात्र भी माना जा सकता है। आपमे तथा भगवान कुन्दकुन्द में वैसी समता है या नहीं इसका विचार आप स्वयं करें।

आपने वेद वैषम्य तथा भगवती आराधना के अपवादलिंग का भाव भी अच्छी तरह न समझ कर ऐसी जल्दी दिगम्बर जैन सिद्धांत की वज्र भित्ति पर अपना कलम कुल्हाडा चला ही दिया मानो वह बालू की भींत है। समालोचना करने वाले को ऐसी जल्दबाजी और पूर्वापर सम्बन्ध बिना मिलाये टुट पूंजिया ज्ञान न होना चाहिये। आपने जैसी समालोचना की है ऐसी समालोचना स्वपर हानिकारक है। जो व्यक्ति भगवती आराधना का स्वाध्याय करके या गोम्मटसार आदि का स्वाध्याय करके आपके लेख को देखेगा (जिस भूलभरे लेख का आप अब तक समर्थन कर रहे हैं) वह आपके विषय में क्या समझेगा और क्या कुछ कहेगा स्वयं विचार करें।

बम्बई समाज के हम बहुत आभारी हैं उसे जितना धन्यवाद दियाजाय थोडा है। इस कार्य को दि० जैन धर्म रक्षणार्थ उसने निष्पक्ष रूपसे सुलटाने की कोशिश की अगर ऐसा न किया गया होता तो दि० जैन समाज मे बहुत क्षोभ होता। हम यह नहीं कह सकते कि यहां की समाज नहीं करती

तो और कोई नहीं करता परन्तु सबसे प्रथम यह सौभाग्य स्थानीय समाज को प्राप्त हुआ है और उसको अपना कर्तव्य समझ कर उसने बहुत शान्ति सरलता एवं उत्साह से किया है वह सब समाज को मालूम ही है।

इस कार्य में खर्च की तरफ नहीं देखा गया है तन, मन, धन से इस को निभाया है। इस कार्य को सुलटाने केलिये एक मीटिंग करना जरूरी समझा कि समाज के १५ व २० बड़े से बडे विद्वानों को बम्बई, इन्दौर या आचार्य १०८ श्री पूज्य चारित्र चक्रवर्ति शान्ति सागर जी महाराज के समक्ष में प्रोफेसर हीरा लाल जी के साथ लिखित चर्चा कराई जाय इसके लिये प्रोफेसर साहबसे तथा अन्य विद्वानों से पत्र व्यवहार हुए पर कोई सफलता न मिली तब कलकत्ता वीर शासन जयन्ती महोत्सव में जहा सर सेठ हुकम चन्द जी साहब व अन्य बड़े बडे विद्वान् और खुद प्रोफेसर साहब भी उपस्थित होने वाले थे वहा समक्ष में किसी तरह यह विवाद मिट जाय ऐसा समझ कर यहा की समाज ने श्रीमान प० राम प्रसाद जी को कलकत्ते भेजा। वहा पर प्रोफेसर जी के साथ दो रोज विद्वानों की चर्चा चलने पर भी कुछ नही हुआ। फिर प्रोफेसर साहब इस जगह आये तब भी कुछ चर्चा चली पर कुछ सार नहीं निकला। इसके अलावा पेपरों में भी बहुत चर्चा चली पर कुछ सार नहीं निकला तब यहा की समाज ने चुप होकर शान्ति ली कि अपना कार्य तो ट्रैक्ट निकालने का है उसे पूर्ण करना चाहिये उसी के अनुसार यह तीन ट्रैक प्रकाशित किये गये हैं।

इसके सिवाय 'संजद' शब्द के विषय में विचार करने के लिये पौषवदी १ से पौषवदी ५ तक होनेवाले वार्षिक महोत्सव पर बाहर से विद्वानों को बुलाने का निश्चय किया तदनुसार श्री पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री बनारस, श्री० पं० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री बनारस, श्री० प० वंशीधर जी सिद्धान्त शास्त्री इन्दौर व श्री० प० मक्खनलाल जी मुरेना यहा पर पधारे (तथा श्रीमान् पं० श्रीलाल जी साहब पाटनी सिद्धान्त शास्त्री अलीगढ़ और श्रीमान प० माणिक चन्द्र जी साहब सिद्धान्त शास्त्री सहारनपुर यह विद्वान कारणवश न आ सके) सौभाग्यवश श्रीमान् प० वर्द्धमान जी साहब शास्त्री भी आगये थे और श्रीमान सेठ तनसुखलाल जी काला भी नादगाव से बुलाये गये, स्थानीय श्रीमान प० रामप्रसाद जी साहब सिद्धान्त शास्त्री, श्रीमान प० उल्फतराय जी साहब भिण्ड निवासी थे (श्रीमान प० उल्फतराय जी साहब रोहतक बुलाने पर कई कारण से नहीं आसके) विद्वानों के सिवाय श्री १०५ क्षुल्लक सूरि सिंह जी महाराज भी प्रार्थना करके बुलाये गये थे।

उपरोक्त विद्वान ५ दिन तक बराबर दोपहर व रात्रि को ३, ३ घण्टे बैठ कर बहुत शान्ति और उत्साह से विचार करते रहे (श्रीमान प० खूबचन्द्र जी साहब सिद्धान्त शास्त्री ने इस जगह उपस्थित होते हुए भी इस चर्चा में भाग लेने को असमर्थता बतलाई) कुछ निर्णय नहीं होने पर भविष्य में इसी मीटिंग की चर्चा आचार्य श्री १०८ शान्ति सागर जी के समक्ष में रख कर आखिरी इसका निर्णय करा लिया जाय इस विषय में यह निश्चय किया गया कि जो उनका आदेश होगा वह सब को सहर्ष मान्य होगा ऐसा विचार किया गया है, जिसका निर्णय कुछ दिनो मे समाज के सामने आ जायगा।

यह काम बिलकुल पक्षपात रहित यहा को पचायत कर रही है। उदाहरण सामने है कि 'संजद' शब्द के मानने वाले और न मानने वाले दोनों पक्ष के विद्वानों को बड़ी प्रेरणा स बाहर से बुलाया गया। पक्षपात होता तो सजद शब्द के मानने वाले ही — विद्वानों को बुलाकर एक — पक्षी ही निर्णय कर लेते पर यह भावना नहीं (ऐसी भावना धर्म कार्य में हानि—कारक होती है) भावना धर्म रक्षार्थ ही है। इस कार्य में कई विद्वानों ने अपना समय भी नहीं दिया और इस विषय में पत्र व्यवहार का उत्तर तक नहीं दिया परन्तु ऐसे विद्वान एक दो हैं। हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि समाज के कार्य के लिये समाज व धर्म रक्षार्थ अपना समय देकर हर जगह से आये हुए कार्य को सरलता से निपटाना चाहिये। समाज ने आप लोगो के विद्याध्ययन में कितना द्रव्य खर्च किया है उसका तो कम से कम गौरव रखना चाहिये। पैसे वाले पैसे से मदद करते हैं, विद्वान लोगो को अपनी विद्वत्ता स धर्म कार्य में अपना योग देकर कार्य करना चाहिये भविष्य में समय बहुत खराब आ रहा है इसलिये एक रूप होकर कार्य करना श्रेयस्कर है।

अन्त में हम यह भी कहना ठीक समझते हैं कि गलती होना सबस स्वाभाविक है गलती रहित तो एक सर्वज्ञदेव ही हैं और सबसे गलती हो सकती है। इस कार्य में हमारी तरफ से जो कुछ गलती हुई हो उसको क्षमा करके गलती को सुधारने की चेष्टा करें। यदि धर्म रक्षार्थ किसी समय यहा की पचायत से कोई कार्य निकालना हो तो प्रत्येक समय वह तन मन धनसे करने को तैयार रहेगी. वार्षिक महोत्सव पर बाहर से पधारे हुए विद्वानो के जरिये एक पक्ष दो काज बाजी कहावत हुई। चर्चा चली उसके साथ २ शास्त्र प्रवचन भी हुआ था इससे बहुत लाभ पहुंचा अतएव हम उन सब महानुभावों के बहुत आभारी हैं और श्री १०५ क्षुल्लक सूरसिंह जी महाराज के बहुत आभारी हैं कि जिन्होंने बड़ी विद्वत्ता से ५ दिन तक अपने सभापतित्व में यह तत्त्व विचार धारा बड़े प्रेम व आदर भाव से चलाई और समय २ पर इस कार्य में पूरा पूरा परिश्रम करके सहयोग दिया है। आप त्यागी तो हैं ही पर सिद्धान्त वेत्ता भी ऊचे दर्जे के हैं यह बड़े सौभाग्य की बात है।

इस चर्चा में सेठ सुन्दर लाल जी भूछ व सेठ चाद मल जी साहब बडी व सेठ परमेष्ठी दास जी साहब भी बहुत उत्साह व धर्म रक्षार्थ श्रद्धा रख कर समय २ पर बैठकर सहयोग देते थे एव इस चर्चा में बहुत से स्त्री पुरुष बैठ कर धर्म चर्चा सुनते थे वह उनकी धर्म तत्परता सराहनीय है। यह चर्चा बहुत सरल सुन्दर आदरणीय प्रेम भाव से निर्विघ्न समाप्त हुई।

स्थानीय सब सज्जनों ने इस कार्य को एक-चित्त होकर पूर्ण रूप से सब सहमत होकर शुरू से लेकर अन्त तक निर्विघ्न निभाया है हम उन सबके आभारी हैं और आशा रखते है कि ऐसा उत्साह भविष्य मे भी धर्मरक्षार्थ कायम रखेंगे और बाहर के समस्त सज्जनों से भी प्रार्थना है कि इस कार्य में जैसा आप महानुभावों ने हमको सहयोग दिया है वैसा भविष्य में भी देवेंगे।

विशेष बात यह है कि इस कार्य में सहयोग के निमित्त सहस्रों पत्र आये हैं व्यक्ति गत हम उन सब के पूर्ण आभारी हैं। 'सञ्जद' शब्द के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद अवश्य है किन्तु प्रोफेसर

तो और कोई नहीं करता परन्तु सबसे प्रथम यह सौभाग्य स्थानीय समाज को प्राप्त हुआ है और उसको अपना कर्तव्य समझ कर उसने बहुत शान्ति सरलता एवं उत्साह से किया है वह सब समाज को मालूम ही है।

इस कार्य में खर्च की तरफ नहीं देखा गया है तन, मन, धन से इस को निभाया है। इस कार्य को सुलटाने केलिये एक मीटिंग करना जरूरी समझा कि समाज के १५ व २० बड़े से बड़े विद्वानों को बम्बई, इन्दौर या आचार्य १०८ श्री पूज्य चारित्र चक्रवर्ति शान्ति सागर जी महाराज के समक्ष में प्रोफेसर हीरा लाल जी के साथ लिखित चर्चा कराई जाय इसके लिये प्रोफेसर साहबसे तथा अन्य विद्वानों से पत्र व्यवहार हुए पर कोई सफलता न मिली तब कलकत्ता वीर शासन जयन्ती महोत्सव में जहा सर सेठ हुकम चन्द जी साहब व अन्य बडे बड़े विद्वान और खुद प्रोफेसर साहब भी उपस्थित होने वाले थे वहा समक्ष में किसी तरह यह विवाद मिट जाय ऐसा समझ कर यहा की समाज ने श्रीमान प० राम प्रसाद जी को कलकते भेजा। वहा पर प्रोफेसर जी के साथ दो रोज विद्वानो की चर्चा चलने पर भी कुछ नहीं हुआ। फिर प्रोफेसर साहब इस जगह आये तब भी कुछ चर्चा चली पर कुछ सार नही निकला। इसके अलावा पेपरो में भी बहुत चर्चा चली पर कुछ सार नही निकला तब यहा की समाज ने चुप होकर शान्ति ली कि अपना कार्य तो ट्रैक्ट निकालने का है उसे पूर्ण करना चाहिये उसी के अनुसार यह तीन ट्रैक प्रकाशित किये गये हैं।

इसके सिवाय 'सञद' शब्द के विषय में विचार करने के लिये पौषवदी १ से पौषवदी ५ तक होनेवाले वार्षिक महोत्सव पर बाहर से विद्वानों को बुलाने का निश्चय किया तदनुसार श्री पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धांत शास्त्री बनारस, श्री० प० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री बनारस, श्री० प० वंशीधर जी सिद्धान्त शास्त्री इन्दौर व श्री० पं० मक्खनलाल जी मुरेना यहा पर पधारे (तथा श्रीमान प० श्रीलाल जी साहब पाटनी सिद्धान्त शास्त्री अलीगढ़ और श्रीमान प० माणिक चन्द्र जी साहब सिद्धान्त शास्त्री सहारनपुर यह विद्वान् कारणवश न आ सके) सौभाग्यवश श्रीमान् प० वर्द्धमान जी साहब शास्त्री भी आगये थे और श्रीमान सेठ तनसुखलाल जी काला भी नाद गाव से बुलाये गये, स्थानीय श्रीमान प० रामप्रसाद जी साहब सिद्धान्त शास्त्री, श्रीमान प० उल्फतराय जी साहब भिण्ड निवासी थे (श्रीमान प० उल्फतराय जी साहब रोहतक बुलाने पर कई कारण से नहीं आसके) विद्वानों के सिवाय श्री १०५ क्षुल्लक सूरि सिंह जी महाराज भी प्रार्थना करके बुलाये गये थे।

उपरोक्त विद्वान ५ दिन तक बराबर दोपहर व रात्रि को ३, ३ घण्टे बैठ कर बहुत शान्ति और उत्साह से विचार करते रहे (श्रीमान प० सूरचन्द्र जी साहब सिद्धान्त शास्त्री ने इस जगह उपस्थित होते हुए भी इस चर्चा में भाग लेने को असमर्थता बतलाई) कुछ निर्णय नहीं होने पर भविष्य में इसी मीटिंग की चर्चा आचार्य श्री १०८ शान्ति सागर जी के समक्ष में रख कर आखिरी इसका निर्णय करा लिया जाय इस विषय में यह निश्चय किया गया कि जो उनका आदेश होगा वह सब को सहर्ष मान्य होगा ऐसा विचार किया गया है, जिसका निर्णय कुछ दिनो मे समाज के सामने आ जायगा।

यह काम बिलकुल पक्षपात रहित यहा की पंचायत कर रही है। उदाहरण सामने है कि 'सजद' शब्द के मानने वाले और न मानने वाले दोनों पक्ष के विद्वानों को बड़ी प्रेरणा स बाहर से बुलाया गया। पक्षपात होता तो सजद शब्द के मानने वाले ही — विद्वानों को बुलाकर एक — पक्षी ही निर्णय कर लेते पर यह भावना नही (ऐसी भावना धर्म कार्य में हानि—कारक होती है) भावना धर्म रक्षार्थ ही है। इस कार्य में कई विद्वानों ने अपना समय भी नहीं दिया और इस विषय में पत्र व्यवहार का उत्तर तक नहीं दिया परन्तु ऐसे विद्वान एक दो हैं। हम उनसे प्रार्थना करते है कि समाज के कार्य के लिये समाज व धर्म रक्षार्थ अपना समय देकर हर जगह से आये हुए कार्य को सरलता से निपटाना चाहिये। समाज ने आप लोगो के विद्याध्ययन में कितना द्रव्य खर्च किया है उसका तो कम से कम गौरव रखना चाहिये। पैसे वाले पैसे से मदद करते हैं, विद्वान लोगो को अपनी विद्वत्ता स धर्म कार्य में अपना योग देकर कार्य करना चाहिये भविष्य में समय बहुत खराब आ रहा है इसलिये एक रूप होकर कार्य करना श्रेयस्कर है।

अन्त मे हम यह भी कहना ठीक समझते हैं कि गलती होना सबस स्वाभाविक है गलती रहित तो एक सर्वज्ञदेव ही हैं और सबसे गलती हो सकती है। इस कार्य में हमारी तरफ से जो कुछ गलती हुई हो उसको क्षमा करके गलती को सुधारने की चेष्टा करें। यदि धर्म रक्षार्थ किसी समय यहा की पचायत से कोई कार्य निकालना हो तो प्रत्येक समय वह तन मन धनसे करने को तैयार रहेगी . वार्षिक महोत्सव पर बाहर से पधारे हुए विद्वानो के जरिये एक पथ दो काज वाली कहावत हुई। चर्चा भी उसके साथ २ शास्त्र प्रवचन भी हुआ था इससे बहुत लाभ पहु चा अतएव हम उन सब महानुभावों के बहुत आभारी हैं और श्री १०५ क्षुल्लक सूरसिंह जी महाराज के बहुत आभारी हैं कि जिन्होंने बड़ी विद्वत्ता से ८ दिन तक अपने सभापतित्व में यह तत्त्व विचार धारा बड़े प्रेम व आदर भाव से चलाई और समय २ पर इस कार्य में पूरा पूरा परिश्रम करके सहयोग दिया है। आप त्यागी तो हैं ही पर सिद्धान्त वेत्ता भी ऊंचे दर्जे के हैं यह बड़े सौभाग्य की बात है।

इस चर्चा में सेठ सुन्दर लाल जी भूछ व सेठ चाद मल जी साहब बड़ी व सेठ परमेष्ठी दास जी साहब भी बहुत उत्साह व धर्म रक्षार्थ श्रद्धा रख कर समय २ पर बैठकर सहयोग देते थे एव इस चर्चा में बहुत से स्त्री पुरुष बैठ कर धर्म चर्चा सुनते थे वह उनकी धर्म तत्परता सराहनीय है। यह चर्चा बहुत सरल सुन्दर आदरणीय प्रेम भाव से निर्विघ्न समाप्त हुई।

स्थानीय सब सज्जनों ने इस कार्य को एक-चित्त होकर पूर्ण रूप से सब सहमत होकर शुरू से लेकर अन्त तक निर्विघ्न निभाया है हम उन सबके आ—भारी है और आशा रखते हैं कि ऐसा उत्साह भविष्य मे भी धर्मरक्षार्थ कायम रखेंगे और बाहर के समस्त सज्जनो से भी प्रार्थना है कि इस कार्य में जैसा आप महानुभावों ने हमको सहयोग दिया है वैसा भविष्य में भी देवेंगे।

विशेष बात यह है कि इस कार्य मे सहयोग के निमित्त सहस्रों पत्र आये हैं व्यक्ति गत हम उन सब के पूर्ण आभारी हैं। 'सञ्जद' शब्द के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद अवश्य है किन्तु प्रोफेसर

साहब के पक्ष में कोई नहीं है। प्रौफेसर साहब के मन्तव्यों के विरोध में समस्त समाज है। एक व्यक्ति भी इनके पक्ष का समर्थन नहीं करता। सञ्जद शब्द पर जो चर्चा चल रही है उस पर कुछ ही दिनों में निश्चय रूप से आचार्य श्री १०८ शान्ति सागर जो महाराज अपना आदेश देंगे। वह सब समाज को मान्य होगा। और मुझे आशा है कि प्रौफेसर साहब बहुत शीघ्र अपने विचारों में परिवर्तन करके फैले हुये अशान्त वातावरणको शान्त करेंगे।

निरञ्जनलाल जैन बम्बई,

—: मुद्रकीय वक्तव्य :—

श्रीमान प्रोफेसर हीरालाल जी के समाधानार्थ बम्बई दिगम्बर जैन पचायत ने जो प्रशंसनीय यत्न किया उसके फल स्वरूप यह तीसरा अश आपके सामने प्रस्तुत है। इसके समाप्त करने मे आशातीत बिलम्ब हुआ इसमें अनेक कारण हुये।

१–पेपर ऐकोनेमी ऐक्ट के अनुसार इस तीसरे अश के प्रकाशन की अनुमति प्रातीय कन्ट्रोल अफसर से प्राप्त करने में प्राय ५ मास का समय लग गया।

२–कम्पोजीटर यथेष्ट सख्यामे प्राप्त न हो सके।

३-प्रेस कर्मचारियों का तथा अपना स्वास्थ्य समय २ पर ठीक न रहा। इत्यादि अनेक कारणवश इतनी देरी हुई।

इस अंशमें भी अनेक लेख ऐसे थे जो प्रेस कापी के सर्वथा अयोग्य थे उनकी भाषा, शब्द विन्यास, भाव शैली अस्त व्यस्त थी अक्षर सुवाच्य न थे उसके सुधारने मे पर्याप्त श्रम करना पड़ा फिर भी यत्र तत्र कुछ त्रुटि रह गई हो तो उसे पाठक महानुभाव स्वय सुधार ले।

टाईप कलकतिया तथा कुछ पुराना होने के कारण कहीं कहीं पर मात्रा, रेफ आदि स्पष्ट नहीं छप सके हैं इस त्रुटियों पर भी पाठक ध्यान न दें। वैसे पुस्तक छापने मे अपनी ओर से पूर्ण सावधानी रखी गई है किन्तु पूर्वोक्त कठिनाइयो एव अपनी परिमित शक्तिके कारण अनेक त्रुटियों का रह जाना सम्भव है तदर्थ नम्रतापूर्वक क्षमा याचना है।

निवेदक—

अजितकुमार जैन शास्त्री
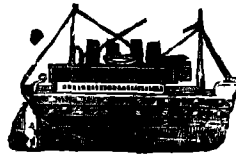
अनेकनरेन्द्रगणवंदित कविकलाधुरीण षड्भाषा कोविद् व्याख्यानकलाकुशल
संस्कृतचत्वारिंशद्ग्रंथनिर्माता परमपूज्य विश्ववंद्य चारित्रचूडामणि

पूज्य श्री १०८ आचार्य कुन्थुसागरजी महाराज.

पूज्यश्री का लेख द्वितीय भागमें है ।

सम्मति या ट्रैक्ट भेजने वाले पूज्य संयमियों की

* नामावली *

(१) श्री १०८ आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज कुन्थलगिरि।

(२) श्री १०८ आचार्य श्री कुन्थुसागर जी महाराज

(३) श्री १०८ आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज

(४) श्री १०८ श्री आदिसागर जी मुनि महाराज।

(५) श्री १०८ श्री सुमतिसागर जी मुनि महाराज

(६) श्री १०८ श्री सन्मतिसागर जी मुनि महाराज

(७) श्री १०८ श्री आर्यिका धमवती जी।

(८) श्री १०८ श्री आर्यिका जी महाराज मोहिनिव

(९) श्री १०५ श्री ऐलक जी कुलभूषण जी महाराज निमशिरगाव।

(१०) श्री १०५ श्री ऐलक जी देशभूषण जी महाराज निमशिरगाव।

(११) श्री १०५ श्री सूरिसिंह जी महाराज क्षुल्लक

(१२) श्री १०५ श्री चारित्र रत्न भूषण स्वरूपचन्द जी महाराज।

(१३) श्री १०५ श्री अशरफीलाल जी महाराज।

(१४) श्री १०५ श्री धर्मसागर जी महाराज।

(१५) श्री देवेन्द्र कीर्ति जी महाराज भट्टारक।

(१६) श्री ब्रह्मचारी अभिनन्दन जी महाराज बूंदी।

(१७) श्री ब्रह्मचारी मोतीलाल जी महाराज।

(१८) श्री ब्रह्मचारी कानूलाल जी महाराज।

(१९) श्री ब्रह्मचारी सुन्दरलाल जी महाराज।

(२०) श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी।

(२१) श्री भट्टारक चारुकीर्ति जी पण्डिताचार्य वर्य मूडबिद्री।

(२२) श्री ब्रह्मचारी आवप्पा जी मूडबिद्री।

(२३) श्री ब्रह्मचारी परवार भूषण फतेचन्द जी नागपुर मूडबिद्री।

(२४) श्री ब्रह्मचारिणी चन्दाबाई जी आरा।

(२५) श्री १०८ मुनि विजयसागर जी महाराज।

(२६) श्री १०८ मुनि विमलसागर जी महाराज।

(२७) श्री ब्रह्मचारी मनोहरलाल जी।

उपरोक्त त्यागी महानुभावो ने स्थानीय समाज के निवेदन पर ध्यान देकर जो ट्रैक्ट, सम्मतिया भेज कर हमको कृतार्थ किया है इसके लिये आपके बहुत आभारी हैं तथा हार्दिक कोटिशः धन्यवाद देते हैं।

निरञ्जनलाल जैन खुरजावाला, बम्बई।

प्रौफेसर हीरालाल जी के मन्तव्यों का निराकरण करने के लिये
—निम्न लिखित विद्वानों के ट्रैक्ट आये—

(१) श्रीमान पं० मक्खनलाल जी मोरेना।
(२) ,, प० पन्नालाल जी सोनी ब्यावर।
(३) ,, पं० रामप्रसाद जी बम्बई।
(४) ,, पं० सुमेरुचन्द जी दिवाकर सिवनी।
(५) ,, प० झम्मनलाल जी भिण्ड।
(६) ,, पं० श्रीलाल जी पाटनी अलीगढ़।
(७) ,, पं० उल्फतराय जी भिण्ड (बम्बई)।
(८) ,, पं० शिखरचन्द जी ईसरी।
(९) ,, प० अजितकुमार जी मुलतान।
(१०) ,, पं० माणिकचन्द जी न्यायाचार्य सहारनपुर।
(११) ,, प० राजधरलाल जी व्याकरणाचार्य पपौरा विद्यालय।
(१२) ,, प० जगन्मोहनलाल जी कटनी।
(१३) ,, पं० दरबारीलाल जी न्यायाचार्य।
(१४) श्रीमान प० जीवन्धर जी न्यायतीर्थ इन्दौर।
(१५) ,, प० दयाचन्द्र जी न्यायतीर्थ सागर।
(१६) ,, प० नेमिचन्द्र जी ज्योतिषतीर्थ आरा
(१७) ,, कुवर नेमिचन्द्र जी पाटनी।
(१८) ,, प० इन्द्रलाल जी शास्त्री जयपुर।
(१९) ,, प० शांतिराज जी न्यायतीर्थ मैसूर।
(२०) ,, भक्त उदासीन प्यारेलाल जी इन्दौर।

ऊपर लिखित विद्वन्मण्डली ने हमारी प्रार्थना को ध्यान में लेते हुये अपने अमूल्य समय को इस काम में लगाकर जो ट्रैक्ट भेजे हैं इसके लिये हम बहुत आभारी हैं और आशा रखते हैं कि आप महानुभाव आगामी भी धर्म रक्षार्थ कार्य सामने आने पर तन मन धन से ऐसा करेंगे।

निरञ्जनलाल जैन खुरजावाला बम्बई,

प्रौ० हीरालाल जी के मंतव्यों के विरोध में सम्मति देने वालों की
* नामावली *

(१) श्रीयुत पं० उल्फतराय जी रोहतक (बम्बई)।
(२) ,, ,, कमलकुमार जी अलीगढ़ ,,
(३) ,, ,, मांगीलाल जी बम्बई।
(४) श्रीयुत पं० तनसुखलाल जी काला नांदगांव।
(५) ,, ,, दयाचन्द जी शास्त्री श्री दि० जैन नाभिनन्दन विद्यालय बीना।

(६) श्रीयुत प० राजेन्द्रकुमार जी मन्त्री शास्त्रार्थ सङ्घ मथुरा।

(७) ,, ,, फूलचन्द्र जी सिद्धांतशास्त्री बनारस

(८) ,, ,, रणजीतप्रसाद जी जैन कविराज भिषगाचार्य धन्वन्तरि मन्त्री जैन दि० जैन सभा कोडयागज।

(९) ,, ,, चम्पालाल जी नरसिंगपुरा।

(१०) ,, ,, कैलाशचन्द्र जी बनारस।

(११) ,, ,, दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य वीर सेवा मन्दिर सरसावा

(१२) ,, ,, लालाराम जी मैनपुरी।

(१३) ,, ,, शांतिराज जी मैसूर।

(१४) ,, ,, परमानन्द जी शास्त्री वीर सेवा मन्दिर सरसावा।

(१५) ,, ,, जुगलकिशोर जी मुख्त्यार सरसावा वीर सेवा मन्दिर।

(१६) ,, ,, अमोलकचन्द जी उडेसरीय इंदौर

(१७) ,, ,, श्यामलाल जी जैन शास्त्री ललितपुर।

(१८) ,, ,, कडोरीलाल जी केशली।

(१९) ,, ,, कुमारैया जी शास्त्री।

(२०) ,, ,, जीवन्धरकुमार जी शास्त्री इंदौर

(२१) ,, ,, चैनसुखदास जी जयपुर।

(२२) ,, ,, सुरेन्द्रकुमार जी जैन न्याय सिद्धांत साहित्य शास्त्री न्यायतीर्थ आयुर्वेदाचार्य वैद्य भानपुरा।

(२३) ,, ,, हरीशचन्द्र जी जैन गिरीडी।

(२४) ,, ,, विद्यानन्द जी शर्मा गणेशपुर।

(२५) ,, ,, दयाचन्द जी शास्त्री बीना।

(२६) ,, ,, धर्मदास जी जैन शास्त्री बीना।

(२७) श्रीयुत प० महेन्द्रकुमार जी विशारद शास्त्री।

(२८) ,, ,, मोहनलाल जी पनागर।

(२९) ,, ,, बाबूलाल जी सौंधिया पनागर।

(३०) ,, ,, शांतिलाल जी अमरावती।

(३१) ,, ,, गोपालदास जी व्याकरणाचार्य।

(३२) ,, ,, पन्नालाल जी परवार।

(३३) ,, ,, माणिकचन्द जी परवार।

(३४) ,, ,, सिद्धसागर जी जैन वैद्य ललितपुर आल इण्डिया जैन सोसायटी।

(३५) ,, ,, मन्नूलाल जी अध्यापक जैन पाठशाला ककरवाहा।

(३६) ,, ,, माणिकचन्द जी वैद्य ककरवाहा।

(३७) ,, ,, देवेन्द्र जी शर्मा अध्यापक जैन पाठशाला पीठ।

(३८) ,, ,, गेंदालाल जी जैन राजमहल।

(३९) ,, ,, वीरेन्द्रकुमार जी छतरपुर।

(४०) ,, ,, भुवनेंद्रकुमार जी जैन शास्त्री दि० जैन वीर विद्यालय सोनागिर

(४१) ,, ,, वर्धमान जी शास्त्री सोलापुर।

(४२) ,, ,, खूबचन्द जी शास्त्री इंदौर।

(४३) ,, ,, कुन्दनलाल जी अध्यापक दि० जैन पाठशाला छपिया।

(४४) ,, ,, निहालचन्द जी अध्यापक दि० जैन पाठशाला बासवाड़ा।

(४५) ,, ,, साकलचन्द रामचन्द जी देवल।

(४६) ,, ,, इन्द्रलाल जी वैद्य चित्तौड़गढ़।

(४७) ,, ,, श्यामलाल जी जैन शास्त्री न्याय काव्य तीर्थ ललितपुर।

(४८) ,, ,, राजकुमार जी प्रधान अध्यापक महा० दि० जैन पाठशाला बबीना

(४६) श्रीयुत पं० बाबूलाल जी जैन विशारद संस्थापक जैन सेवक मण्डल तिस्सा।

(५०) ,, ,, क्षेमेन्द्र जी शास्त्री न्यायतीर्थ रानापुर।

(५१) ,, ,, चुन्नीलाल जी वैद्य वादा।

(५२) ,, ,, नागराज जी शास्त्री न्यायतीर्थ मूडबद्री।

(५३) ,, ,, नेमिराज श्रेष्ठि मूडबद्री।

(५४) ,, ,, नानूलाल जी शास्त्री जयपुर।

(५५) ,, ,, नाथूलाल जी जैन साहित्यरत्न संहिता सूरि साहित्य धर्म शास्त्री इंदौर।

(५६) ,, ,, रामप्रसाद जी जैन शास्त्री लाडनू

(५७) ,, ,, नेमिचन्द्र जी जैन शास्त्री अध्यक्ष जैन सिद्धान्त भवन, आरा।

(५८) श्रीमती विदुषी चन्दाबाई जी आरा।

(५९) श्रीमान पं० न्यायज्योतिषतीर्थ नेमिचन्द्र जी आरा।

(६०) ,, ,, शांतिराज जी शास्त्री नागपुर।

(६१) ,, ,, बालमुकन्द जी मोरेना।

(६२) ,, ,, मल्लिनाथ जी शास्त्री न्यायतीर्थ मोरेना।

(६३) ,, ,, सुमतिचन्द जी शास्त्री मोरेना।

(६४) ,, ,, कुञ्जीलाल जी शास्त्री न्याय काव्य तीर्थ मोरेना।

(६५) ,, ,, नाथूलाल जी शास्त्री काव्य रत्न मोरेना।

(६६) ,, ,, कविराज अजितवीर्य जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य मुरेना।

(६७) ,, ,, कन्हैयालाल जी व्याकरणाचार्य।

(६८) ,, ,, नन्हेलाल जी शास्त्री।

(६९) ,, ,, शान्तिलाल जी साहित्य शास्त्री।

(७०) ,, ,, मोतीलाल जी न्यायतीर्थ।

(७१) ,, सेठ पोस्तीलाल जी बम्बई।

(७२) ,, पं० नन्हेलाल जी कुचामन।

(७३) ,, सेठ प्रसादीलाल स्टेशन मास्टर।

(७४) ,, जैन पञ्चायत हटा।

(७५) ,, पं० भुवनेन्द्रप्रसाद जी।

(७६) ,, ,, धरणीन्द्र जी सोलापुर।

(७७) ,, ,, नेमिदास जी सोलापुर।

(७८) ,, ,, श्री दि० पचायत फीरोजाबाद

(७९) ,, ,, शिखरचन्द जी शास्त्री।

(८०) ,, पञ्चायत ठकुरई।

(८१) ,, सरसावा पञ्चायत।

(८२) ,, तिलकपुर पञ्चायत।

(८३) ,, रतलाम पञ्चायत।

(८४) ,, खांदू पञ्चायत।

(८५) ,, रिंड पञ्चायत।

(८६) ,, पार्वतीबाई हैड अध्यापिका- लालचन्द जैन कन्या पाठशाला टीकरी।

(८७) ,, सकीट पञ्चायत।

(८८) ,, पाली पञ्चायत।

(८९) ,, रानापुर पञ्चायत।

(९०) ,, जावद पञ्चायत।

(९१) ,, कोड़याग्राम पञ्चायत।

(९२) ,, धोद पञ्चायत।

(९३) ,, पं० रामप्रसाद जी शास्त्री।

(९४) ,, ,, चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ।

(९५) ,, ,, कमलकुमार जी शास्त्री।

(९६) ,, ,, रामसहाय जी शास्त्री।

जैन सिद्धांत दर्पण—

चारित्रचारित्र्य वीरचर्याचतुर वक्तृत्वकलाकीर्तिकीर्ति अव्याहतकर
समतासमुचित स्वरसमभावधारी तपोनिधि
श्री १०८ पूज्य मुनिराज वीरसागरजी महाराज.

(K P S)

(९७) श्री पं० दयाचन्द जी न्यायतीर्थ।

(९८) ,, ,, श्रुतसागर जी तीर्थत्रय।

(९९) ,, ,, पन्नालाल जी साहित्याचार्य।

(१००) ,, ,, माणिकचन्द जी न्यायतीर्थ सागर।

(१०१) ,, ,, रामलाल जी वैद्य शास्त्री अलीगढ़।

(१०२) ,, ,, श्रीपाल जी उपदेशक अलीगढ़।

(१०३) ,, ,, इन्द्रमणि जी वैद्य अलीगढ़।

(१०४) ,, ,, दुर्गाप्रसाद जी अलीगढ़।

(१०५) ,, ,, चम्पालाल जी विशारद, शीतलनाथ दि० जैन पाठशाला खादू (बासवाड़ा)

(१०६) ,, ,, सतीशचन्द्र जैन न्यायतीर्थ आयुर्वेदाचार्य सकौट (मेरठ)।

(१०७) श्री पं० जिनेश्वरदास जी जैन धर्म भूषण वैद्य शास्त्री सरधना।

(१०८) ,, ,, प्यारेलाल जी विलसी।

(१०९) ,, ,, प्रसन्नकुमार जी शास्त्री पाली।

हम उपरोक्त विद्वन्मण्डलीके बहुत आभारी हैं और भूरि भूरि प्रशंसा करते हुये हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि आप लोगों ने अपना २ समय निकालकर जो धर्म रक्षार्थ सम्मतियां भेजी हैं यह समाज के व धर्म के वास्ते बहुत ही उपयोगी कार्य है और आशा है भविष्य में भी कभी ऐसी विकिट परस्थिति उपस्थित होने पर हर तरह से सहयोग देंगे।

—श्रीमानों द्वारा आई हुई सम्मतियां—

(१) रावराजा राज्यरत्न रायबहादुर सर सेठ हुकमचन्द्र जी, इन्दौर।

(२) राय बहादुर सर सेठ भागचन्द्र जी सोनी ओ० बी० ई० लैफ्टीनैंट करनल अजमेर।

(३) श्री सेठ रायसाहब मोतीलाल जी रानीवाले ब्यावर।

(४) श्री लाला प्रद्युम्नकुमार जी रईस सहारनपुर

(५) श्री सेठ पूनमचन्द घासीलाल जी सङ्घपति बम्बई।

❋ प्रथम द्वितीय अंशकी लेखसूची ❋

इससे पूर्व छपे हुए दो ट्रैक्टों के विषयों की सूची भी सब भाइयों की जानकारी के लिये यहा देते हैं जिस से पहिले विषय का भी पूर्ण ध्यान रहे।

ट्रैक्ट नं० १

इसमें श्रीमान पं० मक्खन लाल जी शास्त्री मुरेना वालों का ही लेख है।

दूसरे ट्रैक्ट में निम्न लिखित विषय हैं।

—द्वितीय अंश की लेख सूची—

—: इस तृतीय अंश की विषय सूची :—

(द्वितीयांश में १३ लेख प्रकाशित हुए हैं तदनुसार इस अंश में लेखांक उससे आगे १४ आदि लगाये गये हैं। प्रमाद वश कुछ लेखोंपर अक अंकित न हो सके अत एव अंक अंकित संख्या अशुद्ध हो गई है)

❀ श्रीमान सर सेठ भागचन्द्र जी सोनी, ओ० बी० ई० अजमेर की सम्मति ❀

श्री दिगम्बर जैन पञ्चान मुम्बई के द्वारा प्रकाशित "दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण" के दो अंशों को देखने का अवसर मुझे मिला। श्री० प्रोफेसर हीरालाल जी साहब अमरावती वालों ने श्री षटखण्डागम-धवला टीका के आधार से यह सिद्ध करने की जो विफल चेष्टा की है कि—

१-स्त्री पर्याय से मुक्ति हो सकती है। २-सवस्त्र मुक्त हो सकते हैं। ३-केवली कवलाहारी होते हैं।

ये तीनों ही सिद्धांत दिगम्बरत्व के विरुद्ध हैं। पूर्व में श्री प्रभाचन्द्र आचार्य जैसे तार्किक शिरोमणि विद्वानों द्वारा ये तीनों ही सिद्धांत तर्क की कसौटी पर कसे गये हैं और फलतः उनसे पूर्व के आचार्यों का अभिप्राय साधन करते हुये उक्त आचार्य ने तो इसे इतना कसा है कि परीक्षा में उक्त तीनों ही विषय असम्भव ही सिद्ध हुये। उक्त दोनों ही अंशों में विद्वानों ने आगम और युक्तियों द्वारा इनका खण्डन किया है जो कि दिगम्बरत्व की रक्षा के लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

पूज्य श्री १०८

मुनिवर वीरसागर जी महाराज

के संकेत अनुसार

पण्डित छोटेलाल जी वरैया

* श्री *

साहित्य भवन, जीवाजीगंज,
उज्जैन

सेवा मे,

श्रीमान धर्मपरायण सकल दिगम्बर जैन पचायत,
भूलेश्वर बम्बई
यथायोग्य जुहारु !

पश्च,

आपका एक मुद्रित पत्र श्रीमान प्रोफेसर हीरालाल जी सा० के द्वारा उठाई गई शकाओं को लेकर मिला, जो परम पूज्य श्री १०८ वीरसागर जी महाराज के सघ मे भेजा था, उसे आद्योपान्त पढ़ा, पढकर महान दु ख हुआ कि प्रोफेसर साहब जैसे महान उद्भट विद्वान जिन्होके द्वारा धवलादि जैसे महान जैन ग्रन्थो का सम्पादन होना और उन्हीं ग्रथो का आश्रय लेकर स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति, केवली के भूख-प्यास की बाधा का होना, जैसे निराधार प्रकरण खड़े हुए है। इस लिये हम उक्त पचायत की विशेष प्रेरणानुसार परम पूज्य मुनि वीरसागर जी महाराज की पूर्ण विचारधारानुसार उक्त तीनो विषयों पर सक्षिप्त प्रकाश डालते हैं। आशा है कि प्रोफेसर जी साहब को अवश्य ही सन्तोष होगा।

सबसे प्रथम हम उस पर्चे के प्रथम विषय जो कि स्त्रीमुक्ति का आश्रय लेकर उन्हो ने षट्खण्डागम के पहले खण्ड सत्प्ररूपणा के ६३ वे नम्बर के सूत्र का आश्रय लेकर "स्त्रीमुक्ति" सिद्ध करने का प्रयास किया है उसीपर प्रकाश डालते है और प्रोफेसर सा० से निवेदन करेंगे कि वे उस सूत्र को एक बार पुन. देखने का कष्ट उठावे ऐसा हमारा निवेदन है। यथा,

"अस्मादेवार्षाद् द्रव्यस्त्रीणा निर्वृत्ति सिद्धये-दितिचेन्न, सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थिताना सय-मानुपपत्त :"

इस सूत्र टीका मे स्त्रीमुक्ति और सवस्त्र—मुक्ति दोनोंका परिहार होता है, न कि स्त्रीमुक्ति सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त सत्प्ररूपणा के द्वितीयखण्ड के पृष्ठ नम्बर ५२२ पर देखे,—

"इत्थिवेद-णवु सयवेदाणमुदए आहारदुगं मण-पज्जवणाण परिहारविसुद्धिसजमो च णत्थि"

इससे भी सिद्ध होता है कि जब मनुष्यनियो मे परिहार विशुद्धि और मनपर्यय ज्ञान भी नहीं होता है तब केवलज्ञान और मुक्ति किस प्रकार हो सकेगी ? क्या प्रोफेसर साहिब विचार करेंगे।

इसके अतिरिक्त श्रीवामदेवसूरि विरचित भाव-सग्रह श्लोक नम्बर २४० से २५१ तक स्त्रीमुक्ति का कितना सुन्दर निराकरण किया है वहा से देखे। इतना ही नहीं देवसेन स्वामी विरचित भावसग्रह मे

भी गाथा नम्बर ८५ से १६० तक जोरदार प्रमाण भरे हैं वहा से देखे।

इसी प्रकार पर्चे में जो द्रव्यप्ररूपणा का इशारा किया है वह भी बिल्कुल भूल-भरा है उसमें मनुष्य-नियों की संख्या सासादनादिक गुणस्थानो के द्वारा बतलाई है उसमें जो आदि शब्द आया है उससे शायद प्रोफेसर साहब चौदहवां गुणस्थान ग्रहण कर रहे हैं और उसमें वे स्त्रियो को भी घसीट रहे हैं यह कहा तक उचित है। इसी प्रकार नम्बर १२४ मे स्त्रीद्रव्यवेदी देवियो की गणना बतलाई है, इससे स्त्री मुक्ति कतई सिद्ध नहीं होती है। इत्यादिक जितनेभी नम्बर हैं वे सब भूल-भरे हैं उनसे स्त्री-मुक्ति सिद्ध नहीं होती है। इस लिये प्रोफेसर साहब ने जो भी प्ररूपणाओं के नम्बर दिये हैं उन पर व्यर्थ लिखना उचित न समझ कर छोड़ दिये हैं, अगर वे उनका खुलासा चाहें तो प्रत्यक्ष में बैठे उनका उचित उत्तर देने को तैयार हैं।

इसके अतिरिक्त राजवार्तिक अध्याय ६ सूत्र ४७मे निर्ग्रन्थ विशेषण क्यो ? और "द्रव्यापेक्षया तु पुल्लि-गेन सिद्धिः" और सर्वार्थ सिद्धिमे "द्रव्यतः पुल्लि-गेन एव" व्याख्या क्यो है क्या इसका प्रोफेसरसाहब उत्तर देवेगे ?

प्रोफेसर साहब जी ! दिगम्बर सम्प्रदाय का सर्व साहित्य स्त्रीमुक्ति का विरोधी ही मिलेगा, और साथ में श्वेताम्बर साहित्यभी स्त्री मुक्ति का नितात विरोधी है देखिये—

अरहत चक्कि केसव बल संभिन्नचारणे पुव्वा।
गणधरपुलायआहारगंच न हु भवियमहिलाणं ' ५२०

प्रवचनसारोद्धार तीसरा भाग पृ० ५४४-४५

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि स्त्री अर्हंत, आदि दस लब्धियो का श्वेताम्बर सूत्रसे भी प्राप्ति नहीं कर सकती तो फिर दिगम्बर सम्प्रदाय में मुक्ति किस प्रकार से होती है ? इस पर विचार करेंगे।

वज्रवृषभनाराचसहनन के बिना मुक्ति प्राप्ति नहीं होती है इस बातको दोनो सम्प्रदाय निर्विरोध स्वी-कार करते हैं और स्त्रीको श्वेताम्बरी सूत्रके अनुसार वज्रवृषभनाराच सहनन नहीं होता है, प्रकरणरत्ना-कर के चौथे भाग के सग्रहणी सूत्र नामक ग्रन्थ की २३६ वीं गाथा को देखो—

इतना ही नहीं बल्कि प्रवचनसारोद्धार ग्रन्थ के चौथे भाग सग्रहणी सूत्र के ७५ वे पृष्ठ गाथा नबर १६० वीं मे तो यहातक लिखा है कि स्त्रिया अहिमिंद्र (नौ ग्रीवक तथा पाच अनुत्तर) विमानोमे उत्पन्न नहीं होतीं।

इससे स्पष्ट पता चलता है कि स्त्रियोंके वज्रवृषभ-नाराच सहनन नहीं है और बिना वज्रवृषभनाराच-सहननके मोक्ष भी नहीं मिलती है।

उपर्युक्त प्रमाणसे यहभी भलीभान्ति सिद्ध होता है कि स्त्रिया १२ स्वर्ग (दिगम्बर सम्प्रदायानुसार १६ स्वर्गस)आगे उत्पन्न होने लायक तपश्चर्या भी नहीं कर सकती है। फिर स्त्रीमुक्ति कैसी ?

इत्यादिक स्त्रीमुक्ति विरोधी साहित्य श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय में बहुत बड़ी तादादमें भरा पडा है, उसे हम विस्तार भय से नहीं लिख रहे है आशा है कि प्रोफेसर साहब को इतने ही मे अवश्य सन्तोष होगा।

संयमी और वस्त्रत्याग

श्वेताम्बरीय मान्यतानुसार वस्त्ररहित ही मुनियो का उत्कृष्ट मार्ग बतलाया है और अपवादरूप में वस्त्र ग्रहण किया है किन्तु वस्त्र सहित उन्हो ने भी मोक्ष

नहीं मानी है, नहीं तो वे आचाराङ्ग सूत्र के आठवें अध्याय के सातवें उद्देश्य के ४३४ वे सूत्रमें १२६ पृ० पर इस प्रकार उल्लेख क्यों करते हैं ?

"अदुवा तत्थ परक्कमतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसन्ती, सीय फासा फुसती, तेउफासा फुसती, एगयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासा अहियासेति अचेले लाघवीयं आगमपमाणे। तवेसे अभिसन्नागए भवति" इत्यादि।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्वेताम्बर सूत्र भी कपडो को परिग्रह ही मानता है वस्त्र न रखने से मानसिक भावनाए कितनी पवित्र हो जाती है। इस पर आचाराग सूत्र के छठे अध्याय के ३६० वें सूत्र पृ० ६७ मे इस प्रकार लिखा है।

'जे अचेले परिवुसिए तस्सणं भिक्खुस्सणोएव भवइ-परिजुन्ने मे वत्थे, वत्थेजाइस्सामि, सुत्तंजाइस्सामि, संधिस्सामि, सीविस्सामि, उक्कसिस्सामि, परिहरिस्सामि, पाउणिस्सामि" ३६०

आचाराग सूत्रकार स्वय श्वेताम्बराचार्य है उन्हो ने वस्त्र रखने के सम्बन्ध मे अपने कितने श्रेष्ठ अनुभव व्यक्त किये है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि श्वेताम्बरीय सिद्धात से भी सवस्त्र मुक्ति सिद्ध नहीं होती है।

तत्वार्थाधिगम भाष्य के नवम अध्याय के ६ वे सूत्र में जो वाबीस परीषह बतलाई है उसमे एक "नग्न परीषह" भी है उसमे क्या वस्त्र ग्रहण किया है ?

इसी अध्याय के ४८ वे सूत्र मे पुलाक, वकुश, आदि मुनियो का स्वरूप वर्णन करते हुये "निर्ग्रन्थ" शब्द का प्रयोग किया है क्या उसमें कहीं वस्त्र ग्रहण किया है ? कदापि नहीं इससे स्पष्ट पता चलता है कि श्वेताम्बर सिद्धान्त भी वस्त्ररहित मोक्ष मानता है।

पर्चे में जो भगवती आराधना की ७६ व ८३ नम्बर की गाथा का वर्णन किया है वह ठीक है प्रो० साहब स्वयं अपवादमार्ग स्वीकार कर रहे हैं किन्तु यह वेश गृहस्थ के लिये लिखा है, साधु के लिये तो नहीं बतलाया।

"सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक में वस्त्र त्याग अनिवार्य नहीं पाया जाता" लिखनाभी गलत है उक्त ग्रन्थो मे खुले शब्दोमे वस्त्र रहित को ही मुक्ति मानी है, कृपया एक बार पुनः उक्त ग्रन्थो को देखने की कृपा करें।

वामदेव स्वामी विरचित भावसंग्रह पृष्ठ १७४ श्लोक नम्बर २५२ से २८५ तक पढ़लेवें अपने आप आपकी शंका निर्मूल होजायेगी। आप जैसे विद्वानों को सक्षिप्त प्रमाण भी पर्याप्त होंगे। विशेष की आवश्यकता पडेगी तो वे भी उपस्थित किये जा सकेंगे।

दिगम्बर सम्प्रदाय ने कहीं भी विधेयरूपमे द्वारा वस्त्र स्वीकार नहीं किये हैं और श्वेताम्बर ग्रन्थ भी वस्त्र रहित ही उत्तम मुनि मानते हैं ऐसी अवस्था मे प्रोफेसर सा० के लिखने में आगम प्रमाण नहीं है। आशा है कि इस पर वे पुन विचार करेंगे।

केवली के भूख प्यास की वेदना

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य ने ही भूख प्यास का निषेध नहीं किया बल्कि दिगम्बर सम्प्रदाय के सम्पूर्ण आचार्यों ने एक स्वर से उपर्युक्त विषय का विरोध ही किया है। राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि के प्रणेताओं ने जो हेतु मोहनीय के अभाव में वेदनीय का जर्जरित होना कहा, वह प्रामाणिक है, उसका विरोध आपको सहेतु उपस्थित करना चाहिये उस पर विचार किया जायगा।

आपने ६ वे अध्याय के ८ वें, व १७ वें सूत्र को सामने रखा है किंतु एकबार फिरसे आपको उक्त सूत्रो की टीकाओं को देखने की कृपा करनी चाहिये। जो १४ वे गुणस्थान तक वेदनीय का उदय माना है वह ठीक है परन्तु यह भी तो आप बतलाने की कृपा करें कि वेदनीयकर्म मे फल देने की शक्ति किस निमित्त से पैदा होती है। कर्म सिद्धान्त द्वारा

इसका भली भान्ति प्रतिपादन हुआ है वहां से आपको देखना चाहिये।

सामने आये हुये प्रश्नके पहले यह जान लेना भी आवश्यकीय है कि भूख प्यास क्यो लगती है, इस लिये इस विषय को समझने के लिये गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथा न० १३४ को पढ लेवे तब स्पष्ट पता चल जायगा कि भूख प्यास का कारण केवलीके उपस्थित ही नहीं होता है—

समयट्ठिदिगो बन्धो सादस्सुदयोपिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि।२७४।
एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरन्तरो उदओ।
तेणअसादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि।२७५।
(गो० क०)

इस लिये केवली के साता वेदणीय का उदय हमेशा रहता है और असाता वेदनीय जनित क्षुधादिक ११ परीषह नहीं होतीं क्योंकि असाता का उदय सातारूप में ही परिणत होता है। इसके अतिरिक्त और भी देखें—

घादिव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं।
इदि घादीण मज्झे मोहस्सादिम्मि पठिदतु॥ १८॥
(गो० क०)

इसी लिये वेदनीय का उदय होते हुये भी केवली के भूख प्यास भी बाधा नहीं हो सकती है। उपर्युक्त सिद्धान्त विषयक प्रमाण प्रबलता के साथ केवली के प्रकृत विषय का खण्डन करते हैं और स्पष्ट बतलाते हैं कि केवलज्ञानी के वेदनीय साता रूप में ही रहती है। इसी प्रकार श्वेताम्बर सिद्धान्तभी बतलाता है। देखिये प्रकरणरत्नाकर के चतुर्थभाग के षडशीति नामक चौथे खण्ड की ६४ वी गाथा पृ० न० ४०२-

उइरंति पमत्तता सगट्ठ मसिट्ठ वेअ आउविणा।
छग अपमत्ताइ तऊ छ पच सुदुमो पणु वसतो ६४

इसके आगे और भी ६५ गाथा है—
पण दो खीण दुजोगीऽणुदीरगु अजोगि-
थोव उवसन्ता।

इस प्रकार जब वेदनीय कर्म की उदीरणा छठे गुणस्थान तक होती है तो नियमानुसार यहभी मानना पडेगा कि भूख भी छठे गुणस्थान तक ही लगती है। इस लिये प्रोफेसर साहब का विषय उभय सिद्धात से बिल्कुल विपरीत है।

भूखकी वेदना कितने प्रकारकी और कैसी दुखदाई होती है जरा देखिये—

आद्यां रूपविनाशिनी कृशकरी कामस्य विध्वंसिनी,
ज्ञानभ्रंशकरी तपःक्षयकरी धर्म्मस्य निर्मूलिनी।
पुत्र--भ्रातृ--कलत्र--भेदनकरी लज्जाकुलच्छेदिनी,
मा मा पीडति विश्वदोषजननी प्राणापहारीक्षुधा॥

इतना ही नहीं और भी देखिये—

त्यजेत्क्षुधार्ता महिला स्वपुत्र,
खादेत्क्षुधार्ता भुजगी स्वमण्डम।
बुभुक्षितः किं न करोति पाप,
क्षीणा जनाः निष्करुणा भवन्ति॥

ऐसी घोर दुखदायिनी भूख परीषह यदि केवल ज्ञानी को वेदना उत्पन्न करे तो केवलीका अनन्तसुख क्या कार्यकारी होगा क्या प्रोफेसर साहब इसका समुचित उत्तर देवेंगे?

बस इस विषयपर हम इतना ही लिखकर समाप्त कर रहे हैं आशा है कि प्रोफेसर साहब अपनी विचारधारा का परिवर्तन करेंगे।

परम पूज्य श्री वीरसागर जी महाराज का बम्बई पंचायत को "धर्मवृद्धि"

साहित्यभवनजीराजीगंज उज्जैन ता० ३०-७-४४	समाजसेवी- छोटेलालवरैया आमोलनिवासी

श्रीमान विद्वद्वर श्री भट्टारक

देवेन्द्रकीर्त्ति जी महाराज

गादी—नागौर

वीरेशं तीर्थपं वंदे मार्वं करुणापूरुपं।
युक्त्यागमाविरोधेन यद्वचो भूखभूपणं ॥

युक्तिवाद यदि आगम के अनुकूल है तो सर्वमान्य हो सकता है किन्तु यदि युक्तिवाद आगम का विराधक और वस्तु निर्णय का विध्वंसक हो तो विज्ञ जनता उसे युक्तिवाद ही नहीं कह सकती। ऐसे युक्त्याभासों की आड़ में ही आज का सुधारवाद पनप रहा है। और लोग इस शैतान की चपेट में आकर अपने विरुद्ध गवाही देते हुये देखे जाते हैं। अन्तस्तत्त्वावलोकन की तरफ किसी भले आदमी का ध्यान ही नहीं जाता।

जो कुछ लोग कहते हैं वह सब ठीक ही है इस का क्या प्रमाण? भारत के अतिरिक्त यदि सब देश व्यभिचार को पाप न मानें तो क्या व्यभिचार न्याय्य सिद्ध हो जायगा।

आज यह सम्मति का रोग ऐसा फैल गया है कि लोग अपने पूर्व पुरुषों की प्रसिद्ध नीति—'सुनें सबकी करें मन की' को बिल्कुल भूल गये हैं।

बहु सम्मति के अवसरपर तो लोग आगम और युक्ति दोनों को ही भूल जाते हैं। और कुछ व्यक्ति अपनी विद्वत्ता का दुरुपयोग आगम के अर्थको अपने मनोनुकूल करने और युक्तियोंको अपनी ओर खींचने मे कर रहे हैं इसका हम अत्यन्त खेद है।

विद्वानों का ध्यान समाज उत्थान की ओर लगा रहना चाहिये और समाज मे श्रद्धान की दृढता चारित्र की निर्मलता और ज्ञान की प्रौढ़ता बढानी चाहिये। किन्तु कुछ विद्वानोंकी निकम्मी करतूतों से समाज मे विक्षोभ फैलता हुआ देखकर अवश्य दु:ख होता है।

प्रत्येक स्थल पर युक्ति की अपेक्षा आगम प्रमाण को महत्व दिया गया है। अत आगमानुकूल युक्ति ही ग्राह्य है। और "स्वभावोऽतर्कगोचर:" स्वभाव यानी वस्तुधर्म में युक्ति, तर्क काम नहीं देते हैं।

स्त्री मुक्ति निराकरण

समस्त शास्त्रों का अभिमत है कि स्त्रीपर्याय एक निन्द्यतम पर्याय है। इसमे दु:ख, क्लेश, मायाचारी, लोभ, भागलापल्य, क्रूरत्व, अभिमान, वेदका तीव्रत्व प्रसूतिवेदना, पुत्रमोहादि अनेक दोषोंकी प्रचुरता है।

किसी भी गति की स्त्रीपर्याय मे क्षायिक सम्यक्-दर्शन, सकलसंयम, तीर्थंकर प्रकृतिका उदय व बन्ध, शुक्लध्यान, श्रेणीआरोहण आदि नहीं होते। किसी भी प्रकार का सम्यग्दृष्टि मरण कर स्त्रीत्व प्राप्त नहीं करता है। कर्मभूमि की स्त्रियों मे उत्तम संहनन नहीं होते। स्त्रीपर्याय पंचम गुणस्थान द्वारा सोलहवां स्वर्ग प्राप्त करने भरकी ही साधिका है। ग्रैवेयकादि और सातवें नरकमे भी स्त्रियों का गमन नहीं होता।

भगवान भूतबलि पुष्पदंत ने इसका समर्थन निम्न प्रकार से किया है—

छक्खण्डागम जीवट्ठाण चूलियाए गदियागदियाए पवेस णिग्गमणे गुणट्ठाणाणि ।

सूत्र ६१-६५, पत्र ४४२-४३

पंचेन्दिय तिरिक्ख जोणिणीओ मणुसिणीओ भवणवासिय वाणवेंतर जोइसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाण कप्पवासिय देवाओच मिच्छत्तेण अधिगदा केइ मिच्छत्तेण णीतिं ॥ ६१ ॥ केइ मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मणत्ते णीति ॥६२॥ केइमिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण, णीतिं ॥ ६३ ॥ केइ सासण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ॥ ६४ ॥ केइ सासण सम्मणत्ते अधिगदा सम्मत्तेण णीति ॥ ६५ ॥

चूर्णि–एदेसु सम्मत्तेण अधिगमो णत्थि । कुदो ? एदस्स अच्चंताभावादो ।

अर्थात् सम्यक्त्व के साथ मरण कर कोई भी जीव किसी प्रकारकी स्त्रियो मे जन्म नहीं लेता । स्त्रीत्व मिथ्यात्व दर्शन मोहनीय के उदय का ही परिणाम है । अतः स्त्रीत्व निन्द्य है ।

षट्खण्डागम जीवस्थान चूलिका सम्यक्त्वोत्पत्ति चारित्र परिवर्धन विधान मे श्री वीरसेन स्वामी ३०५ पृ० पर समर्थन करते है ।

पुरिसवेदोदएण उवसमसेडिमारोहणादो ।

अर्थात्—पुरुष वेदका उदय होने से उपशम श्रेणी का आरोहण होता है । नपुकवेदी और स्त्रीवेदी उपशम या क्षपक श्रेणी नही माड़ सकते ।

छक्खण्डागम जीवस्थान सत्प्ररूपणा पत्र ५१३ पर श्रीवीरसेन स्वामीने स्पष्टतया स्त्रीके सयम ग्रहणका निषेध किया है । साथ ही सचेलमुक्ति का भी निषेध इस प्रकार है ।

जेसिंभावो इत्थिवेदो दव्व पुण पुरिसवेदो ते वि जीवा संजम पडिवज्जति । दव्वित्थिवेदा सजमं ण पडिवज्जंति, सचेलत्तादो । भावित्थिवेदाणं दव्वेण पु वेदाण पि सजदाण णाहार रिद्धि समुप्पज्जदि । दव्वभावेहिं पुरिसवेदाणमेव समुप्पज्जदि तेणित्थि-वेदेपि णिरुद्धे आहारदुग णत्थि तेण एगारह जोगा भणिया इत्थिवेदो अवगद वेदोपि अत्थि । एत्थ भाववेदेण पयड ण दव्ववेदेण कि कारण ? अवग-दवेदोपि अत्थित्ति वयणादो ॥

अर्थात्–द्रव्यस्त्रीके सयम ग्रहण नहीं क्योकि वे सवस्त्र होती हैं । वे नग्नत्व धारण नहीं कर सकती । शत्रुभय और शास्त्राज्ञालोप इसमे प्रधान कारण है । स्त्रियो के आहारक शरीर, मन पर्ययज्ञान, परिहार-विशुद्धि आदि भी नहीं होते ।

जीवस्थान चूलिकासूत्र २३० पत्र ४६५

भवणवासिय वाणवेंतर जोइसिदेवा देवीओ सोधम्मीसान कप्पवासिय देवीओ देवादेवेहि उवट्टिद चुद समाणा कदि गदीओ आगच्छन्ति—

णोए बलदेवत्त उप्पामेंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति णो चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, णो तित्थयरत्तमुप्पाएंति ॥

अर्थात भवनत्रिक और कल्पवासियो की देविया मरण कर बलदेव वासुदेव चक्रवर्ती और तीर्थंकर नहीं होती हैं ।

त्रेसठ शलाका पुरुष ही होते हैं, न कि स्त्रिया ।

इस सबसे सिद्ध होताहै कि स्त्रिया जब सासारिक अनेक गणनीय विभूतियोको, ऋद्धियोको, सयम को मन पर्यायादि ज्ञान को और उत्तमोत्तम पदो को भी नहीं पा सकतीं, और उत्कृष्ट सहनन, उत्कृष्टध्यानादि, की उनमे योग्यता नहीं तो मुक्ति की वे अधिकारिणी सिद्ध नहीं की जा सकतीं । अतः दिगम्बर जैन सिद्धात अनुसार स्त्रियो को स्त्रीपर्याय से मुक्ति नहीं हो सकती ।

प्रो० की द्वारा सूचित किये गये प्रमाण द्रव्यस्त्री वेद से मुक्ति सिद्ध नहीं करते। अतः वे निस्सार हैं।

अपसत्थवेदोदयेण सह पउरं सम्मद्दसणलंभाभावादो।

(द्रव्यप्रमाणानुगम पृ० २६१)

अर्थात—अप्रशस्त वेद (नपुसक और स्त्री) के साथ प्रचुर जीवोको सम्यग्दर्शन लाभ नहीं होता है।

इस स्थल पर भी वीरसेन स्वामी ने स्त्रीवेद को निन्द्य और अप्रशस्त कहा है।

नीच गोत्र की स्त्रियो को आर्यिका के भी व्रत नहीं होते जैसे कि शूद्रो को उत्कृष्ट श्रावक (ऐलक) के व्रत नहीं, सद्गोत्र वाली स्त्रियो को भी छठा गुणस्थान (महाव्रत) नहीं है, पचम गुणस्थान मात्र है वह आर्यिकाक व्रत ग्रहणकर सकती। पाप कर्मोदयसे उसे जिनलिंग नहीं होता, नग्नता नही होती। स्त्रिया गर्भधारण करती हैं। निरन्तर अशुचि रहती हैं। अनेक जन्तुघात, पुत्र जनन और मानव वीर्य ग्रहण के कारण वे प्राय. अपवित्र और अशुद्ध रहती है। स्त्रियो के स्तन, योनि और कुक्षि मे निरन्तर निगोदी जीव उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। अत उन्हे महाव्रत, ऋद्धिया, श्रेणी-आरोहण योग्य परिणाम, शुक्लध्यान, घातिकर्म क्षय, केवलज्ञान, योग निरोध आदि की योग्यता नहीं। हीन सहनन होनेसे उनके शुक्लध्यान नहीं होता। उसके बिना कर्मक्षय कदापि नहीं माना जा सकता। अल्प शक्ति होने से उसे सातवा नरक और मुक्ति गमन की योग्यता नहीं उसके सम्पूर्ण व्रत, सकल सयम और अचेलक्य नहीं होता अत कभी मुक्त नहीं हो सकती।

—०—

सवस्त्र मुक्ति निराकरण

प्रो० जी ने दि० मान्यतानुसार वस्त्रके सम्पूर्ण त्यागसे ही संयमी और मोक्षका अधिकारी हो सकता है, यह स्वीकार किया है। पर दिगम्बर शास्त्र इस विषयमे क्या आदेश करतेहैं इसकी खोज चाहते हैं।

स्वामी समन्तभद्र देव सवस्त्र मुक्ति व सवस्त्र सकल सयम का निषेध निम्न प्रकार से करते हैं—

सामयिके सारम्भा परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ॥

गृहस्थ देशव्रती सामायिक के समय समस्त आरभ परिग्रहको छोड़कर भी वस्त्रधारी है। अतएव मुनि नहीं होता, मुनि के समान हो जाता है। यत. मुनि के वस्त्र बिल्कुल नहीं होते। कोई अज्ञान आदि के कारण मुनि पर वस्त्र डाल भी दे तो जब तक वस्त्र उतर न जाय उपसर्ग माना जाता है। अतएव मुनि के वस्त्र धारण नहीं।

जो कम से कम भी वस्त्र धारण करता है वह भी श्रावक है, मुनि नहीं। देखिये समन्तभद्र श्रावकाचार श्लोक नम्बर १४७।

गृहतो मुनिवर्नामित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधर ॥ १४० ॥

जब तक किसी के शरीर पर खण्डवस्त्र भी है। तब तक वह श्रावक ही है, मुनि नहीं हो सकता। भला श्रावक तो वस्त्रो को कम करता जाय और लगोटी मात्र परिग्रह रक्खे तथा मुनि भरमार वस्त्रो को पहने ओढे रहे यह कैसे सम्भव है निर्ग्रंथ लिंगमें वस्त्र कहीं नहीं।

वस्त्रधारक गृहस्थ के प्रत्याख्यान कषाय का उदय-सत्व रहता है। अत: वह मुनि नहीं हो सकता, जब तक प्रत्याख्यान कषायोदय है तब तक भावश्रमण नहीं

हो सकता। और तब तक प्रत्याख्यान की क्षयादिक नहीं हो सकता देखिये रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक नम्बर ७१।

प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥ ७१ ॥

प्रत्याख्यान कषाय का मद उदयसत्त्व भी महाव्रतमे बाधक है जिसका कार्य वस्त्रादि परिग्रह धारण है। अत. वस्त्र धारक के प्रत्याख्यान का क्षयादि नही हो सकता और इस अवस्थामे मुनिव्रत नही।

जो वस्त्रादि धारण करते है वे पाखण्डी है मुनि देखिये र० श्रा० श्लोक २४।

सग्रन्थारम्भहिंसाना ससारावर्तवर्तिना।
पाखण्डिना

जो सग्रन्थ है हिसक है वे पाखडी हैं, जो वस्त्रादि परिग्रह रक्खेंगे वे अवश्य पहरने उतारने का आरभ करेगे जो धोने सीने और कृमि निष्कासनका आरम्भ करेंगे वे हिसासे बच नहीं सकते अत हिंसक भी होंगे ऐसे लोग पाखण्डी है।

महाव्रत महात्माओ के होते है पाखण्डियो के नहीं देखिये उक्त ग्रन्थ का श्लोक ७२।

पञ्चाना पापाना हिंसादीना मनोवच.कायैः।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रत महता ॥

हिंसादि समस्त पापो का त्याग महाव्रत है और वह महापुरुषो के होता है। कातर असयमी लुब्ध पाखण्डियो के नहीं।

सकल चारित्र सर्वपरिग्रह से रहित अनगारो के होता है। देखिये उक्त ग्रथ का पच्चीसवा श्लोक।

सकल विकल चरण तत्सकल सर्वसगविरताना।
अनगाराणा विकल सागराणा ससगानाम ॥

अनगार वस्त्रग्रहणादिक समस्त परिग्रह से रहित और सागार परिग्रह से युक्त होते हैं। जो परिग्रही है वे सागार (गृहस्थ) है। जो निष्परिग्रही है वे ही मुनि है।

भगवान भूतबली पुष्पदत पर्याप्त मनुष्यनी के ५ गुणस्थान मानते हैं देखिये प्रमाण सत्प्र० सूत्र ९३ पृष्ठ ३३२—३३३.

"सम्मामिच्छाइट्ठि असजदसम्माइट्ठि सजदासजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥ ९३ ॥

यानी मनुष्यस्त्रिया मिश्र, असयत सम्यग्दृष्टि और और सयतासयत इन गुणस्थानो म नियम से पर्याप्तक होती हैं।

अर्थात—स्त्रियो के पहले पाच गुणस्थान ही हो सकते है उससे आगे के नही।

इसी बात को धवला टीकाकार ने इस प्रकार से स्पष्ट किया है—

सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थिताना सयमानुपपत्ते। न तासा भावसयमोऽस्ति भावासयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्त।

अर्थात—स्त्रिया निर्वस्त्र नहीं हो सकतीं अत सवस्त्र होने के कारण वे पचम गुणस्थानवर्तिनी होती हैं, उनके सयम (महाव्रत या छठा गुणस्थान) नहीं होता। ... द्रव्यसयम के समान उनके भावसयम भी नहीं होता क्योकि भाव असयमका अविनाभावी वस्त्रादि परिग्रह उनके मौजूद है।

षट्खण्डागम के उक्त सूत्र और उसकी धवला टीकासे स्त्रियोके महाव्रत होनेकी बात सूर्येवत्स्पष्ट है। इस से अधिक पुष्ट प्रमाण को अब हम कथमपि आवश्यकता नहीं समझते।

सवस्त्रमुक्ति निराकरण पर व्याख्या निम्न है।

सवस्त्र होने से मोह, उससे रागादिक अनेक दोष

होते हैं। वस्त्र के गल जाने पर तदर्थ शोक संताप क्लेश निरन्तर होते देखे जाते है। नवीन वस्त्र ग्रहण करनेकी इच्छा होनेपर माहोदय जनित याचना करनी पडती है। मैला होने पर धोने से जीव घात और हिंसाजन्य कर्मबन्ध होता है। बन्धसद्भाव मे मुक्ति कहा। वस्त्र के योग से चित्त को स्थिरता नहीं हवा से उड़ने लग जाय, पानीसे भीग जाने पर क्लेश के कारण हो जाय। और चित्तस्थैर्य के बिना ध्यान सिद्धि नहीं। उसके बिना कर्मक्षय नहीं, अत वस्त्र तो मुक्त का बाधक है। वस्त्रादि से राग—वर्द्धक काम उत्पन्न होकर इद्रियो मे विकार पैदा होता है।

शीतादि की बाधा दूर करने को वस्त्रादि धारण मे प्रत्यक्ष मोह प्रतीत होता है। बिना मोहके शरीरपर वस्त्रधारण की व्यथ कवायद कौन करे। लज्जा निवारण के लिये वस्त्र धारने पर शरीर मे राग और बीभत्सको से द्वेष अवश्य जाना जाता है। शरीर शृङ्गार के तो प्रत्यक्ष माह है। वस्त्र ग्रहण में मोह होता ही है। उसमे हिंसादि पाप अपने आप ही होंगे। वस्त्र त्याग स निर्ग्रथत्व नि.शल्यत्व और ध्यान सिद्धि होती है वस्त्रादि त्यागसे इच्छा निरोधरूप तप होता है, स्वात्मसिद्धि होती है, वस्त्र सग से चित्त मे व्याकुलता मोहादि अनक दोष होते है। सवस्त्र मुक्ति सिद्ध हो तो नाग्न्य परीषह कैसे? आकिंचन्य धर्म कैसे? यथाख्यात सयम कैसे? जातरूपता कहा, अट्ठाईस मूलगुण और अपरिग्रहता कैसे सिद्ध हो। सवस्त्र मुक्ति माननेपर गृहस्थ ही मुक्त हो जाया करे फिर जिनरूपता ग्रहणकी आवश्यकता हो क्या? वस्त्र स वेष्टित साधु गृहस्थ ही समझा जायगा साधु और गृहस्थ के वेश मे भेद तो यही है कि गृहस्थ सवस्त्र और साधु अवस्त्र। विदेह क्षेत्रमे आजभी श्रीभगवान सीमधरदेव गणधरदेव साधु अचेलक्य गुण के धारण करने वाले दिगम्बर निर्ग्रन्थही है, उन निर्ग्रंथ वेशके धारक विदेहस्थ महापुरुषो की निर्वृत्ति आचारागसूत्र मे जिनेश्वरदेव ने प्रतिपादित की है। अतः सवस्त्र मुक्ति सम्भव नही। वस्त्रयुक्त लिंग से मुक्ति होती हो तो अकृत्रिम जिन बिम्बोपर वस्त्र क्यो नहीं, वस्त्रो मे देह के सयोग से जुआ आदि पड़ते हैं उनके दूर करने पर हिंसा अनिवार्य है अतः सवस्त्र मुक्ति मे अनेक बाधा तथा अनेक दोष हैं।

इतना सिद्ध होने पर श्री वीरसेन स्वामी का मौलिक प्रमाण देकर उसे संक्षिप्त करते हैं।

अट्ठावीसमूलगुणाइचारविसयसव्वपडिक्कमणाणि इरियावट्टयपडिक्कमणम्मि णिवदंति। अवगय-अइचारविसयत्तादो।

कसाय पाहुड जयधवला पत्र ११४,

भगवान वीरसेन स्वामी ने दिगम्बर जैन शास्त्रों के अनुसार ही धवला जयधवला जैसी विस्तृत टीका लिखी है। उन्हो ने इस स्थल पर अट्ठाईस मूलगुण दिगम्बर मुनि के स्वीकार किय है जिनमे निर्ग्रंथ नग्नता भी एक मूलगुण है।

केवली कवलाहार निराकरण

—:✱:—

अप्पमत्तसजदाणमोघालावे भण्णमाणे—तिण्णि सण्णाओ। असादा वेदणीयस्स उदीरणाभावादो आहार सण्णा अप्पमत्तसजयस्स णत्थि। कारण-भूदकम्मोदय संभवादो उवयारेण भयमेहुणपरिग्गह सण्णा अत्थि।

छक्खडागम सतप्ररूपणा दूसरी पु० पत्र ४३३

७वें गुणस्थान मे आहार सज्ञा नहीं। असाता वेदनीयकी उदीरणाके अभाव के कारण यहा आहार सज्ञा का अभाव है। आहार संज्ञाके बिना कवलाहार भोजन ग्रहण सभव नहीं।

कारणभूत कर्मोदय के सद्भाव की अपेक्षा शेष भय, मैथुन और परिग्रह सज्ञायें मात्र उपचारसे हैं। कार्यकारिणी नहीं। अर्थात् ७वे गुणस्थान में या इससे ऊपर कोई भयभीत नहीं होता। विषय सेवन (स्त्री पुरुष भोग) नही करता और किसी प्रकार का अन्तरग बहिरग परिग्रह नहीं रखता।

यदि केवली को कवलाहार स्वीकार किया जाय जो कि सर्वथा असभव है। तो फिर ऐश आराम की सामग्री दुनिया भर से भय और विषयभोग की सेवन से कौन रोक सकेगा।

कसायपाहुड़ जयधवला पेज्ज दोसविहत्तीर पत्र ११६ पर वीरसेन स्वामी आहार ग्रहण स अहिंसादि महाव्रतो मे अतीचार स्वीकार करते है—

ससरीरो आहारो सकसाओ पचमहव्वयगहण-काले चेव परिचत्तो। अण्णहा सुद्धणय विसयीक महव्वयग्गहणाणुववत्तीदो। सो सेवियो च मए एत्तिय काल पचमहव्वयभग काऊण सत्तिवियलदाए इदि अप्पाण गरहिय उत्तामट्ठाणकाले पडिक्कमण ति जाणावणट्ठ तत्थ पडिक्कमणोवयारो कीरदे।

अर्थात—सयम ग्रहणकालमे शरीर कपाय व आहार त्याग किया जाता है। अन्यथा शुद्ध नय के विषयीभूत पचमहाव्रतो की उत्पति ही नही हो सकती परन्तु शक्त्यभाव के कारण कोई आहारग्रहण करता है तो दोष है उसका भी प्रतिक्रमण आवश्यक है। जब छद्मस्थ ही आहार ग्रहण करने पर प्रायश्चित प्रतिक्रमण के अधिकारी हैं। तो केवली आहार कर यह उनके अवर्णवाद के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता।

कुछ लोग आहारक अनाहारक की अपेक्षा से केवली को कवलाहारी सिद्ध करने की धृष्टता करते है उसका निराकरण निम्न है। सत्प्ररूपणा द्वितीय जिल्द आहारआलाप पत्र ८४६—

आहारि अप्पमत्त सजदाणं भण्णमाणे अत्थि तिण्णि सण्णाओ—

आहारि सजोग केवलीय—खीणसण्णाओ।

पत्र ८५०

अणाहारि सजोग केवलीय खीण सण्णा।

पत्र ८५३

आहारक अप्रमत्त सयतो के आहार बिना ३ सज्ञाए है आहारक सयोग केवली सज्ञाओ स रहित अनाहारक सयोग केवली सज्ञाओ मे रहित है।

अर्थात् आहार सज्ञा के अभाव मे भोजन ग्रहण सूचित करना अपनी अज्ञानकारीका ढोल पीटना है। कसायपाहुड जयधवला पृष्ठ ६८ मे ७१ तक आचार्य श्री वीरसेन स्वामी स्पष्टतया केवली के उपसर्गादि दु ख क्षुधादि वेदना और कवलाहार का निषेध करते है।

ण च वेयणीय तव—कारण। असहेज्जत्तादो, घाइचउक्क सहेज्ज सतं वेयणीय दुक्खुप्पायय। णच त घाइचउक्कम्मित्थि केवलिम्मि, तदो ण सकज्जजणओ। वेयणीय जलमट्टियादि विरहियबीज वेत्ति। वेयणीयस्स दुक्खमुप्पाएतस्स घद्दचउक्क सहेज्जयम्मि कध णव्वदे। तिरयणपउत्ति अण्णहाणुववत्तीदो।

असहाय वेदनीय देवत्व का बाधक और क्षुधादिक का उत्पादक नहीं हो सकता। घाति चतुष्क के साथ ही वेदनीय दु खोत्पादक होता है। और केवल मे

घातिचतुष्क हैं नहीं। इस लिये वहा वेदनीय स्वकाय करने में-जल मिट्टी बिना बीजके समान असमर्थ है घातिचतुष्क के अभाव के कारण नि सहाय वेदनीय रत्नत्रय का भी बाधक नहीं है। अन्यथा नि.सहाय वेदनीय अनन्तचतुष्टयान्तर्गत अनन्त सुख का भी व्याघातक हो जाय।

घाइकम्मे णट्ठे सते वि जइ वेयणीय दुक्खमुप्पायइ तो सतिसो सभुक्खो केवली होज्ज। ण च एव। भुक्खातिसासु कूरजलविसयतण्हासु सतीसु केवलिस्स समोहत्तावत्तीदो। तण्हाए ण भु जइ कि तु तिरय-णट्ठमिदि ण वोत्तु जुत्त तत्थ पत्तासेससरूवंमि तद सभवादो। त जहा, ण ताव णाणट्ठ भु जइ पत्तकेवलणा णभावादो ण च केवलणाणादो अहिमएण पत्थणिज्ज णाणमत्थि जेण तदट्ठ केवली भु ज्जेज्ज। ण सज-मट्ट। पत्तजहाक्खाद सजमादो। ण ज्झाणट्ठ, विसईकयासेसतिहुवणस्सज्झेयाभावादो। ण भु जइ केवली मुक्तिकारणाभावादो त्ति सिद्धम।

यदि घाति कर्म के अभाव मे भी वेदनीय दुःख दे तो केवली को भूखा प्यासा होना चाहिये। पर ऐसा माननेपर उनके मोहोत्पत्ति सिद्ध होगी। फिर मोहनीयादि का अभाव और कैवल्य का सद्भाव भी उनके न ठहर सकेगा। रत्नत्रयकी सिद्धिके हेतु भी उनका भोजन करना नही बन सकता। क्योकि केवलज्ञान, यथाख्यात सयम और त्रिभुवन के ध्येय ध्याता वे हो चुके है। उन्हें रत्नत्रय प्राप्त हो चुका अत वे भोजन नही करते। क्योकि उनके भोजन करने का कोई कारण उपस्थित नही है।

अह जइ सो भु जइ तो बलाउसादु सरीरुवचय तेज सुहट्ट चेव भु जइ ससारिजीवोव्व। ण च एव, समोहस्स केवलणाणाणुववत्तीदो। ण च अकेवलि वयणमागमो, रागदोसमोहकलकंकिए हरिहरहिरण्ण-गब्भेसु व सच्चाभावादो। आगमाभावे ण तिरयण-पउत्तित्ति तित्थवोच्छेदो चेव होज्ज। ण च एवं तित्थस्स णिव्वाहत्तोहविसयीकयस्स उवलभादो तदो णवेयणीय घाइकम्मणिरवेक्ख फल देदित्ति सिद्धम

यदि ससारी जीवोके समान केवलीभी बल आयु स्वादु भोजन, शरीर सौंदर्य तेज सुख आदि की प्राप्ति के लिये भोजन करते है माननेपर वे मोही सिद्ध होगे मोही के कैवल्य सिद्ध नहीं हो सकता। अकेवली के वचन आगम नहीं। रागद्वेषमोहादि से कलकित हरि हर हिरण्यगर्भादि देवताओमे सत्यका अभाव है आगमाभाव होनेपर रत्नत्रयका अभाव और तदभाव मे तीर्थव्युच्छेद हो जायगा किन्तु तीर्थकार निर्बाधबोध, का उपलम्भ है ही। इस लिये घातिकर्म निरपेक्षित वेदनीय फल नहीं दे सकता यह सिद्ध हुआ।

जो वीतरागी केवली को कवलाहारी बतलाते हैं वे जैन ही नहीं। वे तो जैनाभास हैं। क्षुधादि दोष-मुक्त घाती कर्म रहित जिनेश्वर के कवलाहार सभव नहीं हो सकता है। मोह का अभाव होनेसे उनके आहार सज्ञा नही तदभाव मे ग्रासाहार कैसे? और आहार सज्ञा दोष के सद्भाव मे वे निर्दोष नही हो सकते। आहार सज्ञा के सद्भाव मानने पर केवली के शेष तीन सज्ञाओ का निवारण कैसे होगा मोह के अभाव हो जाने से व्यवहारी सज्ञाएं ही नही होती है। हो भी तो भी मोह के बिना क्षुधादि उत्पन्न करने मे समर्थ नही। इस लिये भगवान मे क्षुधा दोष नहीं होता। क्षुधा दोष होने पर शेष राग द्वेष मोह निद्रा आदि अनेक दोषो का निवारण अशक्य होगा। रागादिक के सद्भाव मे कोई सर्वज्ञ निर्दोष सत्याप्त नहीं हो सकता। आहारसे राग, राग

से मोहादि, उससे तन्द्रा निद्रा मद क्लेश रोग चिन्ता वेदनादिक अनेक दोष उत्पन्न होते है। आहार ग्रहण से कामोत्पत्ति उससे चित मे व्याकुलता और मथुनेच्छा उत्पन्न होगी उसे कौन रोक सकेगा। सुमिष्ट आहार से सन्तोष, हृदय इन्द्रियतुष्टि होने से रति रागादि केवली को मानने होगे। रूखे आहार से ग्लानि विक्षेप विषाद खेद आदि दोष उत्पन्न होग। जहा आहार होता है वहा क्लेश कारक रोगोसे बचा नहीं जा सकता। आहार गृहण से स्वेद, क्लेद, कफादिक अनेक दोष उत्पन्न होते है।

शरीर इंद्रिय तुष्टि के हेतु केवली भोजन करें तो बडा दोष है। इन्द्रिय शरीर राग उनके प्रगट माना जायगा। और आहार का अलाभ उन्हे विषाद पैदा करके मानसिक पीड़ा देगा। जोकि क्लेश कारिणी और अत्यंत अशुभ होगी। जिससे आर्त्तध्यान होना अवश्य सभव है। आर्त्तध्यानी की तिर्यग्गति होती है। मोक्ष नहीं।

क्षुधा से कातर होजाने के कारण केवली भोजन करें तो अनन्तवीर्यता का दिवाला निकल गया हो समझो। यदि भगवान कातर है तो छद्मस्थ के समान दु:खी और सदोष है फिर वे भगवान किस बातके?

सर्वज्ञ वीतराग के, मन और इन्द्रिय स्वयमेव आहार मे प्रवृत्त होना मानने पर उनका ज्ञान भी सेंद्रियिक माना जायगा। इंद्रिय ज्ञान मानने पर सर्वज्ञता रफूचक्कर हो जायगी। आहार गृहण करते हुए यथाख्यात चारित्र नहीं हो सकता। और क्या उनके इन्द्रिय मन वश मे नहीं है जो खाने की चाट लगी रहती है। यदि ऐसा है तो ज्ञान भी अक्षज ही मानना होगा। यदि उनके इन्द्रिय निग्रह है तो क्षुधा दोष और आहार मे प्रवृत्ति कैसे? अत उन जितेंद्रिय भगवान के ग्रास गृहण नहीं। इन्द्रिय, विषय, कषाय, क्षुधादि विकार के जीत लेने पर हो जिन कहलाते है। अत. वे सर्वथा निर्विकारी है। यही मानना श्रेयस्कर है। उनके भूख प्यास नींद शोकादि कुछ नही ये बाते छद्मस्थो के हुआ करती है। क्षुधादिक समस्त अठारह दोषो के अभाव होने पर ही कैवल्य उत्पन्न होता है। सदोषता रहने पर सर्वज्ञता नहीं हो सकती। जहा केवलज्ञान नही वहा ही क्षुधादिक का सद्भाव है। कैवल्य सिद्धि होनेपर क्षुधादि का क्या काम। क्षुधा विना ग्रास गृहण नहीं क्षुधा दोष है। दोष के सद्भाव मे भगवान मे निर्दोषता कैसे? वेदनीय के उदय मे क्षुधा और उसके कारण केवली ग्रास लेते है कहना भी नही बनता। मोहनीय अकिंचित्कर है। जैसे आख होते हुए भी पट्टी बाधने पर कोई देख नहीं सकता। मोह के अभाव मे दग्धरज्जुवत् वेदनीय क्षुधोत्पत्ति करने मे समर्थ नही। निर्मोही वीतराग भगवान छद्मस्थ के समान भोजन ग्रहण नही कर सकते। जहा थोडा भी मोह है वहा वीतरागता नही। समूल मोहनाश से वीतरागत्व होता है। निर्मोही निर्दोष वीतराग जिनेश के आहार दोष की कल्पना मिथ्या ही है। विना मोह इच्छा और क्षुधाके भी शरीर स्थित्यर्थ उन के ग्रासाहार नहीं बनता। उनकी दृढ स्थिति तो अतराय के नष्ट हो जानेसे अनन्तवीर्यता और अनेक शुभ पुद्गल वर्गणाओ द्वारा बनी रहती है। यहा भी देखिये। कि भोजन गृहण करते हुए भी शरीर क्षीणता ह्रास आदि अन्तराय के उदय से होते रहते है। अत भोजन शरीर स्थिति का भी मुख्य कारण नही हो सकता।

अन्तराय का प्रबल उदय शरीर में रच मात्र भी ताकत नहीं रहने देता। और तो क्या भोजन के खाने और पचानेकी शक्ति भी अतरायके तीव्रोदय मे नहीं रहती। भगवान के अन्तराय का अभाव है। अत उन्हें आहार की आवश्यकता नही। तथा ग्रासाहार से औदारिक शरीर की स्थिति मानी गई है, परमौदारिक शरीर की नहीं। उनके परमौ-दारिक शरीर है। वे सिहासन से भी चार अगुल अधर रहते है यह क्या भोजन का बल है। यदि ऐसा होता तो किसी को भोजन करने के बाद पृथ्वी पर पैर रखनेकी जरूरत न पडे, पर ऐसा नहीं होता। नोकर्माहार शरीर स्थिर रखने मे समर्थ है, ग्रासाहार की आवश्यक्ता नहीं। इन्द्र असयमी होनेसे दान का अधिकारी नहीं। और असयमी का आहार भगवान ग्रहण नहीं करते। छद्मस्थ अवस्था मे ही तीर्थंकर मुनि होने पर देवो का भोजन परित्याग कर देते है तो केवली होने पर कैसे ग्रहण करेगे। भगवान आदिनाथ स्वामी को छ. मास का अतराय कभी नही आता। यदि इन्द्र का आहार स्वीकार होता तो यह नौबत आती ही नहीं। ग्राम २ घूम कर आहार लेने मे उन्हे अवश्य छद्मस्थ मानना पडेगा। क्योकि उन्हें पता ही नहीं कि हमें किस गाव और किस के घर आहारादि होगा। जभी तो घूमने की कवायद मानी जा सकती है अन्यथा क्यो ? अपनी सर्वज्ञता द्वारा मद्य मास, मार काट, रुदन, क्रन्दन जानते हुए केवली भोजन करे तो दोषहै। अतराय सहित ग्लानि युक्त भोजन करना मानने पर गृहस्थ से भी हीन वृत्ति उन्हे मानना पडेगा। गृहस्थ भी दोष, अन्तराय बचा कर आहार लेता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय में भगवान् का रूप—

अताम्रनयनोत्पल सकलकोपवन्हेर्जयात,
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकत·।
विषादमदहानितः प्रहसितायमान सदा,
मुख कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यतिकीं॥
निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदयात,
निरबरमनोहर प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भय विगतहिंस्यहिंसाक्रमात,
निरामिषसुतृप्तिमद् विविधवेदनाना क्षयात॥
मितस्थितनखागन गतरजोमलस्पर्शनं,
नवाबुरुहचदनप्रतिम दिव्यगधोदय।
रवींदुकुलिशादिदिव्यबहुलक्षणालकृतं,
दिवाकरसहस्रभासुरमपीक्षणाना प्रिय॥ गौतमर्षि

विगतायुधविक्रिया विभूषा,
प्रकृतिस्था कृतिना जिनेश्वराणा।
प्रतिमा प्रतिमागृहेष कात्या,
प्रतिमा. कल्मषशातयेऽभिवदे।
कथयति कषायमुक्तिलक्ष्मीं,
परमा शाततया भवातकाना।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमति,
प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनाना॥

भगवान पूज्य पाद स्वामी।

केवली निराभरण भासुर और निरबर मनोहर है। निरामिष निराहार तृप्तिमान और प्रकृतिरूप निर्दोष है। इससे कवलाहार ग्रहण वस्त्राभरणधारण का सुस्पष्ट निषेध हो जाता है। उनकी प्रतिमा भी आयुध विक्रिया और वेषभूषा से रहित प्रकृतिस्थ निर्विकार जातरूप है।

तम्हा सेय मलरय रत्तणयण कटक्खसर मोक्खादिसरोणय दोसविरहियेण समचउरस्स सठाण बज्जरिसह संघडण दिव्व गंध पमाणणह रोग णिराहरण भासुर सोम्मवयण णिरवर मणोहर णिराउअ सुणिब्भयादि णाणागुण-सहिय दिव्वदेह धरेण रायरोस कमायिदिय चउव्विहोवसग्ग वावीस परीषहादि सयल दोस विरहिएण——वड्ढमाणभट्टारयेण उवइट्ठनादो पमाण दव्वागमो ।

श्री वर्द्धमान स्वामी का शरीर-पसीना, मलमूत्र, रज से रहित, नेत्र रक्तता हीन, कटाक्षरहित और प्रथम संस्थान, प्रथम सहनन, दिव्य गंध, वृद्धिरहित नखरोम, निराभरण भासुर, निरवर मनोहर, निराकुल निर्भय आदि नानागुणोंसे युक्त देह वर्णन किया गया है। रागद्वेष कषाय इन्द्रिय प्रवृत्ति रहित, चार प्रकार उपसर्ग बाईस परीषह से रहित, भगवान वर्धमान स्वीकार किये गये है।

इन्द्रिय प्रवृत्ति और कषाय राहित्य कवलाहार का निषेध सूचित करता है। निराभरण भासुरता निरंबर मनोहरता सवस्त्रता का निराकरण करते हैं।

निराकुल और बाईस परीषह रहितता सवस्त्रता और कवलाहार दोनो के निषेधक है।

सवस्त्र मुक्ति निराकरण से स्त्रीमुक्ति का निराकरण स्वयमेव हो जाताहै। क्योंकि स्त्री किसी हालत मे वस्त्र त्याग नहीं कर सकती।

श्वेताम्बरो का दिगम्बरों से इतना ही विरोध हो सो नहीं किन्तु, गर्भापहरण, उपसर्ग, मासाहार आदि भी दिगम्बरो को अभीष्ट नही है। आवश्यक हुआ तो उन पर फिर लेखनी उठाई जायगी।

श्रीमान पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री,

कटनी ।

* श्री वीतरागाय नमः *

क्या स्त्री मुक्ति सिद्धान्त-सम्मत है ?

कलकत्ता वीर शासन जयन्तीके अवसर पर जैन विद्वानोके लेख धर्मपरिषदमे पढे जाने केलिये बुलाये गये थे पर यह ज्ञात हुआ कि समयाभाव से वे पढे न जा सकेंगे। श्रीमान प० कैलाशचन्द्र जी का एक मात्र लेख पढे जानेकी आज्ञा प्राप्त हुई थी, किन्तु जब पंडित जी का विद्वत्तापूर्ण लेख पढ़ा जा रहा था तब सभापति सा० द्वारा नहीं, अपितु साहु शान्तिप्रसाद जी द्वारा उक्त लेख अनधिकार ही पढ़नेसे रोक दिया गया। यह लेख इस उद्देश्य से रोका गया कि इस से दिगम्बर श्वेताम्बर एकता भग होने का भय है † यह जैन विद्वानोकी ही अवहेलना न थी, बल्कि एकता के नामपर दि० जैनधर्म की भी अवहेलना थी। भले ही साहुजी ने वह दुर्भाव से न की हो, पर यह गलती अवश्य थी, चाहे अनजाने हुई हो। दिगम्बर श्वेताम्बर एकता की बात प्रत्येक भावुक को प्रिय हो सकती है पर उसकी सभावना जिन बातो पर की जाती है वह कदापि सभव नहीं।

---

† 'श्री भगवान महावीर का अचेलक धर्म' शीर्षक लेख अलग छप चुका है और प० नाथूराम जी प्रेमी जैसे विद्वानो ने भी इसकी उपयुक्तता स्वीकार की है।

दि० जैन धर्म तथा उसके जानकार विद्वानो के प्रति इस अनादर पूर्ण व्यवहारसे उपस्थित समाज को धक्का लगा। वहा विद्वानोके सहयोग से जैन विद्वानो के सगठन के अर्थ विद्वत्परिषद्‌की स्थापना हुई।

हिन्दू विश्व विद्यालय के प्रा० वि० स० क १२वे अधिवेशन पर प्रो० हीरालाल जी ने एक परचा प्रकाशित किया था जिसमे स्त्रीमुक्ति सवस्त्रमुक्ति, केवलि कवलाहार इन तीन विषयो की पुष्टि की गई थी। यह तीनो विषय दिगम्बर सम्प्रदाय के विरुद्ध और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुकूल है। कलकत्ते मे इसकी भी काफी चर्चा थी उक्त व्यवहारो से यह स्पष्ट है कि दि० श्वेता० एकता का आधार "दिगम्बर परम्परा को मिथ्या और श्वेताम्बर परम्परा को सम्यक् सिद्ध करना' रखा गया है।

प्रोफे० हीरालाल जी ने उक्त विषय शका रूप मे रखा था, यह विचार हुआ कि यहा वे प्रत्यक्ष मौजूद है उनसे इसपर चर्चा चलाई जाय। विद्वानो की तरफ तरफ से प० राजेन्द्रकुमार जी नियतहुए और दो दिन चर्चा चली इससे आगे चर्चा चलाने मे प्रो० सा० ने अपनी असमर्थता समयाभाव आदि के आधार पर की। दूसरे दिन सध्या समय कलकत्ता मे पडित ऋषभचन्द शास्त्री के यहा प्रो० से मेरी भेंट हो गई और चू कि कलकत्ता मे उपस्थित विद्वानो ने मुझ मे

योग्यता न होते हुए भी विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष चुन लिया था सम्भवतः इसलिये प्रोफे० साहब ने मुझ से अवसर न होने पर भी उक्त विषय की चर्चा चलाई। यद्यपि उस वक्त मुझे बातचीत करने का समय न था तो भी मैंने सामायिक का समय टाल कर भी उनको यह अवसर नहीं दिया कि मैंने उनसे चर्चा करने मे किसी बहानेसे इन्कार किया है। प्राय. उसी चर्चाका साराश कुछ बढाकर इस लेखमे मैंने लिखा है। प्रो० साहब ने अपने परचे मे यह लिखा है कि जिन तीन बातो को लेकर दि० श्वे० मे मतभेद है वे तीनो बाते दि० स्त्रीकृत नहीं करते तो भी दि० ग्रथो से सिद्ध है मूल मे वे तीनो बाते दि० परम्परा मे थीं, बादमे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने इन के विरोधकी कल्पना की, तथा बादके सभी आचार्य उसका समर्थन करते आये।

षट्खण्डागम के मूल सूत्रकार श्री भूतबलि पुष्पदन्त है, उन्होने सूत्रो मे अनेक स्थानोपर मनुष्यनीके १४ गुणस्थान लिखे हैं। ये गुणस्थान द्रव्यवेद स्त्री की अपेक्षा नहीं है, भाववेद स्त्री की ही अपेक्षा है—ऐसा टीकाकार श्री वीरसेन स्वामी ने लिखा है, पर प्रोफे० सा० टीकाकार को श्री कुन्दकुन्दाचार्यके समय के बादका होनेसे उनकी तरह अप्रमाणिक सम्प्रदाय-मोही मानते है। प्रो० सा० की उक्ति पर थोडा धैर्यसे विचार करनेकी आवश्यकता है, पाठक ध्यानसे पढ़े।

षट्खण्डागम सत्प्ररूपणाधिकार प्रथम पुस्तक के पेज ३३२ पर सूत्र न० ९२ इस प्रकार है।

सूत्र—मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि सासण सम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ।९२

हिंदी टीका—मनुष्यस्त्रिया मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होती है और अपर्याप्त भी। साराश यह-कि-स्त्री पर्याय मे पर्याप्त दशा में भी ये २ गुणस्थान पाये जाते हैं और पूर्व-पर्याय से इन दो गुणस्थानो को लेकर भी जीव स्त्री पर्याय में आ सकता है अत अपर्याप्त दशा मे भी (स्त्री की) इन दोनो गुणस्थानो का सद्भाव है। इसके आगे शेष गुणस्थानो केलिये सूत्र न० ९३ है—

सूत्र-सम्मामिच्छाइट्ठि-असजदसम्माइट्ठि-सजदासजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ।

अर्थात्-सम्यग्मिथ्यादृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि और सयतासयत नामक पाचवा गुणस्थान इन तीनो गुणस्थानो की प्राप्ति स्त्री के पर्याप्त दशामे ही होती है। अर्थात् पूर्वपर्याय से इन तीनो गुणस्थानो का लेकर कोई स्त्री पर्याय में नहीं आता।

दोनो सूत्रोका उल्लेख इसलिये किया गया है कि पाठक यह समझ ले कि स्त्रियो मे कौन २ गुणस्थान वाले जीव आकर उत्पन्न हो सकते है और कौन २ गुणस्थान वाले मरकर स्त्री नहीं हो सकते। भले ही स्त्री पर्याय मे जाने के बाद वे गुणस्थान हो जावें।

कोई सम्यग्दृष्टिजीव मरकर स्त्री पर्याय नहीं पाता यह इस सूत्रसे सिद्ध है। अब पाठकोको यह देखना है कि सस्कृत टीकाकार इसकी टीका क्या लिखते हैं और भाषा टीकाकार प्रो० हीरालाल जी उसका क्या अर्थ निकालते हैं। ९३ सूत्र की टीका यह है।

टीका—हुडावसर्पिण्या स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्त इतिचेत् न उत्पद्यन्ते। कुतोऽवसीयते? अस्मादेवार्षात्।

प्रो० सा०की टीका—हुण्डावसर्पिणीकाल सबधी स्त्रियो मे सम्यग्दृष्टि जीव क्या नहीं उत्पन्न होते?

समाधान—नहीं, क्योकि इसमे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है।

समाधान-इसी आगम प्रमाणसे जाना जाता है।

कोई भी पाठक यह सहज ही समझ सकेंगे कि मूल सूत्रकार स्त्री की अपर्याप्त दशामें चौथा गुणस्थान स्वीकार नहीं करते, पर टीकाकार प्रोफे० सा० लिखते हैं कि हुडावसर्पिणीकाल सबधी स्त्रियो में सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान वाले उत्पन्न होते हैं, अर्थात स्त्रियोंकी अपर्याप्त दशामें चौथा गुणस्थान होताहै। यह टीका सूत्रकारके सूत्रके अभिप्रायसे बिलकुल उल्टी है।

पाठक सोचते होगे कि प्रोफे० साहब का इसमे क्या अपराध ? उन्होने तो सस्कृत टीका के अनुसार लिखा है। यह दोष दिया जाय तो वीरसेन स्वामी को दिया जाय, जिन्होने संस्कृत टीका की रचना की है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। सस्कृत टीकाकार ने तो ठीक लिखा है। सस्कृत टीकाकार के भाव को न समझ कर हिन्दी टीका लिखी गई है। टीका के शब्द देखिये—इति चेत् न उत्पद्यन्ते। इन शब्दो के बीच में 'न' शब्द पड़ा है टीकाकार वीरसेन स्वामीका अभिप्राय 'न' शब्द को उत्पद्यन्ते के साथ लगाने का है जिससे यह अर्थ होता है कि—"नही उत्पन्न होते" पर प्रोफे० साहब ने उस 'न' को उत्पद्यन्ते के साथ न जोड़कर शंकाके चेत् शब्द केसाथ जोड़ दिया है जिस से उ ह ने यह अर्थ कर दिया कि 'न' अर्थात् ऐसी शंका न करनी क्योकि "स्त्रियो मे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते हैं।"

पाठक समझ सकते है कि थोड़ी सी समझ के फेर से अर्थ का कितना अनर्थ हो गया कि सिद्धान्त ही उलट गया। इस तरह विरुद्धता होने पर भी वह उस सूत्रकी टीका सस्कृत टीकानुसार की है यह समझ लिया गया है पर वास्तव मे हिन्दी टीका करने में गलती हुई है।

इसी ९३ सूत्र की सस्कृत टीका को आगे पढ़ने के बाद प्रोफे० सा० को यह शंका हो गई कि इस सूत्रमें पाच गुणस्थान ही क्यो लिखे हैं इस सूत्र में एक पद 'सजद' और जोड दिया जाय ताकि 'सयत पद' से ६ से १४ तक सब गुणस्थान ग्रहण किये जा सकते हैं और इस तरह स्त्रियोके १४ गुणस्थान माननेसे स्त्री-मुक्ति सिद्ध हो जाती है। 'संयत' पद सस्कृत टीकाकार के समय सूत्रमे था यह भी वे टीकासे सिद्ध मानतेहै।

यह तो सिद्ध है कि मूल सूत्र प्रो० सा० को मिला उसमे 'सजद' पद नहीं है और इसलिये उससे स्त्रियो के ५ गुणस्थानही सिद्ध होते है आगे अन्य प्ररूपणाओ में जो वेद मनुष्यणी की अपेक्षा १४ गुणस्थान या ९ गुणस्थान बताए है सो भाववेद की अपेक्षा है द्रव्यवेद की अपेक्षा नहीं।

एक ही टीकाकार या मूल ग्रन्थकार एक सूत्र मे स्त्रियो के ५ गुणस्थान, और दूसरी जगह स्त्रियो के १४ गुणस्थान लिखता हो तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि ५ की जगह भी १४ सुधार दिया जाय। बल्कि इसका सीधा सा अर्थ है कि एक जगह द्रव्यवेद की विवक्षा है इससे द्रव्यस्त्री के ५ गुणस्थान होते है और अन्यत्र या वेदमार्गणा मे भाववेद की अपेक्षा कथन है अतएव द्रव्यपुरुष भावस्त्री के ९ बताये है वेदोदय की अपेक्षा, और कहीं २ चोदह बताये है—भूतपूर्व वेदोदय की अपेक्षा।

यह बात कल्पित नहीं। सस्कृत टीकाकार भी वेद की अपेक्षा वर्णित स्थानो मे लिखते हैं।

- अधिकृतोऽत्र भाववेदः।

नौ गुणस्थान केबाद अपगतवेद का वर्णन करना भी इस बात का सूचक है कि वह कथन भाववेद की दृष्टि से है। जब ६ गुणस्थानो का वर्णन भाववेद से ही हो सकता है, द्रव्यवेद से नहीं यह सिद्ध है। तब १४ गुणस्थान का वर्णन इसी भाववेद का भूतपूर्व प्रज्ञापन नयापेक्षया वर्णन है। यह मानकर द्रव्यवेदकी अपेक्षा है ऐसा मानना नितान्त असगत है जहा ५ से ऊपर ६ भी सभव नहीं, वहा १४ सभव कैसे ?

अब एकबात रह जाती है कि न० ६३ के सूत्र में 'सजद' पद न होनेपर भी प्रोफे० सा० उसकी कल्पना जिस आधारपर करते हैं और इसी कल्पनासे ५ गुण-स्थान की मर्यादा स्त्रियो मे से तोड देना चाहते है उस पर विचार करना है।

वह बात कहा तक सगत है। इस सबधमें पहिले हीरालाल जी सा० की दलील सुन लीजिए जो टीकाके आधार पर उन्हो ने दी है।

टीका—अस्मदेवार्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्धयेत् इतिचेन्न, सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितानां सयमानुपपत्ते। भावसयमस्तासां सवाससामप्यविरुद्ध इतिचेन्, न तासां भावसयमोऽस्ति, भावासयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्ते.। कथं पुनस्तासु चतुर्दशगुणस्थानानि इतिचेन्न, भावस्त्रीविशिष्टमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्।

अर्थ-१—इसी आगम से द्रव्यस्त्रियो की मुक्ति सिद्ध हो जायगी ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वस्त्र सहित होनेस उन संयतासयत गुणस्थान होता है। अतः उनके सयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

प्रश्न नं० २—वस्त्रसहित होनेपर भी उनके भाव संयम होने मे विरोध नहीं होना चाहिए।

उत्तर न० २—उनके भाव सयम नहीं है, अन्यथा उनके भाव असयम का अविनाभावी वस्त्रादि ग्रहण नहीं बन सकता।

प्रश्न ३—तो फिर स्त्रियोमे १४ गुणस्थान होनेहैं यह कैसे बन सकेगा।

उत्तर न० ३—नहीं, क्योंकि भावस्त्री में अर्थात स्त्रीवेद युक्त मनुष्यगतिमे (पुरुषमे) चौदह गुणस्थानो के मान लेने मे कोई विरोध नहीं आता।

प्रोफे० सा० का मन्तव्य है कि-सस्कृत टीकाकार के तीन प्रश्नो मे स न० १ मे बताया है कि—"इसी आगम स द्रव्य स्त्रियो की मुक्ति सिद्ध हो जायगी।" यहा पर इसी आगमसे अर्थात् "इसी सूत्र से" ऐसा भाव प्रो० सा० ने लिया है। इसी सूत्र से स्त्रियो की मुक्तिका प्रश्न तबही हो सकता है जब सूत्रम 'सजद' पद और स्वीकार कर लिया जाय।

प्रश्न न० ३ मे भी १४ गुणस्थान कैसे बनेंगे। यह प्रश्न नहीं बन सकता यदि सूत्रमें १४ गुणस्थान बताने वाला कोई शब्द न हो इसलिये द्रव्यस्त्रियोको मुक्ति और १४ गुणस्थान बताने वाला 'सजद' पद टीकाकारके सामने था तब वे ऐसी शका उठा सके।

आगे की प्ररूपणाओ मे मनुष्यणी के १४ गुण-स्थान सूत्रो में भी बताए हैं। इन दोनो प्रश्नो और आगे की प्ररूपणाओ के सूत्रो मे १४ गुणस्थान की बात पढ कर प्रो० सा० इस ६३ वे सूत्र मे 'सजद' मानते है। उनका टिप्पण इस बात को सूचित करता है।

इस सम्बन्ध मे मेरा यह स्पष्ट कथन है कि प्रो०-सा० का यह नितान्त भ्रम है। यदि सूत्र मे 'सजद'

पद टीकाकारके सामने होता तो वे स्वयं उसे स्वीकार करते। उनके लेख से जो उत्तर नं० १ में लिखा है कि 'स्त्रियों के सयतासयत गुणस्थान तक ही होता है अतः सयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती' उनका भाव स्पष्ट है 'संजद' पद सूत्र मे उनके सामने रहे और वे लिखें कि उन्हें सयम नहीं हो सकता यह विरुद्धता कब ·ंभव है ? अब रही यह बात कि फिर उन्होने इस सूत्र में द्रव्यस्त्रियो की मुक्ति और १४ गुणस्थान की सम्भावना" की बात क्यो लिखी।

यथार्थमें आपने आर्षका अर्थ टीका मे 'आगम' लिख कर भी उसे भुला दिया और प्रश्न करते समय आगम का अर्थ यही सूत्र' ऐसा कर दिया। आगम का अर्थ 'यही सूत्र' नहीं होता। अस्मादेवार्षात् का अर्थ इसी आगम ग्रन्थ से है अर्थात्—पूरा ग्रन्थ ग्रन्थकारकी दृष्टिमे था इस लिये आगामी प्ररूपणाओ में जिन सूत्रों में मनुष्यनी के १४ गुणस्थान लिखे है उनकी अपेक्षा प्रश्न नं० १ और ३ हैं, न कि ६३ सूत्र की अपेक्षा उसमे तो 'सजद' पद है नहीं। यह दलील देना कि ६३ सूत्रके पूर्व तो १४ गुणस्थान की बात नहीं आई तब प्रश्न कैसे उपस्थित हुआ बिलकुल लचर दलील है। पहले न आने पर ही टीकाकार की दृष्टि में आगे के सूत्र हैं, उनने टीका करते समय आगे के सूत्रो को न पढा हो यह बात तो है नहीं तब यही सम्भव है कि आगामी सूत्रो को लक्ष्यमे रखकर प्रश्न किया है। और आगामी सूत्रो मे उक्त १४ गुणस्थान भाववेद से ही हैं द्रव्यस्त्री वेद से नहीं, यह स्पष्ट है।

एक बात और है,—प्रोफे० सा० ने इस ६३ वें सूत्र में 'संजद' पद जोड़कर सूत्र भी छापा बल्कि अपनी कल्पना को टिप्पण मे किया है, इस सत्य व्यवहार के लिये हम धन्यवाद देते हैं, तथापि हिन्दी टीका उसी सूत्र की करते समय वे इस प्रकार अर्थ लिख गये हैं मानो सूत्र में 'सजद' पद है ही, ऐसा करने से वह टिप्पण की वस्तु नहीं रह जाती भाषा पढ़ने वाला उसे सूत्र की चीज मान ही लेगा। ऐसा करके प्रोफे० सा० ने हिन्दी भाषा पाठियो के साथ अन्याय किया है।

उन्हो ने सूत्र की टीका लिखी है—

"मनुष्य स्त्रिया सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असयत सम्य-ग्दृष्टि सयतासयत और 'सयत' गुणस्थानो मे नियमसे पर्याप्तक होते है। ॥६३॥"

मेरे आरोपकी सत्यता पाठक इस टीका शब्दोमे जान सकेंगे। बौद्धिक ईमानदारी का विद्वानो को उपदेश प्रोफे० सा० ने एक लेख मे दिया था पर इस स्थान पर वे स्वय इसे कायम नही रख सके है। प्रो० सा० चाहते तो यह भी उस स्थान पर स्पष्ट कर सकते थे कि "मूलसूत्रमे 'सयत' पद न होनेपर भी अमुक २ कारणो से हम उसे रखते हैं, वह वहां होना चाहिए विद्वज्जन इसपर विचार करें।" आपने ऐसा न कर हिन्दी मात्रके जानकार पाठकोकेसाथ अन्याय किया है। अपने अभिप्राय को ऐसे कूट मार्गसे पुष्ट करने की प्रवृत्ति निन्दनीय है।

यथार्थ मे प्रत्येक अनुयोग द्वारो मे गति मार्गणा में मनुष्यनी के १४ गुणस्थानो का प्ररूपण द्रव्यवेदसे नहीं, भाववेद से ही है यद्यपि वेदकी प्रधानता से जहा वर्णन है वहा ६ गुणस्थान ही लिखे है अतः यहा भी भाववेदसे ६ ही लिखना था न कि १४ ऐसा प्रश्न हो सकता है किन्तु इसका उत्तर टीकाकार ने स्वय लिख

दिया है कि—गति मार्गणामे वर्णन गति की अपेक्षा है गति जीवन भर नहीं बदलती अतएव द्रव्यपुरुष भावस्त्री के १४ गुणस्थान होते हैं ६ के बाद अपगत-वेद होनेपर भी गति न बदलने के कारण बराबर १४ ही उस गति की प्रधानतासे कहे गये हैं। इस खुलासा के बाद प्रश्न को कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

मनुष्यणी को सब जगह मनुष्यणी लिखा गया है 'योनिमती' शब्द नहीं, फिर भी प्रो० सा० ने अपने परचे मे जो प्रश्न किया है उसमे लिखा है कि—

' सूत्रमे जो 'योनिनी' शब्दका उपयोग किया गया है वह द्रव्यस्त्री को छोड अन्यत्र घटित नहीं होता।

इसका उत्तर इतना ही है कि मूल सूत्र मे और धवला टीकामे सर्वत्र मनुष्यणी शब्द लिखा है 'योनिनी' या 'योनिमती' नहीं लिखा फिर प्रश्न कैसा ? योनिमती शब्द तो आपने टीका में लिख मारा है। आप स्वय तो शब्द का अनर्थ करते हैं और फिर उसे सूत्रकारका शब्द बताकर अपने अभिप्राय को सूत्रकार का अभिप्राय बताने की चेष्टा करते हैं। एक महान ग्रन्थके टीकाकार के लिए यह शोभाप्रद नहीं है। द्रव्य स्त्रियोके मुक्ति न होनेके अनेक कारण शास्त्रकारो ने लिखे हैं उनपर भी विचार करना चाहिए केवल १४ की बात देखकर विवक्षा का विचार न करना अथवा विवक्षा बतानेवाले आचार्योंको अविचारक-सम्प्रदाय मोही बताना एक बडा अवर्णवाद है। स्त्रीको मुक्ति न होने के निम्न कारण भी हैं।

१-स्त्रियों के ३ संहनन कर्मभूमि मे बताए हैं, चूंकि मुक्ति कर्मभूमि मे ही हो सकती है और वह भी वज्र-वृषभ नाराच संहननसे। यह संहनन स्त्रियो मे नहीं होता।

२-कोई सम्यग्दृष्टि असयत भी मरकर स्त्रियोंमें नहीं जाता यह स्त्री पर्याय इतनी हीन है तब मुक्ति गमन योग्य शुक्ल ध्यान आदि कैसे सम्भव है।

३-स्त्री अपनी पर्याय में सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने पर भी क्षायिक सम्यक्त्व नहीं प्राप्तकर सकती। जो दर्शन मोह की प्रकृतियो के क्षय की योग्यता नहीं रखती वह सर्वकर्म क्षय करके मोक्ष कैसे जायगी?

अस्तु, कलकत्तामे प्रोफे० सा० का कथन था कि 'कर्मव्यवस्था से 'वेद वैषम्य' सिद्ध नहीं होता अतएव द्रव्यस्त्री भावस्त्री ये भेद ही सम्भव नहीं।' यह विषय विचारणीय है।

* वेद वैषम्य विचार *

-तथा कर्म व्यवस्था-

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो सम्प्रदायोके आचार्योंने इस बातको स्वीकार किया है कि जो मनुष्य अपनी शारीरिक रचना से पुरुष होगा उसके भावोमे पुरुषवेद के सिवाय स्त्रीवेद और नपुंसक शरीर वाले के भी भावमे तीनो वेदोका उदय पाया जा सकता है।

जिस विषय मे जैन सम्प्रदाय के दोनो फिरके एकमत हैं वह विषय जैनधर्म का मूल-निर्भ्रान्त निर्विवाद सिद्धान्त है उसमे कोई भी बुद्धिमान शंका नहीं कर सकता। यद्यपि यह बात नहीं कि यह सिद्धान्त कर्मसिद्धान्त या गुणस्थान चर्चा सम्मत न सिद्ध होता हो, इसे तो हम आगे सिद्ध करेंगे ही, फिर भी यदि मान लिया जावे कि यदि यह कर्म सिद्धान्त या गुणस्थान चर्चा मे हम और आप जैसे अल्पज्ञो की बुद्धि में न उतर सका तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि हम 'वेद वैषम्य' को भगवान महावीर का उपदेश ही न माने। अपने को भगवान तीर्थंकर सर्वज्ञदेव के मूल उपदेश का माननेवाले श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो सम्प्रदाय हैं। फिर विवाद यह है कि एक कहता है कि

भगवान ने स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति का विधान किया है दूसरा कहता है कि नहीं किया। वास्तविक बात क्या है यह विवाद की बात हो सकती है, पर दोनो सम्प्रदायवादी कहते हैं कि द्रव्यवेद और भाववेदमे विषमता होती है भगवान का यही उपदेश था तब 'वेद-वैषम्य जिन भगवान का उपदेश है' ऐसा स्वीकार न करने का कोई आधार नही है।

अब रही बात यह कि 'वेद वैषम्य' कर्म सिद्धान्त से कैसे सिद्ध है ? प्रो० हीरालाल जी ने श्री गोम्मट-सार जी जीवकाड की गाथा २७१ की संस्कृत टीका मे द्रव्यवेद की उत्पत्ति के जो कारण बताये है उनका उल्लेख किया है वह इस प्रकार है—

"जब पु वेदके उदयके साथ निर्माण और अगो-पाग नामकर्मका उदय होताहै तब शिश्नादि लिगाकित पुरुष शरीर होता है, और जब स्त्रीवेद के साथ उक्त नामकर्म का उदय होता है तब योनि आदि चिन्ह सहित स्त्री शरीर उत्पन्न होता है, तथा नपु सकवेद के साथ उन्हीं नामकर्मो का उदय होता है तब उभयलिंग भिन्न नपु सक शरीर बनता है। यहकर्म सिद्धान्त की नियत व्यवस्था बताकर टीकाकारने क्वचित् विषमत्व की बात यह कहकर समझाई है कि चू कि 'परमागम' मे तीनो वेदो से क्षपक श्रेणी बताई है अत कर्मभूमि के जीवोमे भाव द्रव्यवेदो मे 'वैषम्य' भी होता है।' किन्तु टीकाकार ने वेद साम्य को जैसी व्यवस्था से समझा कर बताया है वैसे वे यहा नहीं बता सके कि कर्मोदय की कौन सी व्यवस्था से वेद वैषम्य फलित होता है।"

ऊपर लिखी पक्तिया प्रो० सा० की है। वेद साम्य केलिये जो विवेचन टीकाकार ने किया है वह प्रोफे० सा० को मान्य है किन्तु उसी गाथा मे और उसकी टीका में ग्रथकार जो विषमता की बात वेद के सबध में कर्मभूमिकी अपेक्षा लिखते हैं उसे वे स्वीकार नहीं करते। किसी वक्ताके अर्धांश को लेकर और शेषाश को अस्वीकार कर उसी पर शका करना युक्ति सगत नहीं, वक्ता का अभिप्राय ठीक वही है जो पूरे वाक्यो से ध्वनित होता है।

जब मूल ग्रन्थ की गाथा को पढा जाता है तब सब बात स्पष्ट हो जाती है। गाथा मे यह स्पष्ट कियाहै कि पुरुष-स्त्री नपु सक वेदके उदयसे भावपुरुष, भाव-स्त्री-नपु सक वेद के उदय से भावपुरुष भावस्त्री भाव-नपु सक होता है। नाम कर्मोदय से द्रव्यपुरुष द्रव्यस्त्री द्रव्यनपु सक होता है। टीकाकार का लेख और यह लेख दोनो देखने मे विरुद्ध से दीखते है पर वास्तवमे विरुद्ध नहीं इसका सीधा सा अर्थ यह है कि—

"शरीर रचना नामकर्मकी प्रधानतासे और भाव रचना वेद की प्रधानता से होती है।" 'कर्म व्यवस्था तो यह है'। इसमे शारीरिक रचना के प्रति भाववेद को भी टीकाकार ने जो कारण बताया है सो वह मुख्य एक मात्र साधकतम कारण नही बताया। भोग-भूमि आदि स्थान जहा द्रव्यवेद भाववेद नियत है वहा की अपेक्षा बताया है जैसे भाववेद को द्रव्यवेद मे कारणता टीकाकार ने प्रतिपादन किया है उसीतरह उन्होने कर्मभूमिमे क्वचित् अकारणता का भी प्रति-पादन कियाहै। अतः द्रव्यभाववेद केलिये यह नियत व्यवस्था नहीं है बल्कि यही नियत कर्म व्यवस्था है कि-"नामकर्म शारीरिक रचनाके लिये सर्वत्र कारण है और भाववेद वेदसाम्य वाले स्थानो पर कारण हो कर भी वेद विषमता के स्थानोमे कारण नहीं।" इस कथन का यह अर्थ हुआ कि भाववेद द्रव्य शरीर की

रचना का एक मात्र साधकतम कारण नही है।

इसके सबध मे टीकाकार स्पष्ट लिखते हैं कि—
'प्रचुरवृत्त्या समवेदोदयाकिता भवन्ति क्वचित कर्म-भूमिमनुष्य-तिर्यग्द्विकं विसदृशाः विषमा अपि भवन्ति' अर्थात् अधिकतर द्रव्यभाव समवेद वाले जीव होते है पर कर्मभूमि के मनुष्य तिर्यंच दोनोमे विषमता भी होती है। टीकाकार विषमता के सबध मे जबकि लिख रहे है कि 'कर्मभूमिकी अपेक्षा' तो कोई भी बुद्धिमान यह समझ सकता है कि "विषमता का कारण कर्मभूमिकी विषम व्यवस्था है और समवेदका कारण भोगभूमि की द्रव्यक्षेत्र काल भाव आदि की सम व्यवस्था ही है।"

समवेद मे सम व्यवस्था लिखकर भी समता का कारण नियत कर्मोदय ही नहीं, बल्कि भोगभूमि की अन्य व्यवस्था भी है। यही बात नरक और स्वर्ग की है वहा प्रत्येक नियम नियत है उनमे अतर नही पड़ता कर्मभूमि मे अनेक स्थानो पर अनेक प्रकार की विषमता पाई जाती है अत वेद मे भी विषमता पाई जाती है इतना स्पष्ट समर्थन होतेहुए भी उसे स्वीकार न करना '४ और ४ आठ होते है को न मानने' के समान है।

द्रव्यभाव की अपेक्षा ६ भग वेद के होते है उस पर प्रोफे० सा० ने लिखा है कि—

"द्रव्य मे पुरुष और स्त्रीलिंग के सिवाय तीसरा कोई प्रकार ही नही पाया जाता जिससे द्रव्यनपुसक के ३ भेद अलग बन सके।"

प्रोफे० सा० का मत है कि भाववेदके पुरुष स्त्री-नपुसक जीव भेद ठीक है पर द्रव्य मे अर्थात शरीर चिन्ह से तो पुरुष स्त्री दो ही होते है नपुसक शरीर होता ही नहीं, नपुसक यातो पुरुष चिन्हांकित होगा या स्त्री चिन्हांकित। प्रो० सा० की इस बात को यदि स्वीकार कर लिया जाय तो फिर हम उनसे प्रश्न कर सकते है कि—

१-यदि वेद मे वैषम्य नही होता यह आपका मत है तो नपुसकवेद का उदय जिस जीवके पाया जायगा वह द्रव्य मे नपुसक होगा या नहीं ?

२-यदि द्रव्यनपुसक नही होते तो उनके द्रव्य मे स्त्री या पुरुष चिन्ह होगा, तब द्रव्यपुरुष भावनपुंसक द्रव्यस्त्री भावनपुसक ये दो भेद उत्पन्न होकर वेदकी विषमता को सिद्ध कर रहे है या नहीं ?

साराश यह है कि 'विषमता' हो ही नही सकती ऐसा एकात प्रो० सा० मान रहे है वह उनकी मान्यता उनके वचन से ही बाधित है जबकि वे भाव नपुसक को द्रव्यस्त्री या द्रव्य पुरुष स्वीकार करते है और द्रव्यनपुसक को ये मानते ही नही तब विषमता तो आपने मानही ली। इस प्रकार 'वेद वैषम्य' कर्म-सिद्धान्तसे भी सिद्ध है। और प्रो० सा० की मान्यता भी प्रकारातर से उसकी पुष्टि करती है।

प्रोफे० सा० ने कलकत्ता मे यह कहा था कि 'वेद वैषम्य' की सिद्धि ही मेरी अशेष शकाओ का समाधान है। उक्त रीत्या उसकी सिद्धि हो जाती है अत. प्रोफे० सा० के शेष प्रश्न, प्रश्न नहीं रह जाते फिर भी थोड़ा सा विचार करना असगत न होगा।

सयमी और वस्त्रत्याग

आपने भगवती आराधना के अपवाद मार्ग के कथन से सवस्त्र सयम की पुष्टि की है। तत्वार्थसूत्रके १० अ० सू० ६ स० सि० से 'सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धि

भूतपूर्वनयापेक्षया" का भी उल्लेख उक्त पुष्टि में किया है। तीसरी बात यह लिखी है कि धवलाकार ने पंच महाव्रत के पालन को ही संयम लिखा है।

उक्त तीन उल्लेख के सिवाय कोई युक्ति व आगम प्रमाण इस संबंध में नहीं दिया। इस विषय में दी गई युक्ति और आगम प्रमाण आपके अभिप्राय के कारण यह है कि—

१-अपवाद मार्ग मुनि के लिये राज मार्ग नहीं उसे उत्सर्ग मान लेना भूल है।

२-सग्रंथलिग में 'भूतपूर्वनयापेक्षया' शब्द ग्रन्थकार स्वय लिख रहे हैं उसका अर्थ सिद्ध होनेसे अनन्तर पूर्व आपने अपने अभिप्राय से लगाया है ग्रन्थकारका यह अभिप्राय नहीं है स्वेच्छानुसार अर्थ निकाल कर प्रश्न करना कहां तक युक्ति सगत है।

३-पंचमहाव्रत संयमकी परिभाषामें है सो तो ठीक है पर इससे वस्त्र ग्रहण कैसे सिद्ध हो गया जिसके लिये आप इसका उल्लेख दे रहे है? मुनि के सम्पूर्ण नियम पंच महाव्रतों की पुष्टि केलिये होते हैं। वस्त्र ग्रहण में परिग्रह त्याग महाव्रत कहा हुआ वह तो अणुव्रत ही हुआ।

केवली को भूख प्यास की वेदना

इस विषय में आपने कोई युक्ति व प्रमाण नहीं दिये सिवा इसके कि— १-तत्वार्थसूत्रकार ने केवली के ११ परीषह लिखी हैं। टीकाकार ने जो मोह के अभाव में वेदनीय कर्म जर्जरित हो जाता है यह बात लिखी सो कर्म सिद्धान्त सम्मत नहीं।

उत्तर यह है कि—आपका 'कर्मसिद्धान्त' क्या कोई स्वतत्र है? या जैसा कि कर्मकाड जी आदि मे निबद्ध है वही है, यदि वही है तो उन्होने "मोहनीय के अभाव में वेदनीय को जर्जरित माना है" वहां तो स्पष्ट लिखा है कि—

'घादिंव्व वेयणीयं मोहस्सबलेण घाददे जीवम्' अर्थात् वेदनीय घातियाकी तरह जीवको मोह के बल से दुख देता है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि मोहका बल मिट जाने पर बाधा नही दे सकता आपका कोई नवीन कर्मसिद्धान्त हो तो उसे प्रगट करे उस पर भी विचार किया जायगा। समन्तभद्रादि आचार्यों ने क्षुधादि अठारह दोष रहित केवलीको लिखाहै आपके मत से ये सब अप्रामाणिक है? तब आप "पुण्यं ध्रुवं स्वतो दु खान ⋯ ⋯" इत्यादि उनका श्लोक क्यो उद्धृत करते हैं। यह प्रश्न निश्चितहै कि इस श्लोक का आपने पूरा दुरुपयोग किया है यही कारण है कि आप श्लोक मात्र लिख कर उसका न तो पूर्वापर सबध निरूपण करते हैं, न उसका अर्थ लिखते है उसे दिखाकर ही भोले मनुष्यो को अपने अभिप्राय से राजी कर लेना चाहते हैं। साराश यह कि आपने उस श्लोक के भावको या तो समझने का प्रयत्न नहीं किया या जान बूझकर भी अनर्थ करतेहैं, दोनो बातें सम्भव हैं।

प्रोफे० हीरालालजी के परचेमें उल्लिखित विषय का सक्षिप्त मे उत्तर मैंने लिखा विस्तृत भी लिखा जा सकता था पर उसके लिये स्थान बहुत चाहिए इस पुस्तक में वह नहीं लिखा जा सकता, अन्य विद्वानो ने भी अपने मन्तव्य लिखे है अतएव पिष्ट पेषण न हो इस कारण भी ज्यादा लिखना ठीक नहीं। अस्तु, अत मे एक बात अवश्य लिखनी है।

इस लेख मे प्रोफे० सा० के लिये सभव है कहीं२ समालोचनात्मक शब्दावली आ गई हो हमने बहुत चाहा कि आलोचना न होकर विषय का उत्त मात्र

दिया जाय तथापि कहीं २ आलोचना लेख के सबंध मे आ गई है इसका कारण यह है कि प्रो० सा० ने अपना लेख जो लिखा है और जिन प्रमाणोका उसमें उल्लेख है मेरी समझसे प्रोफे० सा० ने जान बूझकर उस स्थानपर अर्थ का अनर्थ कियाहै। मै यह जानता हू कि वे एक बुद्धिमान पुरुष है, ज्ञानी हैं, एक बडे ग्रन्थ के प्रधान टीकाकार है, अत: अजानकार तो नहीं है पर स्वाभिप्राय पोषणार्थ कहीं २ उल्लिखित प्रमाणों का अनर्थक उपयोग किया है अतएव मैने यदि कोई शब्द ऐसे लिखे हो जो आलोचनात्मक हो गये हो तो मजबूरी है क्षमा करें।

दूसरी बात प्रोफे० हीरालाल जी ने दिग० जैनाचार्य श्री भगवान कुन्दकुन्द को अपने अभिप्राय का पोषक न पाकर बल्कि बाधक पाकर उनके प्रति शिष्टता के नाते भी आदर वाचक शब्दों द्वारा उल्लेख नहीं किया। अपने लेख मे ३ स्थान पर 'कुन्दकुन्दाचार्य' मात्र लिखा है जब कि एक साधारण पुरुष के लिये शिष्टता पूर्ण शब्द लिखना इस युग में शिष्टता का नियम माना जाता है। इसका एक मात्र कारण यही है कि उनकी दृष्टि मे वे दिगम्बर सम्प्रदाय की नवीन स्थापना करने वाले सम्प्रदाय-मोही व्यक्ति थे। फिर भी आदर का भाव रखना उचित है। उनकी इस वृत्ति पर भी हमे अत्यन्त खेद है।

अन्तमे मैं यह कहूगा कि आपको अपने अभिप्रायको किसी एक निश्चित कर लिये गये सिद्धान्तको पुष्ट करने मे न लगा कर आगम के यथार्थ भाव को समझने का प्रयत्न करना चाहिये। पाठकों का कर्तव्य है कि प्रोफे० सा० के पीछे न पड़कर स्वाभिप्राय को ठीक करें, आगम का अभ्यास करें और स्वात्म कल्याणकी ओर उन्मुख हो आगम पर श्रद्धा रखे।

श्रीमान पं० श्यामलाल जी शास्त्री,

न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ, प्राचीनन्यायतीर्थ,

ललितपुर ।

* श्री समन्तभद्राय नमः *

धिग्दुःषमाकालरात्रिं यत्र शास्त्रदृशामपि
शकाशूलसहस्राणि चेतांसि भेदयन्ति यत् ।

दिगम्बर और श्वेताम्बर शासन में
—मौलिक मतभेद—

दिगम्बर सम्प्रदायमे कुन्दकुन्दाचार्य मूल सघ के प्रणेता हैं मूल सघ के ही नहीं, उपलब्ध और अनेक दिगम्बर सघो के प्रणेताओ ने उन परम्पराओ को सुरक्षित रखने वाले उनके उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों ने जिनानुमोदित वीरोपदिष्ट समीचीन तत्त्वो की जो सुरक्षा की है उस आज न केवल दिगम्बर जैन समाज बल्कि निष्पक्ष तत्वगवेषी विश्वसमाज के सामाजिक भी श्रद्धा और भक्ति के साथ मानते व अपने हृदय मे उच्च स्थान रखते हैं।

दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायो में जिन सिद्धान्तो में मौलिक मतभेद है उनमे स्त्रीमुक्ति, सवस्त्र-मुक्ति, सयोग केवलिभुक्ति ये प्रधान सिद्धान्त हैं जिन के आधार पर भगवान महावीर के अपने को अनुयायी मानने वाले दोनो सम्प्रदायो मे पृथक्त्व की गहरी खाई बन जाती है। आज के हितैषी लेखक और विचारक उस खाई को भरना चाहते है अच्छा है परन्तु वैध कारण, पुष्ट हेतु और समर्थन जो निष्पक्ष भाव से युक्त हो उनका उपयोग एतदर्थ होना चाहिए प्रकृत लेखमे उपर्युक्त कारणोपर विद्वानोने पूरा योग नहीं दिया है इसके विपरीत अपना विचार न बताते हुए विचारक ने आचार्यों की सम्मति ग्रन्थोके अभिमतकी प्रामाणिक छापे लगा२कर अपने शंका स्थानों का निर्देश किया है, जिससे ऐसे श्रद्धा प्रधान किन्तु जिनका शास्त्रीय अध्ययन या स्वाध्याय ऊचा नही है लोगो की श्रद्धा का आघात करते हुए धोखे मे डालने का खतरनाक प्रयत्न किया है। कहीं २ पर तो प्रकृत उद्धरणो का अर्थ का अनर्थ करने मे भी आगा पीछा नहीं सोचा है जैसाकि आगे जाकर देखेंगे—

कुन्दकुन्दाचार्यने स्त्रीमुक्तिका निषेध किया है यह शकाकारने स्वय स्वीकार किया है किन्तु यह लिखा है कि "उन्होने न तो व्यवस्था से गुणस्थान चर्चा की है न कर्मसिद्धान्तका विवेचन किया है" इसके सबध मे जिन्होने भगवान कुन्दकुन्द के ग्रन्थो का मनन किया है तथा उनके अनुकूल नयमार्गानुकूल रचना का दृष्टिकोण समझाहै वे जानते है कि उन्होने अपने उपदेश या प्रवचन या रचना मे शुद्ध निश्चयनयावलंबित उपदेश की प्रधानता रखी है जो शुद्ध द्रव्यको

कर्मबंध का कर्ता ही नहीं मानते वे कर्मके अनुभाव मोह और योग के सद्भावासद्भाव हेतुक गुणस्थान जैसी बाह्य द्रव्यानुयोगिनी चर्चा को छोड़ कर कैसे अपना लेते। वक्ता और लेखक के नयानुमोदित दृष्टि कोण को अपने विभिन्न दृष्टिकोण से विचारानन्तर प्राप्त विभिन्नता वक्ता या लेखक को पर्यु नुयोगार्ह नहीं है।

अपितु अपने दृष्टिकोण को उनके दृष्टिकोण से मिलान करते हुए किया गया अर्थाधिगम कभी भी किसी की विवक्षा का घातक नहीं हो सकता, अस्तु कुन्दकुन्दाचार्यने गुणस्थानोके सम्बन्धमे और उनकी चर्चा करने न करने के सम्बन्ध मे स्वयं कहा है—

मोहनकम्मस्सुदयादु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा
ते कह हवंति जीवा ते णिच्चमचेदणा उत्ता॥
स० प्रा० जीवा० ६८

सामण्णपच्चयाखलु चउरो भणंति बंधकत्तारो
मिच्छत्तअविरमणं कसायजोगाय बोद्धव्वा।
तेसितुणोवियइमो भणियोभेदो दुतेरसवियप्पो
मिच्छादिट्ठीआदी जावसजोगिस्स चरमंत।
एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जम्हा
ते जदि करंति कम्मं णवितेसिं वेदगो आदा॥
स० प्रा० कर्तृकर्मा० ४१-४२-४३

इन गाथाओं की भावभासना व्यवहार नयाव-लम्बितोपदेश-प्रियों की आखें खोल देती है। जो आचार्य 'सजोगी जिन को कर्मबंध करनेवाले अगर वे हैं तो अचेतनहैं क्योंकि शुद्धचेतन द्रव्य इन स्थानों का वेदक नहींहै' ऐसा मानतेहैं निश्चित जिस उपदेश की प्रधानता आप चाहते हैं आहत नहीं ही कर सकते थे। इतने पर भी इन दृष्टियों से स्त्रीमुक्ति का निषेध वे नहीं कर सकतेथे समझना अवर्णवादहै। गुणस्थान क्रम से व्यवस्थित और कर्मसिद्धान्त विवेचना युक्त स्त्रीमुक्ति का निषेध कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं किया यह लिखना उपयुक्त होता अगर उनके बाद के संसार में अन्य आचार्यों ने गुणस्थान क्रम व कर्मसिद्धान्त वि-वेचनासे साबित कर दिया होता कि स्त्रीमुक्ति शब्दतः दिगम्बराम्नाय मे निषिद्ध है तत्त्वत नहीं, परन्तु परिस्थिति सर्वथा इसके विपरीत है। सर्व प्रथम कुन्दकुन्दाचार्य ने स्त्रीमुक्ति के संबंध मे अपना दृष्टिकोण इस प्रकार रखा है—

णिच्छयदोइत्थीणं सिद्धीणहि तेणजम्मणा दिट्ठा
तम्हा तप्पडिरूवं वियप्पियं लिंगमित्थीणं।
पइडीपमादमइया एदासिंवित्तिभासियापमया
तम्हा ताओ पमदा पमादबहुलत्ति णिद्दिट्ठा।
संन्तिधुवंपमदाणं मोहपदोसायभयदुगुंछाय
चित्ते चित्ता माया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं।

सर्वप्रथम निश्चयनय से स्त्री को मुक्ति नहीं होती इसका हेतु सर्वज्ञ का ज्ञान बताया है-जिसका निर्देश 'दृष्टापद'के द्वारा कियाहै। इसके आगे व्यवहार नया-लम्बित गुणस्थान क्रम व कर्मसिद्धात का संकेत किया है अर्थात् स्त्रिया प्रमदा नित्य प्रमाद-शीला होती हैं इसी लिये मुनि का सर्व प्रथम गुणस्थान अप्रमत्त-विरत, वह प्रमाद की सत्ता को नष्ट नहीं करने वाली स्त्रियो के प्राप्त हो ही नहीं सकता। इसी तरह इसके आगे उन मोहादि कर्मों की प्रकृतियो को बताया है जिनके उदयादिक में मुनित्व स्त्री को संभव ही नहीं होता है। उनका अभाव जो प्रमाद के अभाव में कारण है, स्त्री पर्यायमें नहीं होता तथा अनन्तसुखादि स्वरूप मोक्ष विघातक चारित्र मोह रागद्वेष भय, जु-गुप्सा माया आदि कर्मभेदहैं जो स्त्री पर्यायानुषंगी है उनका अभाव हुए बिना महाव्रतत्व या मुनित्व जो

साक्षात्मोक्षमार्ग है, कारणता नहीं आ सकती इसीके सबधमें चित्तका शीघ्र द्रवित होने रूप प्रकृष्ट राग तदुत्पन्न शैथिल्य तथा मासिक धर्म और असख्यात लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यो के प्रति समय जन्म मरण के स्थान योनि स्तनान्तर नाभि तथा कक्ष विशिष्ट वह शरीर उस सयम का जिसमें प्रति समय सूक्ष्म जीवों की हिंसा भी न केवल द्रव्यत. भावतः भी निषिद्ध और परिहार्य बताई हो आधानक कभी नहीं बन सकता। इसतरह मोक्षके दो कारणोमे पहिला कारण बंधहेत्वभाव इनके नहीं बन सकता इसी तरह निर्जरा दूसरा कारण भी—

"जदि दसणेण सुद्धा सुत्तज्झयणेण चाविसजुत्ता घोरचरदि व चिरय इत्थिस्सण णिज्जरा भणिदा।

के अनुसार सम्भव नहीं है।

कारण निर्जरा ध्यानसाध्य है ध्यान शक्तिसाध्य है शक्ति सहननसाध्य है ये सहनन कर्मभूमिज स्त्रियों में नहीं होते।

आदिमतिगसहणण णत्थित्तिजिणेहिं णिद्दिट्ठ
गो० क० ३२

जिनके साहाय्य से प्राप्त ध्यान की उत्कटता इनके नहीं हो पाती इसी लिये सप्तम नरक जैसे रौद्र नरक प्राप्ति का साधन उत्कृष्ट रौद्र ध्यान नहीं होता उसी प्रकार मोक्ष जैसे शुद्धभाव ध्यान प्राप्त स्थानकी प्राप्ति भी शुक्लध्यान जैसे ध्यान के नहीं होने से नहीं होती इस तरह निर्जरा के भी सिद्ध न होने से स्त्रियो मे दोनो कारणों का अभाव होने से उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं होता। स्त्रियो मे इसलिये महाव्रतो का विधान नहीं किया गया है उपचार कथन तो उपचारनय का विषय है निश्चयनय का नहीं वस्तु का स्वरूप दर्शक उपचारनय नहीं होता निश्चय ही होता है इस तरह कुन्दकुन्दाचार्य का स्त्रीमुक्तिके सम्बन्ध में उनका अपना मत व्यवस्था-परिपूर्ण है गुणस्थान क्रम व कर्मसिद्धांत विवेचन प्राप्त है—

आगे आपने जो *शास्त्रीय व्यवस्था* के नाम से गुणस्थान व कर्मसिद्धान्त के आधार पर इसकी परीक्षा की है उससे उत्पन्न परिस्थिति पर विचार—

षटखण्डागम सूत्र मे मनुष्य और मनुष्यनी के पृथक२ चौदह गुणस्थानों का निरूपण किया है इसके साथ यह भी लिखना चाहिए कि नपुंसको के भी १४ गुणस्थानों का निरूपण किया है ऐसा हो जाने पर स्त्रीमुक्ति जहा संभाव्य हो जाती है वहा नपुंसक मुक्ति की भी सम्भावना हट नहीं सकती और स्त्री-मुक्ति नहीं रहने पर नपुसक मुक्ति ठहर नहीं सकती अस्तु—

सम्मामिच्छाइट्ठि असजदसम्माइट्ठि संजदासजद ट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥स०प्र०६३॥

इस सूत्र का अर्थ स्त्रीवेदी मिश्रगुणस्थान असयत सम्यग्दृष्टि सयतासयत गुणस्थानोमें नियम से पर्याप्तक होती है।

इस सूत्र के पहिले—

सम्मामिच्छाइट्ठिसजदासजदसजदा णियमापज्जत्ता
स० प्र० ६०

इसमें पुंदवेदियो को तीसरे चौथे पाचवे और छटवें गुणस्थान में नियम से पर्याप्तक बताया है यहा सूत्रकार का दृष्टिकोण भाववेद वर्णन करने का है जैसा कि आगे स्पष्ट करेंगे इससे शकाकार ने क्या देखा जो अपने पक्ष के समथन मे सूत्र न० ६३ को रख दिया है क्या वेद वाक्यों की तरह इन सूत्रो में भी अनेकार्थ समझते हैं प्रकृतमें यदि आपका अभि-

प्राय यहा द्रव्यवेद का ही है क्योंकि भाववेदको आपने केवल उत्तर देने के अर्थ में यहा सकेत माना है पव्यवेद की अपेक्षा ही रखे तो द्रव्यस्त्री के सयता-सयत नाम पाचवां गुणस्थान तक ही तो बताया है १४ कहीं नहीं बताए फिर यह सूत्र आपके पक्ष मे क्या अर्थ रखता है।

इस सूत्र में सम्पादक ने एक टिप्पणी लगाई है "अत्र संजद इति पाठशेष. प्रतिभाति" परन्तु यह टिप्पणी द्रव्यार्थ में अनावश्यक और अनाधार है और इस अर्थमें ग्रन्थकार के अभिमत के सर्वथा विरुद्ध है भाव—अर्थ में तो आप स्वीकार कर ही नहीं सकते क्योंकि आपके दृष्टिकोण से भाव प्ररूपणा से संबध नहीं अन्यथा स्त्रीमुक्ति विघटित हो जाती है ऐसे अर्थ में द्रव्य का प्ररूपण करते हुए स्त्री के पाच गुणस्थानों का कथन अविरुद्ध है फिर भी टिप्पणी को सार्थक समझते हैं तब सूत्र ६० और ६३ में पाठ व अर्थ की दृष्टि से अभेद है सूत्र ६० में ही मनुष्यनी पद बढ़ा देने से सूत्र ६३ की रचना अनावश्यक ठहर जाती है इस तरह इस सूत्र का प्रकृत अर्थ साधन में आपको (द्रव्यवेद सिद्धिमे) कोई उपयोग नहीं हुआ यदि भाववेद प्रधानता से स्वीकार किया जाता है तब आपका पक्ष ही समाप्त हो जाता है—

इसी तरह आगे भी आपने जो प्रमाण उद्धृत किये हैं उन पर भी इसी विचारधारा के आश्रय पर आपको कोई स्वपक्ष - साधनार्थ अर्थ लाभ होता दिखाई नहीं देता।

आगे के प्रमाण रूप में उपस्थित किये गये सूत्रो के विचार करने के पहिले यह विचार कर लेना आवश्यक है कि उनका निर्देश सूत्रकार एव भाष्यकार तथा आगे और ग्रन्थकारों ने जिस अर्थ (भाव) की प्रधानता में किया है वह अर्थ सगत भी है या नहीं इसी भाववेद के सिद्ध हो जाने पर ही सूत्रकारादिकों की सारी व्यवस्था सगत और प्रमाणिक हो जाती है सर्व प्रथम भाववेद-परक ग्रन्थकारों के समर्थन को सकेत जैसे हलके शब्द मे द्योतन करने का अभिप्राय क्या है—

क्या धवलाकार या पूज्यपाद तथा नेमिचन्द्राचार्य का निजी अभिप्राय यह नहीं है ?

या उनके पीछे के टीकाकारों ने श्वेताम्बर मत सम्मत स्त्रीमुक्ति का प्रसग दिगम्बराम्नाय में आजाने के भय से पश्चात कल्पित किया है ?

या मूल ग्रन्थकार को स्वय द्रव्यस्त्रियों नपु सकों के भी पुरुषों की तरह १४ गुणस्थान निरूपित करने पर प्राप्त सिद्धान्त विरोधशका का समाधान मात्र में इस उत्तर का आलम्बन किया है ? प्रथम पक्ष में धवलाकार का यह स्वय का मत है षटखण्डागम के अन्तरानुगम सूत्र १८६ को देखिये—

पमत्तस्स उच्चेद-एक्को अट्ठावीस मोहसतकम्मिओ अण्णवेदो इत्थीवेदमणुसेसु उववण्णो इत्यादि—

यहापर अण्णवेदो इत्थीवेद मणुसेसु का अर्थ यह है कि स्त्रीवेद से भिन्नवेद की सत्तावाला कोई जीव स्त्री वेदी मनुष्यो में पैदा हुआ यहा अगर भाववेद का तात्पर्य नहीं होता तो स्त्रीवेद मनुष्य ऐसा प्रयोग क्यों होता स्त्रीवेद में पैदा हुआ यही होना स्पष्ट है कि भावतः स्त्री वेदी द्रव्यलिगी पुरुष में पैदाहुआ। यही प्रमाण वेद वैषम्य मे जिसे समीक्षक विद्वान ने नहीं माना है प्रबल प्रमाण है। अगर यहा वेद वैषम्य का अर्थ नहीं होता तो मूल में अण्णवेदो त्थी सु उववण्णो ऐसा पाठ अभीष्ट होता इसीतरह इसके आगे सूत्र नं० १८६ को देखिये—

त्थीवेद मणुसेसु उवसमणो अट्ठावीसिओ सम्मत्तं संजम च जुगवं पडिवण्णो अणताणुबधीविसंजोय दंसणमोहणीय मुवसमिय अप्पमत्तो पमत्तो अपुव्वो अणियट्ठी सुहुमो उवसतो— आदि निर्दिष्ट है इस में भी स्पष्ट अभिप्राय भाववेद सहित द्रव्यवेद प्रकट करते हुए वैषम्य दिखाने में है इस से पहले का सूत्र भी प्रमाण कोटि मे आ सकता था परन्तु पाचवे गुणस्थान तक स्त्रियो के द्रव्य म भी कोई बाधा नहीं पहु चती इसी लिये प्रमत्त आदि के निरूपक सूत्रो को दृष्टान्तस्थल माना है। इस तरह इन वेदो के निरूपण मे भाव की प्रधानता व्यक्त करने में मूल ग्रन्थकारो का स्वय का अभिमत है। इसके बाद दूसरा और तीसरा विकल्प कोई अर्थ नहीं रखता इस लिये विचारक इसे सकेत जैसा तुच्छार्थ बोधक न समझे जैसाकि वकील साहब ने लिखकर भ्रम मे डालने का प्रयत्न किया है अस्तु इसके आगे द्रव्य प्ररूपणा सूत्र न० ४६ मे १४ गुणस्थानो को भावस्त्रियो का प्रमाण बताया है और लिखा है कि दूसरे से १४वें गुणस्थान तक का जितना प्रमाण हो उसे पर्याप्त स्त्री वेदियोंके प्रमाणमे से कम कर देने से मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदियोंका प्रमाण आ जाता है इस निरूपण का अर्थ स्पष्ट भाव-वेद साबित करता है—

इसी प्ररूपणा के सूत्र न १२४ स १२६ तक १२५ सूत्रमे पाचवें गुणस्थान तक के स्त्रीवेदियो का प्रमाण ओघके समान बताया है—

इसी तरह क्षेत्र प्ररूपणा सूत्र ४३ स्पर्शन प्ररूपणा ३४-३=-१०२ से ११० काल प्ररूपणा ६८-८२-२२७ २३५ अन्तर प्ररूपणा ४७-७७-१७८११६२ भाव-प्ररूपणा २२-४१ अल्पबहुत्व प्ररूपणा ५३-८०-१४४ १६१ इन सबका अभिप्राय वेद की अपेक्षा है क्योंकि १४ मार्गणाओं में वेदका ही वर्णन है लिंगका नहीं। द्रव्य मे प्रयोग लिंग सहित होता है भाव में वेद सहित यह ध्यान में रख लेने पर कहीं भी कोई अतर नहीं आता इस तरह उद्धृत यह प्रमाण कार्यकारी नहीं रह जाते हैं।

दूसरे भाववेद की अपेक्षा भी तीनों वेदों वाला मनुष्य पाचवें गुणस्थान से आगे बढ़कर नवमे में वेदो के अभाव को या वेदोदय के अभाव को करता है उसके आगे के गुणस्थानो मे वेद का सम्बन्ध ही नहीं रहता इसीलिये वे गुणस्थान अपगत वेदियो के गुणस्थान कहलाते है इस दृष्टि से प्रो० सा० के प्रश्न की रूप रेखा गलत हो जाती है स्त्रियों के भी १४ गुणस्थान न होते न कहकर स्त्रियो के भी ६ गुणस्थान होते हैं कहना चाहिए अस्तु—

इसके आगे तीनो भाववेदो के प्रत्येक के साथ तीनो द्रव्यवेद का संयोग हो सकने से नौ प्रकार के जीवो का सद्भाव अनिवार्य है और इसी अर्थ के समर्थन स्वरूप यह कथन—

पुरिसोदयेण चडिस्सित्थी खवणद्धातं पठमठिदी इत्थिस्स सत्तकम अवगदवेदो समंविणासिदि इत्यादि

तथा—

तथाथी पठमट्ठिदीमेत्ता सढस्सवि अन्तरा दु सढेक्क तस्सद्धाति तदुवरि सढा इत्थि च खवदि थी चरिमे अवगय वेदो सजो सत्त कसाए खवेदि को हुदये पुरिसोदएण चडणविही। सेसुदयाणु टुहेह वीरं लब्धिसार-६०६-६०७-६०८।

यह कथन भी सयुक्तिक और निराबधक हो जाता है ऐसा होने पर भी स्त्रीमुक्ति या नपु सकमुक्ति या पुरुषमुक्ति नहीं रहती अपितु अपगतवेदमुक्ति ही अत में रहती है।

नौभंगो के व्याख्यान में असंतोषके अनेक उप-कारणसयुक्त चार कारण बताए हैं।

सर्वप्रथम–सूत्रोंमें जो योगिनी शब्द का उपयोग किया गया है वह द्रव्यस्त्री को छोड़कर अन्यत्र घटित ही नहीं होता—यह प्रश्न है प्राच्य महान सूत्रकारो ने अपनी रचनामें निबद्ध प्रत्येक शब्दकी शाब्दिक शक्ति की अपेक्षा आर्थिक गभीर और व्यापक शक्ति का महान् ध्यान रखा है स्त्री के अर्थमे स्त्रीशब्द का प्रायः प्रयोग न करके योनिनी या योनिमती जैसे व्यापक शब्दों का प्रयोग किया है स्त्री शब्द जहा अपनी योगज शक्ति से वृत्ति नहीं कर सका जैसे कुमारी विधवा वंध्या आदि वहा भी योनिनी या योनिमती योगजशक्तिसे व्यापक अर्थ रखनेकी वजह सूत्रकारों की रचना में स्थान प्राप्त कर सका है पीछे यह भी रूढ होकर द्रव्य की तरह भाव अर्थ में भी स्त्री शब्द की ही तरह प्रवृत्त होता आया है—और इसका अर्थ संगति के अनुसार स्त्रीवेद व स्त्री लिंग होता है।

इस तरह इस कारण की कोई कीमत नहीं है, इसी लिए योनिनी या योनिमती मे जुड़े योनि शब्द को देख कर प्रोफे० सा० झट से तत्पुरुष समास के बल पर इस शब्द का वाच्य द्रव्यस्त्री करना चाहते हैं परन्तु योगज शक्ति ही शब्द की ली जावेगी तब स्त्री शब्द रख के भी तो अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता दूसरी शका—

वेद मात्र की अपेक्षा आठ गुणस्थानों का कथन करना है यह कथन तो व्यवस्थित है क्योंकि क्षपणा या उपशमन काल में इससे आगे यह वेद या वेदोदय ही नहीं है चौदह गुणस्थानों तक जो वेदों की अपेक्षा वर्णन किया गया है उसका तात्पर्य उस गति से है जिसमें वेद विशेषण रहा आया आगे विशेषण नष्ट हो जाने पर गति के रह जाने पर भी उपचारसे विशेषण मान कर मनुष्य गति की प्रधानता में उनकी अपेक्षा वर्णन करना युक्ति संगत है।

इस शंका के कायम रहने पर आपकी मूल शंका स्त्रियो के १४ गुणस्थान वाली खतम हो जाती है उस के कायम होनेपर यह शका निरर्थकहै। तीसरे प्रश्न में आपने लिखा है कर्म सिद्धान्त के अनुसार वेद-वैषम्य सिद्ध नहीं होता अच्छा होता आप प्रश्न का रूप यह रखते कि 'कर्मसिद्धान्तानुमोदित वेद वैषम्य को हमारी बुद्धि ग्रहण नहीं करती' अस्तु।

भाववेद चारित्र मोहनीय की अकषाय वेदनीय नाम की प्रकृतियो मे स्त्री वेद पुंवेद नपुंसकवेद है जिनकी उत्पत्ति का कारण प्रकृष्ट क्रोधमानेर्ष्यादि तथा अल्पक्रोध मायाचार राहित्यादि एव प्रचुरक्रोधादि सहित का अतितीव्रादिभाव क्रमशः तीनों वेदो के बंध के कारण है तथा लिंग या चिन्ह जो नामकर्म की रचनान्तर्गत अगोपाग कर्म द्वारा रचित है उनके भी कारण शुभ और अशुभ नामकर्मके कारण हैं। अभिप्राय यह है कि वेद घातिया कर्मोंकी प्रकृतिहै और उनके उदयसे प्राप्त होने वाले तथा जीवविपाकी हैं तथा लिंग अघातिया कर्मोंकी प्रकृति स्वरूप पौद्गलिक रचना है जो पुद्गल विपाकीहै दोनो पृथक कम अपने २ कारणो से आत्म लाभ करते हुए अव्याहत है एक की सत्ता दूसरे के आधीन नहीं।

भिन्न इन्द्रिय सबधी उपांगो की रचना देख कर वेद और लिंग मे भी अनुकूलता खोजना आपका ही रिसर्च है—

भावेन्द्रिय के अनुकूल द्रव्येन्द्रिय की रचना का कारण वीर्यान्तरायक्षयोपशमसमर्थित ज्ञानावरण का क्षयोपशम स्वरूप प्राप्त ज्ञान परिणामहै उसका प्रयोग

और उपयोग के आवश्यक द्रव्येन्द्रिय की रचना में मूल हेतु उन प्रदेशो का ही वहां रहना है जहा द्रव्येन्द्रिय निर्मित है। इसी लिये उस भावेन्द्रिय का उस द्रव्येन्द्रिय मे ही उपयोग होगा अन्यमे नहीं या अन्य का नहीं। इसी लिये आपने आगे चल कर जो यह लिखा है कि 'पाचो भावेन्द्रियो के पाचो द्रव्येन्द्रियो के साथ पृथक २ संयोग होकर पचीस प्रकार ज्ञान होने लगेगा आदि, यह देख कर एक कहावत याद आ गई जो यहा चरितार्थ होतीहै 'जाट तेरे शिरपर खाट, तेली तेरे शिरपर कोल्हू' क्योंकि आप भी वेद वैषम्य सिद्ध होता देख कर इन्द्रिय विषय वैषम्य भी सभावित करने लगे है परन्तु वेद के सबध में प्रति नियत स्थान में क्षयोपशम के समान जैसाकि भावेन्द्रिय मे है नहीं पाया जाता यह औदयिक भाव है वे क्षायोपशमिक भाव हैं तब वेदोमे यह नियमही क्या वस्तु है कि जैसा भाववेद उसी के अनुसार वह पुद्गल रचना करेगा और तदनुकूल ही उपांग उत्पन्न होगा क्योंकि प्रकृतियो के उदयमे बंध नियामक हो सकता है आगामी फल नहीं। जीवमें बध अवस्थाको प्राप्त हुए तीनो वेद अपनी २ स्थिति काल मे उदय प्राप्त हो सकते है उनके उदय मे आने केलिये द्रव्यलिग आवश्यक सामग्री नहीं अगर ऐसा माना जाय गा तो रमणकाल के अलावा और समय मे वेदो का उदय ही नही माना जा सकता क्योंकि आपने लिखा है "यदि ऐसा न हुआ तो वह वेद ही उदय में नहीं आ सकेगा" विद्वानने भावस्पर्शनेन्द्रिय और भाववेद मे भेद नहीं समझ कर उसी के आधार पर अपनी विचारधारा उपस्थित की है और उसी के आवेश मे वेद साम्य नहीं होगा तो भावचक्षुरिन्द्रिय से श्रोत्र द्रव्येन्द्रिय की उत्पत्ति कौन रोक सकता है यह अभिप्राय भी प्रकट कर दिया है आपके आवेश को यह विचार चेतना शान्त करेगी।

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरुसिच्छिसंढओ भावे
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहि विसमा ॥
गो० जी० २५०

सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य यहा भाववेद और द्रव्यलिगके पृथक कारण व स्वरूप निर्देश करते हुए उनके साम्य और वैषम्य को स्पष्ट कर रहे हैं इसीलिये आपका यह लिखना 'कि वेद का बध उपाग की रचना करायगा' अत्यन्त असगत है भिन्न कार्योत्पत्ति भिन्न कारण सापेक्ष होती है चारित्र मोहोदय प्राप्त वेद स्वरूप औदयिक भाव उपाग रचना का कारण नहीं हो सकता क्योंकि यह नाम कर्मकारणक है किसी भी कर्म व प्रकृति के उदय को फलोदय से ही नहीं आकिये अन्यथा नारकियो म सातावेदनीय तीथकर प्रकृत्यादि व देवोमें आसातवेदनीय निद्रादिक तथा प्रकृत मे पाचवे गुणस्थान स नौवें गुणस्थानो तक वेदो के ही उदय का क्या अर्थ होगा इस लिये आपका यह वाक्य 'यदि ऐसा न हुआ तो वह वेद ही उदयमे नहीं आ सकेगा मार्मिक चोट पहुचाता है अनुकूल भाववेद के उदय मे द्रव्यवेद का सयोग फलोदयका कारण बनेगा ही। इसलिये यह लिखना कि 'जीवनभर वेद नहीं बदलता उनकी अपेक्षा सगत है जिनमे वेदसाम्य है। नोकषायातर्गत वेदहै, कषाय और नोकषायोका बदलना स्वीकार करते हुए वेदो का बदलना न मानना स्ववचन व्याघात है

चौथे प्रश्न मे नौ प्रकार के जीवो की असगति बताई है परन्तु वेद और लिग पृथक २ सिद्ध हो जाने तथा उनका वैषम्य भी मान लेने पर नौ प्रकार बनने मे कोई बाधा नहीं। द्रव्यमे नपु सक नहीहै इस धारा

का जन्म सभवतः जिन धवला के स्थलों ने इ हें स्त्री मुक्ति का समर्थन करनेकी बुद्धि दी होगी वे ही स्थल नपु सक मुक्ति समर्थन करनेमें प्रवृत्त हैं इसका निषेध कैसे किया जाय ? इसी लिये वर्तमान D I. R की तरह वकील साहब ने दे डाला 'न रहेगा बास न बजेगी बासुरी' द्रव्य नपु सक नहीं है का क्या अर्थ मनुष्यगति मे नहीं है या शेष गतियो मे भी नहीं है शेष गतियो मे नहीं है तो एकेन्द्रियादि तिर्यंचो मे वेनारकियो मे कौन सा लिग होगा। स्त्री लिग और पुलिग तो हो ही नहीं सकते वेद भी इन जीवो के नपु सक होगा ही, तब आपकी धारणा के अनुसार उसका उदय आने को अनुकूल लिग जो भी होगा वह नपु सक लिंग ही होगा इस लिये भावनपु सक जीवोंके आपके न मानतेहुए भी द्रव्यलिंगनपु सक ही होगा। रही मनुष्यगति की बात सो यहा भी भाव नपु सक अगर मान लेते है तो बलात उपयु क्त न्याय से द्रव्यनपु सक मानना ही होगा। भावनपु सक का नहीं मानना तो सूत्रो असकृत निर्दिष्ट नपुंसक का निर्देश असम्भव और अप्रमाणित हो जाताहै। भाव नपुंसकके वेदकी उदयावलि किस लिग मुखेन होगी स्त्रीलिग या पुलिग द्वारा हो नहीं सकती, वरना स्पष्ट वेद वैषम्य मानना पड जायगा उदय नहीं होगा ऐसा नहीं है क्योंकि आप साबित कर आये हैं उदय आने को अनुकूल उपाग चाहिए यह मनुष्य गति मे स्त्री पुरुषलिग भिन्न भावनपु सक का उपाग क्या वस्तु है जो है उसको मनुष्यगतिका द्रव्यनपु सकलिग कहा जाता है। वर्तमान ससार मे जिन्हें हिजडे जनखे आदि शब्दो द्वारा कहा जाता है जिनका लिंग न " से रमण करने समर्थ है, न पुरुष से रमण कराने में समर्थ है न आकार ही दोनों के लिंगों से मिलता है उन्हें नपुंसक ही कहते हैं ऐसे जीवोंकी क्रियायें वेश भूषा हावभाव बातचीत ऐसी होती हैं जो न स्त्रियों में न पुरुषो में ही सम्भव हैं स्त्री पुरुषादि के वेद वैषम्य मे कोई बाधा नहीं रह जाती।

आगे आपने लिखा है—

"यदि वैषम्य हो सकता है तो वेदके द्रव्य और भाव का तात्पर्य ही क्या रहा" ?

द्रव्य और भाव का तात्पर्य नही रहने से वैषम्य नहीं बन सकता वैषम्य बनने से ही द्रव्य और भाव का तात्पर्य सगत होकर नौ प्रकार क जीवोंकी सगति होती है जहा वैषम्य नहीं है वहा द्रव्य और भाववेद दोनों के रहने मे कोई बाधा नहीं पृथक कारण सिद्ध पृथक फल प्रद विभिन्न दो वस्तुओ मे क्या कितनी ही वस्तुओ मे कोई विरोध नहीं भासता।

"किसी भी उपाग विशेष को पुरुष या स्त्री कही ही क्यो जाय"?

देव को देव, नारकी को नारकी ही क्यो कहा जाय इसी लिये कि देवगति और नरकगति नामकर्म के उदय प्राप्त है तो इसीलिये नामकर्मान्तर्गत आगोपाग नामकर्म के उदय से पुरुष व स्त्री या नपु सक क्यो न कहा जाय।

जब अतद्गुण नाम निक्षेप तथा अतदाकार स्थापना जैसे बाह्य निक्षेपो से स्थायी व्यवहार चलता है तब चिन्ह से चिन्हीं के सबोधन करने के अलावा आपही बतावें किससे उसका व्यवहार करें। विभिन्न उपाग के रचे जाने पर भी उदय का विधान किया गया है तथा यह भी सिद्ध किया गया है कि पचीस प्रकार ज्ञान नहीं हो सकेंगे। इस तरह भाववेद की सिद्धि व वेदो की विषमता प्रमाणित करती है कि क्षपक श्रेणी का आरोहण करने वाले जीवो मे जैसे

भाववेदी पुरुष होते हैं उसी प्रकार स्त्रीवेदी पुरुष तथा नपु सकवेदी पुरुष भी होते हैं स्त्री मुक्ति का अर्थ स्त्री वेदी पुरुष को मुक्ति का है तो ऐसी स्त्रीमुक्ति ही क्यो हमें तो नपु सक मुक्ति मानने पर भी कोई आपत्ति नहीं रह जाती जिन समीक्षको का ध्यान स्त्री शब्द देख कर और उसका अर्थ द्रव्य स्त्री करके उसे भी मुक्ति मानने की ओर गया उनका ध्यान नपु सको की मुक्ति की तरफ क्यो नही गया परिस्थिति दोनो की समान है मालूम होता है गहरी प्रेरणा उनकी ओर से मिली है अन्य कारण दृष्टिगत नहीं होता इस तरह शका रूपमे उपस्थित सूत्रो का अर्थ भाववेद प्रधानता प्राप्त है और उनका अर्थ द्रव्यत पुरुष को ही पाचवें से आगे नौवें या चौदहवें तक प्राप्त करता है द्रव्यस्त्री या नपु सक को नहीं।

जिन स्त्रीमुक्ति मानने वाले मूर्तिपूजको ने अपनी आराधना के लिये विशाल पुरुष मूर्तिया प्रतिष्ठित कराई आज तक क्यो स्त्री मुक्ति की ओर की नहीं तो मल्लि की ही मूर्ति तदाकार स्थापना के रूप मे आराधना केलिये नहीं मानी क्या इसलिये—

पुरुष जाति जो हमेशा अपने को उच्च स्वाधीन अधिकार सपन्न, शक्ति प्राप्तअनुभव करती है इसके विपरीत स्त्री जो हमेशा अपने शरीर को निद्य जाति मात्र को नीच पराधीन, अधिकार विहीन शक्ति हीन मानती रहती है पुरुष का आदर्श नहीं बन सकती सिवा इसके क्या उत्तर है।

इस प्रकार असतोष के अनेक उपकारणो के साथ २ मूल,चार कारणो पर विचार किये जाने के बाद वस्तुस्थिति यह रही कि स्त्रीमुक्ति द्रव्यतः स्त्री को मुक्ति होती है लिखना या मानना असंगत युक्ति और आगम प्रतिकूल है इस विषय मे विचारे गये प्रमाण व युक्तियों की अधिकता का उपयोग लेख का कलेवर बढ जानेके भय से नहीं किया गया समीक्षक विद्वान स्त्रीमुक्ति के सबध में अपना दृष्टिकोण बदलने मे इसमे सहायता लेंगे।

—संयमी और वस्त्रत्याग—

शकाकार प्रयुक्त दिगम्बर और श्वेताम्बर शब्दो पर विचार कर लेने से प्रकृत विषय को अधिक बलामलता है।

'दिगम्बर' शब्द नग्नता का द्योतक व वाचक एक प्राचीन शब्द है जिसका कि प्रयोग ससार के आदि साहित्यसे चला आरहाहै जिसका वह विशेषण बना है ऐसे अपने विशेष्य मुनि के यथार्थ स्वरूप का विज्ञापन करता है उसकी अकिंचन रूपता यथाजात वृत्तिता वीतरागता प्रभृति सार्यमिक आत्मिक गुणो का प्रकाश करता है इसके आश्रयपर ही उसके जीवन की सारी कियाए तपश्चरण और ध्यान समाधि अवलम्बित है यह उसका आदर्श है जिसे अपनी जीवन की बाजी लगा कर पूर्ण करने मे प्रवृत्त रहता है जबकि श्वेताम्बर शब्द मुनिका विशेषण बनते हुए सिर्फ वह 'सफेद कपडे वाला है' द्योतनकरता है इसके आश्रयपर ही उसके जीवन की क्रियाए तपश्चरण और ध्यान अवलम्बित नहीं है इसलिये कि यह आदर्श नहीं है।

विशेषण शब्दगत निवृत्तिपरता जो दिगम्बर शब्दमे है श्वेताम्बर शब्द मे विशेषजातीय वस्त्रोपलक्षित पदार्थों की प्रवृत्तिशीलता का दर्शन है साधारण त्यागी को चाहिए कि वह अपनी त्यागवृत्ति को बलवती बनाने के लिए अपना परिकर निवृत्ति प्रधान रखे तब गृहवास छोड बनवास करने वाले साधु के सम्प्रदाय का नाम करण उसकी उस इच्छा, उस वाछा को जिसे

नाश करने के लिये वह आगे बढ़ना चाहता है आगे रखकर आदर्श बनाया जाता है वहा यह शब्द कहता है कि सयम नहीं किन्तु संयम की विडम्बना है–

इस शब्द की उत्पत्ति भी आचरण हीनतासे सब बाह्य होनेपर किसी साधु के हठवादसे हुई होगी।

वस्त्र का सर्वथा त्याग न होने से सयमी नहीं हो सकता और न मुक्ति का अधिकारी ही।

साधारण शीत उष्ण की वेदना या अनिगृहीत इन्द्रियावरण की कामना नग्नताजन्य कष्टअसहिष्णुता उस वस्त्रत्याग नहीं करने देती इसका अर्थ अन्तरग नो प्रत्याख्यानावरण कषाये हैं—जिनका उदय साधु- वृत्तिता नहीं आने देता अन्तरग त्याग का बाह्यत्याग दृष्टान्तस्थल है बाह्य का परिग्रह अन्तरंग के रागाधिक्य को प्रमाणित करता है ऐसी परिस्थिति मे वस्त्रादिक का उत्पादन होते हुए अन्तरग उसमे अकारण नही कहा जा सकता एक अणुमात्र पर द्रव्यका बुद्धि पूर्वक ग्रहण परिग्रह है और उसके होने पर आरंभ निश्चित है आरंभ परिग्रह की सत्ता मुनि मार्ग विरोधिनी है 'मूर्च्छा परिग्रहः' का भी यही अर्थ है और ऐसे परि- ग्रहों के त्याग करने से वस्त्रादिक का भी त्याग हो जाता है।

भगवती आराधना का उल्लेख करके 'मुनि वस्त्र- पहिन सकता है' ऐसा अर्थ लिख देना श्रद्धालु हृदयों को भारी चोट पहुंचाना है।

उस्सग्गिय लिंगगदस्स लिंगमुस्सग्गियं तयं चेव
अववादियलिंगस्स विपसत्थमुवसग्गियं लिंग।
भ० आ० ॥७६॥

सन्याससमय उत्सर्गलिंग वालातो उत्सर्गलिंगही रखे और अपवादलिंगवाला उत्सर्गलिंग धारण करे–

आवसये वा अप्पाउग्गो वा महड्ढियोहिरिमं
मिच्छजणेसजणेवा तस्सहुहोजअववादियंलिगं

इन गाथाओंके पहिले अर्हनामाधिकारमें सयमा- सयमी तथा अविरत सम्यग्दृष्टि तक को कारण उप- स्थित होने पर सन्यास धारण करने की योग्यता बताई है उन्हें भी लिखा है कि वे उत्सर्गलिंग (मुनिलिंग) धारण करें। यही न०,७६ की गाथा मे उल्लेख किया है इस गाथा मे यह बताया है कि ऐसे प्राणियो को आवास वस्तिका आदि न मिले या अयोग्य मिले, गृहस्थ स्वय लज्जादि कारणो से या स्त्रीजन आदि मिथ्यादृष्टि स्वजनो द्वारा रोके जाने आदि कारणो के उपस्थित होनेपर आपवादिक ११वीं प्रतिमाधारी का लिंग धारण करे आगे –

आचेलक्क लोचो, वोसट्ट सरीरयापडिलिहण
एसोहु लिंगकप्पो, चदुव्विहो होदि उस्सग्गे ॥
भ० आ० ॥७३॥

यहा उत्सर्गलिंग के चार लिगो या चिन्हो का निर्देश किया है। यह है भगवती आराधनाकार की उन गाथाओ मे स्थिति, जिनका उद्धरण देकर प्रोफेसर साहब ने मुनियो का कपड़ा धारण करना समझाहै। यहा कोई ऐसा स्वरूप और वर्णन अपवाद लिंग के सर्व धर्मे नहीं है जो प्रकृत को सिद्ध करे।

समव है गाथाओ की संगति बैठाने को आगे पीछे देखते तो यह भ्रम नही होता।

तत्वार्थसूत्रमे जिन पाच निर्ग्रंथो का वर्णन किया गया है उनके वस्त्र त्याग नहीं बताया गया तो वस्त्र ग्रहण कहीं बताया गया है क्या ?

उनका विशेष्य निर्ग्रंथ शब्द का स्वरूप जानलेने से वस्त्र क्या सभी परिग्रहों का त्याग समझ में

आ जाता है निर्ग्रंथ शब्द बाह्य परिग्रहरहित अर्थ में प्रयुक्त है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय का उल्लेख जो इस अर्थ किया गया है कि उसमें सवस्त्र मुक्ति हो जाती है। तब देखिये प्राचीन दशवैकालिक सूत्र के उद्धरण—

अहावरे पंचमे भंते! परिग्गहं पच्चक्खामि से अप्पं वा बहुंवा अणु वा थूल वा चित्तमंतं वा अचित्त-मंतं वा णेव सयंपरिग्गहं परिगिण्हिज्जा णेव अण्णेहि परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गहंपरिग्गिण्हंतेवि अण्णे ण समणुजानामि जावज्जीवाए इत्यादि—

द० वै० चतुर्थ अ० ११

यहा परिग्रह मात्र का त्याग बताया गया है जिस में कि अणुमात्र वा भी संयोग नहीं रहा है वहां वस्त्र पात्र रखनेकी गुञ्जाइश कहासे आई। इसी प्रकार—

जया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणई
तया णिव्विदए भोए जे दिव्वे जे अमाणुसे १६
जया णिविदए भोए जे दिव्वे जे अमाणुसे
तया चयइ सजोग सब्भितर बाहिर ॥१७॥
जया चयइ संजोगं सब्भिंतर बाहिर
तया मुडे भवित्ताण पव्वइए अणगारियं ॥१८॥
जया मुंडे भवित्ताण पव्वइए अणगारिय
तया सवरमुक्किट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं ॥१६॥

द० वै० च० अ०

इन गाथाओंसे भी स्पष्ट है कि गृहस्थ किस प्रकार वैराग्य को प्राप्त होकर दीक्षा धारण करने के लिये बाह्याभ्यतरं परिग्रहों का त्याग करके मुंडित होकर अनगारों में प्रवृत्त होता है तभी उसके उत्कृष्ट सवर और अनुत्तर धर्म लाभ होता है—

जिस श्वेताम्बराम्नाय में शैथिल्योपपन्न वर्तमान सवस्त्र साधुता को देखकर और उसके समर्थक कति-पय वाक्य जिन की रचना शिथिलाचारी साधुओं ने भगवान् महावीर या गौतम गणधर की छाप लगाकर की है उनका मूल्य इन मूल वाक्यों के सामने कुछ नहीं रह जाता ऐसी परिस्थितिमें निर्ग्रंथ शब्द निर्दोष होता हुआ अपने विशेष्य पुलाकादिकों में प्रवृत्ति करता हुआ सवस्त्रता जैसी बहुत दूर की वस्तुओं के सबंध से पृथक करता है।

बकुशो के शरीर के संस्कार का अर्थ कपड़े पहिनना नहीं, किन्तु शरीर में यदा कदाचित् ममत्व-बुद्धि के अश का पैदा हो जाना है क्योंकि इनको 'अखडितव्रताः' विशेषण दिया गया है कभी२ शरीर व पीछी आदि उपकरणों को शोभित रखने की भावना पैदा होना जिसका अर्थ मल परीषह का अजय या रति प्रकृति का प्रकृष्ट उदय हो जाना ही है।

'भावलिंगं प्रतीत्य' आदि का अभिप्राय यह है भावलिग क आलबन से पाचो ही निर्ग्रंथलिंगी हैं द्रव्यलिग की अपेक्षा भेद नहीं है और है भी अर्थात द्रव्यलिग से निर्ग्रंथ है उसी द्रव्यलिंग में बाह्य साधन सामग्री जिसके होने न होनेसे भावोंका तारतम्य होता है इस अपेक्षा भेद प्राप्त है।

परन्तु यह भेद वस्त्रादि सद्भाव या असद्भाव कृत नहीं हो सकता क्योंकि ऐसा मानने में 'निर्ग्रंथाः' पद व्यर्थ हो जाता है।

इसीतरह निर्ग्रंथलिंगेन सिद्धि, सग्रन्थ लिंगेन वा भूतपूर्वनयापेक्षया इसमें भी कोई बाधा प्राप्त नहीं है-

क्यों कि 'सग्रंथलिंगेन वा मुक्ति र्भवति भूतपूर्व-नयापेक्षया' यहां भूतपूर्वनय का एक पूर्व किया गया अर्थ यद्यपि नहीं है फिर भी अंतसमय क्षय होनेवाली अयोग केवली को १३ प्रकृतियां जिनमें जाति गति शरीर आदिक भी हैं उनकी अपेक्षा सग्रन्थ मुक्ति है क्योंकि मुक्त होने के एक समय पहिले यह रहती है। व्यवहित भूतपूर्वनय की अपेक्षा प्रकृत अर्थ में है इसी लिये मंत्यादिक की तरह पूर्व अपेक्षा सग्रन्थ मुक्ति है जो पहिले सग्रन्थ था वही तो निर्ग्रंथ होकर मुक्त गया इस नय के प्रयोग में कोई बाधा नहीं आती।

धवलाकारोपदिष्ट पांच वृत्तों में अन्तर्गत परिग्रह त्यागवृत्त में वस्त्रत्याग हो जाता है।

भगवान् कुन्दकुन्दके इन वाक्योंके उद्धरण देकर-

"पाखण्डिय लिंगाणिय गिह लिंगाणिय बहुप्पया-राणी, धित्तु वदन्ति मूढा लिंगमिणं मोक्खममोत्ति॥

णयहोदि मोक्खमग्गो लिंग जं देहणिम्ममा अ-रिहा लिंगं मुइत्तु दंसणणाण चरित्ताणि सेवन्ति॥

णविपसमोक्खमग्ग पाखण्डी गिहमयाणि लिंगा-णि दंसण णाणचरित्ताणि मोक्खमग्ग जिणा विंति॥

स० प्रा० सर्व वि० १०२॥

निश्चयदृष्टिसे प्रकाश डालते हैं कि रत्नत्रय मार्ग के अलावा गृहीलिंग पाखंडी लिंग आदि मोक्षमार्ग नहीं हैं उसी का साधक निर्ग्रंथलिंग ही मुक्ति का लिंग है विभिन्न लिंगों से मुक्ति प्राप्त नहीं होती है क्योंकि वह अभिन्न कारण साध्य है। इसतरह कुन्दकुन्दाचार्य व अन्य आचार्यों का किया गया निर्ग्रंथता स्वरूप दिगम्बरत्व का विधान प्रमाण ग्रन्थों से मेल खाता है अ र इसी लिये, दिगम्बरता जैसी प्राचीन वस्तु जो अभय मत-सम्मत है परम्पराय से सुरक्षित चली आ रही है हमेशा कलिकालके प्रभाव से प्रवृत्ति में अशु-भता या अशुभतरता अशुभतमता आती है या आ सकती है। इसी से सिद्ध है कि भगवान महावीर के उत्तर काल से शारीरिक संगठनो की कमी परिणामो में अस्थिरता कषायाधिक्य आदि उत्पन्न हो जाने के कारण जो उत्सर्ग मार्ग दिगम्बर मार्ग पर नहीं चल सके, पदच्युत हुए और मनुष्य-सम्भव अपने पद की रक्षा के अभिमान ने अपने उस शिथिल चारित्र को भी भगवान महावीर के नाम से उनके उपदेश की छाप लगा दी। काश निसर्गमार्ग सवस्त्रता भी होती तो दिगम्बरता जैसी कष्टसाध्य कठोरचर्या को ओर ऐसे समय में जब कि शारीरिक शक्ति के ह्रास के साथ २ मानसिक व आत्मीय बल की कमी हो रही हो, कषाय और विषयाशा संसारकी तरफ खींच रहे हों साथ में फल मे कोई विशेषता न हो तो हठ से भी कोई उसके स्थान पर इसे स्थान नहीं दे सकता। यह माना हुआ सिद्धांत है कि ढालू जमीन मे डाला गया जल नीचेकी ओर जायगा ऊपर की ओर नहीं।

इस लिये सिद्ध है कि संयमी का समानाधिकार वस्त्रत्याग ही है सवस्त्रता नहीं और इसी लिए सवस्त्र सयमी नहीं और इसी लिये मोक्ष प्राप्त करने का वह अधिकारी नहीं।

क्या केवलीके भूख-प्यासादिकी वेदना है?

कुन्दकुन्दाचार्यने ही क्यों उनके पहिले और बाद के तमाम आचार्यों ने सयोग केवली के क्षुधादि १८ दोषो का अभाव माना है इन १८ दोषों में सब या कोई भी रहना उनकी वीतरागता और सर्वज्ञता के

बाधक हैं। इसी लिये दोषाभाव और वीतरागत्व की व्याप्ति बनती है— आगे समीक्षक ने तत्वार्थ सूत्र कार के स्वरूप प्ररूपक सूत्र "एकादश जिने" को विधिपरक मानकर जो अर्थ किया है और उस अर्थ में सबलतासे तत्वार्थ सूत्रकारको घसीट कर अपना अर्थ समर्थन कराना तथा उस सूत्रके टीकाकार या वार्तिक कारों द्वारा किये गये व्याख्यान को 'सिद्ध करने का प्रयत्न' जैसे तुच्छ शब्दसे निर्देश करते हुए जो परिस्थिति पेश की है वह विषम है—

केवली में क्षुधादि प्रवृत्ति-निमित्तता वेदनीय कर्म द्वारा मानी जाती है इसी वेदनीय के लक्षण पर विचार कर लेने से यह प्रश्न हल हो जायगा—

अक्खाणं अणुभवणं वेयणिय सुहसरूवयसाद
दुःखसरूवमसादं त वेदयदीदि वेदणियं ॥

गो० क० १४

इन्द्रियों या अपने २ रूपादि विषय का अनुभव करना वेदनीय है सुखरूप अनुभव सातावेदनीय तथा दु खरूप अनुभव असाता वेदनीय है इन दोनो तरह के अनुभवनोंको छोड़ वेदनीय कोई अन्यस्वरूप नहीं वेदनीय कर्म के लक्षणमें मोह का अनुभाव या सुखात्मक व दु खात्मक अनुभव कराने के प्रधान कारण रागद्वेष मौजूद हैं कहीं नोकषयोदय प्राप्त रति अरति भी इनमें बल देते हैं इस तरह क्षायोपशमिक इन्द्रिय ज्ञान और मोह का प्रभाव मिल कर उदय प्राप्त वेदनीय का लक्षण बना देते हैं जहां तक इन दोनो का साहचर्य इसे मिलता जाता है वहा तक इसके उदयमें कोई बाधा नहीं पहुचती।

मोह के प्रभाव का समर्थन—

"घादिवबेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं"

गो० कर्मकांडके इस वचनसे हो जाता है। यहां जीव के घातकाभिप्राय इष्टानिष्ट विषय प्रवृत्त उपयोग का स्वस्वरूपादि गुणोंमें प्रवृत्त न होने मात्रसे है इसी लिये औपचारिक है अन्यथा इसे घातिपना प्रसगोपात्त हो जाता अस्तु, प्रकृत में (केवली में) मोह का प्रभाव नष्ट हो जाने तथा इन्द्रियों द्वारा अनुभवन न होनेसे पूर्वोक्त वेदनीयका लक्षण जो शास्त्र सम्मत है केवली के उदय प्राप्त वेदनीय में घटित ही नहीं होता क्योंकि क्षायिक ज्ञानादि लब्धियो के प्राप्त हो जानेपर क्षायोपशमिक इन्द्रियज्ञान और उनके अनुभव यहा नहीं है अब वह वेदनीय जो छद्मस्थ में सफल प्रवृत्त होती थी यहा नहीं हो सकती क्योंकि यह लक्षण लक्ष्य में ही नहीं रहा इसी लिये केवली की वेदनीय का (उसमें उदय प्राप्त है) दूसरा लक्षण करना पड़ेगा और वह इस लक्षण से भिन्न होगा।

इस दृष्टि से वेदनीय के प्रभावक मोहनीय और सहायक ज्ञानावरणीय प्राप्त क्षयोपशम के नष्ट हो जाने से स्वयं प्रभाव्य वेदनीय केवली में क्षुधादि प्रवृत्ति के प्रति प्रभावक नहीं बन सकता और उसकी स्थिति समय प्रमाण है उदय होतेहुए भी सत्ता समान है उसका कोई फल यहां नहीं है ग्रन्थकारने लिखा है कि यह घातिया कर्मोंकी तरह जीवका घात करता है तब घातिया कर्मों की शक्ति और व्यक्ति के अभाव हो जाने के समय वेदनीय की शक्ति का नाश हो जाना माना जायगा केवल उसकी व्यक्ति स्थिति लिये हुए प्रदेश रह जायगे वे क्षुधादि में प्रवृत्त करने में समर्थ नहीं। विषधर को विष रहित कर देने पर जैसे उसमें प्राणघातक शक्ति नहीं रहती उसी प्रकार यहां भी निःशक्ति वेदनीय केवली में ११ परीषहें

पैदा नहीं कर सकेंगी। सूत्रकार ने निर्देश कारण की सत्ता मात्र की अपेक्षा किया है केवली में परीषहों का होना देखकर नहीं। कारण असमर्थ हो तथा उपादान स्वयं तदनुकूल परिणत होने में शक्ति शून्य हो तो कारण कार्य पैदा ही नहीं करेगा उसी असमर्थ कारण को कारणता दिखाने के अर्थ में सूत्रकार का सूत्र और व्याख्याकारों की व्याख्यायें निराबाध हैं।

कर्मसिद्धान्त की व्यवस्था से अप्राप्त भी भोजन केवली के क्यों माना जाता है ?

शरीर स्थिति के लिये? नहीं क्योंकि केवल कवलाहार ही शरीर स्थिति नहीं रखता।

नोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्यमाहारो
ओजमणो विय कमसो आहारो छव्विहोणेयो ॥

बल्कि इन छः प्रकारीय आहारों में केवली के शरीर स्थिति में सहायक नोकर्माहार है जिसका—

पडिसमयं दिव्वतमं जोगीणोकम्म देहपडिबद्धं
समयपबद्धं बधदि गलिदव सेसाउमेत्तठिदी ॥

स्वरूप यह है, ग्रहण करते हैं।

फिर भी केवल ज्ञानी अगर आहार ग्रहण करते हैं तो केवलज्ञानोपयोग से या भिन्नेंद्रियोपयोग से केवलज्ञान दशामें भोजन करना सम्भव नहीं क्योंकि बिना उपयोग के भोजन उन्मत्त ही करते हैं विवेकी नहीं तथा इसी बुभुक्षा पिपासादिकी तरह क्या रिरसा भी मान लेंगे क्योंकि यह एक इच्छा है अगर इच्छा है तो सब कामित किये जा सकते हैं। अगर नहीं है तो केवल वेदनीय के नाम मात्र बल पर भोजनादि भी नहीं कहे जा सकते। अन्यथा रथ्यापुरुषवत् वह संसारी ही होगा हमारा पूज्य हितोपदेष्टा नहीं। इस तरह प्रोफे० सा० का यह लिखना कर्म-सिद्धांतसे युक्ति युक्त सिद्ध नहीं होता, सरासर असिद्ध है। प्रकृतमें उपसंहारात्मक परिस्थिति यह रह जाती है कि मोहानुभाव सहित वेदनीय की सन्तति क्षीण होकर विशुद्ध परिणामों से बन्धी वेदनीय जिसमे मोह का प्रभाव नहीं हो उसका उदय कोई बाधा-प्रद नहीं हो सकता समयस्थितिक बन्धवाली वेदनीय उदयावलि मे पहुंच कर अविपाक निर्जरा रूपहोकर निर्जीर्ण होती जायगी

सयोगी और अयोगी में वेदनीय का उदय मानने का कारण तो योगकृत बध है उदय में कारण हम बधको समझें फल को न समझें तो कोई शका ही नहीं रहजाती है

अन्त में समन्तभद्राचाय का—

पुण्य ध्रुव स्वतो दु खात् पाप च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्या युञ्ज्यान्निमित्ततः ६३

इस कारिका के उल्लेखसे तो आपने अपने न्याय विषयक ज्ञानको न्याय के विद्यार्थियों द्वारा परिहसनीय ही बनादिया है क्यो कि यहा 'वीतराग': मुनि. का विशेषण बना है जैसे दूसरी बार विद्वान विशेषण बना है। अभिप्राय यह है कि एक वीतराग इष्टानिष्ट पदार्थो मे समबुद्धि मुनि जब कायक्लेशादि रूप पर-जनो द्वारा ऐसा समझा गया कि यह कितना दु'ख उठा रहा है अपनेमे दु ख पैदा करने से पुण्य बध से तथा दूसरा विद्वान् साधु शास्त्राध्ययनादि क्रियाओं से स्वयं आनंदका अनुभव करता हुआ पाप से बध जायगा यह अर्थ है। आपने 'वीतराग' पदको देखकर सयोगी अर्थ समझा है जो कि वस्तुतः नहीं है क्यों कि सयोगी दुःखी नहीं पाया जाता कारण उस की असाता भी साता रूप से परिणत होकर उदय प्राप्त होती है ऐसी परिस्थिति मे स्वात्मनि

सुखी प्रकृत पुण्यबंध का दृष्टान्त कैसे हो सकता है इसी अर्थका समर्थन अष्टशतीकार भट्ट अकलंक देव ने इस प्रकार किया है 'आत्मसुःखदुःखाभ्या पापेतरैकान्तकृतान्ते पुनरकषायस्यापि ध्रुवमेव बन्ध. स्यात् ततो न कश्चिन्मोक्तुमर्हति तदुभयाभावासभवात्' यहा अकषायका अर्थ ईषत्कषाय वाला है या श्रेणी मे १०, ११, १२वे गुणस्थान वाला है उसमे तपश्चरण ध्यानादि द्वारा दु.ख जिसे सासारिक दु.ख समझते हैं, पैदा होता है १३वे वालेके नहीं क्योकि वे ध्यानादि कायक्लेशादि तपशून्य है तथा मोक्तुमर्हति कहे जाने वाले ईषत्कषायी साधु ही होंगे मुक्त या जीवन्मुक्त नहीं इस तरह विचार के बाद इस कारिका को प्रकृत में जहा कि आपने उद्धृत की है कोई उपयोग नहीं होता सो विचार लें।

इसतरह उपर्युक्त मूल तीनों सिद्धान्तों पर किया गया विचार दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के शासनो के भारी मौलिक मतभेदको सिद्ध करता है

इस निबध मे किया गया विचार विद्वान् शंकाकार को वस्तुस्थिति तक पहु चाने मे उपादेय होगा।

श्रीमान पं० दयाचन्द्र जी शास्त्री,

श्रीनाभिनन्दन विद्यालय,

-बीना-

* श्री वीतरागाय नमः *

संसार प्राणियो का खजाना है, वे तीन भागों में विभक्त हैं १ बहिरात्मा, २ अन्तरात्मा। जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं वे बहिरात्मा नाम से कहे जाते हैं। वे आत्मायें जोकि सम्यग्दर्शनसे विभूषित हो, ज्ञानचक्षु से मोक्षपथ का अवलोकन करती हुई उस पर गमन करती हैं अन्तरात्मा शब्द से जगत मे प्रसिद्ध है। आत्मा का तीसरा भेद परमात्मा है उसके भी दो विभाग हैं १ सकल परमात्मा और २ निकल परमात्मा। उनमें से निकल परमात्मा वे हैं जो द्रव्यभाव व नोकर्म से रहित हैं सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों से देदीप्यमान हैं सैंकड़ो कल्पकाल व्यतीत हो जाने पर भी जिन आत्मओ में कभी विकार होने वाला नहीं है जो सिद्ध और शुद्ध हैं। अब विचारणीय हैं सकल परमात्मा, यह आत्मा की एक विचित्र अवस्था है इस अवस्था मे विद्यमान आत्मा अष्ट कर्म रहित न होने के कारण सिद्ध (मुक्त) भी नहीं कही जाती और ससारी की तरह अनन्त ससारानुबन्ध न होने से ससारी या अमुक्त भी नहीं कहा जा सकती। ऐसी दशा में आत्मा को 'जीवन्मुक्त' आदि दूसरे शब्दों से प्रयुक्त किया जाता है अर्थात जो ससारी होते हुए भी मुक्त हैं या मुक्त की तरह हैं, जिनके ४ घातिकर्म का अभाव और अघाति-चतुष्टय का सद्भाव है, घातिचतुष्टय का अभाव होने से ६३ प्रकृतियों का बन्ध-उदय-सत्व आदि सबका अत्यन्त क्षय होने के साथ ही अनन्त चतुष्टय का आविर्भाव आत्मा में हो जाता है। केवलज्ञान मुख्य होने से उनको केवली शब्द से कहा जा सकता है। इस दशा में जो अघातिचतुष्टय की सत्ता है वह घाति कर्म का क्षय हो जाने से कुछ भी कार्य करने को समर्थ नहीं, वह तो सत्तामात्र जली हुई रस्सीकी तरह है। घातिकर्म के बिना अघातिकर्ममे स्वतत्र फलदा शक्ति नहीं है, पर घातिक्षयके पूर्व जो अघातिकर्म का प्रभाव प्रबल था वह न होकर मात्र कुछ समय सत्तादि बन्धन है अत. मुक्त दशा नहीं कही जाती। प्रकृति-सिद्ध प्राचीन दिगम्बर सिद्धान्त के अनुसार जीवन्मुक्त आत्मा मे अतिशयो की विशेषता होती है—घातिकर्म के क्षयपूर्वक अघातिकर्म निर्बल हो जाने से पुण्यविशिष्ट आत्मा में अतिशय प्रगट होना स्वाभाविक है ये अतिशय ११ प्रकार के होते हैं। जो केवलज्ञान होने पर प्रगट होते हैं।

श्रीत्रिलोकप्रज्ञप्ति भाग १ के पृष्ठ २६३ में श्रीयति वृषभ आचार्य कहते है।

जोयणसदमज्जादं सुभिक्खदा चउदिसासुणियराणा
णहगमणमणहिंसा भोयणउवसग्गपरिहीणा।८६६।

तथा ६०० से ६०६ तक की गाथायें हैं। इन गाथाओं में केवलज्ञान के होने पर ११ अतिशय

केवली के दर्शाये गये हैं। आ० कुन्दकुन्द और श्री यतिवृषभ आचार्य में समय का विशेष अंतर नहीं है। इन केवली के अतिशयों के विषय मे जो पूर्ववर्ती श्री कुन्दकुन्द आ० ने प्रतिपादन किया है वही उत्तरवर्ती श्री यतिवृषभाचार्य ने तथा उत्तरोत्तर कालवर्ती उमास्वाति, पूज्यपाद, अकलकदेव, समन्तभद्र इत्यादि—आचार्यों ने प्रतिपादन किया है। कहीं पर स्पष्ट विरोध दिखाई नहीं देता।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे उक्त अतिशयो की पूर्णता नहीं मानी गई अर्थात् केवली के भोजनाभाव तथा उपसर्गाभाव नहीं माना शेष अतिशय प्राय माने गये हैं। पर यह विषय युक्ति व प्रमाणसंगत नहीं है।

श्री प्रोफे० हीरालाल जी नागपुर ने—

हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस मे अखिल भारतीय प्राच्यसम्मेलन के १२वे अधिवेशन के समय अध्यक्षपद से स्त्रीमुक्ति सवस्त्रमुक्ति और केवली के भुक्ति तथा उपसर्गादिक होने के विषय मे अपने विचार प्रगट किये है जो श्वेताम्बर मत का समर्थन करते हुए उसकी पुष्टि करते है। आप का यह विचार विरोधपूर्ण है आपने अपने विचारो का पुष्ट करने के लिये दि०आचार्यों की कृतियो मे भी विरोध दर्शाने की चेष्टा की है आपने अपने ट्रैक्ट में लिखा है कि—

"कुन्दकुन्दाचार्य ने केवली के भूखप्यासादि की वेदना का निषेध किया है पर तत्त्वार्थसूत्रकार ने सबलता से यह सिद्ध किया है कि वेदनीयोदयजन्य क्षुधा-पिपासादि ११ परीषह केवली के भी होते है। 'एकादश जिने' इस सूत्र मे सर्वार्थसिद्धिकार तथा राजवार्तिककार ने जो क्षुधादिवेदना का अभाव केवली में सिद्ध किया है वह कर्मसिद्धान्त से घटित नहीं होता इत्यादि'।

अब इसके उत्तर में विचार करना आवश्यक है। श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने जो क्षुधादि वेदना का अभाव केवली के बतलाया है उसी का अनुसरण करते हुए उन के निकट उत्तरवर्ती उमास्वाति आचार्य ने भी "एकादश जिने" इस स्वरचित सूत्र मे वही भाव दर्शाया है। यद्यपि सूत्र मे गिनती के ६ अक्षर अवश्य है पर उन्ही अक्षरों के बल पर सहसा यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि मुख्यत वेदनापूर्वक ही केवली के ११ परीषह होते हैं। सूत्र अल्पाक्षर और सोपस्कार होते है।

दूसरी बात-अनेक आचार्यों की टीकाये इन्ही सूत्रों पर है उनमें परस्पर कही भी विरोध नहीं देखा जाता। जिनभगवान मे जो ११ परीषह है वे उपचार से हैं मुख्यत. नही, ध्यानकी तरह। यहा पर उपचार का कारण— जिन मे ११ परीषहो का कारणभूत-वेदनीय का सद्भावमात्र है। यहा कारण के सद्भावमात्र से कार्य की कल्पना की गई है इसलिये मुख्य के अभाव मे उपचार प्रवृत्त हुवा। यहा प्रश्न हो सकता है कि जब वेदनीय कारण है तो ११ परीषह रूप कार्य होना चाहिये।

इसका उत्तर है कि यहा कारण शब्द सामान्य है। समर्थकारण के रहते कार्य की उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं। मोहनीय के अभाव मे वेदनीय समर्थकारण नहीं, अतः ११ परीषहो की उपस्थिति नहीं हो सकती। वेदनीय असमर्थ कारण है मोह बिना। जिसप्रकार सेनापति के रहते सेना विजय का समर्थ कारण है उसके अभाव मे नहीं, इसी प्रकार वेदनीय कर्म हैं। जिस प्रकार सेनापति के मरने पर साहस और जोश-हीन होने से सेना अपने मे

निर्बलता या अनाथ का अनुभव करने लगती है तथा युद्धक्षेत्रमें हथियार आदिके रहते भी पूर्ववत युद्ध नहीं कर सकती, उसी तरह आत्मा में निर्बल वेदनीय का उदय रहते भी मोहराजा के अभाव मे पूर्ववत वेदनानुभव नहीं होता चाहे बाह्यसामग्री हो या न हो।

दूसरी बात-मोह नाश होने से वेदनीय में स्थिति और अनुभाग भी नहीं होता। केवल सत्ता और उदयमात्र कार्य योग के बलपर होता है वेदनानुभव नहीं। (देखो-सर्वार्थसिद्धि अध्याय ६ सूत्र ११ की टीका।) प्रकृति प्रदेश एक समयमात्र रहते हैं। जब घातिकर्म का उदय रहता है तब आत्मा के ज्ञानादिगुण अव्यक्त रहते है और वेदनीय कर्म मे जोश रहता है इससे शक्ति हीन आत्मा मे सुख दुख का वेदन होता है। और जब घाति-क्षय मे आत्मा मे अनन्तगुण विकसित हो जाते हैं तथा वेदनीय का प्रभाव भी नष्ट हो जाता है तब अनन्तगुणशाली आत्मा मे निर्बलवेदनीय का कोई असर नहीं पडता, उसके उदय रहते हुए भी। अनन्त सुख के सामने वेदनीय का सब दुख कुछ बल नहीं रखता, जैसे सूर्यप्रकाश मे दीपक और मत्रके समक्ष विष।

जब केवली में वेदनीय-जन्य क्षुधादि वेदना नहीं है तब उसके प्रतीकारार्थ कवलाहार मानने की भी आवश्यकता नहीं है क्योकि अस्मदादि की तरह वेदना प्रतीकारार्थ कवलाहार मानने में आप्तत्व का विच्छेद हो जायगा। संसारी अन्यप्राणी और केवली मे कोई भेद न रहेगा। कवलाहार से रागद्वेषइच्छा रूप मोहका सद्भाव, उससे घातित्रयका सद्भाव, उससे वीतरागता का अभाव-उससे सर्वज्ञता का अभाव-उससे हितोपदेशकता का अभाव होने से आप्तत्व का नाश होता है इसलिये केवली के कवलाहार का अभाव मानना आवश्यक है।

प्रश्न— कवलाहार के बिना केवली के शरीर की स्थिति कैसे रहती है। इसका उत्तर यह है कि लाभान्तराय के क्षय से प्रतिसमय आनेवाले, (कवलाहार के बिनाही केवली के शरीर की स्थिति) बलप्रद-परमशुभ-सूक्ष्म-अनन्त पुद्गल-परमाणुओ के सम्बन्ध से होती है (देखो-सर्वार्थसिद्धि अ० २-सूत्र ४ की टीका)

उक्त कथन से यह सिद्ध हुवा कि कवलाहार के बिना ही, किसी दूसरे आहार से (नोकर्माहारसे) केवली के शरीर स्थिति रहती है जैसे कि गर्भस्थ-बालक-अंडे म का प्राणी-वनस्पति और देव आदि कवलाहार के बिना अन्य आहारों से शरीर स्थिति प्राप्त करते है। इसमे आगम से कोई विरोध भी नहींआता क्योकि आगममे आहार ६ प्रकारका कहा है १ नोकर्म, २ कर्म, ३ कवलाहार, ४ लेप्य, ५ ओज, ६ मानसिक। यह नियम नहीं कि कवलाहार से ही देहस्थिति होती हो, किन्तु यथासभव अन्य ६ आहारो से भी देहस्थिति रहती है अत. केवली के कवलाहार मानना युक्त नहीं।

श्री प्रभाचन्द्राचार्य जी ने केवली के कवलाहारत्व का युक्ति और प्रमाणोसे अच्छा खण्डन किया है (देखो - श्री प्रमेय कमल मार्तण्ड के द्वितीय परिच्छेद-पृष्ठ ८४ से ८७ तक) तथा घातिकर्मक्षय से उदय रहते हुए भी वेदनीय मे फलदान की सामर्थ्य नहीं। जैसे कि मत्रके द्वारा शक्तिक्षीणविष का प्रयोग होने पर भी उसमे कार्यकरण सामर्थ्य नहीं। इसी विषय को श्री अकलंक देव ने राजवार्तिक मे स्पष्ट

किया है (देखो–रा० वा० अ० ६ सूत्र ११ का भाष्य और टीका)

इसी विषय को सिद्ध करते हुए श्री विद्यानन्दि स्वामी ने श्लोकवार्तिक में कहा है—

एकादशजिने सन्ति शक्तितस्ते परीषहाः ॥

व्यक्तितो नेति सामर्थ्यात् व्याख्यानद्वयमिष्यते १

अर्थात्-केवली जिन मे शक्ति की अपेक्षा ११ परीषह हैं और व्यक्ति की अपेक्षा एक भी परीषह नहीं है इस विवक्षा की सामर्थ्य मे दोनो तरह का व्याख्यान अभीष्ट है, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जिन मे घाति कर्म के अभाव से, असमर्थकारण के सद्भाव से, ११ परीषहो की उपस्थिति नहीं होती है उपचार से (शक्ति से) कहे जा सकते हैं। आगे चल कर श्री विद्यानदि जी ने इसी विषय को युक्ति और प्रमाणसे निष्पक्ष-भावपूर्वक सिद्ध किया है। देखो श्लोकवार्तिक पृ० ४६२ अ० १ सूत्र ११ की कारिका न० १ से १० तक)।

इन प्रमाणो और युक्तियो से सिद्ध होता है कि केवली जिन के क्षुधादिवेदनानुभव नहीं और कवलाहारत्व नहीं है।

श्री प्रो० हीरालाल जी ने अपने ट्रेक्ट मे आप्तमीमांसा की ६३वीं कारिका का मनमाना अर्थ लगाकर श्री स्वामी समन्तभद्र को भी अपना अनुयायी बनाना चाहा है। पर यह धारणा भी गलत है। केवल इसी कारिका को स्थूलदृष्टि से देखकर श्री स्वा० समन्तभद्र का यह भाव नहीं जाना जासकता है कि जैसा प्रो० सा० ने ज्ञात किया है। केवलि जिन के दुःख सुखादि हैं या नहीं – इस विषय मे समन्तभद्र का मत जानने के लिये तत्कृत अन्यग्रन्थों पर दृष्टिपात करना होगा। यदि स्वा० समन्तभद्रका अभिप्राय केवलि के सुख दुखादि सिद्ध करने का होता तो वे बृहत् स्वयम्भूस्तोत्र मे श्री अभिनन्दन का स्तवन करते हुए यह श्लोक क्यो कहते—

क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः स्थिति –
र्न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो-नास्ति च देहदेहिनो
रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥१८॥

इससे स्पष्ट यह सिद्ध होता है कि क्षुधादि दुःखके प्रतिकार से तथा इन्द्रियजन्य सुख से केवली के शरीरस्थिति नहीं है इत्यादि।

इससे सिद्ध होता है कि आप्तमीमांसा की कारिका न० ६३ म समन्तभद्र का अभिप्राय केवली के सुखादि तथा कवलाहारत्व सिद्ध करने का नहीं था। किन्तु छठे गुणस्थानी छद्मस्थ वीतराग मुनिसे था।

अन्य प्रमाण—

श्री नेमिचन्द्र जी सिद्धात चक्रवर्ती ने केवलि के विषय मे कहा है—

प्रश्न-वेदनीयजन्य सुखदुख केवलीके होना चाहिए

उत्तर-णट्ठायरायदोसाइंदियणाणं च केवलिम्हिजदो
तेणदुसादासादजसुहदुक्खंणत्थि इंदियज ॥२७३

वेदनीयकर्म केवली के सुखदुख का कारण नहीं, इसमे युक्ति—

समयट्ठिदिगोबंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेणपरिणमदि २७४

केवली के ११ परीषह कार्यरूप नहीं हैं क्यों—

एदेणकारणेण दु सादस्सेव दु णिरतरो उदओ।
तेणासादणिमित्तापरीसहा जिणवरेणत्थि ।२७५।

[कर्मकाड पृ० १०२-१०३ ।]

❀ स्त्री-मुक्ति ❀

श्री प्रोफे० हीरालालजी ने 'स्त्री-मुक्ति' विषय पर भी अपने विचार श्वेताम्बर मान्यतानुसार समर्थन करते हुए प्रगट किये हैं आप कहते हैं कि—"श्वेताम्बरमान्यतानुसार जिस प्रकार पुरुष मोक्षाधिकारी हैं उसी प्रकार स्त्री भी। पर दिगम्बर सम्प्रदाय की कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा स्थापित आम्नाय में स्त्रियों को मोक्षाधिकारिणी नहीं माना। इस बात का स्वयं दि० शास्त्रों से कहां तक समर्थन होता है यह विचारणीय है" इत्यादि।

अब विचारार्थ विषय यह है कि श्वेताम्बरमत में पुरुषवत् स्त्री को भी मोक्षाधिकारिणी माना है तो इस उदारता को सिद्ध करने केलिये युक्ति व प्रमाण क्या है। क्या हेतु है। प्रतिज्ञा मात्र से साध्यसिद्धि नहीं होती है।

जब स्त्री पुरुषवत् सर्वाधिकारिणी है तो क्या श्वेता० साहित्यानुसार इतिहास में केवलिनी-जिना-अर्हती तीर्थंकरी-चक्रवर्तिनी-बलभद्रा- नारायणी—प्रतिनारायणी गणधरी इनका स्वव्यक्तित्वेन कथन है है या नहीं। यदि इनका वर्णन है तो इनका चारित्र सप्रमाण उपस्थित कीजिये। यदि उनका वर्णन नहीं है तो उक्तपदवीधारी स्त्रियां न होने से सर्वाधिकार कहां रहा। पुरुषवत् स्त्रियों को भी उक्त पदवी धारी होना चाहिए। तथा जो स्त्रियां आजतक मुक्त हुई हैं, क्या उनको किसी श्वे० ग्रन्थ में नमस्कार किया गया है कि—ॐ नमः सिद्धाभ्यः, श्री जिनायै नमः, गणपत्न्यै नमः इत्यादि। तथा किसी श्वेता० आचार्य द्वारा किसी मुक्तस्त्री का स्तोत्र भी रचा गया है क्या। सप्रमाण स्पष्ट करना आवश्यक है यह भी विचारणीय है कि स्त्री यदि सर्व शक्ति शालिनी है तो कौन कौन आचार्याणी-साध्वी-उपाध्यायानी ने कौन कौन श्वेता० ग्रन्थों की रचना की, शास्त्रार्थ किया और विहार किया ?

इन बातों पर विचार करने से उत्तर प्रमाण शून्य ही दिखाई देगा,—इससे सिद्ध होता है कि स्त्री में कुछ शक्ति या विकाश की कमी अवश्य है कि जिससे उक्त विषयों की वे पूर्ति नहीं कर सकतीं।

दिगम्बर सम्प्रदाय में तो स्त्रीमुक्ति का स्पष्टतः निषेध किया गया है तथा तीर्थंकर चक्रवर्ती-नारायण बलभद्र आदि पद धारी स्त्रियां न हुईं, न देखीं, न सुनी गईं। किसी भी दि० जैन आचार्य ने स्त्री मुक्ति का समर्थन नहीं किया है, न किसी दि० जैन ग्रन्थ में द्रव्य स्त्रीमुक्ति का वर्णन ही मिलता है। प्रोफे० सा० ने श्री कुन्दकुन्द स्वामी को स्पष्टतः स्त्री मुक्ति निषेध का दोषा रोपण करते हुए कहा है कि 'इन्होंने गुणस्थान तथा कर्मसिद्धान्त का व्यवस्थित विवेचन ही नहीं किया है आदि" यहां यह विचारणीय है कि सभी आचार्यों ने सभी विषय का व्याख्यान नहीं किया है किन्तु अपने अपने दृष्टिकोण तथा विषय प्राधान्य को लेकर रचनायें की हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने प्रधानतया अध्यात्म विषय को लेकर अपनी रचनायें की हैं यह तो उनका दृष्टिकोण था। यदि उन्हों ने गुणस्थान तथा कर्मसिद्धान्त का विवेचन नहीं किया है तो यह उनकी इच्छा थी यह कोई दोष नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार तो सर्व आचार्यों पर दोषारोपण हो सकता है कि समन्तभद्र ने व्याकरण का, विद्यानन्दिने अध्यात्म का, अकलंकदेव ने साहित्य का, उमास्वाति ने न्याय का विवेचन नहीं

किया है आदि आदि। अत. उक्त कथन युक्ति पूर्वक नहीं है।

अब रह जाता है शास्त्रीय व्यवस्था से स्त्री मुक्ति पर विचार—दि० जैन आचार्यों ने अपनी कृतियों में कहीं पर भी स्त्री मुक्ति का समर्थन नहीं किया। हा अनेक ग्रन्थों में जो मनुष्य मनुष्यनी के १४ गुणस्थान दर्शाये हैं वे सब भाववेद की अपेक्षा से हैं इससे द्रव्य या भाव स्त्री की साक्षात मुक्ति सिद्ध नहीं हो सकती। इसका स्पष्ट यह है कि वेद तो नवमे गुणस्थान के सवेद भाग तक रहते हैं इसके आगे कोईभी वेद मोहकर्मजनित नहीं रहता, हा, नामकर्म-जनित बाह्यरचना रूप पु वेद जरूर रहता है यह मोह के अभाव में वेदजन्य सुखदुखजनक नहीं होता, वह केवल शरीर का सद्भाव मात्र है, द्रव्य रचना है। इस लिये द्रव्यवेदके रहते साक्षात मुक्ति या १४ गुणस्थान कहे हैं वर्तमान नय की अपेक्षा। पर भाववेद की अपेक्षा जो १४ गुणस्थान या मुक्ति कही गई है वह भूतनयकी अपेक्षासे है, न कि साक्षात। इसका खुलासा यह है कि किसी भी भाववेद के साथ द्रव्यपु वेदी क्षपक श्रेणी चढता है, वह नियम से मोक्षगामी है, इस जीव के आगे चल कर १४वा गुणस्थान अवश्य होना है क्योंकि क्षपक श्रेणी चढ़ा है। इस दृष्टि से द्रव्यपुंवेद के साथ जो उसके भाववेद है उसके नाम से १४ गुणस्थान या मुक्ति कहते हैं, पर वास्तव मे क्षपक श्रेणी का आरोही उस द्रव्य पुरुष के तीनों भाववेद नवमें गुणस्थान के सवेदभाग में ही नष्ट हो जाते हैं केवल द्रव्यपु वेद की सत्ता ही रहती है। इस से यह स्पष्ट होता है कि श्रेण्यारोहणकाल मे द्रव्यपु-वेदी के जो भाववेद (पुं-स्त्री-नपुं०) होते हैं, भाव-नय की अपेक्षा उन्हीं वेदों के १४ गुणस्थान कहे जाते हैं और जब वह वेदों का नाश करता हुवा १४ वे गुणस्थान में पहुंचता है तब उस भाववेदी के भूतनय की अपेक्षा १४ गुणस्थान या मुक्ति कही जाती है, साक्षात भाववेदी के मुक्ति नहीं होती। यदि प्रोफे० सा० श्रेण्यारोहणकाल मे भाववेद की दृष्टि से द्रव्यस्त्री के मुक्ति मानते हैं तो द्रव्यनपु सक के भी मुक्ति का प्रसग आ जायगा। इसमे जो हेतु दिये जायगे वे स्त्रीपक्ष मे भी प्रवृत्त होते जायगे। इसलिये मानना पडेगा कि भाववेद का नवमे गुण में नाश हो जाताहै और द्रव्यपु वेदका १४वे गुणस्थान तक सद्भाव रहता है। भूत और भाविनय की अपेक्षा तीनो भाववेदों मे १४ गुणस्थान का वर्णन अयुक्तिपूर्ण नहीं है। इस विषय को सर्वार्थसिद्धि मे कहा है—"अवेदत्वेन, त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो न द्रव्यत। द्रव्यत पुल्लिंगेनैव" अर्थात निश्चयनय मे अवेद से मुक्ति। व्यवहार से भूतनयापेक्षया तीन भाववेदो से और वर्तमाननयेन द्रव्यपु वेद से मुक्ति होती है (सर्वार्थ० अ० १० सूत्र ६ पृ० ३२०)

श्री विद्यानन्दि स्वामी ने श्लोक वार्तिक में इस विषय पर कहा है—

> सिद्धि सिद्धिगतौ पु सा, स्यान्मनुष्यगतावपि।
> अवेदत्वेन सा वेदत्रितयाद्वास्ति भावत.॥७॥
> पुंल्लिंगेनैव तु साक्षात द्रव्यतोऽन्या तथागम—
> व्याघातायुक्तिबाधाच्च स्त्र्यादिनिर्वाणवादिनाम

आठवी कारिका के अन्त मे स्पष्ट कह दिया है कि स्त्री आदि के निर्वाण मानने वालो के (श्वेताम्बर आदि) आगम का व्याघात तथा युक्तियो स बाधा आने के कारण मुक्ति की अन्य व्यवस्था नहीं बन सकती, किन्तु उक्त प्रकार व्यवस्था हो सकती है आदि। [देखो श्लोकवार्तिक अ० १० सू० ६ की

कारिका ७-८। पृ० ५११]।

इसी विषय पर श्री अकलंकदेव ने राजवार्तिकमें कहा है—लिंग-त्रिविधो वेदः। अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिः। वर्तमान-विषय-विवक्षायामवेदत्वेन सिद्धिः। अतीतगोचरनयापेक्षया अविशेषेण त्रिभ्यो वेदेभ्यः सिद्धि —भावं प्रति, नतु द्रव्यं प्रति। द्रव्यापेक्षया तु पुल्लिंगेनैव सिद्धि. (रा० वा० अ० १० सू० ६ व्याख्या पृ० ३६६)।

१-प्रोफे० सा० ने योनिनी या मनुष्यणी शब्दमे द्रव्य स्त्रीवेद का ही ग्रहण किया है यह युक्त नहीं है, इन शब्दो मे भावस्त्री का भी ग्रहण होता है। यदि ऐसा नहीं है तो हम पूछते हैं कि भावस्त्री के लिये कौन सा शब्द प्रयुक्त है। स्त्री-नारी-मनुष्यणी आदि जो भी शब्द कहे जावेंगे, वे सब द्रव्य स्त्री मे भी प्रयुक्त हो सकते हैं इस लिये कोई न कोई सामान्य शब्द अवश्य प्रयुक्त करना होगा। यहा योनिनी मनुष्यनी आदि सब सामान्य स्त्री बोधक शब्द हैं उनसे उभय ग्रहण होगा। प्रकरण में हर जगह भावयोनिनी वा द्रव्ययोनिनी आदि विशेष शब्द प्रयोग पुन २ नहीं हो सकता—किन्तु सामान्य शब्द प्रयोग भी लाघवादि केलिये किये जातेहैं प्रकरणवश उनका अर्थ समझना चाहिये। जैसे—'स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि' यहा पर स्पर्शनादि शब्दो से भाव–द्रव्य दोनो इन्द्रियो का ग्रहण होता है। क्षेत्रकाल गतिलिंग..... इत्यादि सूत्र मे सामान्य शब्द विशेष के बोधक हैं इत्यादि सैंकड़ो उदाहरण श्वेता० दि० शास्त्रों मे भरे पड़े हैं। अत. योनिनी-मनुष्यनी आदि शब्द उभयार्थक हैं प्रकरणवश अर्थ समझना चाहिये।

२-सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थो में नवमें गुणस्थान के सवेद भाग तक वेदो का वर्णन आता है, और अपगतवेद की अपेक्षा नवमे से १४ गुणस्थान तक कहे गये हैं, ऐसी हालत में यह शंका हो जाती है कि तीनों वेदों से १४ गुणस्थान की प्राप्ति वा मुक्ति क्यों दर्शायी गई है? इसका उत्तर पूर्व में लिखा गया है कि भाववेद की अपेक्षा यह कथन है। श्रेण्यारोहण-काल में द्रव्यपु वेदी किसी भी भाववेद के साथ जब गुणस्थान चढ़ता है तब उसके उसी भाववेद की अपेक्षा १४ गुण० भाविनय की अपेक्षा और जब वह वेद नाश करता हुआ १४ गुण० मे जाता है तब भूत नय की अपेक्षा उसी वेद के नाम से १४ गुण० कहे जाते हैं इस कारण क्षपक श्रेणी को आरोहण करने वाला नियम से १४ गुण० प्राप्त करता है, गिरता नहीं है अत. उभयनय की अपेक्षा कथन किया गया है। वास्तव मे नवमे से ऊपर वेद नहीं होते। जैसे–क्षेत्रकाल गतिलिंग तीर्थ चारित्र . . . इत्यादि सूत्र में क्षेत्रादिकी अपेक्षा जो सिद्धोमें भेद (अन्तर) दर्शाया है वह व्यवहार नयातर्गत भूतनय की अपेक्षा से है अर्थात् श्रेण्यारोहणकाल मे विद्यमान ज्ञान चारित्र-लिंगादि की अपेक्षा से वर्तमान सिद्धो मे भेद सिद्ध किया गया है। इसी तरह ३ भाववेदों से मुक्ति का वर्णन किया गया है वर्तमाननय या निश्चय की अपेक्षा किसी भाववेद से मुक्ति नहीं है।

३-गत्यादि तथा वीर्यान्तराय क्षयोपशम के अनुकूल जिस वेद का बन्ध होगा, उसी के अनुसार नामकर्म द्वारा पुद्गल रचना होगी तथा तदनुकूल उपाग भी प्राप्त होगा। पर्याप्त दशा मे द्रव्यवेद की पूर्ण रचना हो जायगी। कर्मानुसार प्राप्त हुई शरीर रचना मरण पर्यन्त वैसी रहेगी, द्रव्यवेद वैसा ही रहेगा, परिवर्तन न होगा। पर भाववेद मोहोदय की

अपेक्षा रखता है, उसमें निमित्त मिलने पर परिवर्तन होना सम्भव है। प्रत्यक्ष में शरीर में परिवर्तन देखा नहीं आता, पर भावों में परिवर्तन देखा जाता है। पर विरुद्ध भाववेद का उदय होनेपर द्रव्यवेद से कार्य न होगा। जैसे कोई पुरुष द्रव्यवेदी है उसके यदि भाव स्त्रीवेदके हो जावें तो वह द्रव्यपुंवेद से उसका फल न भोग सकेगा, किन्तु भावस्त्री वेदोदय से स्त्रीवत रमने के भाव करता रहेगा, इसी तरह स्त्रीवेद-नपुंसकवेदमें जानना चाहिये। मोहोदयसे पुंसादि रूप भाव होना ही वेद कहा जाता है। द्रव्यवेद नामकर्म जनित है। जैसे द्रव्यलेश्या जीवनपर्यंत रहती है और भावलेश्या अन्तर्मुहूर्तमें परिवर्तित होनी है उसी तरह वेदकी दशा भी है ये दोनो औदयिक हैं। जिस प्रकार द्रव्यलेश्या एक रहते भी अनेक भावलेश्या होती हैं। उसी तरह द्रव्यवेद एक रहते भी अनेक भाववेद हो सकते हैं। स्वायुष प्रमाणावधृताः द्रव्यलेश्या, अंतर्मुहूर्त परिवर्तिन्य. भावलेश्याः इति कथनात्।

वेद की विषमता होने से वेद को अभिन्न नहीं कहा जा सकता किन्तु वह दो भेद रूप है द्रव्यवेद, भाववेद। वेदोदय से बाह्यरचना वा उपांग का सम्बन्ध नहीं है किन्तु रमणरूप भावो से है अर्थात वेदोदय से यथायोग्य स्त्री-पुरुष और नपुंसक रूप भाव होते हैं। बाह्यरचना या तदनुकूल उपांग तो नामकर्म-वीर्यान्तराय आदि के निमित्त से होते हैं। वेद का उदय रूप बाह्योपांग रचना मानना गलत है, इसी विषय को सर्वार्थसिद्धि में स्पष्ट किया है—लिंग द्विविधं—द्रव्यलिंगं, भावलिंग चेति। द्रव्यलिंग योनिमेहनादि नामकर्मोदयनिर्वर्तितं। नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिगम् इति। (सर्वा० अ० २ सूत्र ५२-पृ० ११६)।

वेदोदय का कार्य तदनुकूल प्राप्त उपांग रचना से सफल होता है अतः तदनुसार आकार विशेष को पुरुष-स्त्री-नपुंसक कहते हैं। प्रोफे० सा० ने द्रव्यवेद २ माने हैं द्रव्यनपुंसकवेद नहीं माना, क्योंकि होता ही नहीं। यह धारणा गलत है— लोक मे साक्षात नपुंसकवेदी प्राणी देखे जाते हैं। भावनपुंसकवेदोदय से तदनुकूल प्राप्त नामकर्मजनित बाह्योपांग रचना विशेष को द्रव्यनपुंसक कहते हैं इसकी बाह्यरचना स्त्री पुरुष के चिन्हों से भिन्न कुछ विशेषता युक्त होती है, जब भावनपुंसकवेद होता है (जिस को प्रोफे० सा० ने माना है) तो तदनुकूल नामकर्मजनित द्रव्य रचना अपर्याप्तकाल में अवश्य होगी, अन्यथा स्त्री-पुरुष की द्रव्यरचना भी नहीं हो सकती है, ऐसे होने पर द्रव्ययोगकी व्यवस्था लुप्त हो जायगी। द्रव्यनपुंसकवेद श्री उमास्वातिकृत इस सूत्र से सिद्ध होता है—'नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि' इस की व्याख्या मे लिखा है कि 'चारित्रमोहविकल्पनोकषाय-भेदस्य नपुंसक—वेदस्याशुभनाम्नश्चोदयान्न स्त्रियो न पुमाम इति नपुंसकानि भवन्ति' (सर्वार्थ० अ० २ सूत्र ५० की व्याख्या, पृ० ११८)।

दूसरी बात— जब द्रव्यनपुंसक वेद के बिना भी भावनपुंसकवेद का कार्य या विपाक हो जाता है तो जो द्रव्यवेदी पुरुष है उसके भी द्रव्य स्त्री वेद के बिना भावस्त्रीवेद का विपाक हो सकता है, इससे तो वेदों की विषमता ही सिद्ध हो जाती है द्रव्यनपुंसकवेद भी इससे सिद्ध होता है—

यानि स्त्रीपुंसलिंगानि पूर्वाणीनि चतुर्दश।
उक्तानि तानि मिश्राणि षड्भावनिवेदने ॥८॥

(सर्वा० सोलापुर सं० पृ० २५८ की टिप्पणी)

जब द्रव्यनपुंसकवेद नहीं होता है तो स्त्री-पुरुष से भिन्न नारकी और सम्मूर्छन जीवों के कौन सा द्रव्यवेद कहा जा जायगा। ऐसी दशामें कोई तीसरे वेद की कल्पना अवश्य करना पडेगी, अन्यथा व्यवहार न चल सकेगा, उभयवेद का अभाव उक्त जीवों में होने से। इससे तो यही अच्छा है कि उभय से भिन्न तृतीय द्रव्यनपुंसकवेद माना जाय द्रव्यस्त्रीपुरुष की तरह। इससे सिद्ध होता है कि वेदो के ६ भेद (३ द्रव्यवेद से गुणित ३ भाववेद) होते हैं। वेदो की विषमता सिद्ध होती है। द्रव्यनपुंसकवेद भी सिद्ध है।

द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय का उदाहरण विरुद्ध है क्योंकि इन्द्रियज्ञान क्षयोपशमजन्य है और वेद उदयजन्य है। एक जीव के एक साथ पाच इन्द्रियावरण कर्म क्षयोपशम तथा तदनुकूल ५ द्रव्येन्द्रियों की रचना देखी जाती है पर एक जीव के एक साथ ३ भाववेद का उदय तथा तदनुकूल ३ द्रव्यवेदो की रचना नहीं देखी जाती है। किसी भी द्रव्यवेद के रहते कोई एक भाववेद का उदय हो सकता है। पर प्राप्त प्रथमादि इन्द्रियो के रहते अप्राप्त इन्द्रियों का क्षयोपशम कभी नहीं होता, जैसे चतुरिन्द्रिय जीवके ४ इन्द्रियो का क्षयोपशम है पर कर्णेन्द्रिय का क्षयोपशम नहीं है। वेद का हाल इन्द्रियो से विलक्षण है। इसीलिये वेदवैषम्य को निषिद्ध करने केलिये इन्द्रिय का दृष्टांत अयुक्त (दृष्टाताभास) है।

वज्रवृषभनाराच संहनन वाले के ही मोक्ष प्राप्त करने की सामर्थ्य है— अन्य संहनन मुक्ति प्राप्ति का कारण नहीं है और कर्मभूमि की स्त्री के अन्त के ३ संहनन आगम में बतलाये हैं आदि के ३ संहनन नहीं होते। इसलिये स्त्री मे साक्षात् मोक्ष प्राप्त करने की सामर्थ्य नहीं है संहनन के विषय में श्रीनेमिचन्द्र जी सि० ने कर्मकांड में कहा है—

अन्तिमतियसंहणणस्सुदओ पुणकम्मभूमिमहिलाणं
आदिमतिगसंहणणं णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।३२।

अर्थ—कर्मभूमि की स्त्रियो के अन्तके ३ संहनन (अर्द्धनाराचादि) होते हैं आदि के ३ संहनन नहीं होते हैं ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

(कर्मकाण्ड गाथा ३२ पृ० १४)

इससे सिद्ध होता है कि मोक्ष का कारण प्रथम संहनन न होने से स्त्री के मोक्ष नहीं हो सकती।

स्त्रीमुक्ति निषेध के विषय में श्री प्रभाचन्द्राचार्य जी ने प्रमेय कमल मार्तंड में दर्शाया है—

मोक्षहेतुर्ज्ञानादिपरमप्रकर्षः स्त्रीषु नास्ति परमप्रकर्षत्वात् सप्तमपृथिवीगमन—कारणापुण्यपरम—प्रकर्षवत्। यदि नाम तत्रतत्कारणा पुण्यपरम प्रकर्षाभावो, मोक्षहेतोः परमप्रकर्षाभावे किमायातम्।

अर्थात्—जिस प्रकार स्त्रीमे सप्तमनरकगमन का कारण पापप्रकर्ष नहीं है उसी प्रकार मोक्ष का कारण ज्ञानादि का परमप्रकर्ष भी नहीं है क्योंकि ज्ञानादि परमप्रकर्ष हैं। यदि स्त्री के पापप्रकर्ष नहीं है तो ज्ञानादिप्रकर्ष भी नहीं है आदि।

स्त्रीणां संयमो न मोक्षहेतुः नियमेनर्द्धिविशेषाहेतुत्वान्यथानुपपत्तेः। यत्र हि संयमः सांसारिकलब्धीनामप्यहेतुस्तत्रासौ कथं निःशेषकर्मविप्रमोक्ष—लक्षणमोक्षहेतुः स्यात्। सचेलसंयमत्वाच्च नासौतद्धेतुः गृहस्थसंयमवत्। अर्थात् स्त्रियो मे मोक्ष का कारण रूप संयम नहीं है, यदि माना जाय तो उससे ऋद्धि विशेष क्यो नहीं होती। जो संयम सांसारिक ऋद्धियो का कारण नहीं है वह मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है। स्त्रियो के सवस्त्र संयम भी मोक्ष का कारण नहीं है गृहस्थसंयम की तरह। उक्तं च—

वरिससयदिक्खियाए अज्जाए अज्जदिक्खिओ साहू
अभिगमणवंदणणमंसणविणएण सो पुज्जो ॥१॥
ह्रीशीतार्तिनिवृत्यर्थं वस्त्रादि यदि गृह्यते।
कामिन्यादिस्तथा किन्न कामपीडादिशान्तये ॥२॥
वस्त्रखण्डे गृहीतेपि विरक्तो यदि तत्त्वतः।
स्त्रीमात्रेपि तथा किन्न तुल्याक्षेपसमाधितः ॥३॥
पुंवेद वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा।
सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति १
स्त्रीपरीषह भग्नैश्च बद्धरागैश्च विग्रहे।
वस्त्रमादीयते यस्मात् सिद्ध ग्रन्थद्वय ततः ॥१॥

१-तन्नो नास्ति स्त्रीणां मोक्ष. पुरुषादन्यत्वान्नपुंसकवत्। तथा—

२-स्त्रीणां मोक्षो नास्ति, उत्कृष्टध्यान-फलत्वात् सप्तपृथ्वीगमनवत्।

१-इस लिये स्त्री के मुक्ति नहीं, पुरुष से भिन्न होने से, नपुंसक की तरह।

२-स्त्रीवर्ग के मोक्ष नहीं होता, उत्कृष्ट ध्यान का फल होने से, सप्तमनरक में गमन की तरह।

(देखो प्रमेयकमल मार्तंड पृ० ६४से६६ तक)

इसलिये युक्ति और आगम से सिद्ध है कि स्त्री के मोक्ष नहीं। स्त्रीमुक्ति निषेध से यह न समझ लेना चाहिये कि महिला-राजनैतिक राष्ट्रीय नैतिक-धार्मिक सामाजिक कार्यों में भाग नहीं ले सकतीं या उन्नति नहीं कर सकतीं। नहीं—सब कार्यों में उन्नति कर सकती हैं, आदर्श रख सकती हैं और परंपरया मोक्ष भी मनुष्यभव धारण करके जा सकती हैं।

सवस्त्र मुक्ति

प्रो० सा० ने सवस्त्रमुक्ति के विषय पर भी विचारार्थ प्रश्न उपस्थित किया है""कहा है"" ..

"श्वेताम्बर मतानुसार मनुष्य वस्त्रत्याग करके और सर्वथा वस्त्रत्याग न करके भी मोक्ष जा सकता है पर दि० मतानुसार वस्त्रके संपूर्णत्याग से ही संयमी और मोक्ष का अधिकारी हो सकता है इसका प्रमाण-भगवती आराधना में किया गया-मुनि का उत्सर्ग और अपवादविधान दर्शाया है आदि" जब श्वे० मत में वस्त्र के बिनात्याग से भी मोक्ष हो सकता है तो ऐसा कौन साधु होगा जो मोक्षार्थ वस्त्रत्याग करके कष्ट उठावेगा, सवस्त्र सहर्ष मोक्षप्राप्ति क्यों न करेगा। ऐसीदशा-मे तो श्वे० मत मे वस्त्रत्यागपूर्वक मोक्ष का विधान करना व्यर्थ है अन्यथा श्वे० साधु दि० दीक्षा क्यों नहीं लेते, सब ही सवस्त्र साधु क्यों हो जाते। हैं असमर्थतामें अपवादमार्ग अपनाया जाता है क्या सब ही श्वे० साधु असमर्थ हैं और होंगे-जिस से कि-उत्सर्गमार्ग (दि० दीक्षा) को छोडकर अपवाद-मार्ग (श्वे० दीक्षा)- अपना रहे हैं। धन्य है श्वे० मत की कृपा दृष्टि को, जो कि साधुओ को बिना कष्ट दिये मोक्षमार्ग बतता रहा है। यदि श्वे० स० में निर्ग्रन्थदीक्षासे भी मुक्ति-साधना मानी गई है तो समर्थ साधुओं को सर्वप्रथम वैधानिकरूप से निर्ग्रन्थ-दीक्षा को ही धारण करना चाहिये। पर यह नहीं देखा जाता है यहां तो धारणा बन चुकी है कि जब सवस्त्रमुक्ति का द्वार खुला है तो वस्त्रत्याग करके कष्ट कौन उठावे। यह अपवाद का अनर्थ किया गया है इसको दूसरे शब्दो मे शिथिलमार्ग कहना चाहिये।

तथा च प्रो० सा० ने भी सवस्त्रमुक्ति को सिद्ध करने के लिये भगवती आराधना का प्रमाण देकर, मुनिपद के उत्सर्ग वा अपवादमार्ग का अनर्थ कर डाला है जिससे कि सवस्त्रमुक्ति को सिद्ध करनेका प्रयास किया है। यह धारणा गलत है। भगवती

आराधनाकार का-सवस्त्रमुक्ति सिद्ध करने का या मुनि के सर्वथा वस्त्रविधान करने का अभिप्राय नहीं है। उनका तो अभिप्राय यही है कि निर्ग्रन्थलिङ्ग ही साक्षात् मुक्ति का कारण है सग्रन्थ लिङ्ग नहीं। इस विषय में जो अपवाद मार्ग प्रगट किया है वह मोक्ष के लिये वेधानिक रूप से मानना-अपवाद का दुरुपयोग करना है।

प्रो० सा० ने राजवार्तिक-सर्वार्थ सिद्धि के अ० ६ सूत्र ४६-४७ का प्रमाण दिया है कि''''''भावलिंगं प्रतीत्य पंच निर्ग्रन्थाः लिंगिनो भवन्ति। द्रव्य-लिंग प्रतीत्य भाज्या.। इस प्रमाण से सिद्ध किया है कि मुनि को वस्त्रत्याग का कोई नियम नहीं देखा जाता। पर हम इसी प्रमाण से वस्त्रत्याग का नियम बतलाते हैं''' ''तथा भगवती आराधना के अपवाद का भी खुलासा करते हैं उक्तप्रमाण (भावलिंगप्रतीत्यादि) का टिप्पणी में खुलासा किया है कि—

केचिच्छरीरे उत्पन्नदोषात् लज्जितत्वात्तथा कुर्वंति इति व्याख्यानमाराधना – भगवती-प्रोक्ताभिप्रायेणापवादरूप ज्ञातव्य। उत्सर्गापवादयोरपवादो विधिः बलवानिति उत्सर्गेण- तावद्यथोक्तमाचेलक्य प्रोक्तमस्ति। आर्यासमर्थदोषवच्छरीराद्य-पेक्षया अपवाद-व्याख्याने न दोषः। अमुमेवाधारं गृहीत्वा जैनाभासाः केचित्सचेलत्व मुनीना स्थापयन्ति। तन्मिथ्या-

साक्षान्मोक्ष कारणं निर्ग्रन्थलिङ्गमेवेति वचनात्। अपवादव्याख्यानं उपकरणकुशीलापेक्षया कर्तव्यम् इति। (शरीरोपकरणप्रभावस्वच्छतापेक्षया – इति भाव :) (देखो-सर्वा० अ० ६ सू० ४७ पृ० ३१३ की टिप्पणी, सो० स०)

इस प्रमागसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि भगवती आराधना का-अपवाद सवस्त्रमुक्ति का विरोधी है और साक्षात् मोक्ष का कारण निर्ग्रन्थलिग (दिगम्बर दीक्षा) ही है। इससे अपवाद की सदोषता सिद्ध होती और सवस्त्रमुक्ति का सदेह दूर हो जाता है॥

"निर्ग्रन्थलिङ्गेन सग्रन्थलिगेन वा सिद्धिः भूत-पूर्वनयापेक्षया" इस-पंक्ति का खुलासा भी टिप्पणी मे देखिये –

लिंगशब्देन निर्ग्रन्थलिगेन सिद्धिर्भवति। भूत-नयापेक्षया सग्रन्थलिगेन वा सिद्धिर्भवति। कथं! – साहरणासाहरणे इति वचनात्। पूर्वं निर्ग्रन्थः पश्चात् उपसर्गादाभरणादिक केनचित्कृत-यथा त्रयः पाण्डवा. साभरणाः मोक्ष गता'। उपसर्गवशात् –ग्रन्थत्वं पाण्डवादिवत (सर्वा० अ० १० सू० ६ पृ० ३२० की टिप्पणी)

इस प्रमाण से यह सिद्ध हुवा कि मुक्ति निर्ग्रन्थ-लिग से ही होती है। उपसर्गादिक की अपेक्षा सग्रन्थलिग से कही गई है पर वैधानिक रूप से नहीं। भूतनय की अपेक्षा अर्थात् परंपरा से सग्रन्थलिंग कहा गया है। साक्षात् निर्ग्रन्थलिग ही मोक्ष का कारण है। इससे वस्त्रत्याग की अनिवार्यता भी सिद्ध हो जाती है। इस विषय पर अन्यप्रमाण—

पुलाकादि मुनियो के ५ भेद होने पर भी वस्त्र-त्याग का विरोध सिद्ध नहीं होता, क्योंकि पुलाकादि भेद चारित्र की हीनाधिकता की अपेक्षा से हुए हैं, निर्ग्रन्थता तो सब में है और श्रद्धा से सर्वप्रथम दि० दीक्षा ही धारण की जाती है। दीक्षा रूप में श्रद्धा से वस्त्रधारण नहीं किये जाते हैं अतः निर्ग्रन्थता ही सिद्ध होती है।

शका – यथा गृहस्थश्चारित्रभेदान्निर्ग्रन्थव्यपदेश-

भाक् न भवति तथा पुलाकादीनामपि प्रकृष्टमध्यम-चारित्रभेदान्निर्ग्रन्थत्वं नोपपद्यते।

उत्तर — न वैष दोष: कुतो दृष्टत्वात् ब्राह्मण-शब्दवत्। यथा जात्या चारित्राध्ययनादिभेदेन भिन्नेषु ब्राह्मणशब्दो वर्तते तथा निर्ग्रन्थशब्दोपि, संग्रहव्यवहारापेक्षत्वात्। सम्यग्दर्शन निर्ग्रन्थरूप च भूषावेशायुधविरहितं तत्सामान्ययोगात् सर्वेषु हि पुलाकादिषु निर्ग्रन्थशब्दो युक्तः।

यदि भग्नव्रतेपि निर्ग्रन्थशब्दो वर्तते श्रावकेपि स्यादिति–अतिप्रसंगो, नैष दोष. कुतो रूपाभावात्। निर्ग्रन्थरूपमत्र न प्रमाणं नच श्रावके तदस्तीति नातिप्रसंगः। स्यादेतद्यदि रूपं प्रमाणमन्यस्मिन्नपि सरूपे निर्ग्रन्थव्यपदेशः प्राप्नोतीति तन्न-किं कारणं दृष्ट्यभावात्। दृष्ट्या सह यत्र रूप तत्र निर्ग्रन्थव्यपदेशः। न रूपमात्र इति।

अथ किमर्थः पुलाकादिव्यपदेशः। चारित्रगुणस्योत्तरप्रकर्षे वृत्तिविशेषख्यापनार्थः पुलाकाद्युपदेश· क्रियते (देखो राजवा० अ० ६ सू० ४६ पृ० ३५८ सभाष्यव्याख्या) तथा लिंग द्विविध निर्ग्रन्थलिंग सग्रन्थलिंग चेति। तत्र प्रत्युत्पन्ननयाश्रयेण निर्ग्रन्थलिंगेन सिद्धयति। भूतविषयनयादेशेन तु भजनीय। भूतनय. द्वेधः अनन्तरव्यवहितभेदात्, अत्र व्यवहितपूर्वनयः विवक्षितः।

(राजवा० पृ० ३६६ अ० १० सूत्र ६ व्याख्या)

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि मोक्षार्थ मुनि को वस्त्रादित्याग अनिवार्य है, निर्ग्रंथलिंग ही उपादेय है, सग्रन्थ नहीं।

प्रोफे० सा० ने कहा है कि वस्त्रत्याग अनिवार्यरूप से कहीं देखने में नहीं आता आदि। यह धारणा भी ठीक नहीं। आगे देखिये—

श्री विद्यानन्दि स्वामी ने निर्ग्रंथता को युक्ति वा प्रमाणों से सिद्ध किया है स्पष्टतया वस्त्रत्याग दर्शाया है—

पुलाकाद्याः मता पंच निर्ग्रंथाः व्यवहारतः।
निश्चयाच्चापि नैर्ग्रंथ्यसामान्यस्याविरोधतः ॥१॥
वस्त्रादिग्रन्थसम्पन्नास्ततोऽन्ये नेति गम्यते।
बाह्यग्रन्थस्य सद्भावे ह्यन्तर्ग्रंथो न नश्यति ॥२॥
ये वस्त्रादिग्रहेप्याहुः निर्ग्रंथत्व यथोदितम्।
मूर्च्छानुद्भूतितस्तेषा स्त्र्याद्यादानेऽपि किं न तत्‍ः
(श्लो० वा० अ० ६ सूत्र ४६ पृ० ५०७ का० १से० तक) किं च— अन्य प्रमाण

साक्षान्निर्ग्रंथलिंगेन, पारपर्यात्ततोन्यतः।
साक्षात्सग्रन्थलिंगेन सिद्धौ निर्ग्रंथता वृथा ॥८॥
(श्लो० वा० अ० १० सूत्र ६ पृ० ५११ श्लो० नं ६)

इन प्रमाणो से स्पष्ट सिद्ध होता है कि मोक्षार्थ वस्त्रत्याग करना अनिवार्य है, निर्ग्रंथलिंग से ही साक्षात् मुक्ति प्राप्त होती है। यदि सग्रन्थलिंग स साक्षात् मुक्ति मानी जाय तो निर्ग्रंथमार्ग का विधान करना व्यर्थ है। उत्सर्ग और अपवादमार्ग दर्शाना भी व्यर्थ है। ससार में साधुओं का त्यागव्रत भी व्यर्थ सिद्ध होता है क्योंकि बिना त्याग के भी मुक्ति सुगमता से प्राप्य है।

३–धवलाकार ने सयम की परिभाषा में जो यह सूत्र कहा है कि — "सयमो नाम हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिः" तथा तत्त्वार्थ सूत्रकार ने कहा है कि—"हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्" इन सूत्रों से "सवस्त्रमुक्ति तथा वस्त्र के रहते हुए उत्तम-संयमी होना" यह सिद्ध करना, बालू से तेल निकालना है इन सूत्रोंसे उक्त विषय सिद्ध नहीं हो सकते।

कारण यह कि मनुष्य बाहिरी वस्तुओं का त्याग कर त्यागी-महात्मा-परोपकारी बन जाता है, साधु होने से जगत्पूज्य हो जाता है। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सवस्त्रमुक्ति नहीं हो सकती अत. बाह्य धनवस्त्रादि को धारण करते हुये उत्तम सयम का पालन नहीं हो सकता। परिग्रह, असयम का अविनाभावी है इस लिये उसके रहते हुए सयम कैसे हो सकता है। श्लोकवार्तिक में कहा है—"बाह्यग्रंथस्य-सद्भावे, ह्यन्तर्ग्रंथो न नश्यति" इसलिये संयम या व्रत की परिभाषा में वस्त्रादि बाह्य वस्तु का त्याग अवश्य सिद्ध होता है।

इस प्रकार दिगम्बर शास्त्रानुसार केवली मुक्ति स्त्रीमुक्ति-सवस्त्रमुक्ति सिद्ध नहीं होती। इन विषयों पर वीरसेन-कुन्दकुन्द-उमास्वाति-प्रभाचन्द्र अकलंक आदि दिगम्बर आचार्यों ने जो प्रतिपादन किया है वह युक्तिपूर्ण विरोधरहित है, तदनुसार हमने यहां सक्षेप से वर्णन किया है लेख विस्तार के भय से स्पष्ट विवेचन तथा प्रमाणों का स्पष्टीकरण विशेष न कर सके। —पाठकों को "श्वेताम्बरमत समीक्षा और दिगम्बरत्व वा दिगम्बरमुनि" ये दो पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिये।
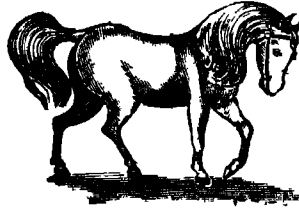
श्रीमान तर्करत्न, जैनसिद्धान्त महोदधि,

पं० माणिकचन्द्र जी, न्यायाचार्य ।

सहारनपुर

का

अभिमत

॥ श्री समन्तभद्राय नमः ।॥

दिगम्बर मत अनादि सिद्ध है—

वीतरागता के भरपूर उपासक जैनो मे कारण-वश राग द्वेष मय चर्चायें प्रगट हो जाती हैं। श्वेताम्बर दिगम्बर सम्प्रदाय के वस्त्रभेदक स्त्री मुक्ति, केवली कवलाहार, सवस्त्र मुनिपना इन विषयोको ले कर कुछ पर्यालोचना चल पड़ी है। दिगम्बर ग्रन्थोंमें उक्त तीनो ही विषयो का प्रत्याख्यान बलवत्तर प्रमाणों द्वारा किया जा चुका है। श्रीमान प्रोफेसर बाबू हीरालाल जी अमरावती निवासी ने आचार्य पुगव श्री कुन्दकुन्दसूरि तथा उनके पश्चाद्वर्ती समंत-भद्र, नेमिचन्द्र, पूज्यपाद आदि महान आचार्यवर्यों के ग्रन्थोमें भी अप्रामाण्यजनक आक्षेप किये हैं—जो कि उनको अभीष्ट हो रहे श्वेताम्बर मत की प्राचीनता को पुष्ट करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं।

दो हजार वर्ष के पूर्व मे उत्कीर्ण किये गये वैदिक दर्शन को कुछ सामग्री मिल जाने के कारण अनादि—सिद्ध दिगम्बरत्व को कोई ठेस नही पहुच पाती है, झूठ, चोरी आदि के या वैदिक सम्प्रदाय की कतिपय मिथ्यात्व वर्द्धक क्रियायें अनादि कालीन हैं। सभी सम्प्रदाय इस बात को स्वीकार करते हैं कि कभी २ ऐसे अन्तराय पड़ गये हैं कि झूंठ बोलने आदि का खडन नहीं लिखा जा सका है—फिर भी सत्यार्थ सिद्धान्त आगे पीछे कभी भी लिखा जाय या न भी लिखा जाय वह त्रिलोक त्रिकाल अबाधित ही समझा जायगा।

जैसे मोक्ष के अनादित्व से संसार का अनादित्व उम्र मे आठ, नौ वर्ष बडा है, सम्यग्दर्शनमे मिथ्या-दर्शन को आयु कुछ अन्तमुहूर्त अधिक है भूतकालमें अनन्तेवार ऐसे प्रकरण आ चुके हैं— जबकि इनका खडन मडन नहीं हो सका है, अथवा व्युत्क्रमसे आगे पीछे प्रति-विधान किया गया है— फिर भी आगम प्रमाण और युक्तियों से सत्य सिद्धान्त का निर्णय किया जाता है।

भारतवर्ष में हिन्दु, यवन, वेदानुयायी, शाक्त, वैष्णव, मीमांसक बौद्ध, सिक्ख, ईसाई आदि अनेक सम्प्रदाय प्रचलित हैं। सहस्रद्वय वर्ष पूर्व इनका उल्लेख मिलने न मिलने के साथ सत्यार्थ निर्णय का कोई अन्वय व्यतिरेक नहीं है। सुवर्ण, चाहे जब शुद्ध प्रकट कर लिया जाय प्रवाह रूपसे इनका शुचित्व सर्वदा आदरणीय है वस्तुत विचारा जाय तो श्वेताम्बर सम्प्रदाय से स्वाभाविक दिगम्बरत्व सिद्धान्त ही निरवधि प्राचीन है।

यद्यपि वर्तमान कतिपय उपलब्ध आचारांग आदि को द्वादशाग मान बैठना, मुख्यकाल द्रव्य को स्वीकार न करना, तेजः काय, वायु काय जीवों को त्रस जीव कहना, वीरगर्भ परिवर्तन, ऊर्णावस्त्र शास्त्र

मुक्ति को पवित्र कहना, प्रतिमाके नेत्र मुकुट लगाना आदि श्वेताम्बरीय सिद्धान्तों से दिगम्बर सम्प्रदायमें महान् अन्तर है तथापि स्त्री मुक्ति, केवलि — कवलाहार, और सवस्त्र संयम ये मत-पार्थक्य के प्रबल गढ़ हैं।

श्री महावीर निर्वाण के कई सौ वर्ष पीछे शास्त्र लिखने की सर्वाङ्गाम्नाय—प्राप्त पद्धति चली तब तक सभी विषय आचार्यों के कण्ठस्थ थे। बहुभाग विषयों को कण्ठस्थ रक्खे बिना तो इस दफ्तरी युग में भी काम नहीं चल सकता है। शास्त्र लिपि का प्रारम्भ हो जाने पर भी कतिपय विषय नहीं लिखे जा सके थे और अनेक व्यावहारिक क्रियायें तो अद्यापि प्राचीन ग्रन्थों मे लिपिबद्ध नहीं मिलती हैं जैसे कि भिन्न २ ऋतुओ मे आटे की मर्यादा क्या है? मगद, मावा, रबड़ी, दूध, पूड़ी, कचोड़ो, मेवा, घृत आदि की कितनी २ स्थिति है, कितने दिनों मे ये जीवों के योनि—स्थान बन जाते हैं। केवल आचार्यों के उपदेश की आम्नाय चली आ रही है। अत. कुछ दिनो में विद्वानो ने श्रावकाचारों या क्रिया कोष में स्वल्प कण्ठोक्त निरूपण कर दिया है, फिर भी बहुभाग अप्राप्य है। सामायिक विधि प्रायश्चित्त व्यवस्था, आसन, सूतक, पातक निर्णय, दायभाग, आदि कितनी ही सूक्ष्म चर्चायें गुप्त लुप्त-प्राय हो रही हैं फिर भी आचार्यों, विद्वानो की आम्नाय अनुसार चली आ रही प्रवृत्ति से उक्त विधिया निरवद्य पाली जा रही हैं। अतः यदि श्री कुन्दकुन्द आचार्य के ग्रन्थ इन तीनो विषयो का खण्डन नहीं मिलता है जैसा कि प्रोफे० हीरालाल जी कह रहे हैं तो इसमें आश्चर्य नहीं है, लिपि प्रारम्भ काल में हजारों बातें शास्त्रों में ग्रन्थित नहीं की जा सकीं थीं। विवाह, यज्ञोपवीत संस्कार, पूजन विधान बिम्ब प्रतिष्ठा, ग्रह शांति, मंत्र साधना, आदि विषय श्री कुन्दकुन्द आचार्य के बहुत पीछे शास्त्र लिखित हुये थे।

पहिले राजाओं की अपेक्षा वर्तमान अंग्रेजी राज्यमें आफिस, क्लर्क, कार्य सैकड़ों गुणा बढ़ गया है पहिले युग में इतना सूक्ष्म हिसाब, पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष लिखना, लम्बी२ मिस्लें, सैकडों विशाल रजिस्टर पुराने कागजात आदि का इतना विशाल आयोजन कहा था? किन्तु सभी कार्य सुसम्पन्न होथे थे अब भी लेख्य विषय से अलेख्य विषय हजारो गुणा स्मर्यमाण हो रहा है। प्रातः किस करवट से उठना, किस दिशा में शौच जाना, दन्तधावन स्नान करने बैठना? आदि नित्य क्रियाओ को कहा तक लिखा जावे, आम्नाय या सम्प्रदायका धारा प्रवाह भी कुछ तत्त्व रखता है।

सभी भली बुरी बातो मे प्राचीन लेख का ही ढूढते ही बैठना यह टेव अच्छी नहीं है। तिस पर तो कुन्दकुन्दस्वामी ने उक्त तीनो विषयो का कण्ठोक्त खण्डन किया है, ऐसा बाबू जी स्वयं स्वीकार करते हैं फिर और आगम प्रमाण क्या चाहिये?।

श्री वर्द्धमान स्वामी के निर्वाण हुए पश्चात् और कुन्दकुन्दाचार्य के पूर्व अनेक विशालमति आचार्य हो गये हैं। पीछे भी अनेक उद्भट दिगम्बर आचार्य और विद्वान इस वसुधा को पवित्र कर चुके हैं। सभी आचार्यों की प्रमाणता एक सी है। आगे पीछे होनेसे किसी को न्यूनाधिक कहना अनधिकार चेष्टा है। गुणधर, नाग हस्ती, यति वृषभ, श्रीधरसेण, पुष्पदन्त, भूतबलि, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, वट्टकेर,

शिव कोटि, अकलंकदेव, जिनसेन, नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती, प्रभाचन्द्र, विद्यानंद इनके प्रामाण्य में कोई परमाणु मात्र अंतर नहीं है, जैसे कि तीर्थंकरों की अवगाहना समय, क्षेत्र, का भेद होते हुए भी पूज्यता समान है।

श्री समन्तभद्राचार्य ने निर्ग्रंथता का बडे जोर से प्रतिपादन किया है देखिये स्वयंभू स्तोत्र।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने अनेक स्थानों पर द्रव्यस्त्री के पांच ही गुणस्थान माने हैं। सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक में भी यही निरूपण है, सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्री पर्याय नहीं लेता है। स्त्री के कोई ऋद्धि सिद्ध नही हो पाती है, सप्तम पृथवीगमन, सर्वार्थसिद्धिकी प्राप्ति भी निषिद्ध है, मनः पर्यय ज्ञान भी नहीं उपजता है, क्षायिक सम्यग्दर्शन भी नहीं हो सकता है। ऐसी निन्द्य स्त्री पर्याय मे केवलज्ञान का उपजना तो असम्भव ही है। प्रमेयकमलमार्त्तण्ड मे स्त्रीमुक्ति और केवली कवलाहार का प्रबल युक्तियों और आगम प्रमाण से खण्डन किया गया है। आगम की प्रमाणता सम्प्रदायके अविच्छेद पर निर्भर है।

दिगम्बर सम्प्रदाय मे अनेक प्रथमानुयोग के ग्रन्थ हैं जिनमें असंख्य वर्षों के जीवो के कथानक लिखे गये हैं। किसी भी द्रव्यस्त्री को मोक्ष हुई होय ऐसा एक भी दृष्टांत सुनन में नहीं आया है।

अट्ठाईस मूलगुणो में ही वस्त्ररहितपना कण्ठोक्त किया है। तृण मात्र परिग्रह या डोरा मात्र ग्रन्थ से छठा गुणस्थान रक्षित नहीं रह पाता है तीर्थंकरो का वैराग्य सर्वोत्कृष्ट है। राजगद्दी पर बैठे २ द्वादशांग वेत्ता देवर्षि लौकांतिक देवों द्वारा प्रशंसा प्राप्त हो रहे श्री तीर्थङ्कर महाराज को तब तक सातवां गुणस्थान नहीं हो पाया था जब तक कि उन्हों ने वन में जाकर वस्त्राभरणत्याग, केशलोंच, ध्याननिमग्नता धारण नहीं की थी। अतः सर्वथा परिग्रह रहितपना संयमी केलिये अत्यावश्यक है। वस्त्रधारी भले ही देशसंयम को पाल ले, आर्य, आर्यिका हो जाय, किन्तु वसन संयम या साधुपन का विघातक ही है। जूयें, लीख, आदि अनेक सम्मूर्छन जन्तुओं का अधिकरण होने से वस्त्र रखते हुए साधु के इन्द्रिय संयम और प्राणि संयम नहीं पल सकते हैं। संयम तो बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह का परित्याग करता है। मांगना, सीवना, धोवना, सुखाना, चोरी हो जाने पर क्षोभ उपजना, ऐसे राग द्वेष सम्पादक वस्त्रो के धारी साधु के संयम का घात हो जाता है।

अष्टादश दोष रहित केवली महाराजो के अनन्त सुख होते हुवे कवल-आहार करना कथमपि सम्भावित नहीं है। "एकादशजिने" इस सूत्र को निषेध परक लगाया गया है। भूख लगने पर केवली के अनन्त सुख कहां रहा? दोष और अन्तरायों का प्रत्यक्ष करते हुवे सामान्य मुनि भी भोजन छोड़ देते हैं तो केवली भगवान भला सभी मेध्य अमेध्य का प्रत्यक्ष करते हुवे निरवद्य आहार कैसे कर सकते हैं?

केवल वेदनीय कर्म का उदय होने से क्या हो सकता है? । मोहनीय कर्म भोजन करने में सहायक है और मोहनीय का क्षय दशवें गुणस्थान के अन्त में ही हो जाता है, वेदनीय कर्म की उदीरणा भी छठे तक मानी है। अतः सहायक मोहनीय के और असाता कर्म की उदीरणा के अभाव में केवली भगवानके कवलाहार की सम्भावना कथमपि नहीं है।

यदि असाता वेदनीय का उदय मात्र ही कार्यकारी हो जाय तब तो भगवान के पुण्य प्रकृति मे मानेगये परघात नामकर्म का उदय भी है ऐसी अवस्था में लक्डी, डंडा आदि द्वारा भगवान दूसरो का ताडन, पीडन भी करे। अनन्त सुखी भगवान के जब लाभान्तराय का क्षय हो गया है, शरीरोपयोगी अनन्तानन्त दिव्य वर्गणाये प्रतिक्षण आती रहती है ऐसी दशा में भोजन की आवश्यकता ही नहीं रहती है।

केवली भगवान के अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग घात दिया गया है। अत एक आध पडी हुई पाप प्रकृति अपना फल नहीं दे पाती है। अर्हत भगवान समवसरण मे बैठे हुए ही भोजन करेगे? अथवा चर्या मार्ग स गृहस्थो क घर २ जाकर? इत्यादि विकल्पो के उठा देने पर केवली के कवला हार का नितात खण्डन हो जाता है। न्याय शास्त्रो म इसका विशद निरूपण किया गया है।

प्राचीन आचार्य और आरातीय गुरुपरिपाटी अनुसार ये तीनो बाते सिद्धान्त—विरुद्ध है। श्री धरसेन, यतिवृषभ, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलङ्क-देव, पूज्यपाद, नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती, जिनसेन, प्रभाचन्द्र, प्रभृति सिद्धात-वेदी महान आचार्यो के वाङ्मय स्तम्भो पर यह दिगम्बर धर्म प्रासाद डट रहा है। इनमे से किसी भी आचार्य को गौण या मुख्य समझ बैठने का अधिकार नही है। द्वादशाग के किसी विवक्षित विषय का न्यारे २ आचार्यो ने प्रधान रूपेण वर्णन किया है श्री विद्यानदी, प्रभाचद्र, महोदय ने युक्तिवाद को अपनाया है। दार्शनिक पद्धति स इतना खण्डन मण्डन कुन्दकुन्द स्वामी के प्रथम नहीं था। कोई लेखक आचार्य निर्णीत-सिद्धान्त विषय लेकर बठे हैं। कतिपय आचार्य चारित्र, कथानक, करणानुयोग साहित्य विषयो का प्रतिपादन करते है 'उनके प्रथम ये विषय नहीं थे' ऐसा आविष्कार निकाल बैठना उचित नही है। श्वेताम्बरो के यहा भी कितनी ही चर्चाये पीछे लिखा गई हैं। पहिले पीछे लिखे जाने म अनाद्यनन्त—कालान सिद्धान्तो म अन्तर नही पडता है। दायभाग, गणित, सुवर्ण निर्मापण, चतुष्षष्टि-कला—निरूपण, तन्त्र विद्याये अभी तक भी नही लिखी जा सकी हैं। या उपलब्ध नही है।

अत मिथ्यात्व वर्द्धक सिद्धान्तो का प्रचार रोक कर हम अपनी प्राचीन सर्वज्ञोक्त आम्नाय पर दृढ रहना चाहिये।

केवली का कवलाहार, स्त्रीमुक्ति ये केवली क अवर्णवाद है। संयमी क वस्त्र सिद्ध करना सघ का अवर्णवाद है। इससे दर्शन मोहनीयकर्म का आस्रव होता है। अत. युक्तियो और आगम प्रमाणो स उन तीनो बाते सिद्ध नहीं हो पाती है।

प्राचीन दिगम्बर आम्नाय के श्रद्धालुओं को अपने प्राचीन आर्ष मन्तव्य पर ही श्रद्धा रखना आवश्यक है। मिथ्यात्वव र्द्धक केवलीकवलाहार, स्त्री-मुक्ति, और सचेल सयम ऐसी सिद्धात विरुद्ध निस्सार बातो का श्रवण करना भी उचित नहीं।

श्री परमपूज्य सिद्धान्तशास्त्रसर्वाणतत्त्वोपदेष्टा

मुनिराज श्री १०८ अभिनन्दनसागरजी महाराज.

साहित्यरत्न, न्याय-ज्योतिषतीर्थ,

श्रीमान पं० नेमिचन्द्र जी शास्त्री,

जैनसिद्धान्त भवन,

आरा ।

मान्य प्रोफेसर हीरालालजी जैन एम० ए० एल० एल० बी० नागपुरने दिगम्बर और श्वेताम्बर समाज को एक सूत्र में बांधने केलिये स्त्री-मुक्ति, सचेल-मुक्ति और केवलि-भुक्ति सिद्ध करने की जो चेष्टा की है वह नितान्त अशोभनीय है। प्रथम तो सैद्धांतिक बातों के छोड़ देने पर भी दोनों एक हो सकेंगे यह सन्देहास्पद है, क्योंकि आजकल एक सिद्धांत के मानने वालों में भी परस्पर मनमुटाव देखा जाता है। मेरी समझ में सहृदयता और वात्सल्य के कारण उपर्युक्त बातों में सैद्धांतिक मत-भेद रहने पर भी दोनों सम्प्रदाय एक हो सकते हैं, दोनों में प्रेम का प्रचार किया जा सकता है, फिर क्या कारण है कि प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित युक्तिसंगत सिद्धांतों को छोड़ देने के लिये जोर दिया जा रहा है। इस छोटे से निबंध में प्रोफेसर सा० द्वारा उक्त तीनों विषयों के सम्बन्ध में दी गई युक्तियों पर विचार किया जायगा।

प्रोफेसर साहब ने स्त्री-मुक्ति को सिद्ध करने के लिये लिखा है कि—

'कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने ग्रन्थों में स्पष्टतः स्त्री-मुक्ति का निषेध किया है। किन्तु उन्होंने व्यवस्था में न तो गुणस्थान चर्चा की है और न कर्मसिद्धान्त का विवेचन किया है, जिससे उक्त मान्यता का शास्त्रीय चिंतन शेष रह जाता है।"

इसमें यह स्पष्ट है कि आपको भगवान कुन्दकुन्द-आचार्य के शास्त्रीय ज्ञान पर सन्देह है, पर आपने यह दिखलाने की कृपा नहीं की कि कुन्दकुन्दाचार्य की गुणस्थान चर्चा और कर्मसिद्धान्तके विवेचन में क्या त्रुटि रह गई है? कुन्दकुन्द जैसे दिगम्बर आम्नाय के सर्वोत्कृष्ट आचार्य को अप्रामाणिक कहना बड़ी भूल है। इसके बाद आपने सर्वार्थसिद्धि के रचयिता पूज्यपाद, गोम्मटसार के निर्माता नेमिचन्द्राचार्य और अमितगत्याचार्य आदि प्रसिद्ध दिगम्बराचार्यों को अप्रामाणिक बतलाया है, यह भी आप जैसे बहुश्रुत विद्वान के लिये अनुचित है।

आपने स्त्रीमुक्ति को सिद्ध करने के लिये जो दलीलें पेश की हैं, वे निस्सार जचती हैं। क्योंकि अष्टकर्म विनाशस्वरूप, आत्माके अचिंत्य अविनाशी और स्वाभाविक गुण, अनन्त चतुष्टय की प्राप्तिरूप मोक्ष तत्त्व में स्त्री को नहीं हो सकता। इसका प्रधान कारण स्त्री में मोक्ष प्राप्ति योग्य शक्ति और संहनन का अभाव ही है। मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक अतुल बल स्त्री-जातिमें कदापि नहीं हो सकता है।

हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि पुरुष जाति की अपेक्षा स्त्री-जातिमें बल की न्यूनता है। जिन कठिन परिश्रम के कार्य को पुरुष कर सकता है, उस श्रम साध्य कार्य को स्त्री कदापि नहीं कर सकती है क्योंकि प्राकृतिक

नियमसे उनका शरीर सगठन ऐसा ही है। शक्ति तो तर्कगोचर होती है। सर्वार्थसिद्धिकार ने स्पष्ट लिखा है कि—

"अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्य. सिद्धिर्भावतो, न द्रव्यत, द्रव्यत पुल्लिंगेनैव।

इससे स्पष्ट है कि द्रव्यपुलिंग से ही तद्भवमें मोक्ष की प्राप्ति होती है, द्रव्य स्त्रीवेद से नहीं।

आपने अपने पक्षको पुष्ट करने के लिये 'योनिनी' शब्द का अर्थ द्रव्यस्त्री ही बताया है, सो भी अनुचित है। क्योंकि योनिनी शब्द का प्रयोग तिर्यंच स्त्रियों के लिये भी आया है। षट्खण्डागम और तत्वार्थ सूत्र के सूत्रों में भी 'योनिनी' शब्द का प्रयोग तिर्यंच स्त्रियों के अर्थ में ही सिद्ध होता है। 'तिर्यग्योनिजाना च' इस सूत्र से यही सिद्ध होता है कि तिर्यग योनि शब्द का ही आगे जाकर संक्षिप्त रूप योनिनी हो गया है। षट्खण्डागम के 'मणुस्सणिवेदा मिच्छाइट्ठिप्पहुड जाव अणियट्टित्ति' और 'तेण परम-वगदवेदा चेदि' इन दो सूत्रो में वेद के रहते हुए भी नौवे गुणस्थान से आगे वाले जीवो को अवेदी कहा है. अत' यह स्पष्ट है कि योनिनी शब्द का अर्थ भाव स्त्री से ही लिया गया है।

आपने इस प्रकरण को सिद्ध करने के लिये एक दलील यह भी पेश की है कि वेद-वैषम्य सिद्ध नहीं हो सकता है, वेद-वैषम्य मानने से अनेक दोष आते हैं, यह ठीक नहीं है। क्योंकि दोनो वेदो के कारण भिन्न २ है—भाववेद वेदनोकषायके उदयसे परिणाम रूप और द्रव्यवेद नामकर्म के उदय से पुद्गल रचना विशेष उपागरूप होता है। परिणाम कर्त्ता (स्त्री या पुरुष) की क्रिया के विपरीत भी हो सकते हैं। क्रिया से विपरीत दिशा में ज्ञान की धारा (परिणाम) का होना अनुभव सिद्ध है। अतः यह स्पष्ट है कि कर्म भूमि में वेद-वैषम्य रहता है, जहा वेद वैषम्य नहीं रहता है वहा वेद सम्बन्धी विरुद्ध विचार भी नहीं होते। उदाहरणार्थ देव गति और नरकगति को ले सकते हैं, वहा द्रव्य और भाववेद समान हैं, इसी से वहां विचार-विषमता सम्भव नहीं है।

आपकी इस सम्बन्ध में एक खास आपत्ति यह भी है कि द्रव्यवेद और भाववेद की अपेक्षा से ६ भंग नहीं बन सकते है, क्योंकि जो द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्री है, वह अभिलाषा न होने से जीवनभर सम्भोग रूप कार्य से वचित रहेगा। इस सबध मे भी मेरा यही निवेदन है कि अनेक पुरुष ऐसे देखे जाते हैं जो आजीवन ब्रह्मचारी रहते हैं तथा ऐसी स्त्रियां भी मिलती हैं जो आजन्म ब्रह्मचारिणी रही हैं। वर्तमान मे अनेक स्त्री-पुरुष कृत्रिम उपायो से भी सभोग करते हुए सुने जाते हैं। अत' द्रव्य और भाववेद को पृथक २ मानना ही पडेगा, इनके मानने पर ६ भग बनाने मे कोई भी आपत्ति नहीं आवेगी। शास्त्रकारों ने—

"पुरुगुणभोगे सेदे करोदि लोयम्मि पुरुगुण कम्म। पुरु उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो"।

अर्थात जो उत्कृष्ट गुण युक्त कार्य करे वह पुरुषवेद।

'छादयदि सय दोसेण सा इत्थी'।

अर्थात जो अपने और पर को दोषो से आच्छादित करे वह स्त्रीवेद। और—

'णेवित्थी णेव पुम णउंसओ'।

यानी जो न स्त्री हो और न पुरुष वह नपुंसक

वेद होता है। इन लक्षणों के अनुसार नौ भगवाली व्यवस्था सुगमता से घटित हो जाती है।

इसी सम्बन्ध में प्रोफे० सा० ने आगे जाकर यह प्रश्न भी उपस्थित किया है कि वेद के नौ भगो के समान इंद्रियों के भी पच्चीस भग क्यों नहीं स्वीकार किये जाते ? इसका उत्तर यही है कि जाति नामकर्म के अनुसार ही इन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम होता है। इसी कारण द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय एक जीव के एक ही प्रकार की मानी गई है।

"वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरण क्षयोपशमे सति शेषेन्द्रिय सर्वघातिस्पर्धकोदये च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति।"

इसमें स्पष्ट है कि जाति नामकर्म के माध्यम होने से जो भावेन्द्रिय होती है वही द्रव्येन्द्रिय भी। अतएव वेद के नौ भगो के समान इन्द्रियों के पच्चीस भगों का प्रसग नहीं आ सकता है। उपर्युक्त आक्षेप समाधानों से यह स्पष्ट है कि प्रोफे० सा० के द्वारा स्वय दिये गये प्रमाणों से ही स्त्रीमुक्ति का निषेध हो जाता है।

दिगम्बर जैन मान्यता के अनुसार सचेल मुक्ति सिद्ध करने के लिये प्रोफेसर साहब ने आगम के दो प्रमाण उपस्थित किये हैं। पहिला श्री शिवकोटि आचार्यकृत भगवती आराधना का और दूसरा सर्वार्थसिद्धि एव राजवार्तिक का। आपने भगवती आराधना के—

'उस्सग्गियलिंगकदस्स लिंगमुस्सग्गियं तयं चेव।
अववादियलिंगस्स विपसत्थमुवसग्गियं लिंगं ७६
इत्थी वि य जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियं च इदरं वा।
तं तह होदिहु लिंगं परियत्तमुवधिं करंतीए॥८३॥

इन दो गाथाओं में सवस्त्र मुक्ति सिद्ध करने की चेष्टा की है, परन्तु इन गाथाओं के प्रकरणानुसार अर्थ से यही अवगत होता है कि इनमें भक्त प्रत्याख्यान करने वाले श्रावक के चिन्ह बतलाये हैं। भक्त प्रत्याख्यान करने वाले मुनि का वही औत्सर्गिकलिंग रहेगा, पर जब कोई अपवादलिंग धारक गृहस्थ भक्त प्रत्याख्यान करेगा, तब वह निर्दोष पुरुषाकार के होने पर औत्सर्गिकलिंग धारण कर सकता है।

इसलिये उक्त गाथाओं का तात्पर्य अर्थ यही है कि गृहस्थ को किस परिस्थिति में नग्नता धारण कर भक्त प्रत्याख्यान और किस अवस्था में सवस्त्र होकर भक्त प्रत्याख्यान करना चाहिये। स्त्री एक वस्त्र के अतिरिक्त समस्त परिग्रह का त्याग करके अणुव्रती होती हुई महाव्रती के समान बताई गई है, पर उसके साक्षात महाव्रता का अभाव है। बिना वस्त्र त्याग के साक्षात महाव्रत नहीं हो सकते हैं। अपवादलिंग भी ऐलक एव क्षुल्लक आदि के लिये बताया गया है। ये भी अपने मन में यही भावना भाते रहते हैं कि हमें कब मुक्ति पद प्राप्त होगा ? हमने पापोदय से वस्त्र का परिग्रह कर रक्खा है, इस प्रकार हमेशा पश्चात्ताप करते रहते हैं।

राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि से सवस्त्रमुक्ति का स्पष्ट निषेध सिद्ध होता है क्योंकि—

'नैर्ग्रन्थ्य प्रस्थिता अखण्डितव्रताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनः' इस पंक्ति में 'शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनः'

इस वाक्य का सवस्त्रत्व अर्थ कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि 'नैर्ग्रन्थ्य प्रस्थिता' और 'अखण्डितव्रता' इन विशेषणों को 'शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनः' इस विशेषण के साथ समन्वित करना है।

इससे सवस्त्र अर्थ सिद्ध न होकर जो मुनि नग्न दिगम्बर रहते हैं मूल गुणों को खण्डित नहीं होने देते हैं किन्तु उपकरण—पिच्छिका कमण्डलु और शरीर की स्वच्छता पसन्द करते हैं वे बकुश मुनि कहलाते हैं। राजवार्तिक के निम्न वार्तिकों से तो निर्ग्रंथपना स्पष्ट सिद्ध होता है।

दृष्टिरूपसामान्यात्—

सम्यग्दर्शनं निर्ग्रंथरूपं च भूषावेशायुधविरहितं तत्सामान्ययोगात् सर्वेषु हि पुलाकादिषु निर्ग्रंथशब्दो युक्तः।

भग्नव्रते वृत्तावतिप्रसंग इतिचेन्न रूपाभावात्—

यदि भग्नव्रतेऽपि निर्ग्रंथशब्दो वर्तते श्रावकेऽपि स्यादिति—अति प्रसंगः, नैष दोषः ; कुतो रूपाभावात् निर्ग्रंथरूपमत्र न प्रमाणं न च श्रावके तदस्तीति नातिप्रसंगः।

इन पंक्तियों में भगवान अकलंकदेव ने पाचों ही प्रकार के मुनियों को वस्त्र, आयुध और वाहनादि समस्त परिग्रह रहित सम्यग्दृष्टि सिद्ध किया है। सूत्रकार ने भी 'निर्ग्रंथा' इस शब्दसे समस्त मुनियों को निर्ग्रंथ दिगम्बर ही बतलाया है।

आपने 'द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्या' इस पंक्ति का अर्थ यह लिखा है कि 'द्रव्यलिंगमें पाचों ही निर्ग्रंथों में विकल्प स्वीकार किया गया है। तथा टीकाकारोंने ने यह अर्थ किया है कि मुनि कभी२ वस्त्र भी धारण कर सकते हैं, मुक्ति भी सग्रन्थ और निर्ग्रन्थ दोनों लिंगों में कही गई है' यह गलत है। क्योंकि किसी भी टीकाकार ने सवस्त्र मुक्ति नहीं लिखी है, यह तो केवल आपकी मन कल्पित बात है। भावलिंग की अपेक्षा नाना शरीराकृतिवाले होते हैं।

"निर्ग्रन्थलिंगेन सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धिर्भूत पूर्व-नयापेक्षया"

यहां पर भूतपूर्वनय का अर्थ प्रागवस्था है अर्थात् प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा से निर्ग्रन्थलिंग से ही मोक्षपद मिलता है, पर भूतपूर्वनय की अपेक्षा से सग्रन्थलिंग में भी। सग्रन्थलिंग से साक्षात् मोक्ष प्राप्ति का अभाव है। परम्परा से सग्रन्थलिंग से मोक्ष प्राप्ति कही जा सकती है।

आपने अपने पक्ष को साबित करने केलिये एक प्रमाण यह भी दिया है कि धवलाकार ने पाचों व्रतों के पालने का नाम ही संयम बताया है, वस्त्रत्याग की संयमीके लिये कोई आवश्यकता नहीं है, सो इस आक्षेप का भी यही उत्तर है कि पाचों महाव्रतों के अन्तर्गत ही सभी मूल गुण आ जाते हैं। जिसके परिग्रह त्याग महाव्रत होगा, उसके वस्त्रत्याग रहेगा ही। पर वस्त्र के रखने पर भी परिग्रहवान ही कहलायगा। समस्त परिग्रह का त्याग तो तभी कहलायगा, जब वस्त्रादि सभी वस्तुओं का त्याग करेगा। अतः संयम की उक्त परिभाषा मान लेने पर भी, वस्त्रत्याग संयमों के आ ही जाता है।

युक्ति से भी निर्ग्रंथमुक्ति ही सिद्ध होती है, क्योंकि दिगम्बरत्व प्रकृति का रूप है, वह प्रकृति का दिया हुआ मनुष्य का वेश है। तथा 'धम्मो वत्थु सहावो' इस लक्षण के अनुसार दिगम्बरत्व मनुष्य का निजीधर्म सिद्ध होता है और धर्म, धर्मी से पृथक नहीं रह सकता है फिर सवस्त्रमुक्ति कैसे सिद्ध हो सकती है। अन्य मतमतान्तरों से भी दिगम्बरत्व आत्मा का वास्तविक धर्म ही सिद्ध होता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भी स्थविरकल्प और जिन कल्प मार्ग में जिन कल्प मार्ग ही [illegible] बतलाया गया है।

आचरागसूत्र मे लिखा है कि—

'आचरणवजियाण विसुद्धजिणकप्पियाणन्तु'

अर्थात वस्त्रादि आवरणयुक्त साधु से आवरण रहित जिनकल्पि साधु विशुद्ध है। और भी कई जगह इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं जिनसे निर्ग्रंथ मुक्ति की ही सिद्धि होती है।

श्रद्धेय प्रोफेसर साहब ने तीसरी बात केवली को कवलाहार की बतलाई है। आपने अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये बतलाया है कि "तत्वार्थ सूत्रकार और कर्म सिद्धान्तानुसार वेदनीयोदय जन्य क्षुधा, तृषादि ग्यारह परीषह केवली के भी होते है। यद्यपि सर्वार्थ सिद्धिकार और राजवार्तिककार ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मोहनीय कर्मोदय के अभाव में वेदनीय का अभाव जर्जरित हो जाता है जिससे वेदनायें केवली के नहीं होतीं, पर कर्म-सिद्धातानुसार यह बात सिद्ध नहीं होती।" परन्तु मेरी दृष्टिसे प्रोफे० सा० का यह कथन गलत है क्योंकि कर्मसिद्धातानुसार ही वेदनीयकर्म मोहनीयकर्म के उदय से ही फल देता है, यह सिद्ध है। मोहनीयके अभाव में वेदनीयोदय जर्जरित हो जाता है। कर्मसिद्धात में बतलाया है कि—

घादिव वेयणीय मोहस्स बलेण घाददे जीव।
इदि घादीण मज्झे मोहस्सादिम्हि पढिद तु॥

अर्थ—वेदनीयकर्म मोहनीयकर्म के उदय के बल से ही घातिया कर्मो के समान जीवो का घात करता है। मोहनीयोदय के अभाव मे वेदनीयोदय अपना फल देने में असमर्थ है। इसीलिये कर्मो के क्रमपाठ मे आचार्यों ने उसे घातिया कर्मो के मध्य म रक्खा है। तत्वार्थसूत्र के—

"आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः"

इस सूत्र के कर्म क्रम निर्देश से भी यही सिद्ध होता है कि मोहनीयोदय के कारण ही वेदनीयोदय अपना फल देता है, अन्यथा अघातीय वेदनीयकर्म को अघातिया कर्मों के साथ रखते, पर आचार्य ने ऐसा नहीं किया है। इससे स्पष्ट है कि बिना मोहनीयोदय के वेदनीयोदय जन्य वेदनायें नहीं हो सकती हैं।

आपने केवलि—भुक्ति को सिद्ध करने के लिये दूसरा प्रमाण देवागमस्तोत्र की ६३वीं कारिका का उपस्थित किया है, उसमे आपने बतलाया है कि केवलीके सुख दुःख रहते हैं। पर यह आपका कहना निराधार है, क्योंकि इस कारिका में—

'वीतरागो मुनि विद्वान'

इस पद का अर्थ केवली नहीं है, छठे गुणस्थान-वर्ती मुनि है। अष्ट सहस्री एव आप्तमीमासा आदि टीका ग्रन्थो मे भी यह सिद्ध होता है कि यह शब्द प्रमत्तसयत मुनिके लिये प्रयुक्त हुआ है इसका प्रधान कारण यह है कि विद्वान शब्द का प्रयोग छद्मस्थो के लिये होता है, केवलियो के लिये नही। अतः आगम और युक्तियो से स्त्री-मुक्ति सचेल-मुक्ति और केवलि-भुक्ति कदापि सिद्ध नहीं होती है।

॥

श्रीमान् पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी,

—के तत्वावधान में—

श्रीमान् ब्र० मनोहरलाल जी,

श्रीमान् पं० दयाचन्द्र जी शास्त्री,

,, श्रुतसागर जी तीर्थत्रय,

,, पन्नालाल जी साहित्याचार्य,

,, माणिकचन्द्र जी न्यायातीर्थ,

—द्वारा निबद्ध—

श्री कुन्दकुन्दभगवते नमः

स्त्रीमुक्ति खण्डन—

१— स्त्रीमुक्ति सिद्ध करने केलिये प्रोफे० हीरालाल जी जैन एम० ए०, ने जो षट्खण्डागम के सूत्रों का प्रमाण दिया है उन्हीं सूत्रों से प्रोफे० सा० के अभिप्राय के विरुद्ध बात सिद्ध होती है अर्थात् स्त्री मुक्ति नहीं होती यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। जैसे सत्प्र० सूत्र ९३वे—

'सम्मामिच्छाइट्ठी असंजद सम्माइट्ठी संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ'

अर्थ—मानुषी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत गुणस्थानों में पर्याप्त ही होती है। इससे पहिले के सूत्र में बताया है।

माणुसीसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठीट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ।

मानुषियों मे मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे पर्याप्त भी है अपर्याप्त भी हैं। इस तरह मानुषी मे सम्भव होने वाले गुणस्थान मे पर्याप्त अपर्याप्त का विधान बताया है। उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि द्रव्यस्त्रीवेदी मानुषी के ५ गुणस्थान होते है। जब मानुषी के छटवा गुणस्थान तक नहीं होता तो कैसे स्त्री मुक्ति सिद्ध हो। आगे इसी ९३नं० सूत्र की टीका मे लिखा है।

अस्मादेवार्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृतिः सिद्धयेदिति चेन्न।

शंका—इस आगम से द्रव्यस्त्रियों की मुक्ति सिद्ध होगी। समाधान नहीं सिद्ध होगी क्यों?

सवासस्त्वात् अप्रत्याख्यान गुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः।

सवस्त्र होनेसे अप्रत्याख्यान (संयतासंयत) गुणस्थान होता है अतएव उनके संयम की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती।

शंका—कथं पुनस्तासां चतुर्दश गुणस्थानानि।

फिर कैसे उनके चौदह गुणस्थान हो सकते है।

समाधान—

इति चेन्न यह शंका ठीक नहीं "भावस्त्रीविशिष्टमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्"

भावस्त्री विशिष्ट मनुष्यगति मे उनके सद्भाव का विरोध नहीं। फिर शंका—

'भाववेदोबादरकषायान्नोपर्यस्तीति न तत्र चतुर्दश गुणस्थानानां सम्भव'

भाववेद बादर कषाय (९वा गुणस्थान) से ऊपर नहीं होता इसलिये चौदह गुणस्थान कैसे सम्भव है। समाधान—

'इति चेन्न'

यह शंका ठीक नहीं

अत्र वेदस्य प्राधान्याभावात् गतिस्तु प्रधाना न साराद्विनश्यति।

यहा पर वेद की प्रधानता नहीं किन्तु गति प्रधान है और वह पहिले नष्ट नहीं होती है। शका—

'वेदविशेषणाया गतौ न तानि सम्भवन्ति'

वेद विशेषण से युक्त मनुष्य गति मे १४ गुणस्थान सम्भव नहीं। समाधान—

'इति चेन्न'।

यह शका ठीक नहीं।

विनष्टेऽपि विशेषणे उपचारेण तद्व्यपदेशमादधान मनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्।

विशेषण के नष्ट होने पर भी उपचार से उस सज्ञा को धारण करने वाली मनुष्यगति मे १४ गुणस्थान के सत्व का विरोध नहीं।

इत्यादि शका समाधानो द्वारा जिस सूत्र का प्रमाण प्रोफे० सा० ने दिया उसी सूत्र से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि द्रव्यस्त्री-वेदी मानुषी के ५ ही गुणस्थान तक हो सकते है उनके सयम नहीं हो सकता अत मुक्ति भी नहीं होता और जो यह कथन है कि मानुषी के १४ गुणस्थान है यह उपचार से है यह अन्तिम शका समाधान से सिद्ध है अर्थात् भावस्त्रीवेदी मनुष्य ६वें गुणस्थान के सवेदभाग तक रहा पश्चात् अवेद हुआ और आगे के गुणस्थानो मे प्रवेश हुआ तब यह वह मनुष्य है जो पहिले भाव-स्त्रीवेदी था ऐसा बोध होने के हेतु उपचार से यह कथन कर दिया जाता है।

आश्चर्य तो यह है कि जब धवलाकार ने स्पष्ट शब्द मे विवेचन कर दिया तब शका का स्थान ही क्या रह जाता है इसी समाधान मे, जो प्रोफे० सा० ने और द्रव्य प्र० ४६,१२४,१२६, क्षेत्र प्र० ४३ स्पर्शन प्र० ३४-३८, १०२-११०, काल प्र० ६८-८२, २२७-२३४ अन्तर प्र० ५७-७७, आदि जो जो प्रमाण पेश किये है वे उनके अभिप्राय को सिद्ध करने मे असाधक है।

२— श्री पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि तथा श्री नेमिचन्द्राचार्य कृत गोम्मटसार ग्रन्थ के कुछ सार का प्रोफे० सा० ने उल्लेख किया है सो पहिले तो ठीक किया फिर 'किन्तु' लिखकर असतोष प्रगट किया सो उन्हे असतोष दूर करना चाहिये या पूर्ण करना चाहिए क्योकि ये सब ग्रन्थ स्त्री मुक्ति के असाधक है।

प्रोफेसर सा० ने जो 'योनिनी' का प्रयोग द्रव्य-स्त्री मे ही बताया है वह ठीक नहीं क्योकि अनेक ग्रन्थो मे योनिनी शब्द से भावस्त्री वेदी का भी ग्रहण किया है। कई जगह भूत प्रज्ञापननय की अपेक्षा वर्णन किया है इस नयसे उस क्षण के पूर्व की पर्याय ही नहीं लेना किन्तु उस भव से यह नय सम्बन्ध रखता है, केवल उस भव मे ही सम्बन्ध नहीं रखता किन्तु उसके पूर्वभव से भी सम्बन्ध रखता है जैसे कि — क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबो—धितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वत साध्या इस सूत्र की टीका मे लिखा है।

'एकान्तरगतौ चतसृषु गतिषु जात सिद्ध्यति'

एकान्तरगतिकी अपेक्षा भूतप्रज्ञापननय से चारो गति मे सिद्ध होते है, जैसे कोई नारक मनुष्य भव पाकर सिद्ध हो जाय या तिर्यच देव मनुष्यभव पाकर सिद्ध हो जाय यही भाव यहा इस नय का है। लिग की अपेक्षा तो सर्वार्थसिद्धि मे स्पष्ट लिखा है।

लिगेन केन सिद्धि अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्य सिद्धिर्भावतो न द्रव्यत । द्रव्यत. पु लिगेनैव,

किस लिग से सिद्धि होती है अवेदत्व से सिद्धि होती है अथवा भाव से तीनो वेदो से सिद्धि होती है

किन्तु द्रव्य से नहीं, द्रव्यसे पुल्लिंगसे ही सिद्धि होती है जब ऐसा स्पष्ट नियम भी पूज्यपाद स्वामी ने तथा अकलंकदेव ने राजवार्तिक में—

लिंगेन केनचित्सिद्धः। लिंग त्रिविधो वेद. अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्य· सिद्धि वर्तमानविषयविवक्षायामवेदत्वेन सिद्धिर्भवति। अतीतगोचरनयापेक्षया अविशेषेण त्रिभ्यो वेदभ्य सिद्धिर्भवति भाव प्रति, न तु द्रव्य प्रति द्रव्यापेक्षया पुल्लिंगेनैव सिद्धि

इत्यादि स्पष्ट विवेचन कर दियाहै फिर इस विषय मे शका का कोई स्थान नहीं रह जाता।

श्री विद्यानंदि स्वामी ने भी लिखा है—

'पुंल्लिंगेनैव तु साक्षाद् द्रव्यतोन्या तथागम—
व्याघाताद्युक्तिबाधाच्च स्त्र्यादिनिर्वाणवादिना'॥

इस तरह सिद्ध होता है कि सभी, दिगम्बर आम्नाय के आचार्यों ने स्त्री की मुक्ति का अभाव माना है।

३- वेदवैषम्य की सिद्धि के अभाव का प्रयास भी व्यर्थ है गोम्मटसार मे लिखा है।

पुरुसिच्छिढपड वेदोदयेण पुरिसिच्छिसढओभावे
नामोदयेण दव्वे पायेण समा कहिं विसमा।
॥ गाथा २७० ॥

पुरुष स्त्री नपु सकवेद कर्म के उदय से भावपुरुष भावस्त्री भावनपु सक होता है और नामकर्म के उदय से द्रव्य पुरुष द्रव्य स्त्री और द्रव्य नपु सक होत है। सो यह भाववेद और द्रव्यवेद प्राय करके समान होता है और कहू २ विषम भी होते है।

अथवा जैसे, कोई पुरुष मिथ्यादृष्टि था तब तीनो वेदो का बध करता था। जब वह चतुर्थ गुणस्थान मे पहुचा तब से केवल पु वेद का बध किया फिर मुनि हो गया और क्षपकश्रेणि भी प्रारभ करने लगा तब उसके जो पहिले स्त्रीवेद नपु सकवेद का बध था वह उदय मे आया यहा उदय का अर्थ यह नहीं कि उसका काम भी हो किन्तु प्रकृति उदयावस्था को प्राप्त हुई पीछे और ऊपर के गुणस्थानो मे चढकर मुक्त हो जाय तो यह नहीं माना जा सकता कि स्त्री मुक्त हुई इसी विवक्षा से शास्त्रो मे वर्णन है अन्यथा नपु सक की भी मुक्ति होना चाहिये। वेदवैषम्य के विषय मे वर्तमान मे भी देखा जाता है कि कोई पुरुष है उसका स्त्री जैसी भाषा, काय सचलन है अथवा पुरुषासे भी रमन लगता है।

४- गोम्मटसार मे बताया है कि क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारम्भ मनुष्यही कर सकताहै। और सम्यग्दृष्टि मर कर स्त्री आदि मे उत्पन्न नहीं होता और क्षायिकसम्यक्त्वसे ही मुक्ति होती है तब तो यह स्पष्ट हो गया कि स्त्री की मुक्ति नहीं होती।

दसण मोहक्खवणा पट्ठवगो कम्मभूमि जादो हु।
मणुसो केवलि मूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ॥
॥ गो० जी० ६४७ ॥

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपु सकस्त्रीत्वानि,
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रता च व्रजति नाप्यव्रतिका
॥ रत्नकरड ३५ ॥

कर्मभूमि की महिलाओं के अंतिम ३ सहनन होते है और मुक्ति केवल वज्रऋषभ नाराच सहनन से ही होती है इससे भी यह निर्विवाद है कि स्त्री की मुक्ति नहीं होती।

अन्तिमतियसहणणस्सुदओ पुण कम्म भूमिमहिलाण। आदिमतिगसहणण णत्थित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठ॥ गो० क० ३२॥

अपमत्त सम्यक्त्त अन्तिम तिय सहदीय पुव्वाहि।
छच्चेव णोकसाया अणियट्टि भाग भागेसु।

वेदनिय कोहमाण मायासंजलणमेव सुगमते ।
सुहमो लोहोमन्ते वज्जणाराय णाराय ।
गो० क० २६८--२६६

इन गाथाओ मे बताया है अतके ३ संहननों की उदय व्युच्छित्ति सातवें गुणस्थान में होती है और वज्रवृषभ नाराच व नाराच संहनन की उदय व्युच्छित्ति ११वें गुणस्थान म होती है इससे सिद्ध होता है कि केवल वज्रवृषभनाराच सहनन वाला ही ऊपर जाता है प्रथम सहनन की व्युच्छित्ति १३वे गुणस्थान मे होती है इससे सिद्ध है कि अर्हत प्रथम सहननवाला ही हो सकता है अत. मुक्ति का पात्र वज्रवृषभनाराच सहनन वाला ही है ।

तदियेक्कवज्जणिमिणं थिरसुहसरगतिउराल तेजदुगं
सठाण वण्णा गुरु चउक्क पत्तय जोगिम्हि ।
॥ गो० क० २७१ ॥

४– सत्प्ररूपणा सूत्र ९३ की टीकामे स्पष्ट कियाहै–
भावसयमस्तासां सवाससामर्थ्यविरुद्ध इति चेन्न न तासां भावसयमोऽस्ति भावासयमाविनाभावि-वस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्त ।

अर्थ— वस्त्र सहित होते हुए भी स्त्रियो के भावसयम नहीं क्योकि यदि भावसयम होता तो भाव-असयम का अविनाभावी वस्त्रादि ग्रहण भी न होता । इससे सिद्ध होता है कि स्त्री सवस्त्र है और सवस्त्र के भावसयम नहीं होता । और भावसयमके बिना मुक्ति कैसी ?

केवली कवलाहार निवारण—

प्रोफेसर हीरालालजी ने श्री उमास्वामी कृत सूत्र का प्रमाण देते हुए केवली को क्षुधा पिपासादि जन्य वेदना का सद्भाव सिद्ध किया है, श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने उसका निषेध किया इन दोनो आचार्यों के विरोध को दूर करने के लिये निम्न लिखित वक्तव्य पाठको के समक्ष पेश करता हू । पहिले तत्वार्थ सूत्र से ही उक्त वेदना का अभाव सिद्ध करते है । सूत्र में "एकादश जिने" इसके अनुसार वेदनीय कर्म के उदय से ग्यारह परिषह का सद्भाव माना गया है । सूत्रके टीकाकारो ने केवल असाता के उदय को लेकर परिषह सिद्ध की है, न कि केवली के क्षुधादि वेदना की, वेदना होने म मोह का होना आवश्यक है केवल एक ही कारण से वेदना नही हो सकती उसके कारण अनेक माने गये है जैसा कि श्री नेमिचन्द्राचार्य जी ने जीव काड मे उल्लेख किया है ।

माया लोहे रदि पुव्वाहार कोह माणगम्हि भय ।
वेदे मेहुण सण्णा लोहम्मि परिग्गहे सण्णा ॥१॥

तथा—

आहारदसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोठाए ।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णाय ॥२॥

अर्थ— माया लोभ के उदय मे, तथा रति नो-कषाय के उदय आनेपर इनके अतिरिक्त आहार [illegible] जैसे आहार के दर्शन से या उसमे उपयोग लगाने तथा उदर रिक्तता से और असाता की उदीरणा से क्षुधा वेदना होती है इससे स्पष्टतया प्रतीत होता है कि केवली के क्षुत्पिपासादि नही है । कई एक कार्य अनेक कारणो से होते है । सूत्रकार ने केवल असाता का उदय मात्र लेकर क्षुधादि का उपचार किया है, उपचार भी निमित्त मात्र बतलाने के लिये है । मोहादि के उदय बिना असाता वेदनीय वेदना मे निमित्त नहीं हो सकता ।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य अध्यात्म-प्रधानी है उन्हो ने युक्तियो तथा अनुभव से वेदना का अभाव बताया है । केवल ज्ञानियो के सिर्फ ज्ञान चेतना ही है,

कर्म चेतना नहीं, इसमे रति भी नहीं है और कर्म फल चेतना नहीं है इससे दु ख (वेदना) नहीं फिर क्षुधादि वेदना कैसे बीचमे आ सकती है। कर्म सिद्धातका यह तात्पर्य नहीं है कि जो कर्म उदय मे आवे वह जीव को नियम से फल देवे, बिना फल दिये भी कर्म उदय मे आ सकता है। यह नियम नही कि कोई विष खा ले तो उस मरना ही चाहिये।

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि वेदना का अभाव दोनो ही आचार्यों को इष्ट है जब वेदना ही सिद्ध नहीं होती है तब कवलाहार मान्यता का प्रवेश नहीं हो सकता।

दूसरी बात यह है कि जो अनन्त बलशाली हैं और अनन्त सुखी है उनको वेदना पीडा का होना असम्भव है।

स्त्रीमुक्ति के खडन से ही सवस्त्रमुक्ति का खडन स्वयमेव हो जाता है धवला सत्प्ररूपणा सूत्र न० ९३ की टीका से इस विषय का स्पष्ट विवेचन हो जाता है भगवती आराधना मे जो उत्सर्ग, अपवाद मार्ग का कथन है उसका अभिप्राय समाधिमरण करने वाले गृहस्थ से है।

तत्वार्थसूत्रमें जो शरीर सस्कारका बकुश नामक मुनि के विषय मे कथन है उसका वस्त्र आभूषण से प्रयोजन नहीं किन्तु शरीर की सुन्दरता निरीक्षण, हस्तादि से स्वच्छता करना आदि से प्रयोजन है।

'भाव लिंग प्रतीत्य निर्ग्रंथा लिंगिनो भवति द्रव्य-लिंग प्रतीत्य भाज्या' इसका अर्थ वस्त्र धारण मे नहीं किन्तु यह अर्थ है भावलिंग से सब निर्ग्रंथ अर्थात अपरिग्रही और वस्त्र रहित होते है और बाह्य चिन्ह या कार्य से उनके अनेक भेद हो सकते है जैसे आ-हार करने वाले, मुनि विहार करने वाले, अध्ययन करने वाले मुनि इत्यादि—

सर्वार्थसिद्धि मे सग्रन्थलिंग से परम्परा से भूत प्रज्ञापन नय की विवक्षा मे वर्णन है साक्षात् मुक्ति निर्ग्रंथलिंगसे होती है ऐसा स्पष्ट विवेचन है। तत्वार्थ सूत्र मे व्रत का लक्षण 'हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्' कहा है और मुनि व्रत के लिये 'देश-सर्वतोऽणुमहती' कहा है सर्वथा पाच पापों का त्याग महाव्रत है वस्त्र रखने मे सर्वथा परिग्रह त्याग कैसे हो सकता है। इस प्रकार दिगम्बर आम्नायमे सवस्त्र मुक्ति बिलकुल सिद्ध नहीं होती इस विषय मे प्रवचन सार आदि ग्रन्थो मे विस्तृत वर्णन है।

११
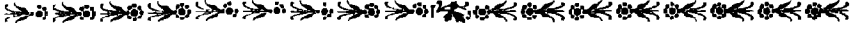
श्रीमान् पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री,

जयपुर ।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥
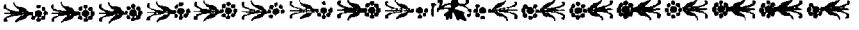
श्री० प्रोफेसर हीरालाल जी जैन एम० ए० एल० एल० बी० अमरावती ने जो स्त्री मुक्ति, सग्रन्थ मोक्षत्व और केवलि आहार इन तीनों विषयों को दिगम्बर जैनागम द्वारा विहित बतला कर श्वेताम्बर दिगम्बर धर्म में कोई मौलिक भेद न होना सिद्ध करना चाहा है सो दिगम्बर जैनागम के सर्वथा विपरीत है। दिगम्बर जैन धर्म में श्री कुन्दकुन्दाचार्य का सर्वोच्च स्थान है उन्हीं की परम्परा, पद्धति और आम्नाय पर सब अवस्थित हैं ऐसे भगवत्कल्प आचार्य वर्य के लिये यह कहना और लिखना कि 'कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने ग्रन्थों में स्त्रीमुक्ति का स्पष्टतः निषेध किया है किन्तु उन्होंने व्यवस्था से न तो गुणस्थान चर्चा की है और न कर्म सिद्धान्त का विवेचन किया है जिससे उक्त मान्यता का शास्त्रीय चिंतन शेष रह जाता है।'

शास्त्रीय व्यवस्था से इस विषय की परीक्षा गुणस्थान और कर्मसिद्धान्त के आधार पर ही की जा सकती है तदनुसार जब हम विचार करते हैं तो निम्न परिस्थिति उपस्थित होती है, प्रोफेसर साहब के इस प्रकार लिखने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि कुन्दकुन्दाचार्य सिद्धान्त से अपरिचित और पक्षपाती थे, वे न व्यवस्था से गुणस्थान चर्चा जानते थे और न कर्मसिद्धान्त का विवेचन ही कर जानते थे एवं गुणस्थान चर्चा और कर्मसिद्धान्तकी विवेचना का विवेक प्रोफेसर साहब के अतिरिक्त आज तक किसी को भी दि० जैन संघ में नहीं हो सका। कितने आश्चर्य की बात है कि परम वीतरागी और गुणस्थानों का अनुभव भी अपनी आत्मा में करने वाले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की अपेक्षा गुणस्थान चर्चा और कर्मसिद्धान्त का बोध प्रोफेसर सा० में विशेष है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के बाद सर्वार्थसिद्धि के रचयिता पूज्यपाद स्वामी, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती अमितगति आचार्य तथा गोम्मटसार के टीकाकार भी प्रोफेसर साहब की दृष्टि में सिद्धान्तसे अपरिचित ही है। स्त्रीमुक्ति आदि इन तीनों विषयों की पुष्टि में अर्जुनलाल जी सेठी, भगवानदीन जी आदि कुछ लोगों ने शास्त्रीय उद्धरणों का अपने अनुकूल अर्थ करके अनेक लेख सत्योदय आदि तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित किये हैं जिन के उत्तर भी तत्कालीन दूसरे पत्रों में बराबर प्रकाशित होते रहे हैं जिसका यह फल है कि वे शास्त्र विरुद्ध मान्यतायें दिगम्बर जैन समाज में प्रचलित न हो सकीं। अब प्रो० हीरालाल जी ने वही कार्य आरम्भ किया है। अर्जुनलाल जी सेठी आदि तो शास्त्रीय उद्धरणों का अर्थ ही अपने

अभिप्राय के अनुकूल करते थे परन्तु जब उन शास्त्रीय वचनों का अर्थ स्वाभिप्रायानुकूल सिद्ध न होने लगा तो प्रोफेसर साहब ने कुंदकुंदाचार्य तक को अपने मुकाबिले में अविचारी कहने का साहस किया है।

अष्टकर्म निर्मूलनस्वरूप मुक्ति कोई साधारण वस्तु नहीं है। स्त्री में उतना बल-पौरुष संहनन आदि नहीं है जितना मोक्ष केलिये अपेक्षित है। स्त्री न इतना पाप ही कर सकती जो सप्तम नरक तक किसी भी काल में जा सके और न इतना चारित्र ही पाल सकती जिससे कि वह स्त्री पर्याय में मुक्ति-लाभ कर सके इसका वर्णन अनेक पहलुओं द्वारा अकाट्य युक्ति प्रमाणों में कई बार प्रकाशित हो चुका है। पंचमकाल में उत्पन्न पुरुषों केलिये भी चाहे वह ऊंचे से ऊंचा चारित्र-पालन क्यों न करे मुक्ति का द्वार बंद है क्योंकि काल दोष से मुक्ति के योग्य सयोग-पूर्ण साधनों का समागम नहीं हो सकता ऐसी अवस्था में स्त्रीमुक्ति का चर्चा उठाकर स्त्री पुरुष की समानता बतलाना अयुक्त है।

गुणस्थानों का वर्णन भावों की अपेक्षा से है। उत्पन्न आत्म-भाव का अवस्थान द्रव्यत: सर्वांगता पर ही हो सकता है और तद्गुणस्थानरूप भावों के अवस्थान के बिना मोक्ष लाभ नहीं हो सकता। भावों की उत्पत्ति और अवस्था विशेषता को भगवान सर्वज्ञ अथवा उनकी परम्परा से अवबुद्ध आचार्य वर्य ही जान सकते हैं। सातवें नरक से निकला हुआ प्राणी नरक में ही जाता है। छठे नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य पर्याय धारण करने पर भी तद्भव में संयमी नहीं हो सकता। पांचवे नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य होने पर भी तद्भव में मोक्ष नहीं हो सकता। चौथे नरक से आया हुआ प्राणी मनुष्य होने पर भी तद्भव में तीर्थंकर नहीं हो सकता। यह सब नियम भावों की जाति पर है और इस भाव-वैचित्र्य को सर्वज्ञ भगवान ही जान सकते हैं इसी प्रकार स्त्री भी मोक्ष नहीं पा सकती। द्रव्यवेद की सत्ता से उसमें किसी समय ऊंचे गुणस्थानरूप भावों के किसी प्रकार सत्व होने पर भी उन भावों का अवस्थान नहीं रह सकता। इस बात को सर्वज्ञ भगवान या उनके उपदेशानुसार वक्ता आचार्य ही जान सकते हैं। भावों की गति का सूक्ष्म विवेचन अस्मादृश कषाय विषयासक्त लोग भगवान कुन्द-कुन्दाचार्यादि से अधिक कर सकें यह सर्वथा अनुचित आम्नाय और हास्यप्रद भी है।

प्रोफेसर साहब से मेरा यह प्रश्न है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्त्रीमुक्ति के सम्बन्ध में ही गुणस्थान चर्चा और कर्मसिद्धांत से अनभिज्ञ रहे अथवा और किसी बात में भी? यदि और बात में भी वे अनभिज्ञ थे तो लगे हाथ उनको भी प्रकट कर देना चाहिये और यदि स्त्रीमुक्ति के सम्बन्ध में ही वे अनभिज्ञ रहे तो इसका क्या कारण है? क्या स्त्री के मुक्ति में चले जाने से उनकी कोई हानि हो जाती?

मुक्ति लाभ के लिये अतुलबल की आवश्यकता होती है वह अतुलबल स्त्री जाति में नहीं हो सकता। अतुलबल को तो जाने दीजिये आज कल जो पुरुष जाति में साधारण बल दीखता है वह भी इनमें नहीं है। आजकल महायुद्ध चल रहा है आपही बतलाइये कि सेना में कितनी स्त्रियां भर्ती की गई? स्त्रियें बच्चे तो सर्वत्रही रक्षणीय समझे जाते हैं। एकाध स्त्री ने कोई वीरता का काम दिखला कर किसी परिस्थिति

वश कुछ किया हो या कोई शत्रु आकांत हो गया हो वह दृष्टांत लागू नहीं हो सकता। इस पर भी कर्मयुद्ध की असाधारणता बड़ी प्रबल है।

किसी भी दि० जैनागम से स्त्री मुक्ति का समर्थन नहीं होता। जिन गाथाओं को आपने अपने अनुकूलार्थ बतलाया है उनका यह अर्थ नहीं है। उनका वही अर्थ है जो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रतिपादन किया है। आप उन गाथाओं से स्त्रीमुक्ति सिद्ध करते हैं यह केवल अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये। आपने जिन गाथाओं का उल्लेख दिया है उनमे कौन सी गाथा के कौन से शब्द से स्त्रीमुक्ति सिद्ध होती है यह भी तो आपको लिखना चाहिये था केवल गाथाओं का नबर दे देने से यह विषय सिद्ध नहीं होता है। यदि आप कोई पूर्वापर प्रकरण को प्रकट कर उद्धरण देते और उसका अर्थ करते तो उस बात पर लिखा जाता?

आपने पूर्वाचार्यों के व्याख्यान के संतोषजनक न होने मे जो चार बातें लिखी हैं वे सब सार हीन हैं। इस पर भी इन बातो पर सूक्ष्म विवेचन केलिये लिखा पढ़ी से काम नहीं चलेगा। समाज के विद्वानो के समक्ष में किसी समय और स्थान पर बैठने की कृपा कीजिये और प्रत्येक विषय पर विचार कीजिये।

दिगम्बर जैन सिद्धात के अनुसार अपने सवस्त्र को संयमी सिद्ध करने के लिये दो प्रमाण दिये हैं। एक श्री शिवकोटि आचार्य कृत भगवती आराधना का और दूसरा सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक का।

भगवती आराधना की आपने ७६ ८३ गाथायें अपने प्रमाण में बतलाई हैं। यहा प्रकरण यह है कि जब कोई श्रावकभक्तप्रत्याख्यान करताहै तो उसे कैसा चिन्ह धारण करना चाहिये। यदि मुनि है और उस ने भक्त प्रत्याख्यान किया है तो उसका वही औत्सर्गिकलिंग रहेगा और यदि अपवादलिंग धारक गृहस्थ जब भक्त प्रत्याख्यान के लिये उद्यत होता है तब उस के पुरुषाकार मे यदि कोई दोष न हो तो वह औत्सर्गिकलिंग धारण कर सकता है। पुरुषाकार मे चर्म न होना अत्यत दीर्घता, बार बार चेतना होकर ऊपर उठना, अड बडे होना ये लिंगदोष है। ऐसे लिंग अर्थात पुरुषाकारका धारण करने वाला गृहस्थ नग्नता (दिगम्बरत्व) केलिये अयोग्य है। यदि दोष विशिष्ट लिंग (पुरुषाकार) का धारक गृहस्थ भक्त प्रत्याख्यान मरण के निमित्त नग्न होना चाहे तो वह भक्त प्रत्याख्यान के समय एकातादिक में सर्व परिग्रह का त्याग करके नग्न रह सकता है। जिसके उपर्युक्त दोष औषधादि से भी नष्ट होने लायक नहीं होते वह जब वसतिका में संस्तरारूढ होता है तब पूर्ण नग्न रह सकता है, अन्यत्र नहीं। जो गृहस्थ लज्जावान तथा समृद्ध है तथा जिसके बन्धुगण मिथ्यादृष्टि हैं एव वैसे निर्जन स्थान की प्राप्ति नहीं हो सकती पुरुषाकार दोष विशिष्ट न हो, तो भी एकात रहित वसतिका में सवस्त्र रहते हुए ही भक्तप्रत्याख्यान करना चाहिये।

'गृहस्थ को किस परिस्थिति में नग्नता धारण कर भक्त प्रत्याख्यान मरण करना चाहिये और किस परिस्थिति मे सवस्त्र होकर भक्त प्रत्याख्यान मरण करना चाहिये' इस बात का इन गाथाओ और श्लोकों में यह वर्णनहै। सवस्त्र भी संयमी होता है ऐसा भगवती आराधना की इन गाथाओ तथा श्लोको से किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता। सवस्त्रको अपवाद मार्गी मुनि बतलाया हो यह बात किसी अक्षर से भी सिद्ध नहीं हो सकती।

अपवादलिंग इस प्रकरण में ऐलक आदि का

बतलाया गया है जैसा कि निम्न लिखित गाथा की टीका से स्पष्ट है।

अववादियलिंगगदो विसयासत्ति अगूहमाणो य।
णिंदण गरहणजुत्तो सुज्झदि उवधिं परिहरंतो ॥७॥

अर्थ—अपवादलिंग धारी ऐलकादिक भी अपनी चारित्र धारण शक्ति को न छिपाता हुआ कर्म मल निकल जाने से शुद्ध होता है क्योंकि वह अपनी निंदा करता है कि 'मन वचन शरीर एस तीन योग पूर्वक परिग्रह का त्याग है सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना ही मुक्ति का मार्ग है परन्तु मुझे परिषहा का डर होने से पापोदयसे मैंने वस्त्रादिक परिग्रह को ग्रहण किया है' ऐसा मन में पश्चात्तापपूर्वक वह निन्दा करता है, आदि।

इस प्रकार भगवती आराधना की उक्त गाथाओं से सवस्त्र मुनित्व की कल्पना करना सर्वथा आगम विरुद्ध और अमान्य है।

ख-राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थों में भी सवस्त्र मुनित्व की सिद्धि कदापि नहीं होती प्रत्युत स्पष्ट निषेध होता है। जिन वकुश मुनियों को शरीर संस्कार के विशेष अनुवर्ती बतला कर सवस्त्रत्व सिद्ध किया जाता है उनके विषयमें इन ही ४६-४७ वे सूत्रों में स्पष्ट लिखा है कि —

'नैर्ग्रन्थ्य प्रस्थिता अखण्डितव्रता शरीरोपकरण-विभूषानुवर्त्तिन.'

यहां 'शरीरोपकरणविभूषानुवर्त्तिन.' इस शब्द का अर्थ आप जो सवस्त्रत्व करते हैं वह यों सर्वथा अशुद्ध है कि पहले के 'नैर्ग्रन्थ्य प्रस्थिता और अखण्डितव्रता' इन विशेषणों से ही शरीरोपकरणभूषानुवर्त्तिन इस विशेषण को समन्वित करना है। इस विशेषण का सवस्त्रत्व अर्थ नहीं है इसी लिये भगवान अकलंक स्वामी ने नैर्ग्रन्थ्य प्रस्थिता और अखण्डितव्रता यह विशेषण लगाये हैं जिनका स्पष्ट अर्थ है कि वकुश मुनि सर्वथा निर्ग्रंथ (वस्त्र भूषादि रहित) और अखंडितव्रत ही होते हैं।

शरीरोपकरणविभूषानुवर्त्तिन.

इस पद का यह अर्थ है कि जो नग्न दिगम्बर अवस्था को धारण करते हैं, मूलगुणों को खंडित नहीं होने देते हैं अर्थात मूलगुण जिनके पूरे होते हैं परन्तु शरीर और उपकरणों की सफाई को पसन्द करते हैं। भावार्थ-शरीर भी मलिन न रहे, कमंडलु पिच्छिका भी नई हो इस प्रकार की अनुराग बुद्धि उनकी बनी रहती है, ऋद्धि और यशकी चाहना भी उनके रहती है आदि। शरीरस्य उपकरणानां च विभूषा सुंदरत्वं तस्या अनुवर्त्तिन' अर्थात शरीर और उपकरणों की सुंदरता को स्वच्छताको पसंद करने वाले वकुश मुनि होते हैं।

इस विशेषण का अर्थ सवस्त्रत्व निकालना अनुचित है भगवान अकलंकदेव ने इसी विषय का खुलासा करनेके लिये आगे जाकर और भी स्पष्ट कर दिया है और कहा है कि 'दृष्टिरूपसामान्यात' अर्थात इन पांचों ही प्रकार के मुनियों में सम्यग्दर्शन और आभूषण वस्त्रायुधादि रहित (नग्नत्व निर्ग्रन्थत्व) रूप की समानता है अर्थात पांचों ही निर्ग्रंथ हैं। इतना स्पष्टार्थ होने पर भी प्रोफेसर साहब सरीखे व्यक्ति इस प्रकारका अर्थ करें यह कितने खेद और आश्चर्य की बात है?

द्रव्यलिंगमें पांचोंही निर्ग्रंथों में विकल्प स्वीकार किया गया है यह जो अर्थ आप 'द्रव्यलिंग प्रतीत्य भाज्या' इस वाक्य का करते हैं और इसका वाच्यार्थ जो यह निकाला जाता है "टीकाकारों ने यही अर्थ

किया है कि कभी कभी मुनि वस्त्र भी धारण कर सकते हैं। मुक्ति भी सग्रन्थ और निर्ग्रंथ दोनो लिंगो से कही गई है"। सर्वथा गलत है। मेरा आपसे प्रश्न है कि कौन से टीकाकारों ने यह अर्थ किया है कि मुनि वस्त्र भी धारण करते है, प्रकट किया जाय। किसी टीकाकार ने ऐसा लिखा है यह देखने में नहीं आया। 'द्रव्यलिंग प्रतीत्य भाज्या' का यह अर्थ है कि भावलिंगकी अपेक्षा तो सभी निर्ग्रंथ प्रमत्त संयत है। द्रव्यलिंग की दृष्टि से किसी का शरीर दुबला है किसीका मोटा है, कोई लम्बा है कोई छोटा है अर्थात भिन्न २ शरीराकृति के धारक है।

'निर्ग्रंथलिंगेन सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धि भूतपूर्व—नया पेक्षया'

जिसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा तो निर्ग्रंथलिंग से ही सिद्ध पद प्राप्त होता है बाकी भूतपूर्व नय की अपेक्षा से सग्रन्थलिंग भी कहा जा सकता है भूतपूर्वनयका यही अर्थ है कि निर्ग्रंथावस्था से पहिले वह जो था ? अर्थात सग्रन्थलिंगसे परम्परा से मुक्ति होती है साक्षात नहीं। साक्षात निर्ग्रंथलिंग से ही होती है। खेद और आश्चर्य है कि जो वर्णन स्पष्ट नय विवक्षा मे है उसे एकांत से समझा जाता है। स्वयं प्रोफेसर साहब भूतपूर्वनय की अपेक्षा से सग्रन्थलिंग से मुक्ति बतलाते हैं तो भी यह अर्थ करते हैं, यह कितना आश्चर्य है। भूतपूर्व का अर्थ प्रागवस्था है जिसे सर्व साधारण समझते है जैसे भूतपूर्व जज, भूतपूर्व सभापति आदि।

ग—धवलाकारने संयम की परिभाषामें पंच व्रतो का पालन लिखा है सो ठीक ही है। वास्तवमें मुख्य तो पांच व्रतों का पालन ही है उन ही के पालन के लिये आगे के २३ मूलगुण और है। संक्षेप से सूत्र रूप कथन किया जाय तो पंचव्रतो का पालन ही है, विस्तार से २८ मूलगुणों का। अतिविस्तार से उनका भी स्पष्टीकरण होता है। यह तो व्याख्यान का संक्षेप विस्तार है। इससे यह बात सिद्ध करना कि २३ मूलगुण धवलाकार के सिद्धांत मे अस्थिर है और इसी लिये निर्ग्रंथत्व भी अनावश्यक है भ्रम-पूर्ण है।

स्थूल बुद्धिसे विचार करने पर भी दिगम्बर जैन शास्त्र में सर्वत्र सर्थासत्व सिद्ध नहीं होता।

केवलि आहार—

क—भगवान के मोहनीय कर्म नष्ट हो जाने से वेदनीय कर्म अकार्यकारी रहता है क्योंकि असाता वेदनीय कर्म की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है। इस विषय पर अनेक बार अनेक विद्वानो ने प्रकाश डाल दिया है और दिगम्बर जैन आगममें स्पष्ट रीति से यह कहा गया व सिद्ध किया गया है कि केवली भगवान के भूख प्यास नहीं होती। वेदनीय कर्म के सत्ता मे होते हुये वेदनाओं का केवली के अभाव मानना सर्वथा शास्त्र सम्मत है। राजवार्तिक आदि ग्रन्थो में इस विषय को पर्याप्त रीति से स्पष्ट कर दिया है। यदि प्रोफेसर साहब निष्पक्ष दृष्टिसे देखने की कृपा करेंगे तो कोई संशय बाकी नहीं रहेगा। केवली भगवान को भूख प्यास न लगने का विषय कई बार विवेचन में आकर निर्णीत हो चुका है।

ख—आप्तमीमांसा के ९३वें श्लोकसे जो प्रोफेसर साहब केवली भगवान के सुख और दुःख का सद्भाव स्वीकार करते हैं यह भूल है इस श्लोक में केवली पद की नहीं है 'वीतरागो मुनिर्विद्वान' वीतराग विद्वान मुनि यह शब्द है। वीतराग का अर्थ यहां 'केवली भगवान' करना आश्चर्य कारक है। प्रमत्त संयत षष्ठ गुणवर्ती मुनि भी वीतराग कहलाते हैं।

दूसरे यह बात भी है कि केवलीके साथ विद्वान मुनि विशेषण नहीं आते। विद्वान तो मामूली शास्त्रवेत्ता को कहते हैं। केवली को मुनि भी नहीं कहा करते किन्तु भगवान कहते हैं इस लिये 'मुनि विद्वान' इन शब्दों के होते हुये वीतराग का अर्थ केवली करना बिलकुल गलत है। इस श्लोक की जो संस्कृत टीका है उसमें भी 'वीतरागा मुनि' का अर्थ केवली नहीं है। न आगे पीछे के श्लोकों में ही केवली शब्द की आवृत्ति होती है।

इस प्रकार स्त्री मुक्ति, सवस्त्र सयमित्व और केवलि-आहार ये तीनो मन्तव्य आगम, युक्ति और प्रमाण किसी से भी सिद्ध नहीं होते यदि प्रोफेसर साहब को अपने मतव्यो के पक्ष मे विश्वास है तो उन्हें चाहिये कि दिगम्बर जैन समाज के विद्वानो व नेताओं की समक्षता मे इन विषयो पर और समाधान करा ले। इस तरह किसी सम्मेलन के अधिवेशन पर आगम विरुद्ध विषय का प्रतिपादन कर देना अपने को एक उत्तरदायी समझने वाले व्यक्ति के लिये उचित नहीं कहा जा सकता। प्रोफेसर साहब को विचार करना चाहिये।

१३

श्रीमान् पं० जीवन्धर जी न्यायतीर्थ,

इन्दौर।

❀ श्री अकलंकदेवाय नमः ❀

—स्त्री-मुक्ति—

स्त्री-मुक्ति के सम्बन्ध मे प्रो० हीरालाल जी ने आगम प्रमाण की समीक्षा करते समय आचार्य पूज्य पाद, नेमिचन्द्र, अमितगति तथा गोम्मटसार के टीकाकारो के सम्बन्धमे अपने तर्क से उनकी व्याख्याओं को असगत बनाने की चेष्टा की है, हम नीचे उनके तर्कों पर विचार करते हैं—

१–प्रथम तर्क के सम्बन्ध मे हमे यही कहना है कि जब षट्खण्डागम के अनुसार नेमिचन्द्राचार्य ने गोम्मटसार की रचना की तब इतनी मोटी शब्द रचना उनकी बुद्धि से अगम्य नहीं मानी जा सकती। प्रत्येक समझदार यह मान सकता है कि नेमिचन्द्राचाय 'योनिनी' शब्द का अभिप्राय समझ सके होगे उसके बाद ही उन्होने भाववेद स्त्री को श्रेणि मांडने का अधिकार बतलाया और द्रव्यस्त्रीको निषेध किया।

२–जहा वेदमात्र की विवक्षा से कथन किया गया वहा आपके लिखे माफिक १४वे (९वा चाहिये) गुणस्थान तक है, परन्तु द्रव्यस्त्री को छठा गुणस्थान भी दिगम्बर जैन सिद्धात मे नहीं माना जो कि मूल षट्खण्डागम मे, नेमिचन्द्राचार्य कृत प्राकृतिक ग्रन्थो में व उनकी व्याख्याओ मे प्रसिद्ध है, तब क्षपक श्रेणी व उपशम श्रेणी की योग्यता का प्रश्न ही नहीं हो सकता, मुक्ति की बात तो दूर है।

३–कर्मसिद्धात के अनुसार वेद वैषम्य सिद्ध नहीं होता यह तर्क विचारणीय है गो० जीवकाड वेद—मार्गणानिरूपण गाथा न० ७० पुरिसिच्छि सढवेदोदयेण पुरिसिच्छि सढओ भावे। नामोदयेण दव्वे पायण समा कहिं विसमा ॥ के आधार पर विचार करने से यह मालूम पड़ता है कि वेद जो कि मोहनीय कर्म (घातिया) है उसके उदय से वेद परिणाम उत्पन्न होते हैं और नामकर्म के उदय से शरीर में चिन्ह रचना होती है जो कि भिन्न कर्मों का कार्य है इसमे वैषम्य होने मे कोई बाधा नही होती। जैसे द्रव्य-लेश्या व भाव लेश्या मे यह बात स्पष्ट है कि भाव-शुक्ल लेश्या वाले के द्रव्य कृष्ण लेश्या आदि अनेक वैषम्य होने में कोई बाधा नहीं है उसी प्रकार वेद-वैषम्य को यथार्थ संभव समझ कर विद्वान आचार्यों ने वर्णन किया। प्रोफेसर सा० ने यह बात लक्ष्य मे नहीं दी क्योकि द्रव्य स्त्रियो को मुक्ति किस तरह प्राप्त हो सके यह उनका मुख्य उद्देश्य था उसीमें उन की दृष्टि लगी हुई है। आपने यह बतलाया कि "चक्षुरिन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से कर्ण की उत्पत्ति कदापि नहीं होगी।" उसके सम्बन्ध में यह आपको ध्यान दिलाना है कि चक्षुरिन्द्रियावरण के क्षयोपशम से चक्षुद्रव्येन्द्रिय भी नहीं उत्पन्न होती,

जन्माध मनुष्य इस बात का खासा प्रमाणहै। शरीर चिन्ह आगोपाग नामा पुद्गल विपाकी कर्म का काम है और जीव के भाव जीव विपाकी कर्म के उदय के कार्य है जो कि भिन्न ही है आपके स्थूल तर्क द्रव्यस्त्री को मोक्ष न पहुचा सकेंगे शरीर मे चिन्ह भिन्न होते हुये भी वेद के उदय से भिन्न भाव होते है। यदि एक भी प्राणी मे वेद-वैषम्य पाया गया तो जीवन भर वेद नही बदल सकता यह बात अयुक्त है। वेद वैषम्य तो वेद मार्गणा के गाथा न० २७० मे श्री नेमिचन्द्र जी ने बतलाया ही है।

४-चौथी तर्क के बाबत यह कहना है कि शरीर स्त्री व पुरुष के चिन्हो के साथ नपु सक के चिन्ह भी स्पष्ट दिखलाई देते है। आपने चलते फिरते नपु-सको को नहीं देखा जिन्हे लोग नपु सक कहते है। उनके पुरुषो के समान दाढ़ी मूछ नहीं होती तथा स्त्रियो सरीखे स्तनादि उपाग भी नही होते तब आप 'दो ही चिन्ह द्रव्यमे पाये जाते है' यह बात असगत ही लिखते है। आपने वेद वैषम्य मानने मे अनेक प्रश्न खड़े होते बतलाये इसमे यह विचारणीय है कि प्रश्न खड़े होने पर ही समाधान होता है। वेदकर्म जनित जीव के परिणामों को भाववेद कहते है वे परोक्ष है उनके आधार पर लोक व्यवहार नहीं होता और जिसे द्रव्यवेद कहते है वह नामकर्म के उदय-जनित शरीर के चिन्ह है, उसी के आधार पर लोक-व्यवहार मे स्त्री पुरुष कहा जाता है। यद्यपि वेद शब्द समान है परन्तु आपतो आगम के अनुसार उसका विभाजन कर सकते है मिश्रण कर लिखना मामूली ज्ञानी को भ्रम मे डालना है। आपने यह बतलाया कि उपाग के बिना वेद उदय मे कसे आयगा यह बात भी विचारणीय है। यदि द्रव्य के बिना भाव उदय मे न आये तब जन्मान्धको द्रव्य चक्षुओ के बिना क्षयोपशम क्यो मानना चाहिये अथवा महल मकान धन आदि द्रव्य साधनो के अभाव में दरिद्री को मोह उदय क्यो माना जाय ?

आगे आपने पाचो इन्द्रियो के परस्पर सयोग से पच्चीस प्रकार के ज्ञान बतलाये सो भी विचारणीयहै, प्रोफेसर सा० जानते है कि ज्ञानी तो पचेन्द्रिय सपन्न एक ही आत्मा जैनाचार्यो ने माना है, एक शरीर मे पाच आत्मा पृथक नही है जिससे आपको इस बात का भय हुआ कि पच्चीस प्रकार के ज्ञान हो जाने से पाच आत्मा एक शरीर मे पृथक न रह सकेंगे। ज्ञानो के भेद असख्यात प्रकार के सयोगी व भिन्न होते ही है। आप एक सब फल को जब जुखाम हो रहा हो तो खाइये तब आप देखेंगे कि रसक मिठास का ज्ञान तो जरूर होवेगा परन्तु उस स्वाद मे स्वस्थ अवस्था के स स्वाद मे भिन्नता अवश्य पाई जायगी। इसी प्रकार नाक दबाकर जल पीओ तब जल का रस ज्ञान होगा परन्तु नाक खोल कर पीने मे जो ज्ञान होता है वह न होगा। इससे यह तो स्पष्ट है कि सयोगी ज्ञान अनेक होना स्वाभाविक है, जबकि एक शरीर मे एक ही पचेन्द्रिय सम्पन्न आत्मा है। यह कल्पना आपकी द्रव्य स्त्री को मोक्ष अधिकार नहीं दिला सकती।

मैं एक बात और भी इस सम्बन्ध मे लिखना चाहता हू कि प्रोफेसर साहब ने केवल आगम वाक्य ही बताकर स्त्री मुक्ति का समर्थन किया हो यह बात नहीं है उन्होने काफी युक्तिवाद का सग्रह किया है जो कि उनकी खुद की कल्पनायें हैं जिनका निराकरण ऊपर किया जा चुका है। अब मैं उन तर्कों का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता जो आचार्यप्रवर तार्किक-

सूर्य प्रभाचन्द्र जी ने अपने लिखे हुए प्रमेय कमल मार्तंडमें दिये हैं (१) आगम प्रमाण उन्होने यह दिया है देखिये पुस्तकाकार प्रकाशित मार्तंड का ३३३वा पेज *'नाप्यागमात् तन्मुक्तिप्रतिपादकस्यास्याभावात्'* अर्थ–आगम से भी द्रव्य स्त्री को मोक्ष नहीं सिद्ध हो सकता क्योकि स्त्री को मोक्ष बतलाने वाले आगम का अभाव है।

गाथा—'पु वेद वेदता जे पुरिसा खवगसेढि-मारूढा। समोदयेण वि तहा झाणुव जुत्ताय ते दु सिज्झति ॥१॥

उपरोक्त प्राचीन गाथा स्फुटरूप से द्रव्यस्त्री मुक्ति की निषेधक है। (१) पु वेद ही मोक्ष का प्रयोजक है। (२) स्त्री वेद नाम कर्म अशुभ कर्म है जिसे मोक्ष जाने वाला जीव पूर्वभव मे ही निर्जीर्ण कर देता है, इससे वह स्त्री पर्याय को प्राप्त नही करता ऐसी दशा मे द्रव्यस्त्री मुक्ति नही पा सकती। वह वेद नामकर्म अशुभ है इसका प्रमाण यह है कि सम्यक्दृष्टि जीव स्त्री पर्याय नहीं पाता स्वय समन्तभद्राचार्य ने स्वर-चित रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे लिखा है। '*सम्यग*—दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपु सकस्त्रीत्वानि' इसे प्रो० साहब ने नहीं विचारा। प्रभाचन्द्र जी ने खुलासा लिखा है कि तद्भव मोक्षगामी भी वही जीव है जिस ने पूर्व भव मे स्त्री वेद को (अशुभ कर्मो मे) निर्जीर्ण कर दिया हो।

३–एक बात यह भी है कि उत्कृष्ट ध्यान वाला ही मोक्ष प्राप्त करता है उत्कृष्ट ध्यान का सबध वज्र—वृषभनाराच सहननमे है, वही जीव उत्कृष्ट दुर्ध्यान से सप्तम नरक जाता है। यह बात स्त्री वेद मे नहीं है। उसी प्रकार उत्कृष्ट सद्ध्यान उसी सहनन वाले को मोक्ष प्रापक है। यह सहनन स्त्रियो में पाया नहीं जाता। तब किस कर्म सिद्धात के आधार पर आप स्त्री को मोक्ष कहते है।

४–दिगम्बर सिद्धात निश्चेल सयम से मोक्ष मानता है। सचेल सयम मोक्ष का प्रापक नहीं, क्योकि स्त्रिया कभी वस्त्र नहीं छोड़ सकती, इसलिये भी उन्हें मोक्ष की व्यवस्था का समर्थन नहीं बनता।

श्री प्रभाचन्द्र जी ने लिखा है देखिये प्र० क० मार्तंड पेज नं० ३२१ (नया एडीशन) 'किंच बाह्या—भ्यतर परिग्रह परित्याग सयम सच याचन सीवन प्रक्षालन—शोषण—निक्षेपादान-चौरहरणादि मन.-सक्षोभकारिणि वस्त्रे गृहीते कथ स्यात् प्रत्युत सयमोप घातकमेवस्यात् बाह्याभ्यतरनग्रंथ्यप्रतिपथित्वात्।'

इत्यादि बहुत से प्रमाण व युक्तिया यह सिद्ध करती है कि दिगम्बर जैन सिद्धातानुसार द्रव्यस्त्री को पच महाव्रत नहीं हो सकते, अतएव मोक्ष का विचार सतोषजनक रीति से निबट जाता है। यह विचार तत्व दृष्टिसे प्रभावित था, किसी लौकिकश्रेय की प्राप्ति से नहीं। केवली कवलाहार के सम्बन्ध मे आगे लिखा जाता है।

क्या केवली भगवान के भूख-प्यास की वेदना होती है ?

उपर्युक्त विषय के सबध मे कर्मसिद्धातानुसार वेदना का अस्तित्व प्रोफेसर हीरालालजी ने बताया है परन्तु उसका विचार करने पर यह बात श्री नेमिचद्र सिद्धातचक्रवर्ती ने बतलाई कि असाता की उदीरणा छठे *गुणस्थान* तक रहती है, आगे के गुणस्थानो मे उदीरणा नहीं होती है और भूख का कारण असाता वेदनीय की उदीरणा है, उदय नहीं। देखिये—

आहार दंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोठाये।
सादिदरुदीरणाये हवदि आहारसण्णा हु ॥१३४॥
णट्ठपमाए पढमा सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा।
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारे णत्थि णहि कज्जे ॥१३८॥

ये गाथायें श्री नेमिचन्द्र जी ने दी हैं जिनसे यह स्फुट है कि सब संज्ञाओं में उदीरणा संभव कर्मों की उदीरणा कारण है, उदय नहीं। यदि ऐसा न हो तो मोक्ष की कथा ही विडम्बना ठहरती है क्योंकि सब प्रवृत्तियां मैथुनादि भी सातवें आठवें नवमें गुणस्थान तक होना अनिवार्य हो जावेगी। कर्म सिद्धांतानुसार कर्म की बंध, उदय उदीरणादि भेद से दश दशायें बतलाई हैं जिन का कार्य भी पृथक २ बतलाया है। कर्मकांड की व्यवस्था से बहुत से कर्म प्रदेशोदय द्वारा निर्जीर्ण हो जाते हैं चूंकि असाता वेदनीय अघाति कर्म है उसकी सत्ता व उदय तेरहवें गुणस्थान तक बतलाई है या रहती है तब प्रदेशोदय से निर्जीर्ण होते रहने से वह बाधाओं का जनक नहीं ठहरता फिर आपके कर्मसिद्धांतानुसार ही वेदना होती रहती होगी। वहां अनुभागोदय न होने से दि० जैन सिद्धांतानुसार वेदना नहीं हो सकती।

२—आपने अपनी तर्क पद्धति से यह प्रस्तुत किया कि राजवार्तिककार की विश्लेषण प्रणाली दुःख जनक भूख प्यास के अभाव को कर्म-सम्मत नहीं सिद्ध करती, इस विषय में यह विचारणीय है कि वेदनीय कर्म किस तरह जीव को सुख व दुःख का अनुभव कराता है? एक मनुष्य को खाने के वास्ते मिठाई मिली उसे खाकर वह बहुत सुखी हुआ इसमें यह देखना है कि मिठाई का मिलना किस कर्म के उदय से हुआ? लाभ का प्रतिबन्धक कर्म 'लाभांतराय' है उसके क्षयोपशम ने वह सामग्री (मिठाई) उपस्थित करा दी। खाना रूप क्रिया औदारिक काययोग से की, वह मीठी है यह अनुभवन रखना इन्द्रियजन्य ज्ञान का कार्य है, जिसे ज्ञानावरण के क्षयोपशम का कार्य मानना होगा। उससे सुखी होना मोहनीय कर्म का कार्य है फिर वेदनीय का कार्य सिर्फ धर्मद्रव्य व अधर्म व काल द्रव्य के समान सहायक रूप से वेदना करा देने के अतिरिक्त क्या रहता है यह आप विश्लेषण करेंगे तो आपकी दृष्टि अवश्य ही उस गहराई तक पहुंचेगी जो कि श्री राजवार्तिककार प्रभाचन्द्राचार्य व कुन्दकुन्द स्वामी जैसे परम वीतरागी तत्व प्ररूपक पक्षपातहीन विद्वानों की सूक्ष्म सम्बन्ध रखती है। वेदनीय की व्याख्या गोम्मटसार कर्मकांड में 'तवेदयतीति वेदनीयम्' इस रूप से णिजर्थ में की है जैसे कि काल द्रव्य की वर्तना की व्याख्या की जाती है उसी प्रकार वेदनीय कर्म की 'वेदना' की भी व्याख्या है जो कि ग्रन्थकारों को अभीष्ट थी। अब आप स्वयं सोचें कि अघाति कर्म जो कि साधारण सहायक है वह मुख्य कर्म मोहनीय के अभाव में क्या निर्जीर्ण प्रभाव नहीं रह जाता है, वह ऐसी दशा में केवली को दुःखानुभवन किस प्रकार करा सकता है? इसीके समर्थनमें देखिये कर्मकाड गाथा नं. १९

घादिंव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं।
इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्हि पढिद तु ॥

अर्थात् वेदनीयकर्म, मोहनीयकर्मके उदय के बल से ही जीवों का घात करता है इसी लिये मोहकर्म के पहले इसका पाठ किया गया है। कर्म सिद्धांत के वेत्ता नेमिचन्द्राचार्य के इस कथन पर से और क्या शेष रह जाता है।

आचार्य प्रभाचन्द्र ने भी तर्क से यह स्पष्ट कर दिया कि बुभुक्षा एक कर्म का कार्य नहीं। सामग्री

(अनेक कर्म) का कार्य भूख जन्य बाधा पैदा करना है, देखिये प्रमेयकमलमार्तंड ३०३ पेज (न्यू एडीशन)

'तथा असातादिवेदनीयविद्यमानोदयमपि असति मोहनीये निःसामर्थ्यत्वान्न क्षुद्दुःखकरणे प्रभुः साम-ग्रीतः कार्योत्पत्ति सिद्धे ।

४-आपने इस सम्बन्ध मे परमागम की कोई प्ररूपणा का प्रमाण नहीं दिया जिससे यह सिद्ध हो जाता कि किस दिगम्बर सिद्धान्त के आगम ने केवली को वेदना रूप मे भूख प्यास का अस्तित्व स्वीकार किया है ।

५-यदि वेदनीय के उदय से दु.ख वेदन और उसी समय शेष सातावेदनीय के उदयसे सुखानुभवन है तो सुख दु.ख एक ही साथ अनुभवन मे आना चाहिये ? इस प्रकार परस्पर-विरोधी अनुभवन की सम्भावना रूप आपत्ति का क्या सामाधान होगा ?

आपने केवली को दु ख अस्तित्व प्ररूपणा करने में एक देवागम स्तोत्र की कारिका अ० ६ न० १ प्रमाण रूप मे दी है उसमे वीतराग शब्द से तेरहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग का अर्थ लेना विद्यानन्दी आचार्य के अभिप्राय से नहीं सिद्ध होता । उन्हो ने उसी श्लोक की टीका मे लिखा है 'वीतरागस्य काय-क्लेशादिरूपदु खोत्पत्ते.' इससे यह सिद्ध होता है कि दु.ख की कारणभूत वाह्य सामग्री को दुःख लौकिक दृष्टि में माना जाता है जो योगानुष्ठानतत्पर मुनियो के पाया जाता है परन्तु वहा प्रमाद न होने से वह सामग्री बन्ध-जनक नहीं होती क्योंकि उनके सक्लेश नहीं है यह लक्ष्यार्थ प्रकट न लेकर आपने वीतराग ' सर्वज्ञ तेरहवे गुणस्थानवर्ती को लेकर दुःख का अस्तित्व बतलाया ' यह वाक्छल (वीतराग शब्द के आधार पर) प्रयोग किया सो ठीक नही ।

६-इसके आगे विचारणीय विषय यह है कि केवली का शरीर परमौदारिक माना गया है जिसमें कवलाहार की आवश्यकता ही नहीं रह जाती वह शरीर दि० जैन आगम से सप्त धातु मल रहित माना गया है तथा वह निगोद जीवो से रहित माना गया है

'पुढवीआदि चउण्ह केवलआहारदेवणिरयगा ।
अपदिट्ठिदा निगोदेहिं पदिट्ठिदगा हवे सेसा ॥
(जीवकाड गाथा न० १६६)

इसलिये वह ऐसे शरीरो मे है जिन्हें कवलाहार नहीं करना पड़ता और उनकी स्थिति बहुत बड़े लम्बे समय तक बनी रहती है उनके शरीर को जो पोषक तत्वो की जरूरत रहती है वह भिन्न प्रकार से मिला करते है केवली के शरीर को लाभातराय के क्षय से अनन्त शुभ परमाणु शरीर स्थिति बनाये रखने को प्रति समय आया करते हैं यह सब आगम व कर्म-सिद्धांत के विचारको ने स्फुट लिखा है ।

७-क्षुधा की वेदना वाले केवल ज्ञानी के अनन्त चतुष्टय नहीं रह सकते कुछ क्षण भी दु खी आत्मा अनन्त सुख वाला, अनन्त वीर्य वाला, अनन्त ज्ञानी नहीं माना जा सकता दि० जैन सिद्धान्त में केवली को अनन्त चतुष्टयवाला माना है ।

८-केवल ज्ञानी को शरीर के पोषण की स्पृहा न होने, आहार की वाछा न होने और चर्या मार्ग निरतराय न हो सकने से कवलाहार की विडम्बना रूप सम्भावना नहीं की जा सकती ।

२४

—आस्थान विद्वान, न्यायतीर्थ—

श्रीमान् पं० शान्तिराज जी शास्त्री,

मैसूर ।

* श्री वीतरागाय नमः *

अमरावती के प्रोफेसर हीरालाल जी जैन ने 'अखिल भारतवर्षीय प्राच्य सम्मेलन १२ वा अधिवेशन, हिन्दु विश्व विद्यालय, बनारस' के अध्यक्ष स्थान से १-स्त्रीमुक्ति २-संयमी और वस्त्रत्याग, ३-केवली को भूख-प्यासादि की वेदना इन विषयो पर 'क्या दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायो के शासनो में कोई मौलिक भेद है ?' इस शीर्षक से अपना विचार प्रकट किया है अर्थात स्त्रीमुक्ति, सवस्त्र सयम मुक्ति, केवलि कवलाहार को सिद्ध करने का साहस करके श्वेताम्बरो को प्रसन्न करने करने की कोशिश की है।

यदि ऐसा नहीं है तो दिगम्बर जैन मान्य ग्रन्थो के वाक्योको यद्वा तद्वा अर्थ करके भ्रमोत्पादन करने का और भगवत्कुदकुदादि आचार्यो के ऊपर अवर्णवाद करने का प्रयास न करते। मैं पहिले जानता था कि षट्खण्डागम के प्रधान सम्पादक कहलाने वाले प्रो० जन जैनदर्शनके विषयोमे तलस्पर्शी विद्वान होगे मगर उनके इन अनर्थक वचनो से ज्ञात होता है कि बात ऐसी नहीं है सम्भवत कोई अन्य विद्वान ही षट्खण्डागम की भाषा टीका का काम करताहै।

जैनसिद्धांत मे नयवाद एक ऐसी वस्तु है जिसको जानने मे तथा प्रयोग करने मे महती योग्यता की आवश्यकता है अन्यथा उसको प्रयोग करने वाला हास्यास्पद बन जाता है। इस अवसर पर श्रीमद्-अमृतचन्द्रसूरिका अधोलिखित श्लोक याद आताहै-

'अत्यतनिशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रम्।
खण्डयतिधार्यमाण मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानाम्॥
॥५६॥ पुरु० सि०

अर्थात्—जैन मत के नयभेद को समझना बहुत कठिन है, जो कोई अज्ञ पुरुष बिना समझे नय चक्र मे प्रवेश करताहै वह लाभके बदले हानि उठाता है।

कुछ भी हो भाव समझे या न समझे, जैसा कि भगवती आराधना की गाथाओ का अनर्थ किया गया है 'जिसको श्रीमान इन्द्रलाल जी शास्त्री विद्यालकार ने हितेच्छु मे प्रकट किया है प्रो० जैनने षट्-खण्डागम के कुछ सूत्रो की सख्या मात्र का अपने वक्तव्य में उल्लेख किया है इससे मालूम होता है कि प्रो० जन ने षड्खण्डागम के सम्पादक कहलाने के अभिमान से ही भगवत्कुन्दकुन्दाद्याचार्यो के ऊपर आक्रमण करने को दु:साहस किया है कि 'उन्हो ने व्यवस्था से न तो गुणस्थान चर्चा की है, न कर्म-सिद्धात का विवेचन ही किया है' समझ मे नहीं आता है कि वह कौन सी गुणस्थान चर्चा और कर्म-सिद्धात का विवेचन है जिसको प्रो० जैन ने ढूढ

निकाला है जो कि भगवत्कुन्दकुन्दाद्याचार्यों को भी न सूझा ? प्रो० जैन ने लिखा है कि 'कुन्दकुन्दाचार्य ने सघ में कुछ विप्लवकारी सुधार उपस्थित किये' 'कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने मतो के विरोध में आने वाली समस्त प्राचीन मान्यताओ को तथा तत्सबधी साहित्य को भी सर्वथा दबा देने का प्रयत्न किया और अपने सघ को मूल सघ के नाम से प्रसिद्ध किया' यह है अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन।

प्रो० जैन ने पूज्यपादाचार्य, नेमिचन्द्राचार्य, अमितगत्याचार्य और गोम्मटसार के टीकाकार प्रभृतियो के वचनो को अप्रामाणिक बतलाया है। इसमे आश्चर्य नहीं है कि जा मनुष्य भगवत्कुदकुदाचार्यपुगवके वचनो को अप्रामाणिक कहता है उसके लिये पूज्यपादाचार्यादिको के वचनो की गणना ही क्या है ?

मैं जानना चाहता हू कि क्या प्रो० जैन भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य, पूज्यपादाचार्य, अकलकदेव, नेमिचंद्र सिद्धातचक्रवर्ती, विद्यानन्दाचार्य, प्रभाचन्द्राचार्य, अमितगत्याचार्य प्रभृति आचार्य पुगवो से भी जैन सिद्धात में, गुणस्थान चर्चा में, और कर्मसिद्धान्त विवेचन में अपने को अधिक बुद्धिमान समझते हैं ? मैं तो समझता हूं कि उन आचार्य-महर्षियोके सामने प्रो० सा० उन विषयों मे गणनीय भी नहीं हैं।

अजमेर से प्रकाशित होने वाले 'ओसवाल' नामक श्वेताम्बर जैन पत्र वर्ष १० अक २२ से मालूम होता है कि काशी विद्या पीठ के बौद्ध विद्वान धर्मानन्द जी कोसाम्बी ने 'भगवान् बुद्ध' नामक पुस्तक लिखी है और उसमे श्वेताम्बर जैन ग्रन्थ आचारागसूत्र से कुछ पक्तिया उद्धृत करके 'जैन श्रमणो का मासाहार' शीर्षक से बताया है कि श्वे० जैन सम्प्रदायानुसार मासभक्षण हेय-घृणित नहीं है। मगर दि० जैन सम्प्रदायानुसार मासभक्षण बहुतही घृणित है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि दोनों सम्प्रदायोमें इस अपेक्षा से भी महद्तर है, क्या प्रोफेसर जैन महाशय इस विषय को भी दिगम्बर जैन ग्रन्थो का प्रमाण देकर मासभक्षण उपादेय सिद्ध करेंगे ? यदि नहीं तो दोनो सम्प्रदायो की भिन्नता स्वय सिद्ध हो जायगी जो उनको अभीष्ट नहीं है।

अब मैं १-केवलिकवलाहार निषेध, २-सवस्त्र सयमिमुक्ति निषेध, ३-स्त्रीमुक्ति निषेध इन तीन विषयो पर, जिनको प्रोफेसर जैन ने दिगम्बर जैन सिद्धात मान्यताके विरुद्ध सिद्ध करने का साहस कियाहै, वैपरीत्यक्रय से कुछ विवेचन करना चाहता हू। क्रमविपरिवर्तन का उद्देश्य विषय प्रतिपादन की सुगमता है।

—केवलि-कवलाहार निषेध—

'सूत्र सूचनक विदुः' इस उक्ति के अनुसार सूत्र सामान्य रूप से सूचनात्मक होता है उसका विशेष विवरण 'व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्ति' इस उक्ति के अनुसार होता है। तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता श्री उमास्वाम्याचार्य ने सामान्यरूप 'एकादश जिने ॥११॥' ऐसा सूत्र रचा है तथा सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, सुखबोध, आदि के व्याख्यानो मे इस के विशेषार्थ का बोध होता है कि केवली में ११ परीषह वेदनीय कर्म के उदय से शक्ति रूप से हैं और मोहनीयकर्म के क्षय होने से व्यक्ति रूप से नहीं है केवली में अनन्त चतुष्टय का सद्भाव है अनन्त चतुष्टय में अनन्त सुख का समावेश है, यदि कवलाहार से केवली में सुख माना जाय तो अनन्त सुख का तथा अनन्त चतुष्टय का अभाव मानना पड़ेगा इस

बात को प्रभाचन्द्राचार्य ने प्रमेयकमल मार्तंड में स्पष्ट किया है कि— 'ये त्वात्मनो जीवन्मुक्तौ कवलाहार-मिच्छंति तेषा तत्रास्याऽनंतचतुष्टयस्वभावाभावोऽनत सुखविरहात् तद्विरहश्च बुभुक्षाप्रभवपीड़ाक्रातत्वात्। तत्पीडाप्रतिकारार्थो हि निखिलजनाना कवलाहार-ग्रहणप्रयासः प्रसिद्धः। केवली न भुङ्क्ते रागद्वेषा-भावानन्तवीर्यसद्भावान्यथानुपपत्ते.'।

गोम्मटसार कर्मकाड के कर्ता श्री नेमिचन्द्र जी सिद्धातचक्रवर्ती ने बताया है कि —

णट्ठा य रायदोसा इन्दियणाण च केवलिम्हिजदो
तेण दु सादासादजसुहदुःख णत्थि इंद्रियजम्॥

अर्थात्-केवलि भगवान मे रागद्वेष इन्द्रियज्ञान नष्ट होने से साताअसाता वेदनीयजनित इन्द्रियजन्य सुखदु.ख नहीं होता है। साराश यह है कि केवलि भगवान में मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने से दग्ध-रज्जुवत् शक्तिहीन वेदनीय कर्मजनित सुखदु ख नहीं होता है।

विद्यानदाचार्यने श्लोकवार्तिकमें लिखा है कि—

एकादश जिने ॥११॥

तत्र केचित् सतीति व्याचक्षते परे तु न सतीति।
तदुभय व्याख्यानाविरोधमुपदर्शयन्नाह—
एकादश जिने सति शक्तितस्ते परीषहाः।
व्यक्तितो नेतिसामर्थ्याद्व्याख्यानद्वयमिष्यते।१।
नैकहेतुः क्षुदादीना व्यक्त चेद प्रतीयते।
तस्य मोहोदयाद्व्यक्तेरसद्वेद्योदयेऽपि च ॥५॥
क्षुदित्यशेषसामग्रीजन्याभिव्यज्यते कथम्।
तद्वैकल्ये सयोगस्य पिपासादेरयोगतः ॥८॥
क्षुदादिवेदनोद्भूतौ नार्हतोऽनतशर्मता।
निराहारस्य चाशक्तौ स्थातुं नानतशक्तिता ॥९॥
नित्योपयुक्तबोधस्य न च सञ्ज्ञास्ति भोजने।
पाने चेति क्षुदादीना नाभिव्यक्तिर्जिनाधिपे।१०।

इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिकार, राजवार्तिककार, सुखबोधवृत्तिकार आदि व्याख्याकार आचार्य प्रवरों के मतो का सार है कि—

"घातिकर्मोदयसहायाभावात् शक्तित एव केव-लिन्येकादशपरीषहाः सति, न पुनर्व्यक्तितः, केवला-द्वेदनीयाद्व्यक्तक्षुदाद्यसभवादित्युपचारतस्ते तत्र परि-ज्ञातव्या.।"

केवलि भगवान मे मोहनीयकर्माभाव से शक्ति-हीन वेदनीयोदय से जली हुई जेवड़ी के समान, सुखदु खानुभव नहीं होता तथा छद्मस्थ वीतराग मुनि के कायक्लेशादि तप होनेपर भी अभिसधि न होने से पुण्य पापों का बन्ध नहीं होता है इस अभिप्राय को बताने केलिये श्री समन्तभद्रस्वामी ने आप्तमीमासामें

'पुण्य ध्रुव स्वतो दुःखात्पाप च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वास्ताभ्या युञ्ज्यान्निमित्तत.॥'

यह श्लोक दिया है, यह बात 'यदि' शब्द से स्पष्ट मालूम होती है किन्तु प्रोफेसर जैन महाशय तो इसका भाव उल्टा ही समझ रहे हैं, धन्य।

—सवस्त्र संयमि मुक्तिनिषेध—

'ग्रन्थ' शब्द का अर्थ है 'परिग्रह' जो सकलपरि-ग्रहो से रहित है वह निर्ग्रंथ है। ऐसे निर्ग्रंथ अर्थात् सकलसयमी पाच प्रकार के माने गये हैं यथा—

पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथा. ९-४६

इस सूत्र के अन्त मे दिये हुये 'निर्ग्रंथ' शब्द से स्पष्ट मालूम होता है कि ये पाच प्रकार के सयमी भी निर्ग्रंथ ही है अर्थात नग्न सयमी ही हैं इस बात को विद्यानद्याचार्यने श्रीश्लोकवार्तिकमें स्पष्ट कियाहै कि–

पुलाकाद्या मताः पच निर्ग्रंथा व्यवहारतः।
निश्चयाच्चापि नैर्ग्रंथ्यसामान्यस्याविरोधतः॥१॥

वस्त्राद्यिग्रथसंपन्नास्ततोऽन्ये नेति गम्यते ।
बाह्यग्रन्थस्य सद्भावे ह्यन्तर्ग्रन्थो न नश्यति ॥२॥
ये वस्त्रादिग्रहेऽप्याहुर्निर्ग्रंथत्व यथोदितम ।
मूर्छानुद्भूतितस्तेषा स्त्र्यादानेऽपि कि न तत् ३
विषयग्रहण कार्य मूर्छा स्यात्तस्य कारणम् ।
न च कारणविध्वसे जातु कार्यस्य सम्भवः॥४॥

इससे स्पष्ट विदित होता है कि सवस्त्र सयमी मुक्ति के पात्र नहीं हैं । राजवार्तिकादि ग्रन्थो मे उपर्युक्त पाच प्रकार के निर्ग्रंथो का विशेष स्वरूप निम्नलिखित प्रकार बताया गया है ।

१–अपरिपूर्णव्रता उत्तरगुणहीना. पुलाका: ।
२–अखण्डितव्रताः शरीरसस्कारर्द्धिसुखयशोविभूतिप्रवणाः बकुशाः ।
३–क-अविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथचिदुत्तरगुणविराधिन· प्रतिसेवनाकुशीलाः ।
ख-ग्रीष्मे जघाप्रक्षालनादिसेवनाद्वशीकृतान्यकषायोदयाः सज्वलनमात्र तन्त्रत्वात् कषायकुशीला.
४–उदकेदण्डराजिवत् सन्निरस्तकर्माणोऽतर्मुहूर्तकेवलज्ञानदर्शन-प्रापिणोऽनभिव्यक्तोदयकर्माण ऊर्ध्वं मुहूर्तादुद्भिद्यमानदर्शनकेवलज्ञानभाजो निर्ग्रंथा ।
५–प्रक्षीणघातिकर्माणः केवलिन स्नातका. ।

उपर्युक्त प्रकार तत्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक आदि ग्रन्थों मे पाचो सयमी निर्ग्रंथ ही सिद्ध होने पर भी प्रोफे० जेन कहते है कि 'कहीं भी वस्त्रत्याग अनिवार्य नहीं पाया जाता ।' प्रथम तो आप सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक ग्रन्थोक वचनो को अप्रमाण कहते हैं और फिर उन ग्रन्थों की पक्तियों का उचित अर्थ न समझ कर अपने अभिप्रायानुकूल अर्थ समझ कर कहते हैं कि 'इनका विशेष स्वरूप सर्वार्थसिद्धि व राजवार्तिक टीका में समझाया गया है देखो— अध्याय ९ सूत्र ४६-४७ ।' मगर इन ग्रन्थो के उक्त सूत्रव्याख्यानों से आपके अभिप्राय के विरुद्ध ही अथ सिद्ध होता है देखिये—

४७वे सूत्रके सयमानुयोग में कहा गया है कि–'पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीला द्वयोः सयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्भवति । कषायकुशीला द्वयोः सयमयो परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसापरायमोः पूर्वयोश्च । निर्ग्रंथस्नातका एकस्मिन्नेव यथाख्यातसयमे ।'

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि निर्ग्रंथस्नातको के सिवाय नीचे वालो को यथाख्यात चारित्र नहीं होता है और उसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती ।

उन सयमियो की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि—

'पुलाकस्योत्कृष्ट उपपाद उत्कृष्टस्थितिपु देवेषु सहस्रारे। बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोर्द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिष्वारणाच्युतकल्पयो । कषायकुशीलनिर्ग्रंथयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिपु सर्वार्थसिद्धौ । सर्वेषामपि जघन्य उपपाद सौधर्म–कल्पे द्विसागरोपमस्थितिपु । स्नातकस्य निर्वाणमेवेति निश्चय.'। इस प्रकार पुलाकादि तीन सयमियो की सहस्रारकल्प से ऊपर उत्पत्ति ही नहीं है तो मुक्ति कहा स होगी ?

अब लिंगानुवाद से देखिये — 'लिंग त्रिविधा वेदः । अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिः । वर्तमानविषयविवक्षायामवेदत्वेन सिद्धिर्भवति । अतीतगोचरनयापेक्षया अविशेषेण त्रिभ्यो वेदेभ्यः सिद्धिर्भवति भाव प्रति, न तु द्रव्य प्रति । द्रव्यापेक्षया तु पुल्लिंगेनैव सिद्धिः ।'

यहा पर उदाहरण के लिये तीन अनुयोगों से विचार किया गया है इसी प्रकार सभी अनुयोगो से विचार करने पर भी सवस्त्र महा सयम की सिद्धि

तथा उस संयमी को मुक्ति होती ही नहीं यदि वकुश को सवस्त्र सयमी प्रोफेसर सा० माने तो भी उसको मुक्ति तो नहीं होती।

—स्त्री-मुक्ति निषेध—

उपर्युक्त कथनानुसार जब सवस्त्रसयमी पुरुष भी मुक्त नहीं हो सकता है तो स्त्री की बात ही क्या है? स्त्रियो में मोक्षहेतुभूत ज्ञानादिका परमप्रकष होता ही नहीं है। स्त्रियो को वस्त्र रहित सयम का विधान नहीं देखा गया है तथा शास्त्रप्रतिपादित भी नहीं है। शास्त्रप्रतिपादित न होने पर भी स्त्रिया यदि वस्त्र को त्याग करेंगी तो अर्हदागमोल्लङ्घन से मिथ्यादृष्टि होगी यदि स्त्रियो को सचेलमुक्ति और पुरुषो को अचेल-मुक्ति मानी जायगी तो स्वर्गकी भाति मुक्तिमे भी भेद सिद्ध होगा। तथा देशसयमी और सवस्त्र गृहस्थ भी मुक्त हो सकेगा।

वाह्याभ्यतरपरिग्रहत्याग को सयम कहते हैं। वह सयम चित्तविक्षेपकारी वस्त्रके ग्रहण मे कैसे होगा? प्रत्युत वस्त्र ग्रहण सयम-घातक ही होगा। इस प्रकार प्रमेयकमल मार्तंड में उल्लेख किया गया है कि—

'मोक्षहेतुर्ज्ञानादिपरमप्रकर्ष स्त्रीषु नास्ति परम-प्रकर्षत्वात् सप्तमपृथ्वीगमनकारणापुण्यपरमप्रकर्षवत्। न हि स्त्रीणा निर्वस्त्र सयमो दृष्ट. प्रवचनप्रतिपादितो वा। न च प्रवचनाभावेपि मोक्षसुखाकाक्षया तासा वस्त्र त्यागो युक्तोऽर्हत्प्रणीतागमोल्लङ्घनेन मिथ्यात्वा-राधनाप्राप्ते'। यदि पुनर्नृणामचेलोऽसौ तद्धेतु स्त्रीणा तु सचेलस्तर्हि कारणभेदान्मुक्तेरप्यनुषज्येत भेदः स्व-र्गादिवत्। देशसयमिनश्चैवं मुक्तिः प्रसज्यते। तथा च सवस्त्रा गृहस्था अपि मुक्तिभाजो भवेयुः। वाह्या-भ्यतरपरिग्रहत्याग' सयम.। स च यावज्जीवन-प्रक्षालन-शोषण-निक्षेपादान-चौरहरणादिमनः-क्षोभ-कारिणि वस्त्रे गृहीते कथं स्यात् प्रत्युत सयमोपघातक-मेव तत्स्याद्वाह्याभ्यतरनैर्ग्रन्थ्यप्रतिपन्थित्वात्'।

वेदानुयोग की अपेक्षा से सुखबोध पृष्ठ २३० में लिखा है कि 'वर्तमाननयापेक्षायामवेदत्वेन सिद्धि'। अतीतगोचरनयापेक्षायामविशेषेण त्रिवेदेभ्यः सिद्धि-र्भावप्रति न द्रव्यप्रति। द्रव्यापेक्षया पुल्लिंगेनैवसिद्धिः। अथवा प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया निर्ग्रंथलिंगेन सिद्धिः। भूतनयादेशेन तु भजनीयम्। राजवार्त्तिकका भी यही अभिप्राय है।

सर्वार्थसिद्धि मे लिखा है कि 'अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो न द्रव्यत.। द्रव्यतः पुल्लिंगे-नैव। अथवा निर्ग्रंथलिंगेन सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धि-र्भूतपूर्वनयापेक्षया। यहा पर सग्रन्थलिंग से अर्थ यह है कि जो पुरुष वर्तमान काल मे निर्ग्रंथ होकर ही मुक्त होता है वह भूतकाल मे सग्रन्थ था।

इस प्रकार तीनो विषय जिन का प्रोफेसर जैन ने समर्थन किया है निस्सार तथा अविचारणीय है।

२५

—श्रीमान् ब्रह्मचारी—

सुन्दरलाल जी, श्रावक।

—भ्रम विध्वंस—

चाह नहीं है मुझे तनिक भी बुद्धिमान कहलानेकी।
चाह नहीं है यश फैलाकर पैसा रुपया कमानेकी॥
चाह नहीं है कभी किसीके महिमा मान घटानेकी।
हा निशि वासर चाह लगी दिलमे धर्म दिपानेकी॥

'अग्रवाल हितैषी' सन् ४४ अंक १३ मे प्रोफेसर हीरालाल जी ने लिखा है कि दिगम्बर धर्म भगवान महावीर के ६०० वर्ष बाद चला है इसके सिवाय यह भी लिखते हैं कि स्त्री को मोक्ष और अर्हंतकेवली के कवल (ग्रास का) आहार होता है, मुनि वस्त्र पहने या नहीं और अन्त मे यह भी लिखा है कि दिगम्बर धर्म असली नहीं असली श्वेताम्बर धर्म है। इन्हीं बातो पर सुना जाता है कि प्रोफे० सा० ने एक ट्रैक्ट भी प्रगट किया है।

हम भी यही चाहते थे कि किसी सूरत से दिग० धर्म और श्वे० धर्म की असलियत खुलासा हो जाय और इसके लिये मैंने तथा स्वर्गीय प० न्यामतसिंह जी जैन, टीकरी, ने श्वे० स्थानक वासियो के साथ चर्चा भी चलाई थी, दोनो तरफ से पेम्फलेट और ट्रैक्टबाजी भी हुईथी परन्तु वह अधूरी ही रह गई। अतः अब की बार प्रोफेसर सा० के प्रश्नो पर दि० जैन समाज बम्बई, खुलासा करना चाहती है तो मैं भी भावना करता हूं कि श्री जैनधर्म की कृपा से उस का यह मनोरथ सफल हो।

प्रोफेसर साहब का ट्रैक्ट तो हमको मिला नहीं किन्तु हितैषी मे लिखी शकाओ के अनुसार मैं उन का समाधान करना चाहता हू। प्रोफेसर जी ने दिगम्बर जैन धर्म की उत्पत्ति भगवान महावीर के ३०० वर्ष बाद से बतलाई है अतः प्रथम प्रकाश इसी पर डाला जाता है क्योंकि जब दि० धर्म की प्राचीनता सिद्ध हो जायगी तो प्रोफे० सा० को फिर शका नहीं रहेगी यदि दि० धर्म की प्राचीनता दि० शास्त्रो के आधार पर दिखलाई जाय तो शायद प्रोफे० सा० कहने लगे कि यह दिगम्बरो ने पीछे से लिख ली होगी इसलिये दिगम्बरधर्म की प्राचीनता यहां हिन्दु वैष्णव धर्म के वेद पुराणों और श्वेताम्बर शास्त्रों के आधार पर ही दिखलाई जाती है।*

हिन्दु 'पद्मपुराण' भूमिखड अध्याय ६६मे राजा वेणुकी कथा लिखी है उसमे बतलाया गया है कि एक दिगम्बर मुनि ने उस राजा को (वेणु को) दीक्षित किया था। मुनि का स्वरूप जिस प्रकार बतलाया गया है वह मूल मात्र यहा लिखा जाता है।

---

*नोट-प्रोफेसर सा० के किये प्रश्न श्वेताम्बर और श्वे० स्थानक वासी दोनो सम्प्रदायो मे इसी प्रकार है अत मैं जो भी प्रमाण दूगा उनमे श्वे० स्थानक वासी या श्वेताम्बरो का भेद न माना जा सकेगा।

'नग्नरूपो महाकायः सितमुण्डो महाप्रभः।
मार्ज्जनीशिखिपत्राणां कक्षाया स हि धारयन् ॥
गृहीत्वा पानपात्रञ्च नारिकेलमयं करे।
पठमानोऽर्हच्छास्त्र वेदशास्त्रविदूषकम् ॥
यत्र वेणो महाराजस्तत्रेयाय त्वरान्वितः।
सभाया तस्य वेणस्य प्रविवेश स पापवान् ॥'

यह नग्न साधु महाराजा वेणु की सभा मे पहुच गया और धर्मोपदेश देने लगा, उसने बताया कि मेरे मत में—

'अर्हतो देवता यत्र निर्ग्रन्थो गुरुरुच्यते।
दया चैव परमो धर्मस्तत्र मोक्ष प्रदृश्यते॥'
यह सुनकर वेणु दिगम्बर हो गया।
'एवं वेणस्य वैराज्ञः सृष्टिरस्य महात्मनः।
धर्माचारं परित्यज्य कथ पापे मतिर्भवेत्॥'

उपरोक्त प्रमाणसे प्रगटहै कि राजा वेणुकी सभा में नग्न दिगम्बर मुनि ने जाकर उपदेश दिया जिस सुनकर राजा वेणु दिगम्बर मुनि होगये। यह राजा वेणु ब्रह्मा से छठी पीढ़ी मे हुए बतलाये जाते है।

यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र १४ में यो लिखा है।
'आतिथ्यरूप मासार महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुय सदा मेनत्ति स्रो रात्री सुरा सुता॥

वेद भी प्राचीन ग्रन्थ है इसमें भी भगवान महावीर का नग्न स्वरूप बतलाया है अत. वेदो का निर्माण चाहे कभी भी हुआ हो किन्तु वेदा से पूर्व भगवान महावोर थे, अतः यह प्रमाण भी दिगम्बरो की अति प्राचीनता दिखलाता है कहिये प्रोफे० सा० इससे भी प्राचीनता का प्रबल प्रमाण क्या होगा। क्या श्वेताम्बरो की प्राचीनता वेद पुराणो मे है ?

एक और ताजा प्रमाण लीजिये। बड़ोदा शहर में बड़ौदा महाराज के दीवान साहब 'कृष्णरामाचार्य' नाइट सी० आई० ई० जो अजैन हैं उन्हीं के सभापतित्व में व्याख्यान देते हुए डा० केदारनाथजी शास्त्री जो अजैन हैं उन्होने बतलाया है कि 'जैनियो में दो भेद हैं एक दिगम्बर दूसरे श्वेताम्बर। इन दोनो जातियो मे दिगम्बर प्राचीन हैं। अशोक के लेख मे दिगम्बर मत का वर्णन है। महावीर दिगम्बर थे, दिगम्बर जैन मुनि घोर तप करते हैं व उपसर्ग सहते हैं।' जैनमित्र अ० ८ वर्ष ४१ ता० ४-१-४०। यह तो हुए अजैन शास्त्रो व ऐतिहासिक प्रमाण; अब कुछ श्वेताम्बर शास्त्रो के प्रमाण भी देखिये कि वह दिगम्बर धर्म की प्राचीनता पर क्या कहते है।

श्वे० सूत्र 'प्रवचन सारोद्धार' भाग ३ पृष्ठ १३मे वस्त्र सहित साधु ही विशुद्ध बतलाये है। श्वे० स्था० अमोलकचन्द जी साधु 'जन तत्व प्रकाश' मे कायक्लेश तप का वर्णन करते समय पृष्ठ १५९ पंक्ति ७ मे लिखते हैं कि साधु दिन को सूर्य का आतापन लेवें रात्रि को कपड़ेरहित रहें।' 'कल्पसूत्र' पृष्ठ २८५ वें पर भगवान ऋषभदेव को नग्न बतलाया है। 'ठाणासूत्र' पृष्ठ ८१३ वे पर लिखा है 'भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थ श्रमण केलिये दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया था।'

'भद्रबाहुसंहिता' (श्वे०) अध्याय ७ में लिखा है।
'भरहे दूसमसमये सघकम मेल्हिऊण जो मूढो।
परिवट्टइ दिगवरिओ सो सवणो सघबाहिरओ ॥५॥'
'पासत्थाणे सेवी पासत्थो पचचेल परिहीणो।
विवरीयट्ठ पवादी अववणिज्जो जई होई ॥१४॥'

अर्थ— भरतक्षेत्र का जो कोई मुनि इस दुःषम पचम काल में सघ के क्रम को मिलाकर दिगम्बर हुआ भ्रमण करता है अर्थात् यह समझ कर कि चतुर्थकाल में पूर्वजो की ऐसी ही दैगम्बरी वृत्ति रही

है, तदनुसार इस पंचमकाल मे प्रवर्तता है वह मूढ़ है और उसे संघ से बाहिर तथा खारिज समझना चाहिये ॥५॥'

'वह यति भी अवन्दनीय है जो पाच प्रकार के वस्त्रो से रहित है। अर्थात् उस दिगम्बर मुनि को अपूज्य ठहराया है जो खाल, छाल, ऊन, रेशम और कपासके इन पाचो प्रकारके वस्त्रोसे रहित है।

प्रोफेसर साहब! इस सहिता को जरा ध्यान से देखिये, जिस दिगम्बर धर्म को आप महावीर भगवान के ६०० वर्ष बाद का बतलाते हैं। उस दि० धर्म के विषय मे सहिता क्या कह रही है अतः ६०० वर्ष वाला कथन संहिता से आपका असत्य हो चुका।

'आचाराग सूत्र' पृष्ठ १७० की टिप्पणी मे परिग्रह होने पर ममत्व अवश्य होता है यह लिखा है। अत कपडे पहनने वाले चाहे केवली हो चाहे मुनि हो ममत्व अवश्य होता है। जहा ममत्व है वहा मोक्ष नहीं।

'दशवैकालिक सूत्र' पृ० १२ सू० ११ से आगे के सूत्र 'आयवयति' वाले में साधुओ को नग्न रहना कहा है पृष्ठ ५३वे पर भी सर्वथा परिग्रह का निषेध किया है। अतः साधुओ को नग्न रहना चाहिये।

'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति' पृष्ठ ३६२ से आगे—

१२१ से १२५ तक की गाथाओमे भरतचक्रवर्ती के वैराग्य समय की कथा पढिये, दिगम्बर धर्म की प्राचीनता एव दिगम्बरत्व का भान हो जायगा। 'आचारांग सूत्र' पृ० १५१ प० १२ इसका मूल सूत्र १५२ साधुओको वस्त्र रखनेका निषेध करताहै। इस के सिवाय श्वेताम्बरो का अटल सिद्धात है कि जिस समय तीर्थंकर दीक्षा लेते है उस समय अपने घर के वस्त्राभूषणो का सर्वथा त्याग कर देते है तब इन्द्र आकर उनके कन्धे पर एक कम्बल डाल देता है उसे तीर्थङ्कर कुछ दिन तक रख कर उसका त्याग कर देते हैं और निर्वाण समय तक नग्न रहते हैं। तीर्थङ्करो की इस नग्नता पर दि० धर्म की प्राचीनता का सिद्ध होना साबित है। अत हिंदु वेद पुराण और श्वेता० शास्त्रो स दिग० धर्म की प्राचीनता और साथ में यह बात भी सिद्ध हुई कि जैन मुनियो को वस्त्र न रखना चाहिये।

श्वेताम्बर मत की अर्वाचीनता व उत्पत्ति

उपरोक्त लेखानुसार श्वेताम्बर शास्त्रो से ही श्वेताम्बरमत की अर्वाचीनता ठहरती है किन्तु फिर भी कहने को यह बात बाकी रह जाती है कि जब वह अर्वाचीनहै तो चला कब? अत. अब श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति दिखलाई जाती है। जैन समाज के दिगम्बर और श्वेताम्बर दो विभाग होने में साधु और आगम ये दो प्रधान कारण है सम्राट चन्द्रगुप्त के समय जो १२ वर्ष का दुर्भिक्ष हुआ था उस समय अन्तिम श्रुत केवली श्री भद्रबाहु आचार्य १२ हजार साधुओंको अपने साथ लेकर दक्षिण देश कर्नाटककी ओर चले गये। वहा पर सुकाल था। अत. उन जैन साधुओका चारित्र ज्यो का त्यो बना रहा, किन्तु जो साधु मालवे में रह गये, दुष्कालके प्रभाव से अपनी कठिन चर्या मे दृढ न रह सके अत उनने वस्त्र पहनना, दण्ड, पात्र झोला आदि रखना और गृहस्थो के घर से भोजन लाकर अपने स्थान पर भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। १२ वर्ष का दुष्काल बीत जाने पर कुछ साधु तो उक्त शिथिल आचरण को छोड़ अपने पूर्व रूप मे आगये, किन्तु शेष साधु उस शिथिलाचार को न छोड़ सके। दुर्भिक्ष के प्रभाव से

सुरक्षित दक्षिण देश में विहार करने वाले तथा शिथिलाचार को छोड़ कर पूर्व साधु वेष स्वीकार करने वाले साधु 'दिगम्बर' कहलाने लगे और शिथिलाचार न छोड़ कर वस्त्र, पात्र, दण्ड आदि धारक साधु 'श्वेताम्बर' कहलाये।

इस इतिहास की घटना को इतिहास-वेत्ताओ ने 'श्रवण बेल गोला' (मैसूर) के चन्द्रगिरि पर्वत के प्राचीन शिलालेख को देखकर सत्य स्वीकार किया है। सम्राट चन्द्रगुप्त जब हुआ तभी से श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति मानी जा सकती है। इन्हीं श्वेताम्बरों मे से सं० १५३४ मे स्थानक मत चला। जिसकी उत्पन्नता आदि का विवरण हमारे बनाये 'पटपन्थ प्रकाश' में है।

केवलियों के कवलाहार का निर्णय

प्रोफे० सा० केवल ज्ञानियो के कवल (ग्रास) आहार भी मानते हैं इसका समाधान किया जाताहै।

प्रोफेसर साहबने जिस सिद्धातानुसार केवलियों के कवल आहार माना है वह श्वेताम्बर सिद्धान्त कहता है कि केवलज्ञानियों के आयु नाम, गोत्र और वेदनीय चार अघाती कर्म मौजूद है इसलिये वेदनीय कर्म के उदय से केवली कवल आहार करते हैं। परन्तु केवलियो के किसी प्रकार भी कवल आहार सिद्ध नहीं होता। क्योंकि केवलज्ञानियो ने ध्यान रूपी अग्नि में चारो घातिया कर्म रूपी ईन्धन को जला दिया है जिनके अप्रतिहत अनन्त ज्ञाना दक चतुष्टय प्रगट हुआ है, अन्तराय कर्म के अभाव होने से जिनके निरन्तर शुभ पुद्गल कर्म वर्गणाओं का समुदाय बढ़ता जा रहाहै ऐसे अर्हत केवली भगवान के यद्यपि वेदनीयकर्म विद्यमान है तथापि उसके बल को सहायता देने वाले घातिया कर्मों का नाश हो जाने से उसमें अपना प्रयोजन उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं रही है। जिस प्रकार मन्त्र औषधि आदि के बल से जिसकी मारण शक्ति (प्राण हरण करने की शक्ति) नष्ट कर दी गई है, ऐसा विष खा लेने पर भी वह किसी को मार नहीं सकता अथवा जिसकी जड़ काट डाली है ऐसा वृक्ष कुछ समय पर्यंत हरा दीखने पर भी फल फूल नही कर सकता। इसी तरह केवलियों के वेदनीयकर्म भी कुछ भी नहीं कर सकता है। अत. केवलियो के कवल आहार कहना निरर्थक है। प्रोफेसर साहब शायद हमारे इस लिखेको न मानें इसलिये दो चार प्रमाण यहा श्वेताम्बर शास्त्रो के ही देकर सिद्ध किया जाता है कि केवलियों के कवलाहार नहीं है।

श्वे० स्थानकवासी 'दशाश्रत स्कध' पृष्ठ ३८वें पर भगवान महावीर स्वामी से गणधर जी पूछते हैं कि 'हे भगवन्! केवलज्ञान कैसे होता है।' इस प्रश्न के जवाब मे महावीर स्वामी यो कहते हैं—

'जिस साधु का सर्वथा ज्ञानावर्णी कर्म क्षय हो गया हो और बारह प्रकार की प्रतिज्ञा पालता हो, घन घातिया कर्मों का क्षय कर दिया होय उसे केवलज्ञान कहते हैं और मोहनीय कर्म का नाश ऐसे होता है जिस तरह ताल को वृक्ष का मस्तक छेदन करने से उसका नाश हो जाता है और सेनापति के नाश हो जाने से सेना इधर उधर को विखर जाती है, धूम रहित अग्नि ईंधन के अभाव से क्षय होती है और जिस वृक्ष की मूल कट जाती है उसका मूल पानी सींचने से हरा नहीं होता और भु जकर दग्ध किया धान्य मट्टी पानी सयोग से उसमे अकुर उत्पन्न नहीं होते हैं ऐसे ही मोहनीय कर्म के नाश होने से

बाकी सब कर्म भाग जाते हैं, कुछ असर नहीं कर सकते तैसेही भगवान केवलज्ञानी कर्मका अंत करके सिद्धलोक में जातेहैं। केवलज्ञान में नाम और गोत्र, आयु तथा वेदनीय कर्म कुछ जोर नहीं कर सकते हैं'।

एक प्रमाण, और लीजिये। श्वे० स्था० साधु चौथ मलजी जिनको वर्तमान में कलि काल-केवली की उपाधि दीगई है उन्होंने "भगवान महावीर स्वामी का जीवन आदर्श" नामका एक बडा लम्बा चौडा पोथा प्रगट किया है जिसके पृष्ठ ४३५ वे पर गुणस्थानो का कथन करते समय यह लिखा है।

"अत. सातवें गुणस्थान वर्ति मुनि जब निद्रा आहार आदि लेनेको तत्पर होते हैं तो छठे गुणस्थान मे आ जाते हैं और छठे गुणस्थान-वर्ति जब विशिष्टध्यान मे लीन होकर प्रमाद का परिहार करते है तो सातवें गुणस्थान मे पहुच जाते है"।

अत चौथमलजी के कहे अनुसार भी कवलाहार छठे गुणस्थान तक है आगे के सातवे आठवे आदि गुणस्थानो में कवलाहार नहीं है। जबकि सातवें गुणस्थान मे ही आहार नहीं है तो फिर यथाख्यात चारित्र वाले तेरहवे गुणस्थान में केवलियोके आहार असम्भव है।

श्वेताम्बराचार्य 'हेमचन्द्र' जो कि बडे स्याद्वादी विद्वान हुए हैं उन्होने अपनी बनाई "स्याद्वादमजरी' नाम के ग्रन्थमे पृष्ठ ३६२ वे पर केवलियो के कवल आहार का बिलकुल निषेध किया है। इस प्रकार जब श्वेताम्बर शास्त्र युक्तियो द्वारा केवलियो के आहार का निषेध करते है तो प्रोफेसर हीरालाल जी उसका समर्थन करके उलटी गगा बहा रहे हैं।

यदि प्रोफेसर साहब यह कहें कि केवलियो का औदारिक शरीर बिना कवलाहार के कैसे रह सकता है तो उसका समाधान यह है कि-

आहार छह प्रकार का होता है। नो कर्म आहार, कर्माहार, कवलाहार, लेप आहार, ओज आहार, और मानसिक आहार। इनमे से नोकर्मआहार केवलियो के होता है, कर्माहार नारकी जीवों के होता है और मानसिक आहार (कठमेंसे अमृत का झडना) देवो के होता है, कवलाहार मनुष्य और तिर्यंचो के होता है, ओज आहार (माताके शरीर की गर्मी) अण्डेमे रहने वाले जीवोके तथा लेप्य आहार (मिट्टी पानी आदिका) वृक्षादि एकेन्द्रिय जीवोके होता है।

केवलज्ञानी का परम औदारिक शरीर क्षायिक लाभरूप लब्धिके कारण आने वाली प्रति समय शुभ असाधरण नो कर्म वर्गणाओ से पुष्ट पाता है, इस कारण उनका नोकर्म आहार ही उनके होता है। इसी प्रकार एक कवल आहार न होनेपर भी केवलीज्ञानी भगवान का परम औदारिक शरीर नो कर्म आहारसे ठहरा रहता है। अत केवली के कवल आहार का किसी प्रकार भी कहना नहीं बनता है। भूखका लगना एक प्रकार का रोग है परन्तु श्वे० हेमचन्द्राचार्य केवलियो ३४ अतिशयो के वर्णनमें कर्मके ११ अतिशयो के वर्णन करते हुये न० ४ के अतिशयोंमे रोग का न होना लिखते है। श्वे० स्था० सूत्र "समवायाग में जहा केवली के अतिशयो का वर्णन आया है वहा लिखा है कि "उनका शरीर निरोग रहता है"। श्वे० स्था० साधु चौथमल जी आदर्श जीवन में ३४ अतिशयोका वर्णन करते समय लिखतेहैं कि, "पहले रोग उपशम हो जाते है और नवीन रोग उत्पन्न नहीं होते। जब केवलियो के किसी प्रकार का रोग नहीं होता तब केवलियोके भूखरोग कैसे सम्भव है।

मित्र ! आहार का त्याग निद्राके जीतनेको किया जाता है जो भोजन करता है उसे अवश्य निद्रा आकर घेरती है, सोनेपर प्रेत कैसे घुर्राटें लेता हुआ व्याकुल होने पर रत्नत्रय से गिरजाता है और कर्म - गे प्राप्त होता है। अत केवली आहार करते हैं तो उनकी दशा भी यही होती होगी? केवलज्ञानियो को ससार के समस्त पदार्थ ज्यो के त्यो केवलज्ञान द्वारा दीखते हैं इसलिये आहार करते समय, कहीं जीवों का बध होना, कहीं मल, मूत्र, रुधिर, राधि, मास, मदिरा, हाड़, चमड़ा, आदि पदार्थ भी ज्यो के त्यों दीखते होगे फिर केवलीआहार कैसे कर जाते हैं। इन चीजो को तो देखकर गृहस्थी भी भोजनका त्याग कर देता है। भोजन बनते व करते समय भी सूक्ष्म जीवो को उसमें पड़ते मरते देखकर फिर उस दोषी आहार को केवली क्यो लेते हैं? केवलियों के आहार करने पर अनत चतुष्टय भी नहीं रहसकता तथा केवलज्ञानी उस कवलाहार को वहा समवशरण में ही करते हैं ? या किसी दातार के घर जाकर ? यदि समवशरण मेही करतेहै तो वहा कहा से आता है ? और उस आये हुए भोजन में आधाकर्मि दोषहै क्यों कि वह उनके निमित्त से बनकर आया, उस दोषी भोजन को क्यों करते हैं ? यदि दातार के घर जाकर करते हैं तो उतनी देर तक समवशरण कैसे ठहरा रहताहै ? क्याकि बिना केवली के समवशरण रहता नहीं ऐसा आगम वाक्य है। केवली कितने ग्रास खाते हैं और उस ग्रास का क्या प्रमाण है ? केवलियों के भावमन नहीं होता बिना मनके भूख का लगना पेटका भरना कैसे जान पड़ता है ? इत्यादिक बातोपर जब विचार किया जावेगा तबस्वयं खुलासा हो जायगा कि केवलियो के कवलाहार नहीं है।

श्री उमास्वामी जी आचार्य ने कहा है "केवलि-श्रुत-संघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य"। अर्थात् केवली को कवल आहार कहना क्षुधा तृषा रोगादि-दोष कहना केवली का अवर्णवाद है। इससे दर्शन मोहनीय कर्मका आस्रव होता है (तत्वार्थसूत्र अध्याय ६ सूत्र १३) क्या प्रो० सा० को इस का भय नहीं है।

अब रही एक स्त्री मुक्ति वाली शका जिसका समाधान, श्वेताम्बर शास्त्र, "प्रवचन सारोद्धार-प्रकरण रत्नाकर" भाग ३ छपा स० १९६४ भीमसेन माणिकजी बबई, पृष्ठ ५४४-५४५ अनुसार किया जाता है।

"अरहन्त चक्की केसवबलसभिन्नोय चारणे पुव्वा। गणहर पुलाय आहारग च नहु भवियमहिलाण" ।५४०

भावार्थ—"अर्हंत, चक्री, नारायण, बलदेव, सभिन्नश्रोता, तथा चारणादि, पूर्वकाज्ञान, गणधर, पुलाकपना, आहारक शरीर ये दश लब्धियें भव्य स्त्री के नहीं होती हैं।"

प्रो० सा० स्त्री पर्याय मे न तो अर्हंत अवस्था है और केवलज्ञान तो बहुत दूर रहा जहा १४ पूर्वका भी ज्ञान नहीं होता, न मुनि अवस्था होती है न किसी प्रकार की ऋद्धि ही होती है वहा मोक्ष किस आधार पर आपने मानली ? क्या बिना केवलज्ञान और मुनि पना धारण किये बिना मोक्ष होने का आपके पास कोई प्रमाण है ? अतः यह एक ठोस प्रमाण श्वेताम्बर शास्त्रका ही है इसलिये आपको मानना होगा। दूसरी बात मोक्षका नियम तेरहवे गुणस्थानसे चौदह मे गुणस्थान मे पहुचने पर है परन्तु स्त्री पर्याय में पाचवें गुणस्थान से आगे छटवा गुणस्थान भी नहीं होता फिर मोक्ष कैसे होसकती है। और भी कितने ही कारण स्त्री पर्याय मे मुक्ति में रोक लगाने वाले

हैं जो यहा विस्तार के भय से नहीं लिखे जाते।

पाठक गण! जैन गम वह ही कहे जाते है जो सर्वज्ञता, वीतरागता, हितोपदेशकता रूप तीनो गुणों से विभूषित अर्हन्त भगवान के उपदेश के अनुसार रचेगये हो। जिन मे पूर्वापर-विरोध और अत्याचार न हो, जो युक्तियो से खण्डित न हो सकें, सत्य हितकर बातोका उपदेश जिनमे भरा हुआ हो। परन्तु हम देखतेहैं श्वेताम्बर मतके शास्त्रोमे पूर्वापर विरोध तो है ही किन्तु अनुचित विधानो से भी भरे पडे है क्या इन शास्त्रों से जैनधर्म की प्रभावना हो सकती है। नहीं उलटा जैनधर्म को कलङ्कित बनाते हैं। इसलिये श्वेताम्बर धर्म और उसके शास्त्र मानने योग्य नहीं। यह श्वेताम्बर मत हुण्डा अवसर्पिणी काल पाय कर प्रगट हुआ है इससे पहले कभी न था यह बात "सिद्धान्त प्रदीप" मे लिखे अनुसार सिद्ध होती है। "सिद्धान्त प्रदीप" मे लिखा है--

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्या सख्यातेषु गतेष्वथी।
हुण्डावसर्पिणीकाल इहाया नित चान्यथा ।७३।
तस्या हुण्डावसर्पिण्या पञ्चपाखण्डदर्शना.
शलाकापुरुषा ऊना सघभेदा अनेकशः ॥४७॥
जिनशासनमध्येषु स्युर्विपरीता मतान्तराः।
चीवधा वृत्तनिन्द्या सग्रन्था सन्ति लिङ्गिन ।७५।

भावार्थ-असख्याते उत्सर्पिणी अपसर्पिणी कालोके *व्यतीत होने पर एक हुण्डा अवसर्पिणी नामका काल* यहा आता है ॥७३॥

उस हुण्डावसर्पिणी मे अनेक तरह प्रपञ्च पाखण्ड मत होते है तथा शलाकापुरुषो की जीव-सख्या कम होतीहै और अनेक प्रकारके संघभेद होते रहते हैं।७४।

जैनधर्म मे भी अनेक तरह के मतान्तर जो विपरीत है जैसे कपडे पहनने वाले परिग्रही साधु-भेषी होते हैं ॥७५॥

दिगम्बर और श्वेताम्बर मतभेद के कुछ अन्यकारण।

१

श्वेताम्बर आगम कहते हैं कि भगवान महावीर स्वामी का जीव स्वर्गसे चयकर प्रथम ऋषभदत्त ब्राह्मण की स्त्री देवानदा ब्राह्मणी के गर्भ में आया और ८२ दिन तक वहां रहा बाद ८२ दिनके हरि-णगवेसी देवने ब्राह्मणी के पेटस भगवान के शरीर पिंडको निकालकर सिद्धार्थ राजाकी रानी त्रिशलादेवी के पेटमें पहुचा दिया और नौ महिने बाद रानी त्रिशला के उदर म भगवान ने जन्म लिया।

२

प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान धर्मानन्द कौशाम्बी कृत 'महात्मा बुद्ध' नामक पुस्तकमें तथा 'विशाल भारत' पत्रिका म श्वेताम्बरीय आगम भगवती सूत्र के 'त गच्छतन सीहा' आदि सूत्रोके अनुसार लिखा है कि भगवान महावीर स्वामी ने केवलज्ञान के भये बाद रोगनिवारणार्थ कबूतर खाया था।

प्रो० सा०! म आपसे पूछता हू क्या भगवान महावीर स्वामी क्षत्रिय वर्ण के थे या ब्राह्मण क्षत्रिय दोनो वर्णोंके थे। तथा क्या भगवान महावीर केवली ने मास खाया था?

३

श्वे० स्था० "ठाणासूत्र" पृष्ट ३२१वे पर "चत्ता-*रि गोरस विगई०" गाथा में मुनियो को खुले शब्दों* मे लिखा है कि वे तेल, चर्बी, घृत, मक्खन, मधु, मास, मदिरा, ग्रहण कर सकते हैं।

४

"आचाराग सूत्र" दशम अध्ययन अष्टम उद्देश पृष्ट ३०६ वें पर "से भिक्खूवाजाव समणे०" वाले सूत्रमें साग, भाजी, सड़ाफल, पुराना मधु, पुरानी मदिरा, पुराना घृत खाना मना किया है इससे सिद्ध है कि पुराना छोड नया खाना चाहिये।

५

पृष्ठ १६८ चौथा उद्देश अध्ययन १० "संतितती गनिएस्य भिक्खूस०" वाले सूत्रमे अन्न, पान, दूध, दही, मक्खन, गुड़, तेल, घी, मधु मदिरा, मास, तिल, पापड़ी, गुड़ का पानी लेना लिखा है। पृष्ठ ३१५-२६३ आदिको पर इसी प्रकार के कथन पाये जाते हैं।

६

"आचाराग सूत्र" अध्याय १० उद्देश १० पृष्ठ २०६ वें पर जो साधुओं को भोजन बतलाया गया है उसे भी देखलें—

से भिक्खू वा सेज्ज पुण जाणेज्जा, बहुअट्ठिय मंसंवा मच्छवा बहुकटक, अस्सि खलु पडिगाहितंसि अप्पेसिया भोयअ जाऐ, बहु उज्झियधम्मिए – तह-प्पगारं बहुअट्ठियं मंसं मच्छ वा बहु—कटग लाभे सते जाव ण पडिगाणेज्जा"।

अर्थात्—"बहुत अस्थियो (हड्डियो) वाला मास तथा बहुत काटे वाली मछली को जिन के लेनेमे (हड्डिया काटे आदि) बहुतसी चीज छोड़ना पड़ें और थोड़ी चीज (मास) खाने के लिये बने मुनिको वह न लेना चाहिये।

श्वेताम्बरी आगम "वृहतकल्प सूत्र" में लिखा है कि साधु मनुष्य का मूत्र भी पीले। पृष्ट ८१ गाथा ८० ४७ ४८।

श्वेताम्बरी ग्रन्थोंमें केवलज्ञानकी सुलभता

१

एक बुढ़ियाको उपाश्रय में बुहारी लगाते लगाते केवलज्ञान हो गया।

२

एक शिष्य अपने गुरूको कंधेपर बिठा कर लेजा रहा था गुरू उसे ओधा मार रहा था इसतरह चलते चलते, मार खाते खाते उसे केवलज्ञान होगया।

३

ढढण ऋषि लाडू फोडते फोडते केवलज्ञानी हो गये।

४

मृगावती को चदना के पैर दबाते २ केवलज्ञान हो गया।

५

एक नट को बास पर चढे हुए केवलज्ञान होगया

६

एक शिष्यको अपने गुरूका थूक चाटने चाटते केवलज्ञान हो गया।

७

कपिल केवलज्ञानी ने चोरोंके सामने नाटक खेला

इत्यादि अनेक कथन श्वेताम्बरीय आगम ग्रन्थों में पाये जाते हैं। हम प्रोफेसर साहब से पूछते हैं कि ये बातें जैनसिद्धात के अनुसार हैं? जो केवलज्ञान शुक्लध्यानकी कठिन तपस्या से होता है वह क्या यो ही चलते फिरते, खाते पीते, अन्य काम करते करते हो सकता है? क्या ये विधान दिगम्बर श्वेताम्बर सिद्धातो में अन्तर नहीं डालते?

हम चाहते हैं कि दिगम्बर, श्वेताम्बर सिद्धान्तो मे मत भेद न हो किन्तु प्रोफेसर हीरालाल जी सा० बतलावें कि इन विधानो के रहते हुऐ मत भेद मिट सकता है?

२४

* धर्मधीर श्री मान *

-पं० श्रीलाल जी पाटनी-

॥ अलीगढ़ ॥

धर्मधीर प० मक्खनलाल जी शास्त्री मुरेना ने जो श्रेष्ठ सम्मति प्रो० हीरालाल जी अमरावती को यह दी है कि आप श्री पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के चरणो में अपनी शङ्का का विद्वानों के समक्ष निर्णय करलें। परन्तु भा० दि० जैन महा-सभा के महा-मन्त्री ने जैन गजट मे यह लिखा है कि प्रो० हीरालाल जी एक मान्य पंडित हैं तथा इनके इतिहास विषय के ज्ञान में तो किसी को शका ही नहीं करनी चाहिये अर्थात् जिस प्रकार भगवान् के वाक्यमे शका नहीं की जाती और तबही सम्यक्त्वका निःशकित गुण पलता है अन्यथा मिथ्यादृष्टि हो जाता है इस प्रकार इतिहास ज्ञान प्रोफेसर जी का सर्वोपरि है वे जो कहें उसे मान लेना चाहिये। महासभा के महा–मन्त्री जी की इस बात को कोई माने या न माने परन्तु अस्मदादि महा सभानुयायी तो मानेंगे ही। अतः अपनी स्मृति के अनुसार कुछ हमभी लिख रहें हैं देखें, इसपर इतिहासके जानकार क्या मार्क देते हैं ?

क्षुत्पिपासा जरातङ्क जन्मान्तकभयस्मया, । न राग-द्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते। (रत्न करंड श्लोक)

अर्थः- भूख प्यास बुढापा रागादि जिसके न हो, वह आप्त (सर्वज्ञ) कहलाता है।

पाठकगण ध्यान दें कि जो स्वामी समन्तभद्रा–चार्य भावी तीर्थंकर कहे गये हैं, वे केवलीको क्षुधा रहित कहते हैं।

अनाहाराय तृप्ताय नमः परममायुषे, ।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमायुषे।

[भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत सहस्रनाम श्लोक ३१]

अर्थः-भगवान् की स्तुति में विना आहार के तृप्त कहा है।

निर्निमेषो नराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः,
निष्कलङ्को निरस्तैना निर्धूतांगो निरास्रवः।

[सहस्रनाम श्लोक ७४]

अर्थ-भगवान के नाम मे भगवान् को निराहारः (आहार रहित) ऐसा कहा है।

क्षुत्-तृड्ग-भय-रागरोष-मरणस्वेदाश्च खेदा रति, चिन्ता-जन्म-जराश्च विस्मयमदौ निद्रा विषा-दस्तथा। मोहोष्टादश दोषदुष्टरहितः श्री वीतरागो जिनः, पायात्सर्व जनान्दयालु रघतो जन्तोःपर दैवतम्।

[जिनस्तवननिधि

अर्थः-भगवान् क्षुधा तृषा आदि अठारह दोषो से रहित है, वे सब जनो की पाप से रक्षा करो।

सर्वार्थसिद्धौ (पूज्य पादाचार्य विरचित) अध्याय दूसरा सूत्र चौथे की व्याख्या (क) लाभान्तरायस्या-शेषस्य निरासात्परित्यक्तकवलाहार क्रियाणां केवलिना यत शरीरबलाधानहेतवोऽन्य-मनुष्या -साधारणाः परमशुभाः सूक्ष्माः अनन्ताः प्रतिसमय पुद्गलाः सम्बन्धमुपयान्ति स क्षायिको लाभः।

अर्थः-सम्पूर्ण लाभान्तराय कर्मके नाशसे छोड दी है कवलाहार क्रिया जिन्होने, ऐसे केवलियो के शरीर स्थिति के कारणभूत, जो अन्य मनुष्य मे नहीं ऐसे परम श्रेष्ठ सूक्ष्म अनन्त पुद्गल समय २ सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं वह क्षायिक लाभ है।

पाठक ध्यान दे कि केवली के नौ केवल-लब्धि है उन नौ मे जो लाभ-लब्धि है उसका कार्य यह है कि उन केवलीका शरीर बिना भोजनके पूर्ण बलवान बना रहता है, जिसकी मिसाल अन्य मनुष्यो मे नहीं मिलती।

(ख) केवलीश्रुतसघ-धर्मदेवा-वर्णवादो दर्शन—

मोहस्य, अध्याय ६ सूत्र १३ वा, कवलाभ्यहारजीविन. केवलिन इत्येवमादिवचन केवलिनामवर्णवादः।

अर्थ -कवलाहार से जीनेवाले केवली होते हैं, इत्यादि वचन कहना केवलियो का अवर्णवाद है। पाठक ध्यान दे कि जो अवर्णवाद महान् गुणियो मे न होते दोषो का लगा कर दर्शन मोहनीय का कारण कहा है उसको केवलिया का स्वरूप बताना सर्वथा विरुद्ध माग है।

(ग) एकादशजिने, अध्याय६ सूत्र ११वा, इसकी व्याख्या मे एकादश जिने न सन्तीति वाक्य—शेष कल्पनीय. सोपस्कारत्वात्सूत्राणा।

अर्थ -जिन भगवानके ग्यारह परोषह नहीं हैं, ऐसा वाक्य जोड़ना, सूत्रोमे अनुवृत्ति आती है। पाठक ध्यान दे कि टीकाकार ने कितना सशयस्थलको स्पष्ट रूप मे दिखला दिया है.।

राजवार्तिके भट्टाकलकदेवविरचिते, (क)(ख) (ग) उक्त सर्वार्थ सिद्धि क तीनो ही प्रमाणाके समान कथन है, पाठक देख ले।

पाठक एक विशेष युक्ति पर ध्यान दें कि केव -लियों के चार घातिया कर्मों क नाश से चार अनन्त चतुष्टय गुण उत्पन्न होते हैं, ज्ञानावरणी दर्शना—वरणी के अभाव से अनन्त ज्ञान, दर्शन, मोहनोय अन्तराय के अभाव से अनन्त सुख वीर्य। जैसा कि महर्षि वीरनन्दि आचार्य ने चन्द्रप्रभ चरित्र मे कहा है "अनन्तविज्ञानमनन्तवीर्यतामनन्त—सौख्य-त्वमनन्तदर्शन। विभर्ति योनतचतुष्टय विभुः स नोस्तु शातिर्भवदु खशान्तये"।

अध्याय १ श्लोक ३ रा। अर्थ'-अनत चतुष्टय धारक शान्तिनाथ भव दु ख की शान्ति करें। पाठक ध्यान दें कि मोहनीयकर्म नाश स केवलियोमें अनन्त सुख प्रतिपादन किया है, और यही गुण सिद्धों में सम्यक्त्व रूपसे कहा है, इसका यही तात्पर्य है कि सकल परमात्मा केवली मे समस्त मोह के अभाव से अनन्तवीर्य, और मोहनीय के अभाव से अनन्त सुख प्राप्त हुआ। जो अनादिकालसे मोहवश आत्मा दुःखी था, उस मोह के अभावसे आत्मा मे अनन्त सुख की प्राप्ति हुई, मान लीजिये कि वेदनीय कर्म से क्षुधा उत्पन्न हुई तो क्या वह परमात्मा उस शरीर की रक्षा मे इतना मोही बन गया जो उसकी रक्षार्थ भोजन करने लगा? यह कल्पना किसी प्रकार भी बुद्धिमानो को सन्तोष का कारण नही है।

दूसरी बात यह है कि आहार सज्ञा असाता वेदनोयके उदय से होती है तो जहा अनन्त सुख हो वहा असातावेदनीय (पाप प्रकृति) की सत्ता रह नहीं सकती।

तीसरी बात, अनत वीर्य नामा गुण जो अतराय कर्म के अभाव से उत्पन्न हुआ है, उसमे इतनी भी शक्ति नहीं कि वह केवलज्ञान को तो अनन्त काल तक अक्षुण्ण बनाये रहे, परन्तु शरीर को किंचित काल तक भी न स्थिर रख सके महर्षि प्रभाचन्द्राचार्य ने कहा है कि 'अनन्तसौख्यता यस्य न तस्याहारसभवः यद्यस्ति तर्हि जायेत व्याघातोनन्त-शर्मणा'

अर्थः-जहा अनन्त सुखहै वहा आहार नहीं है, और यदि है तो अनन्त सुख नही। दूसरी बात यह है कि श्री नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोमट्टसार सज्ञा प्ररूपणा गाथा (१३३) मे कहा है कि आहार सज्ञा दारुण दु.ख का कारण है, "इहजाहि बाहियावि य जीवा पावन्ति दारुण दुक्ख, सेवतावि य उभये ताओ-चत्तारि सण्णाओ"।

अर्थ —जिनसे सक्लेशित होकर जीव इस लोक में और जिनके विषय सेवन करनेसे दोनो ही भवो मे दारुण दुःखको प्राप्त होता है, उनको सञ्ज्ञा कहते हैं। और उनके ४ भेद हैं। पाठक ध्यान दे, कि जिस आहार से जीवो को दु ख होता है उसको अनन्त सुखवाली आत्मामे कहना, कितने आश्चर्य की बातहै।

दूसरे प्रमाण मे उस आहार संज्ञा का सद्भाव सातवें गुणस्थान मे अभाव कहा है:—

णट्ठपमाए पढमा सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा,
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि णहि कज्जे" ॥

अर्थः—"अप्रमत्त गुणस्थान मे आहार सञ्ज्ञा नहीं होती क्यो कि यहा पर उसका कारण असाता वेदनीय कर्मका उदय नहीं है, और शेषकी तीन संज्ञा उपचार से वहा होती है।

पाठक ध्यान दे कि जो आहार सञ्ज्ञा सातवे गुणस्थान मे भी नही है, उसका उस परमात्मा मे कैसे सद्भाव माना जाए, सामान्य रूपसे वेदनीय की सत्ता है, परन्तु उसमे असाता का तो सर्वथा अभाव ही है, दूसरी बात सूत्रकार ने अकषाय जीवो के ईर्यापथ आस्रव कहा है, तो भगवान केवली के जब सम्पूर्ण कषायोका अभाव हो चुकातब कोई कर्म स्थिति रूप व अनुभागरूप फल नहीं दे सकता, फिर असाता वेदनीय ही किस प्रकार अनुभागरूप फल (भूख लगाकर खाना खिलाकर) दे सकता है, कर्म सिद्धात की डींग मारने वालो को विचारना चाहिये।

प्रोफेसर साहब ने लिखा है कि आप्त मीमासा मे समन्तभद्र स्वामी ने भी वीतरागी के सुख दु ख माना है, अत. केवली के भी दुःख से आहार सञ्ज्ञा होती है, पाठक जरा आप्त—मीमामा के श्लोक पर ध्यान देवें। श्लोक यह है—

"पुण्य ध्रुवं स्वतो दुःखात् पाप च सुखतो यदि,
वीतरागो मुनिर्विद्वान ताभ्या युञ्ज्यान्निमित्तत·
(श्लोक ९३)

अर्थ.—अपने मे दुःखदेने से पुण्य होगा और सुख से पाप ? तो वीतराग मुनि और विद्वान पुण्य पाप से युक्त होजायेगे। पाठक ध्यान दे कि यहा पुण्य पाप के एकात खण्डन मे स्वामी समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि यदि मुनि काय—क्लेश, त्रिकाल योगाद्यनुष्ठान जिनसे शरीर मे कष्ट होता है, तो उस के करने से पुण्य बन्ध करेगा, परन्तु मुनि इनके करने मे दु:खका अनुभव नही करता अत ये पुण्य के कारण नहीं है, किन्तु मोक्ष के कारण हैं। आश्चर्य है कि प्रोफे० जी की बातका जिससे खण्डन होता है उसको मण्डनमे लिखा है। इस श्लोकका अष्ट सहस्री निकाल कर मनन करें कि वीतराग को दु ख ही नही होता, होता है तो वह वीतरागी नहीं।

केवली के कवलाहार होता है तब उसकी निवृत्ति इच्छा द्वारा होती होगी। अथात् मुझे भूख लगी है, चलो आहार को, या बिना इच्छा के समय पर लग ही आती हो तो इसस नित्य का ही आहार होना चाहिये ? कहीं भी प्रथमानुयोग के सैकड़ो ग्रन्थो म इसका कथन नहीं देखा, तो क्या सब ही आचार्य इसके ज्ञाता न थे ?

दूसरी बात केवल ज्ञान होने पर समवशरण या गन्धकुटी रची जाती है, तो भोजन क्या वहीं श्रावक बनाते थे ? या केवली नगर मे आतेथे ? कभी कभी या नित्य ? ऐसी सैकडो शकाएँ होती है। परन्तु जिनकी समझ ही विलक्षण है, उनकी बात भी अनोखी है। लिखना तो बहुत है परन्तु लेख बढ़ने के भयसे फिल हाल इतना ही लिखा है।

२५

श्रीमान सेठ नेमिचन्द्र जी पाटनी

डायरैक्टर मैनेजिंग एजन्ट

दि महाराजा किशनगढ़ मिल

* श्री शान्तिनाथाय नम.। *

प्रोफेसर साहब के मतानुमार कुन्दकुन्दस्वामी ने इस विषय पर, व्यवस्था से न तो गुणस्थान चर्चा ही की है, और न कर्म सिद्धात का विवेचन किया है इस लिये कुन्दकुन्द का विचार मान्य नहीं। तथा षट्-खण्डागम के सूत्रकार का अभिप्राय धवलाकार वीर-सेन स्वामी नहीं समझ सके, इस लिये मूल सूत्र का अर्थ प्रोफेसर साहब दूसरा निकालते है।

इस पर यह लिखना है कि प्रोफेसर साहब द्वारा बहुत छान बीन के बाद लिखी जाने वाली भूमिका जो उन्होंने षट्खण्डागम की प्रथम पुस्तकके शुरूआत में लिखी है उसके पत्र ३५ के अनुसार कर्मसिद्धात की मूल उत्पत्ति—भूत षट्खण्डागम की रचना वीर नि० संवत् ६१४ विक्रम सम्वत् १४४, शक सम्वत ६ ईस्वी सन् ८७ के बाद मूल सूत्र कर्मप्राभृत यानी षट्-खण्डागम की उत्पत्ति स्वामी पुष्पदन्त भूतबली द्वारा मानी है उस ही भूमिका के पत्र ३१ में स्वामी कुन्द-कुन्द को ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में मौजूद होना माना है। और इसी भूमिका के पत्र ४२ में धवला टीका की रचना वीरसेन स्वामी द्वारा ईस्वी सन् ८१६ में पूर्ण होना माना है तथा इसी भूमिका के पत्र ४६ में श्री प्रोफेसर साहब ने बहुत प्रबल प्रमाणो द्वारा यह सिद्ध कियाहै कि स्वामी कुन्द कुन्द ने उपरोक्त षट्खण्डागमो में स प्रथम ३ खण्डो के ऊपर परिकर्म नामक ग्रन्थ की रचना की थी जो इन ही कर्म सिद्धात की गुत्थियो को सुलझाने वाला ग्रन्थ था, बल्कि प्रोफेसर साहब के मतानुसार श्री वीरसेन स्वामी के सन्मुख सब मान्य, जिसको उनके समय तक भी सब आचार्य प्रमाण मानते थे, ऐसा षट्खण्डागम पर लिखा हुआ परिकर्म ही ग्रन्थ था जिसके सबसे ज्यादा उद्धरण शका समाधान रूप मे धवला टीकामे मिलते है जो प्रोफेसर सा० ने अच्छी तरह मनन करके पत्र ४६ से ४८ तक सप्रमाण सिद्ध किया है और परिकर्म ग्रन्थ कुन्दकुन्द का ही बनाया हुआ सिद्ध किया है। तथा इसी भूमिका के पत्र ४६ तथा ५४ मे प्रोफेसर साहब ने यह भी अच्छी तरह सिद्ध किया है कि वीरसेन स्वामी ने जहां उनके मत मे और दूसरे आचार्यों के मतो मे मतभेद रहा है खास कर परिकर्म रचयिता श्री कुन्दकुन्द आचार्य के मत मे और उनके मत मे मत भेद रहा है वहा वीरसेन स्वामी ने मौन धारण नहीं करके उन मतभेदो को सप्रमाण मानने योग्य माना है तथा अमान्य को अमान्य ठहराकर नहीं माना है। कुन्द २ बड़े आचार्य हुये है, ऐसी श्रद्धासे उनने अध विश्वास करके परिकर्म की हर एक बात को मान्य नहीं किया है।

उपरोक्त सब बातो पर विचार करने हुये कुन्द २ स्वामी के मत से धवला टीकाकार के मत को भिन्न ठहराना अथवा मूल सूत्रकार के मत को टीकाकार नहीं जान सके ठहराना सिद्ध नही हो सकता। तथा कुन्द २ स्वामी ने कर्म सिद्धात की कसौटी पर बिना कसे ही तीनो विवादास्पद विषयोपर अपना मत दिया यह भी सिद्ध नहीं किया जा सकता, कारण पुष्पदन्त भूतबली ने सूत्रो की रचना की उस ही शताब्दी मे स्वामी कुन्द २ हुये। तथा जिस काल मे पुष्पदन्त भूतबली, कुन्द २ हुये है, उस समय द्वादशाग की धारा अविच्छिन्न रूप से बराबर चलती रही थी, उस समय तक मुनिमार्ग काफी जोर पर था, तथा जिनवाणी का अध्ययन गुरु-परम्परा से चलता था, और बुद्धि, कुशाग्र बमानुसारिणी होती थी, जिससे यह कतई अनुमान नहीं किया जा सकता कि एक ही शताब्दी मे कुन्द २ सरीखे दिग्गज विद्वान, जिनके लिये कहा जाता है कि विदेह क्षेत्र मे भगवान सीमन्धर स्वामी के समवसरण मे जाकर साक्षात् दिव्य ध्वनि द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना था। ऐसे विद्वान वस्तु का स्वरूप गलत समझ कर उसको गलत प्ररूपणा कर देवे। इस लिये यह मानना होगा कि कुन्दकुन्द स्वामी ने जैसा भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा प्राप्त किया तथा गुरु परम्परा से जाना, तथा शास्त्रो के द्वारा अध्ययन किया, वही उपदेश किया।

रहा यह विषय कि उन्होने कर्मसिद्धात से घटित नही किया, सो यह तो विचारने की बात है कि हर एक जगह हर एक कथन मे कोई विषय मुख्य होता है तो कोई गौण। तो जहा कुदकुदाचार्य ने इस विषय को कहा है, वे अध्यात्म ग्रन्थ है, उनमे कर्म सिद्धान्त का विवेचन हो ही कैसे सकता है? लेकिन वहा के उनके विचार प्रकाशन से यह बात निर्विवाद माननी होगी कि कुन्दकुन्द स्वामी ने जो अपना परिकर्म नामक ग्रन्थ लिखा था, उसमे इस विषय को कर्म-सिद्धात की कसौटी पर कस करके सिद्ध किया होगा। कारण एक ही मनुष्यके दो जगह दो प्रकारके विचार नहीं हो सकते। खास कर एक ही विषय की एक जगह पुष्टि और उसी विषय का एक जगह विरोध नहीं हो सकता। और खास कर कुन्दकुन्द सरीखे आचार्य के विषय मे तो ऐसा खयाल ही नहीं किया जा सकता। इसलिये यह बात निर्विवाद माननी होगी कि कुन्दकुन्द के प्राय ग्रन्थो मे जो स्त्रीमुक्ति, सवस्त्र मुक्ति, केवली कवलाहार विषयो का विरोध पाया जाता है, उन ही विषयो पर उन्हो ने अपने परिकर्म ग्रन्थ मे व्यवस्था से गुणस्थान चर्चा भी की है, तथा कर्मसिद्धात का विवेचन भी किया है, लेकिन हमारे दुर्भाग्य से यह ग्रन्थ हमे उपलब्ध नही है।

वीरसेन स्वामी ने धवला टीका रचना की तब उनके सामने परिकर्म मौजूद था, और उन्हो ने उस की खुले हाथो विवेचना की है। ऐसी हालत मे वीरसेन स्वामी के मत से परिकर्म मे मतभेद होता तो वीरसेन स्वामी उस पर विवेचना किये बिना नहीं रहते। जैसा कि उन्होने दूसरे विषयो की विवेचना की है। इससे यह मानना पडता कि षट्खण्डागम के मूल सूत्र कर्ता स्वामी पुष्पदन्त भूतबली के मत के अनुसार परिकर्म की रचना कुदकुन्द ने की, और कुन्दकुन्द के परिकर्म के अनुसार वीरसेन ने धवला की रचना की। इसलिये हमारे दुर्भाग्य से परिकर्म ग्रन्थ हमारे सामने मौजूद नहीं होते हुये भी परिकर्म के पूर्ण भाव प्रकट करने वाली धवला टीका हमारे सामने मौजूद है। यानी ईस्वी सन् ८१६ मे पूर्ण

होने वाली धवला टीका ईसा की पहली दूसरी शताब्दी के आचार्य कुन्दकुन्द के विचारो को तथा पहली शताब्दी के पुष्पदन्त भूतबली के विचारो को प्रगट करने वाली है इसमे सन्देह की कोई गुञ्जाइश नहीं है। इसलिये हमको यह मानना होगा कि कुन्द-कुन्द के जो विचार उनके ग्रन्थो में उपरोक्त सवस्त्र मुक्ति, केवलीकवलाहार, स्त्रीमुक्ति विवाद ग्रस्त विषयों के बारे में पाये जाते है, वही कुन्दकुन्द स्वामी ने परिकर्म में कर्म सिद्धात द्वारा सिद्ध किये थे, और वही भूतबली पुष्पदन्त के सूत्रो का अर्थ है, उस ही के अनुसार वीरसेन स्वामी ने धवला की रचना की है। इसलिये यह नहीं माना जा सकता कि कुन्दकुन्द का मत मान्य नहीं है, तथा सूत्रकार का अभिप्राय धवलाकार वीरसेन नहीं समझ सके।

अब शायद यहा यह शका पैदा होवे कि परिकर्म ग्रंथ कुन्दकुन्द का बनाया हुआ था या नहीं? तो उस के लिये जो अबतक प्रमाण सामने हैं उनसे कुदकुद का नहीं बनाया हुआ साबित नहीं होता, तथा किसी दूसरे आचार्य ने भी परिकर्म को अपना ग्रन्थ होना प्रकट नहीं किया है ऐसी हालत मे इस शका को भी कोई स्थान नही है। अगर किसी प्रकार यह भी माना जावे, तो भी प्रोफेसर साहब के कथनानुसार परिकर्म ग्रन्थ षट्खण्डागम पर सबसे प्राचीन भाष्य था जिसको उन्हो ने ईसा की दूसरी शताब्दी की रचना होना माना है तथा परिकर्म धवला के समय में सर्व मान्य ग्रथ था (पत्र ४३) ऐसी हालत मे अगर परिकर्म को कुन्दकुन्दके इलावा दूसरे आचार्य की भी रचना माना गया तो भी वह रचना विशेष महत्व की तथा मूल सूत्रकार के विचारो को प्रगट करने वाली माननी होगी। इसलिये षट्खण्डागम के सूत्रकारो का वही मत था, जो धवला टीकाकार का है। इस विषय पर धवलाकार का मत जानने के लिये देखो सत्प्ररूपणा षट्खण्डागम की प्रथम पुस्तक के सूत्र ६३ की व्याख्या तथा पुस्तक २ सत्प्ररूपणा आलाप के पत्र ४१३ म मनुष्यनी स्त्रियो के सामान्य आलाप में उठाई गई शका का समाधान जिसमे उन्होने इस विषय पर बहुत खुलासा रूप से सवस्त्र-मुक्ति, तथा स्त्री मुक्ति का विरोध किया है।

भगवती आराधना का उन्होंने प्रमाण दिया है, वह प्रेमी जी द्वारा बहुत स्पष्ट रूप से यापनीय सघ की रचना स्वीकार की गई है (देखो पत्र ४६ जैन साहित्य और इतिहास) जिसके विषय मे अभी भी विद्वानो मे चर्चा चल रही है, लेकिन अगर यह दर असल यापनीय सघ की ही रचना मानी जावे, तो यापनीय सघ भी तो इन ही तीन बातो को मानने वाला था। बाकी सब क्रिया दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुकूल होती थी। इसी तरह प्रोफेसर साहब को भी यापनीय सघ की तरह इन विषयो की शका पैदा हुई है जो कि हम सरीखे मद बुद्धियो मे हो जाना साधारण बात है, जब कि पूर्व के बड़े २ आचार्यों मे भी ऐसी शकाये रहती थीं लेकिन इस विषय का निराकरण हो जाना चाहिये।

शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान लोग शास्त्रीय प्रमाणो व युक्तियो से इस विषय पर चर्चा करके इस विषय का निराकरण करे।

२६

श्रीमान् पं० नन्हेलाल जी सिद्धांत शास्त्री,

—श्री दिगम्बर जैन पाठशाला—

कुचामन (मारवाड़)।

श्री महावीराय नमः

* स्त्री-मुक्ति *

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने ही स्त्रीमुक्ति का निषेध नहीं किया है किन्तु उनके कथन को सर्वोपरि मानने वाले सब आचार्यों ने उसका निषेध किया है प्रोफे० सा० ने आचार्यवर कुन्दकुन्द स्वामी के कथन को अन्य आचार्यों के शास्त्राधार से चिन्तन करने का निश्चय किया है सो ठीक है किन्तु खेद है कि प्रोफेसर सा० को पूज्यपाद, नेमिचन्द्र सिद्धांत—चक्रवर्ती आदि आचार्यों का कथन भी तो मान्य नहीं है क्योंकि उक्त आचार्यों ने जिस अभिप्राय से तीनों वेदों से १४ गुणस्थान बताये है प्रोफे० साहब उन्हें सन्तोषजनक नहीं बताते हैं यदि प्रोफेसर साहब को उक्त आचार्यों का कथन मान्य है तो फिर पूज्यपाद आचार्य ने सर्वार्थसिद्धिमें दर्शनमोहनीय की प्रकृतियो का क्षपण कर्मभूमि मे पैदा हुये मनुष्य के केवली और श्रुत-केवली के पास मे बताया है साथ २ अध्याय १ सूत्र ७ की टीका में द्रव्यस्त्री के क्षायिक सम्यग्दर्शन का निषेध किया है।

इसके अलावा सिद्धों का १२ अनुयोगो से सर्वार्थसिद्धि अध्याय १०में साध्य किया है वहा लिंग की अपेक्षा तीनो भाववेदो से मुक्ति बताई है द्रव्यवेद में केवल पुल्लिङ्ग से ही सिद्धि की है शेष दो वेदों का स्पष्ट निषेध किया है यही अभिप्राय राजवार्तिककार और अन्य आचार्यों का है फिर समझ में नहीं आता कि प्रोफेसर साहब क्षायिक सम्यग्दर्शनादि के बिना ही स्त्रियोके कैसे मुक्ति स्वीकार करते हैं। गुणस्थानो की नीव भावों पर निर्भर है ऐसी हालत मे पूज्यपाद आदि आचार्योंका लेख द्रव्यवेदी पुरुष के भावापेक्षया किसी भी वेद से क्षपकश्रेणि का आरोहण हो सकता है बिलकुल स्पष्ट और युक्तिसङ्गत है। इस कथन से प्रोफेसर सा० के १-२-३ आदि प्रश्न कोई महत्व नहीं रखते है शब्दाडम्बर से कोई अर्थ विशेष की सिद्धि नहीं होती है।

षट्खण्डागम के जिन २ सूत्रो का उल्लेख मात्र स्त्रीमुक्ति के समर्थन में किया गया है उनमे से किसी से भी स्त्रीमुक्ति का समर्थन नहीं होता है यदि होता है तो प्रोफेसर साहब को उन सूत्रो से उसे स्पष्ट करना चाहिये।

—संयमी और वस्त्रत्याग—

श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुकूल यदि मनुष्य वस्त्र को त्यागे बिना ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है तो फिर व्यर्थ मे वस्त्रत्याग के कष्ट से क्या लाभ ! आनन्द पूर्वक वस्त्रों को धारण कर ही सुख से मुक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिये, रही दिगम्बर सम्प्रदाय की बात, सो प्रोफेसर साहब से पूछना चाहिये कि कौन

से ग्रन्थ में मुनि को सवस्त्र मुक्ति बताई है साथ २ यह भी पूछना है कि आजतक किन २ मुनियों को सवस्त्र मुक्ति हुई है मूलाराधना की ७६ और ८३ गाथा का उल्लेख कर जो मुनि के वस्त्र सिद्धि का प्रयास किया है वह बिल्कुल गलत है उक्त गाथाओं का अभिप्राय तो यह है कि अपवादलिङ्ग धारक गृहस्थ जब वह भक्तप्रत्याख्यान के लिये उद्यत होता है तब उसके पुरुष लिङ्ग में कोई दोष न हो तो वह भी औत्सर्गिकलिंग धारण कर सकता है इसी प्रकार गाथा ८३ से भी मुनि के वस्त्र धारण सिद्ध नहीं होता है।

भगवती आराधना की ७६ और ८३ गाथासे भी मुनि के वस्त्रधारण सिद्ध नहीं होता है यदि थोड़ी देर के लिये प्रोफेसर सा० के अभिप्राय का ही मान लिया जाय कि मुनि भी वस्त्र धारण कर लते हैं तो क्या इतने मात्र से मुनि वस्त्रधारी बन गये और उस से उन्हें मोक्ष सिद्ध हो गई। यह हो सकता है कि जिन मुनियो को शीतादि की बाधा नहीं सहन होती है यदि वे मुनि वस्त्रधारण करलें तो करले, किन्तु ऐसे मुनि निर्ग्रंथ वीतराग मुनियों की कोटि मे नहीं आ सकते दोषों का प्रादुर्भाव सब जगह हो सकता है यदि कहीं सवस्त्र मुनि को मोक्ष हुआ हो और किसी ग्रथ मे यह कथन आया हो तो प्रोफेसर साहब को उसे प्रकट करना चाहिये जिससे लोगों को मुक्ति प्राप्ति मे सुगमता प्राप्त हो सके। सर्वार्थसिद्धि राज-वार्तिक टीका के अध्याय ६ सूत्र ४६-४७ के अनुसार निर्ग्रंथ मुनियों को वस्त्र त्याग अनिवार्य नहीं बताया है आदि जो प्रोफेसर साहब ने लिखा है बिल्कुल कल्पित और निराधार है मैं समझता हूं प्रोफे० सा० ने उक्त सूत्रो के अर्थ समझने मे गलती की है आप ने बकुश के लक्षण में "शरीरोपकरणविभूषानु-वर्तिन." और 'अविविक्तपरिग्रहा:' इन दो विशेषणों से यह अर्थ बिल्कुल नहीं निकलता है 'शरीरोपकरण-विभूषानुवर्तिन.' का अर्थ है कि शरीर और उप-करण (पीछी, कमण्डलु, पुस्तक, पथावरा आदि) की सुन्दरता को चाहने वाले। इसी प्रकार "अविवि-क्तपरिग्रहा." का अर्थ भी यह है कि नहीं छोड़ा है सघ के मुनि, उपाध्याय, शिष्य, आचार्यरूपी परिग्रह को जिन्हो.ने। यदि पूज्यपाद स्वामी का उक्त अभिप्राय न होता तो वे 'नैर्ग्रंथ्यं प्रतिस्थिता' और 'अखण्डित-व्रता।' ये दोनो विशेषण क्यो देते श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने भी समयसार मे मुनि का परिग्रह उक्त प्रकार से विवेचन किया है।

बकुश के लक्षण में जितने विशेषण दिये गये हैं उनका परस्पर समन्वय मिलाने से एव उन विशेषणों का ठीक २ अर्थ करने से कोई शका उपस्थित नहीं होती है।

'द्रव्यलिंग प्रतीत्य भाज्या.' का भी अर्थ यह है कि द्रव्यलिंग को लेकर पाचों ही निर्ग्रन्थ मुनि भेद रूप हैं जैसे कोई आहार करते है, कोई उपदेश देते हैं कोई पढते हैं, कोई पढ़ाते हैं, कोई अनेक कठिन आसनो से ध्यान करते हैं आदि।

इसी कथन से प्रोफेसर साहब ने सग्रन्थ और निर्ग्रन्थ दोनो लिंगो से मुनि के मुक्ति भी बता डाली है जिसमें प्रमाण सर्वार्थ सिद्धि अध्याय १० सूत्र ६ की टीका का दिया है किन्तु खेद है कि प्रोफे० साहब ने उक्त सूत्र की टीका के समझने और पूर्वापर सबंध मिलाने में बड़ी भूल की है छपी सर्वार्थसिद्धि में 'अथवा निग्रन्थलिंगेन के आगे कौमा होना चाहिये, जिसके न होने से आपने उक्त पद को 'सग्रन्थलिंगेन

वा सिद्धिभूँतपूर्वनयापेक्षयाके साथ घसीट कर समन्थ लिंगसे भी मुक्ति बता डाली यदि आचार्य का समन्थ लिंग से भी मुक्ति का अभिप्राय होता तो इसके पहिले (लिंगेन केन सिद्धिः? अवेदत्वेन, त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो न द्रव्यतः "द्रव्यतः पुल्लिंगेनैव") यह कथन क्यों करते क्योंकि उस कथन से इस कथन में विरोध खड़ा हो जाता है अतः निर्ग्रन्थलिंगेन, इस शब्द के आगे कौमा होना जरूरी है क्योंकि भूतपूर्व-नय का सम्बन्ध समन्थलिङ्ग से ही है निर्ग्रन्थलिङ्ग से नहीं।

धवलाकार ने सयतो के लिये जो पाच महाव्रत का पालन बताया लिखा है सो ठीक ही है पाच महाव्रतों में सर्व परिग्रह का त्याग आ ही गया आगे के शेष २३ गुण उन महाव्रतों के वाह्य रूप ही हैं।

केवली के भूख-प्यासादि की वेदना :—

केवली के भूख-प्यासादि की वेदना का निषेध केवल श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने ही नहीं किया है किन्तु प्रत्येक आचार्य ने उसका निषेध स्पष्ट और जोरों से किया है नेमिचन्द्र सिद्धातचक्रवर्ती कृत गोम्मटसार कर्मकाण्ड की २७३-२७४-२७५ और २८० गाथा को देखिये उक्त गाथाओं से यह भी स्पष्ट है कि मोहनीय कर्म के अभाव में वेदनीय कर्म अपना काम नहीं करता है अत सर्वार्थसिद्धिकार और राजवार्तिककार ने मोहनीयकर्म के अभाव में वेदनीय कर्म का प्रभाव जर्जरित हो जाता है जो लिखा है वह उनका प्रयत्न-मात्र नहीं है बल्कि सच्ची और अनुभवगम्य बात है प्रभाचन्द्राचार्य ने भी प्रमेयकमल मार्तण्ड में मोहनीय के अभाव में वेदनीयकर्म को कार्यकारी नहीं माना है उक्त आचार्य ने बड़ी खूबी से केवली के भूख-प्यासादि वेदना का निषेध किया है।

तत्वार्थसूत्र ग्रन्थ के अध्याय ६ सूत्र ८-१७ से तो केवली के परीषहों का सद्भाव ही सिद्ध नहीं होता है प्रो० साहब ने उक्त सूत्रों से उक्त अर्थ कैसे निकाला यह समझ में नहीं आया उक्त सूत्रों में केवली का नाम मात्र भी नहीं सूत्र ८ में तो सवरमार्ग से च्युत न होने और निर्जरा के लिये परीषहो का सहन बताया है और सूत्र १७ में एक साथ एक आत्मा में १९ तक परीषह हो सकती है बताया गया है।

वीतराग केवली के सुख और दुख का सद्भाव सिद्ध करने के लिये आप्तमीमासा की जिस कारिका का प्रमाण दिया गया है उसका क्या अर्थ है उसे अच्छी तरह से समझकर प्रोफेसर साहब को प्रमाण मे लाना था प्रोफेसर साहब से निवेदन है कि उक्त कारिका का अर्थ अष्ट सहस्री परिच्छेद ६ से समझें तब आपको मालूम हो जायगा कि उक्त कारिका से क्या केवली मे सुख दुख का सद्भाव सिद्ध होता है ? कारिका मे केवल वीतराग शब्द को देख कर केवल अर्थ कर बैठना उचित नहीं है।

१७

श्रीमान् पं० राजधरलाल जी शास्त्री,

व्याकरणाचार्य,

—श्री वीर विद्यालय, पपौरा—

(टीकमगढ़)।
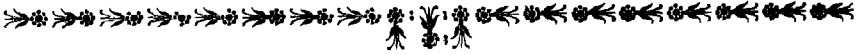
* स्त्री-मुक्ति *

स्त्री-मुक्ति के विषय में प्रोफेसर साहब ने प्रबल प्रमाण यह दिया है कि षट्खण्डागम में सत, सख्या क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व का चौदह मार्गणाओं में गुणस्थान क्रम से व्याख्यान करते हुये आचार्य भूतबलि व पुष्पदन्त ने मनुष्य और मनुष्यनी के अर्थात स्त्री और पुरुष दोनो के चौदह बतलाये हैं। अतः पुरुषों की तरह स्त्रिया भी मोक्ष की अधिकारिणी हैं यदि ऐसा न हो तो षट्खण्डागम में मनुष्यनियो के चौदह गुणस्थानो मे सत संख्यादि का वर्णन न होता।

उत्तर—"व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्" अर्थात् व्याख्यान से विशेष प्रतिपत्ति कर लेना चाहिये, सन्देह होने से अलक्षण नहीं कहा जा सकता अतएव सूत्रों के ऊपर वार्तिक व भाष्य करनेवाले आचार्यों के विशेष व्याख्यान ही सूत्रकारो के आशय को प्रकट करते हैं। सत्प्ररूपणा सूत्र ६३, की व्याख्या में श्री वीरसेन आचार्य ने मनुष्यनियो के चौदह गुणस्थान विषयक शका का निराकरण "भावस्त्रीविशिष्ट मनुष्यगति" कह कर किया है इसी प्रकार प्रत्येक प्ररूपणा में समझना चाहिये।

प्रश्न-सूत्रकार का जो भाव टीकाकार प्रकट कररहे हैं वही है इसमें क्या प्रमाण ? उत्तर-टीकाकार सूत्र के सूत्र निबद्ध संक्षिप्त अर्थको ही विस्तार से वर्णन करते हैं। यदि टीकाकार सूत्रकारके आशय को उलट फेर कर व्याख्यान करने लगे तो इसमें उनको असत्य भाषण का दोष लगेगा। टीकाकार का विशेष व्याख्यान ही सूत्रकार का आशय कहलाता है इसके निम्नलिखित कई उदाहरण हैं। "क्षेत्रकाल गतिलिंग तीर्थ-चारित्र-प्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तर—संख्याल्प बहुत्वत: साध्या:" यहा गति की अपेक्षा भी सिद्ध परमेष्ठी मे भेद बताया है तो क्या इससे सूत्रकार का यह आशय लगाया जा सकता है कि वह प्रत्येक गति (नरक तिर्यंच मनुष्य देव) से मुक्ति का र्णन करते है ? जिस प्रकार यहा व्याख्याकारो का आशय ही सूत्रकार का आशय समझा जाता है उसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्य: सूत्रसे मूत्रकार का क्या यही आशय है कि सिद्धावस्था में सूत्रोक्त चार भाव (केवलज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक दर्शन, सिद्धत्व) ही पाये जाते हैं और अनन्त वीर्यादि नहीं? परन्तु यहा पर जिस प्रकार टीकाकार का अभिप्राय ही सूत्रकार का अभिप्राय (अर्थात अनन्तवीर्यादि भाव भी पाये जाते है) समझा गया है

उसी प्रकार षट्खण्डागमके कर्ता का भी अभिप्राय

टीकाकार का अभिप्राय ही समझना चाहिये।

प्रश्न-षट्खण्डागमके रचयिता श्रीभूतबलि, पुष्पदन्त से टीकाकार आचार्य श्री वीरसेन जी बहुत समय बाद (षट्खण्डागम के रचयिता ई० की प्रथम शताब्दी में हुये, और टीकाकार आठवीं शताब्दी मे हुये हैं) हुये हैं। इसलिये सम्भव है टीकाकार सूत्रकार का आशय न समझ पाये हों और उन्हो ने अपनी मान्यता के अनुसार सूत्रों का आशय निकाल कर लिखा हो? उत्तर-यदि टीकाकार यह जानते कि "षट्खण्डागम" कुन्दकुन्दादि आचार्यों की मान्यता का पोषक नहीं है तो सम्भव था आचार्य वीरसेन जी उस पर भाष्य रूप टीका ही न लिखते, और जब उन्होने लिखी है तो इससे यह बात भलीभांति सिद्ध होती है कि टीकाकार सूत्रकार के ही आशय को विस्तार के साथ प्रतिपादन करते हैं। यदि सूत्रकार (षट्खण्डागम के कर्ता) की मान्यता 'स्त्री-मुक्ति' की होती तो उसी का खण्डन करने वाले और षट्—खण्डागम के कर्ता के समकालीन आचार्य-प्रवर कुन्दकुन्द षट्खण्डागम पर परिकर्म नाम की टीका क्यों लिखते? किसी भी आचार्य ने अपने मान्य सम्प्रदायके विरुद्ध ग्रन्थों पर कोई टीकायें नहीं लिखी हैं। इससे यह निश्चय है कि आचार्य वीरसेन की भाष्यरूप जो षट्खण्डागम की धवला टीका है-उस में जो भावस्त्री की अपेक्षा चौदह गुणस्थानो की सम्भावना बताई गई है वही सूत्रकार का आशय है।

प्रश्न-प्रोफेसर साहब का कहना है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने जो 'स्त्री-मुक्ति' का खण्डन किया वह न तो गुणस्थान क्रम से किया है, और न उसमें कर्म-सिद्धान्त का ही विवेचन किया है।

उत्तर- श्री भूतबलि पुष्पदन्त ने यदि चरणानुयोग के द्वारा साधु परमेष्ठी के बताये गये २८ मूल गुणों का वर्णन किया होता और उसमें 'वस्त्र त्याग' रूप मूल गुण का वर्णन नहीं किया होता तो षट्—खण्डागम में 'स्त्री-मुक्ति' का समर्थन है यह किसी प्रकार मान लिया जा सकता था परन्तु ऐसा नहीं है अत केवल गुणस्थान और कर्म सिद्धात का विवेचन भी तो स्त्री—मुक्ति के समर्थन में अपूर्ण समर्थन है अत केवल इतने मात्र से सूत्रकार (षट्खण्डागम के कर्ता) का आशय स्त्री-मुक्ति के पक्ष में नहीं कहा जा सकता।

अपि च स्त्री-मुक्ति के खण्डन में गोम्मटसार कर्मकाण्ड की गाथा नं० ३२ ही पर्याप्त है उसमें कर्म भूमि की स्त्रियों के अन्त के केवल तीन ही संहनन बताये हैं। और मोक्ष वज्रवृषभ नाराचसंहनन वाले के ही होता है। आचार्य नेमिचन्द्र ने यह संहनन विषयक चर्चा स्वतन्त्र (मनगढन्त) तो लिखी नहीं होगी, यह भी पूर्वाचार्यों की मान्यता के आधार पर लिखा होगा।

प्रोफेसर साहब ने कहा कि वेद वैषम्य नहीं हो सकता इसमें तो प्रत्यक्ष प्रमाण ही बाधक है। बहुत से मनुष्य ऐसे देखे जाते हैं जिनके हाव, भाव, कार्य कलाप ऐसे होते हैं जो स्त्रीत्व के द्योतक होते हैं। तथा कौन से परिणाम स्त्रीवेद के उदय में होते हैं, कौन से परिणाम पुरुषवेद के उदय होनेपर होते हैं। कौन से परिणाम नपुसकवेद के उदय होनेपर होते हैं यह परिणाम विषयक चर्चा अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान का विषय है अतः मनुष्य या स्त्री के उपाग विशेष होने पर भी उसी वेद का होना चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है क्योकि बहुतसे मनुष्योके स्त्रीजातीय परिणाम देखे जाते हैं। अत. वेद वैषम्य न होने में कोई

प्रमाण नहीं है। अपि च यदि स्त्री-मुक्ति सिद्धांतोक्त है तो आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी की तरह आचार्याणी, उपाध्यायी, और साध्वी भी परमेष्ठिनी कहलावेंगी उनको षट्खण्डागम के कर्ता ने नमस्कार क्यों नहीं किया? नमस्कार नहीं किया इससे यह सिद्ध होता है कि द्रव्यस्त्री इन पदों की अधिकारिणी नहीं है। और भी यदि षट्खण्डागम में चरणानुयोग का कहीं वर्णन होता और उसमें द्रव्यस्त्रियों को साध्वी होने का विधान मिलता होता तो आपका लिखना सङ्गत हो सकता था, पर ऐसा वर्णन अभी तक प्रकाशित अंश में नहीं मिलता है अत. केवल कर्मसिद्धांत और गुणस्थान की चर्चा के आधार पर षट्खण्डागम के कर्ताओं के स्त्रीमुक्ति के विषय में विधि वाक्य नहीं कहे जा सकते। जब कि आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचन-सारादि ग्रन्थों से स्त्रीलिङ्ग मे साधु पद धारण करने का निषेध किया और आचार्य भूतबलि तथा पुष्पदन्त यदि उस का विधान करते हैं तो आचार्य कुन्दकुन्द और षट्खण्डागम के रचयिताओं का मतभेद स्पष्ट है फिर ऐसी परिस्थिति में प्रायः सम कालीन आचार्य कुन्दकुन्द षट्खण्डागम पर परिकर्म नामक टीका ग्रन्थ क्यों लिखते? इससे तो यह निश्चय होताहै कि आचार्यकुन्दकुन्दकी मान्यता ही आचार्य भूतबलि और पुष्पदन्त की मान्यता है।

—संयमी और वस्त्र-त्याग—

प्रोफेसर साहब का कहना है कि संयमी बनने के लिये वस्त्रत्याग कोई आवश्यक नहींहै और न इस की पुष्टि दिगम्बर मान्य सभी आर्ष ग्रन्थों से होती है इत्यादि—

इस विषय में तो प्रोफेसर साहब ने इतनी कमजोर युक्तियां पेश की हैं कि जिन पर विचार करने मात्र से यह प्रतीत होता है कि या तो प्रोफेसर साहब शास्त्राधार से अपनी इच्छानुसार अर्थ को खींचने का प्रयत्न कर रहे हैं या उन्हें शास्त्रों का अर्थ समझ में नहीं आया है। यथा—

दिगम्बर सम्प्रदाय के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ भगवती आराधना में गाथा न० (७६-८३) तक अपवाद मार्ग में मुनि को वस्त्रधारण करने का विधान है बस इसी प्रमाण के मिल जाने से प्रोफेसर साहब ने अपने अभीष्ट के सिद्ध करने का प्रयत्न किया, परन्तु उसी भगवती आराधना के और आगे के प्रकरण देखिये तो आपको ज्ञात हो जावेगा कि उक्त ग्रन्थकार ने यति के वस्त्रत्याग पर कितना विस्तृत वर्णन किया है। देखिये "परिग्रह त्याग महाव्रत प्रकरण" इससे आपको ज्ञात हो जावेगा कि उक्त ग्रन्थ में ही मुनियों के वस्त्रत्याग पर कितना विस्तृत प्रतिपादन किया है।

अब रही ग्रन्थकार के पूर्वापर विरोध की बात सो वह तो इस तरह समाधान कर लेना चाहिये कि पूर्व मे जो वस्त्र धारण करने का विधान बताया है वह प्रकरण भक्त प्रत्याख्यान मरण का (सल्लेखना का) है। वहा पर वस्त्रधारण करने का विधान इस लिये बताया है कि सल्लेखना का इच्छुक जो कोई श्रावक हो उसे समाधिमरण के समय मुनिपद धारण करना चाहिये, और यदि कोई सदोषी होने के कारण उस को धारण करने में असमर्थ हो तो उसे वस्त्र धारण करके भी समाधि मरण धारण कर लेना चाहिये इत्यादि। इससे यह ग्रन्थ कर्ता का आशय कभी भी सिद्ध नहीं होता कि मुनि अवस्था में भी वस्त्र धारण करने की आज्ञा है। ग्रन्थ कर्ता का आशय तो केवल समाधि मरण धारण करने की इच्छा करने वाले सदोषी श्रावक को (जिसको कि तत्काल मुनि पद

दिया गया है) वस्त्र धारण करने के विधान में है। समाधि मरण से अतिरिक्त अवस्था में अपवादलिङ्ग को धारण करने वाले को महाव्रती ही नहीं कहा जा सकता। जो चिरकालसे वस्त्र का त्याग करके दीक्षित हुये हैं उन्हें क्या आचार्य समाधिमरण की हालत में वस्त्र धारण करने की आज्ञा दे देंगे? कदापि नहीं। ऐसा उल्लेख शास्त्र में कहीं नहीं है। यदि भगवती आराधनाकार का अभिप्राय सामान्यावस्था में भी मुनि का वस्त्रधारण करने—रूप अपवादलिङ्ग के विधान का होता तो वे परिग्रह त्याग महाव्रत के प्रकरण में उसकी चर्चा क्यों नहीं करते? उनका आशय तो केवल इतने से ही है कि समाधि मरण की अवस्था में श्रावक को भी मुनि पद धारण कर लेना चाहिये यदि कदाचित श्रावक लज्जाशील समृद्ध और मिथ्यात्वी कुटुम्ब वाला, लिङ्ग दोष से युक्त हो तो उस एकान्त में आस्तरण पर ही उत्सर्ग लिङ्ग (वस्त्र त्याग) को धारण करना चाहिये, अतिरिक्त काल में अपवाद (वस्त्र सहित) लिङ्ग को धारण करना चाहिये। इस प्रकार ग्रन्थकार का अभिप्राय ज्ञात करने पर प्रो० साहब की बात ठीक नहीं बैठती है।

प्रोफेसर साहब ने दूसरा प्रमाण तत्वार्थ सूत्र के नोवें अध्याय के सूत्र नं० ४६ ४७ को मुनि के वस्त्र सहित होने में उपस्थित किया है उस पर भी विचार करने से उनका (प्रोफ० साहब) आशय मिथ्या सिद्ध होता है शरीर संस्कार के विशेष अनुरागी होने से वस्त्रधारण करना सिद्ध नहीं होता क्योंकि शरीर संस्कार तो नग्न सौंदर्य बढ़ाने के हेतु हाथ से पटिया बालों में करते रहने से सम्भव हो सकता है। तथा देह का मैल दूर करनेमें, शरीर को भोजनादिसे हृष्ट-पुष्ट करने में भी शरीर संस्कार सम्भव है। अत: शरीर संस्कार से वस्त्र धारण करना सिद्ध नहीं होता है।

'द्रव्यलिंग प्रतीत्य भाज्या.' इस पंक्ति का अर्थ आपने किया है कि कभी कभी मुनि वस्त्र धारण कर सकते हैं सो किस आधार से किया है? आपको इस अर्थ के करने में कोई आधार दिखाना चाहिये था। 'द्रव्यलिंग प्रतीत्य भाज्या' द्रव्यलिङ्ग की अपेक्षा विभाग कर लेना चाहिये अर्थात द्रव्यलिङ्ग तो एक ही प्रकार का नग्नपुल्लिङ्ग होता है फिर भी उसमें भाव स्त्रीवेद, भाव नपुंसकवेद और भावपुंवेद की अपेक्षा भेद कर लेना चाहिये। यही अर्थ युक्ति-युक्त और संगत प्रतीत होता है।

इसी प्रकार 'निर्ग्रन्थ-लिंगेन सग्रन्थ-लिंगेन वा सिद्धिर्भूतपूर्वनयापेक्षया' यहां भूतपूर्वनय का अभिप्राय जो आपने 'सिद्ध होने से अनन्तर पूर्व का है' ऐसा किया है उसका भी आपने कोई आधार नहीं दिया, इसलिये मान्य नहीं हो सकता कि भूतपूर्वनय का अभिप्राय प्रकृत में सिद्ध होने से अनन्तर पूर्व का नहीं है, किन्तु मुनिलिङ्ग धारण करने के अनन्तर पूर्व का है। यही अर्थ सिद्धान्तानुसार और युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

धवलाकार ने जो प्रमत्त संयतों का स्वरूप बताते हुये संयम का लक्षण लिखा है वहां केवल महाव्रतों को ही संयम का रूप नहीं दिया है किन्तु यह पांच महाव्रत २८ मूल गुणों के उपलक्षण हैं यही अर्थ धवलाकार को (पूर्वापर ग्रन्थ का अवलोकन करने से) विवक्षित है ऐसा प्रतीत होता है।

अत 'संयमी और वस्त्र त्याग' के विषय में जो प्रोफेसर सा० के विचार हैं वे भी युक्ति और प्रमाण हीन तथा असङ्गत हैं।

केवली के भूखप्यासादि की वेदना—

इस विषय में प्रोफेसर साहब ने तत्वार्थ सूत्र का "एकादश जिने" सूत्र प्रमाण रूप में उपस्थित किया है। अर्थात् जिनेन्द्र देव में वेदनीय कर्म का उदय होने से क्षुधा तृषा आदि ग्यारह परीषह होती हैं।

बस, इसी सूत्र के आधारपर प्रो०सा० केवलीके भूख प्यास आदि की वेदना सिद्ध कर रहे हैं। परन्तु मोहनीय के अभाव मे वेदनीय कर्म जली हुई रस्सी के समान है अत वह अपना सुख दु ख रूप कुछभी फल नहीं दिखा सकता है। कर्मों की भिन्न २ प्रकृति होते हुए भी वे अपना फल देने मे परस्पर सापेक्ष होते हैं। इसलिये केवली के सुख दु खादि की बाधा नहीं होती है। दूसरी बात यह कि प्रथमानुयोग के ग्रन्थो में कहीं पर भी कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता जिसमें केवली को इन्द्रिय जन्य सुखदु खादि अनुभव करने की चर्चा हो।

केवलीके नोकर्म आहार ही होता है। ऐसा सभी प्राचीन आचार्य प्रतिपादन करते हैं। यदि केवली कवलाहारी होते तो केवली का अवर्णवाद ही क्या होगा? जिसके करने पर दर्शन मोहनीय कर्म का आस्रव-स्वयं आचार्य उमास्वामी ने बताया है।

यदि आप कहे कि मिथ्योपदेश केवली का अवर्णवाद हो जावेगा तो श्रुत का अवर्णवाद क्या होगा? इसलिए 'एकादश जिने' का जो अर्थ सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिककार ने किया है वही युक्ति-युक्त और सगत बैठता है।

तथा आप ने जो "पुण्य प्रव स्वतो दु खात— इत्यादि कारिका से केवली के सासारिक दु ख और सुखादि की सम्भावना सिद्ध की है वह भी असगत है क्योंकि वहा पर वीतराग मुनि पद का अर्थ मन्द रागी छठेगुणस्थानवर्ती मुनि है, केवली नहीं है।

इत्यलमति विस्तरेण।

* विभिन्न विद्वानों के अभिमत *

॥ १ ॥

श्रीमान पं० उल्फतराय जी,

भिण्ड (ग्वालियर)
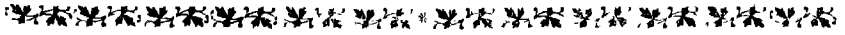
* श्री वीतरागाय नम *

श्रीमान प्रोफेसर हीरालाल सा० ने बनारस मे होनेवाली प्राच्यपरिषदमे जो अपना अभिमत प्रकट किया है वह भ्रमपूर्ण है। आपने कहा 'दि०श्वे० सम्प्रदाय मे मौलिकभेद नहीं' अर्थात् स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति केवलीकवलाहार इनको दि० सम्प्रदाय स सिद्ध करने का जो प्रयास किया है वह सर्वथा निर्मूल है।

स्त्री-मुक्ति के विषय मे जो षट्खडागम के सूत्रो का उल्लेख कर १४ गुणस्थान दिखलाये है वे सब भाववेद की अपेक्षासे हैं क्योकि-'व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्ति' इस नियम से सूत्रों का विशेषार्थ ध्वनित होता है जो कि टीकाकारने किया है, द्रव्यवेदकी अपेक्षा से नहीं। द्रव्यस्त्रीके अप्रशस्तवेदके उदयसे उत्तम सहनन नहीं होता और मोक्ष उत्तम-सहननवालोंके ही होती है, ये सभी आचार्यों ने माना है। स्त्री निकृष्ट संहनन के कारण पुरुष की समता नहीं कर सकती।

आधुनिक डाक्टरो ने सिद्ध किया है कि पुरुष के शरीर मे जो तत्व हैं उससे सर्वथा भिन्न तत्व स्त्री के शरीरमें हैं अर्थात् जिन परमाणुओंसे स्त्रीशरीर की रचना होती है उन परमाणुओ मे यह शक्ति नहीं कि पुरुष के समान उनका मनोबल हो। अतएव स्त्री के परिणाम इतने शुद्ध नहीं हो सकते जो शुक्लध्यान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर सके, निकृष्ट सहनन के निमित्त से स्त्री मे धैर्य का अभाव, भय आदि अनेक दुर्गुणो का सद्भाव पाया जाता है।

तथा लज्जा के वशीभूत हो कर स्त्री वस्त्र त्याग नहीं कर सकती और स्त्रीके शरीरसे रजस्राव निरतर होता रहता है इस लिये भी उनके परिणाम इतने विशुद्ध नहीं हो सकते परिणामों की विशुद्धि में शरीर भी कारण है इस लिये स्त्री उत्कृष्टतम मनोबल को पैदा नहीं कर सकती निपुण डाक्टरोने स्त्री शरीरकी रचना और पुरुष शरीरकी रचनामे बहुत बडा भेद दिखाया है हमारे मित्र डाक्टर नन्दकिशोर जी ने तो यह अच्छी तरह सिद्ध किया है कि स्त्री शरीर की रचना पुरुष शरीर से भिन्न है।

अतएव पुरुष के शरीर में १२ पसली होती हैं और स्त्री के शरीर मे ११ पसलिया होती हैं इत्यादि बहुत बडा भेद दिखला कर यह सिद्ध किया है कि स्त्री और पुरुषो मे समानता मानना नितान्त भ्रमपूर्ण है।

तथा जिस समय स्त्री रजस्वला हो जाती है उस समय उसके परिणाम कितने मलिन हो जाते हैं यह हम को प्रत्यक्ष दीखता है तथा शास्त्रकारो ने भी इस पर बहुत विवेचन किया है। इस लिये इतना कहना ही पर्याप्त है कि स्त्री पुरुषो की समानता नहीं कर सकती, उतने पाप भी नहीं कर सकती जो सप्तम नरक की स्थिति बाधे और इतनी विशुद्धि भी नहीं कर सकती जो कि मोक्ष प्राप्त कर सके।

सवस्त्र मुक्ति

सवस्त्र मुक्ति यह ऐसा विषय है जिसको जैनों के सिवाय दूसरे सम्प्रदाय वालों ने भी यह मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है कि नग्नता धारण करने पर ही मोक्ष प्राप्त हो सकती है क्यों कि किसी भी प्रकार की उपाधि रहने पर मोक्ष नहीं हो सकती। वस्त्र उपाधि है तथा वस्त्र परिग्रह होने से आकिंचन महाव्रत की पूर्णता नहीं हो सकती।

तथा नग्नत्व को अट्ठाईस मूल गुणों में एक गुण माना है वस्त्र ग्रहण से अट्ठाईस मूल गुण नहीं होते। बिना अट्ठाईसगुणोंके मुक्ति नहीं होती। प्रोफे० जी ने पुलाकादि मुनियों का जो उल्लेख किया है वह उनका भ्रम है तत्त्वार्थ सूत्र के कर्ता भगवान उमा-स्वामी ने

"पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकाः निर्ग्रन्थाः"

इस सूत्र में निर्ग्रन्थ विशेषण अन्त में दिया है और उसका सम्बन्ध सब के साथ है इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये पांचों ही मुनि निर्ग्रन्थ हैं अर्थात तिलतुष मात्र परिग्रह से रहित हैं यह विधान भावों की अपेक्षा से है इस लिये सवस्त्र मुक्ति कहना अविचारित-रम्य है।

केवली कवलाहार

केवली के कवलाहार नहीं होता यह दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है। केवली के मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने से इच्छा का नाश हो जाता है इसलिये बिना इच्छा कवलाहार ग्रहण होता नहीं यदि बिना इच्छा के भी ग्रहण हो जाय तो संसार के सभी पदार्थों का सम्बन्ध हो जाय यद्यपि वेदनीय का सद्भाव उनके है तथापि मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने से किसी तरह का विकार उत्पन्न नहीं कर सकता इसलिये कहा है कि जली हुई जेवड़ी के रूपमें वैसी दीखती है लेकिन क्रियाकारित्व उससे कुछ नहीं हो सकता इसी तरह वेदनीय कर्म सत्ता में पड़ा है लेकिन मोहनीय नष्ट होने से क्षुधा-जनित वेदना नहीं होती यदि क्षुधा जनित वेदना मानी जाय तो अनन्त चतुष्टय उनके प्रगट हो चुका है इस लिये केवली के कवलाहार मानना भ्रमपूर्ण है।

जब एक गृहस्थ के लिये अन्तराय-रहित भोजन ग्रहणकरनेका विधानहै तब केवली किसतरह आहार ग्रहण कर सकते हैं केवलज्ञान होनेसे चराचर पदार्थ उनके ज्ञान में झलकते हैं इसलिये निरतराय आहार होना अशक्य है इसलिये केवली के कवलाहार मानना नितान्त भूल है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सरीखे प्रखर विद्वान कर्मसिद्धांत के पारगामी को कर्मसिद्धांत तथा गुणस्थान चर्चा से अनभिज्ञ बताना यह आपकी धृष्टता है तथा दिगम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता ऐतिहासिक दृष्टिसे सिद्ध चुकी है। इन विषयों पर हमारे समाज के प्रखर विद्वानोंने बड़े लेख लिखकर अच्छा प्रकाश डाला है और इन लेखों से मेरी पूर्ण सम्मति है आप भी दिगम्बर सम्प्रदाय के एक प्रखर विद्वान हैं इस लिये आपका कर्त्तव्य है कि इस सार भूत ट्रैक्ट को पढ़कर अपनी शंका की निवृत्ति करें फिर भी कुछ शल्य शेष रहे तो श्री १०८ शान्तिसागर महाराज के चरणों के समक्ष अनेक विद्वानों की उपस्थिति में अपनी शल्य मिटावे यही कल्याण का मार्ग है लेख प्रति-लेख लिखकर वितण्डावाद बढ़ाना, समाज में भ्रम फैलाना यह आपको शोभा नहीं देता इसलिये निवेदन है कि जिज्ञासु भाव से उपर्युक्त मार्ग का अनुसरण करें।

॥ २ ॥

श्रीमान् भक्त प्यारेलाल जी,

अधिष्ठाता-उदासीनाश्रम

इन्दौर का

—अभिमत—

*** स्त्री-मुक्ति ***

सत्प्ररूपणा पुस्तकाकार पृष्ठ ५१३-५१४। द्रव्यस्त्री के संयम नहीं होता क्योंकि वह सवस्त्र है जब संयम ही नहीं तब उसको मुक्ति कैसी ?

—द्रव्य प्ररूपणा पुस्त० पृष्ठ २६१ योनिमतियों की संख्या भाववेद की अपेक्षा घटाई है।

—अन्तर प्ररूपणा पुस्त० पृष्ठ २२२ न तो योनि लिङ्गादि से समन्वित शरीर स्त्री या पुरुषवेद है क्योंकि नामकर्म से उत्पन्न होने वाले शरीर के मोहनीय पने का विरोध है और न शरीर मोहनीय कर्मसे उत्पन्न ही होता है क्योंकि वह पुद्गल विपाकी है और न वेद शरीर का धर्म है किन्तु मोहनीय कर्म की वेद प्रकृतिरूप परिणमा पुद्गल स्कंध तथा उसके उदय से उत्पन्न हुये जीव के स्त्री आदि के साथ रमण करने रूप परिणाम को वेद कहते हैं।

जीवस्थान द्रव्य प्रमाणानुगम भूमिका पेज नं० २६-३० शंका २१वीं के समाधान में प्रोफेसर साहब खुद लिख रहे हैं कि 'कर्मभूमि की स्त्रियों के अन्त के ३ सहननों का ही उदय होना गोम्मटसार कर्मकांड की गाथा ३२ में प्रगट है क्षपक श्रेणी प्रथम सहनन वाले ही चढ़ते हैं इसलिये द्रव्यस्त्रियों के १४ गुणस्थान नहीं होते गोम्मटसार में जो स्त्री वेदी के १४ गुणस्थान बताये गये हैं वह द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्री वेदी का ही योनिमतीपद से ग्रहण किया गया है इस विषय में गोम्मटसार और धवल जी में कोई मतभेद नहीं द्रव्यस्त्री के आदि के ५ गुणस्थान ही होते हैं।'

(सवस्त्र मुनि) दिगम्बर आम्नायानुसार सवस्त्र सकल संयमी हो ही नहीं सकता सत्प्ररूपणा पृष्ठ ५१३-५१४ में स्त्री को सवस्त्र होने से ही संयम का निषेध किया है तब सवस्त्र मुनि कैसे हो सकता है तथा किसी भी दि० जैन ग्रन्थों में ३ उपकरण (पीछी कमंडलु, पुस्तक) सिवाय तिल तुष मात्र भी परिग्रह का विधान नहीं किया। प्रो० सा० ने जो भगवती आराधना ग्रन्थ का प्रमाण दिया है वह ग्रन्थ जिन शिवकोटि आचार्य प्रणीत है वे तथा उसकी सबसे प्राचीन टीका (विजयोदया) के कर्ता अपराजित सूरि दोनों यापनीय संघ के थे यह संघ स्त्री-मुक्ति केवली-कवलाहारी और सवस्त्र भी मुनि मानता था

साधु प्राय: नग्न रहते थे नग्न मूर्तियां पूजते थे पाणि तल भोजी और मयूर पिच्छिका वा कमण्डलु रखते थ ये कुछ सिद्धांत श्वेताम्बरों वा कुछ दिगम्बरों के मानते थ और उनका साहित्य भी इसी तरह का है इसका अस्तित्व वि० की दूसरी शताब्दी से १८वीं तक पाया जाता है इस सम्प्रदाय का अनुयायी व्यक्ति इस समय कोई नहीं किन्तु उनका साहित्य ज्ञात अज्ञात रूप दिग० श्वे० शास्त्र भण्डारों में मौजूद है इसका विस्तृत वर्णन जैनसाहित्य और इतिहास नाम का पुस्तक (पं० नाथूराम प्रेमी) म पत्र २३ विषय आराधना और उसकी टीकायें — तथा पत्र ४१ (यापनीय साहित्य की खोज) पर देखिये—भगवती आराधनामें कई बातें दि० आम्नायके ग्रन्थोंके विरुद्ध पाई जाती हैं अतएव प्रामाणिक नहीं मालूम होती।

(केवली कवलाहार) क्षुधा का अनुभव वेदनीकर्म की उदीरणा में होता है उदय में नहीं—और वेदनीय की उदीरणा छठवें गुणस्थान तक ही होती है।

—भोजन करने के ३ कारण हैं (१) क्षुधा की पीडा का शमन (२) इच्छा की पूर्ति (३) शारीरिक शक्ति की क्षीणता की पूर्ति के हेतु।

वेदनीय की उदीरणा का छठे गुणस्थान से आगे अभाव होने से भूख नहीं — दसवें गुणस्थान के अन्त में मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने से आगे इच्छा का भी अभाव है तथा अनन्तवीर्य प्रगट होने से शक्ति की क्षीणता भी नहीं फिर भोजन की आवश्यकता ही क्यों ? यहां पर यह प्रश्न हो सकता है कि बिना आहार के आठ वर्ष कम पूर्व कोटि पूर्व तक शरीर की स्थिति कैसे रहती है ?

उत्तर—परमौदारिक शरीर का परिणमन घातिया कर्मों के क्षय के अनन्तर ही हो जाता है बादर निगोद का अभाव हो जाता है, पाप प्रकृतियां पुण्य रूप परिणमन कर उदयमें आती हैं पुण्य प्रकृतियोंमें अनन्तगुणा अनुभव बढ़ जाता है। अत प्रति समय अभव्य राशि से अनन्तगुणी और सिद्ध राशि से अनन्तवें भाग उत्कृष्ट नोकर्म वर्गणायें आती हैं उसीसे उनके शरीर की स्थिति रहती है। ६ प्रकारके आहार में से उनके सिर्फ नोकर्म आहार ही है अतः केवली के कवलाहार आगम युक्ति अनुभव तीनों से विरुद्ध होता है। पेठा (कद्द) अगोठा जमीकंद आदि फल बरसों तक सचित्त बने रहते हैं केवल वायु द्वारा ही उन्हें पोषक तत्व मिलता रहता है। गुण बेल काट कर निराधार खूंटी पर टांग दीजिये चाहे १ वर्ष भी हो जावे जब आसाढ मास प्रारम्भ होगा उसमें स्वत. पौधा फूट जावेगा जब औदारिक शरीर भी वायु से पोषक तत्व ले लेता है तब परमौदारिक की बात क्या है। इस विषय का विशेष खण्डन मोक्ष मार्ग प्रकाशक में श्वेताम्बर मत निराकरण में किया है वहां से जान लेना।

॥ ३ ॥

श्रीमती ब्रह्मचारिणी विदुषी,

पं० चन्दाबाई जी

संचालिका-जैन बाला विश्राम,

आरा का

—अभिमत—

हमारा विचार तो अबतकके स्वाध्याय करनेसे यही निश्चित है जैसा कि श्रीकुन्दकुन्दादि आचार्यों द्वारा रचित शास्त्रोंमें वर्णन है

कर्मभूमिकी स्त्रियोंके वज्रवृषभादितीनसहनन नहीं होते कर्मकांडगोम्मटसारमें श्रीनेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती ने भी यही स्पष्ट किया है अतः स्थिरध्यान, वैसी शक्ति नग्न रहना आदि क्रियाये भी उनके नहीं बनतीं अत स्त्रियो के साक्षात मोक्ष नही हो सकता।

तीर्थङ्करकी माता सबसे उत्कृष्ट पुण्यशालिनीमहिला होतीहै, उनकोभी भवधारणकर मुक्ति मिलती है। भगवान तीर्थङ्करको पहिलीपारणा करानेवाला दातार उसी भवसे मोक्ष जाता है परन्तु माता को दूसरा भव धारण करना पडता है। तथैव पौराणिक कथानकसे लेकर कर्मसिद्धान-ग्रन्थोंतक कहीं भी स्त्री-मुक्तिकी बात नहीं मिलती। वेद मार्गणाका कथन आगमानुसार ही लगानाचाहिये अर्थात भाववेदकीअपेक्षा कथनकरना उचितहै।

महाव्रतीमुनि नग्न होते हैं। नग्न परीषह सहना ही चाहिये। ये आर्षवाक्य हैं। अन्य इतिहासकारोंने भी नग्नत्वको आदिरूप दियाहै। नग्नमुनिराजोंकी कठिन तपस्या सह न सकनेकेकारण आगे चलकर शिथिलता बढ गई और मतभेद खडा होगया। यह आगम, युक्ति दोनोंसे उचित जंचती है। नग्नत्वके विषयमें प्राचीन और अर्वाचीन सभी ग्रन्थ एक स्वरसे समर्थन करते हैं, जबकि महाव्रती को वस्त्र धारण करने के लिये प्रमाण खोजने में आगम को तोड-मरोड कर अर्थ बदलना पडता है। और कहीं कहीं ग्रन्थ के कतिपय श्लोकों को भी प्रक्षिप्त बनाना पडता है तब कहीं कठिनता से अभिप्राय सिद्ध होता है।

केवली भगवान के वेदनीय के अस्तित्व-मात्र से भूख-प्यास की वेदना मानना व्यर्थ है इसका निराकरण सभी दिगम्बराम्नाय के ग्रन्थों में मिलता है छपी हुई जयधवला टीका ७० पृष्ठ पर ५२वीं वृत्ति में श्री वीरसेनस्वामी ने भी कवलाहार का निषेध किया है। अन्य आचार्यों ने भी यही कहा है।

श्वेताम्बर ग्रन्थो में कवलाहार सिद्ध करने के

लिये कई पोच दलीलों को रखना पड़ा है, जैसे केवली के हाथमें ग्रास देने पर वह अदृश्य हो जाता है, मुख में खाते कोई नहीं देखता इत्यादि २।

वास्तव में विचार करने की बात है कि सिद्धों के समान अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य गुण पूर्ण-रूप से विकसित होने पर भी क्षुधा-तृषा की पीड़ा बनी रहे, यह बात अनन्त सुख की साक्षात घातक है। क्षुधा-तृषा जैसी वेदना के सद्भावमें जीवन्मुक्त अर्हत दु:ख के भागी बने रहेंगे, और पूर्ण सुखी न होंगे। अत एव इस बात को दिगम्बरियों में करार देने से मोक्ष तत्व विपरीत हो जायगा, जो कि मिथ्यात्व का चिन्ह है।

स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य ने ही श्वेताम्बराम्नाय का खण्डन क्यों किया? इनसे पूर्व यह विषय क्यों नहीं उठाया गया, इसका कारण यही प्रतीत होता है कि जब मतभेद ने जोर पकड़ा और संघ-भेद हो गया, तभी कुन्दकुन्द स्वामी का ध्यान इधर गया। जिससे ग्रन्थों में खण्डन किया गया, उनसे पूर्व में श्वेताम्बराम्नाय के सिद्धान्तों का जोर ही न था, इसलिये कर्म सिद्धांत ग्रन्थों में इस विषय के प्रतिपादन की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई होगी। फिर भी अबतक इन तीनो बातों का जहां-कहीं किसी प्रकार भी आगम-ग्रन्थों में कथन आ गया है, वहां सूत्रकार या टीकाकार ने स्पष्ट निषेध कर ही दिया है।

स्वयं प्रोफेसर साहब ने भी धवला टीका हिन्दी में पूर्वाम्नायानुसार ही स्पष्ट किया है जो कि प्रशस्त है। बस यहीं तक रहना उचित है। अपनी वस्तु को खोकर कौन धनी बन सकता है? हां, धनी का सेवक चाहे बन जाय।

अस्तु, सिद्धांतों को पृथक रखकर भी हम लोग मेल-मिलाप बढ़ा सकते हैं और कोमल परिणामी बनकर झगड़ोंका समूल नाश कर सकते हैं। वर्तमान युग में तो कर्म का ही युद्ध हो रहा है, धर्म को कौन पूछता है? एक क्रिश्चियन धर्म को एक तरह से मानने वाली योरोपीय जनता किस भयङ्करता से लड़ रही है। अत एव दिगम्बराम्नाय के सिद्धान्तों का श्वेताम्बरीय सिद्धांतों में एकीकरण करना किसी दृष्टि से भी उपादेय नहीं है।

२९
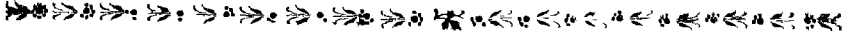
श्रीमान् पूज्य क्षुल्लक सूरिसिंह जी,

महाराज ।

उदगांव, (कोल्हापुर)
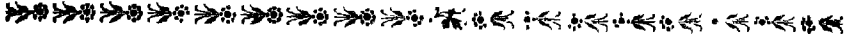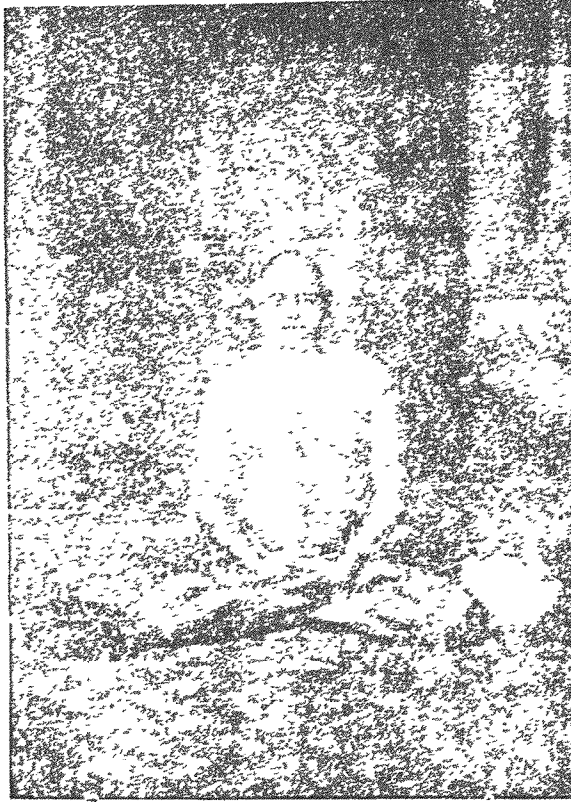
शुद्ध सर्वाधारनमस्कारित आत्मवृत्तिः न्यायव्याकरणसाहित्यकाव्य-

सिद्धांतआचारलोकव्यवहारधर्म क्षुद्रग्रंथ

कन्नडमहाराष्ट्रहिन्दीभाषाभाषी तेजस्वी

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंहजी महाराज.

द्रव्यनपुंसक का अस्तित्व और —माणुसिणी का अर्थ—

हमारे पूर्वाचार्यों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। सिद्धान्त ग्रन्थ श्री षट्खण्डागम की रचना आचार्य प्रवर सिद्धान्त-शास्त्र—प्रवर्तक भूतबली पुष्पदन्ताचार्यों ने की है तदनुसार आज तक ग्रंथ बनाने की परिपाटी चलती आ रही है।

'इस मूलभूत श्री षटखण्डागम ग्रन्थ में द्रव्यस्त्रियों का तथा द्रव्यनपुंसक का कोई वर्णन या खुलासा रूप सूत्रों की रचना में नहीं किया है सब भाव ही भाव का विचार किया है।' इस प्रकार कथन करने वाले यहां तक कहते जा रहे हैं कि 'श्री षटखण्डागम में द्रव्य पुरुष का भी कथन करने वाला सूत्र नहीं है। सब भाव का ही कथन है' ऐसा अपना पक्ष सिद्ध करने तयार हो रहे हैं तथा कोई द्रव्यनपुंसक का खास वर्णन (कथन) करने वाले किसी सूत्र के न होने पर इस परिणाम पर पहुंचे हुये हैं कि जगत में द्रव्य--नपुंसक लिंग को धारण करने वाला कोई भी नहीं है जिस से कि विषम वेद की अपेक्षा से ९ भङ्ग वेद के हो जाय तथा नपुंसकलिंग वाले का अस्तित्व कोई शरीरधारीमें नहीं है केवल द्रव्यपुरुष या द्रव्यस्त्री इन के विकारभूत नपुंसक है इस प्रकार अनेक कपोल कल्पित कल्पना कर रहे हैं।

तथा कोई लिखते हैं कि षटखण्डागम में द्रव्य-स्त्रियों का भी कथन करने वाला सूत्र न होने पर ग्रन्थ की रचना अपूर्ण है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने ही द्रव्यस्त्री और भावस्त्री का भेद करके द्रव्यस्त्रीमोक्ष का निषेध कर के दिगम्बर मतकी स्थापना की है। जिस से दिगम्बर आम्नाय को सादि सिद्ध करके अनादिता के ऊपर पानी फेरा है। इन सब बातों का विचार अच्छी तरह से निष्पक्षरूप से होने में कोई भी दोष नहीं आता, न ही ग्रथकी उत्पत्ति अपूर्ण रहती है तथा द्रव्यस्त्रियों के मोक्ष का निषेध आचार्य कुन्दकुन्द ने ही किया है, दिगम्बर मत सादि है, द्रव्यनपुंसक का शरीर द्रव्यपुरुष और द्रव्यस्त्री शरीरसे अलग नहीं है। इत्यादि कपोल कल्पनाओं का नाश होकर ग्रन्थ की निर्दोषता सिद्ध होती है। लेकिन हठवाद छोड़ेंगे तब ही यह होगा। अन्यथा पक्ष उपस्थित हो कर तीसरा एक पंथ चलेगा। इसमें कोई संदेह नहीं। यदि निष्पक्षता से विचार हो जाय और ग्रन्थ का मनन हो जाय तो कोई दोष नहीं होगा।

विद्वान समाज के सामने विचार करनेके लिये मैं यह लेख लिख रहा हूं। इसको देखकर समाज सत्यासत्य का निर्णय करेगी।

किसी भी ग्रन्थकार को ग्रन्थ की रचना करते

समय अनेक विषयों का ख्याल करके ग्रन्थ की रचना करनी पड़ती है। रचना के समय अनेकत्र एक ही शब्द को अनेक अर्थ में प्रवृत्त करना पड़ता है यह प्रकरणवश करना पड़ता है। यह बात सूर्य प्रकाश के समान स्पष्ट है।

आज कल 'मानुषी' शब्द का अर्थ करने में समाज में बहुत विवाद उपस्थित हो गया है। 'मानुषी' शब्द का अर्थ कोई विद्वान द्रव्यस्त्री भावस्त्री और द्रव्यनपुंसक इस प्रकार कर रहे हैं। कोई २ विद्वान भावस्त्री ही सर्वत्र अर्थ लेना चाहिये ऐसा एकान्त हठ पकड़े हुए हैं।

एकान्त रूप से अर्थ करते समय हमारे कुछ विद्वान, श्री गोम्मटसार के टीकाकार ने 'मानुषी' शब्द का अर्थ 'द्रव्यस्त्री' किया है इस पर भी आक्षेप करके 'टीकाकार ने भूल की है' ऐसा लिखने का भी साहस कर रहे हैं तो द्रव्यनपुंसक अर्थ करने पर वे क्या कहने का साहस करेंगे और उनका कषाय पारा कहां तक चढ़ेगा यह मैं नहीं जानता हूं सिर्फ भगवान ही जाने। खैर! जो कुछ भी हो हमारा निज भाव व्यक्त करने में कोई हानि नहीं है कदाचित् निष्पक्षता की ठंडी हवा से पारा उतर भी जायगा इसमें कोई संदेह नहीं है क्योंकि हम किसी तरह का हठ पकड़े नहीं हैं।

श्री षट्खण्डागम भाग १ सूत्र नं० ६२—६३ का प्रकरण खास करके द्रव्यस्त्रियों के ही विषय का कथन करने वाला है यह भली भांति सिद्ध होता है। क्योंकि वहां के प्रकरण से तथा कथन शैली से और टीकाकार की वृत्ति शैली से ऐसा ही सिद्ध होता है इसका मुझे विश्वास है।

हमारे अभिमत के विरुद्ध विषय सिद्ध करने के लिये एक युक्ति यह दे सकते हैं कि 'ताडपत्र प्रति में ६३वें सूत्र में 'संजद' शब्द है जो कि आपके कथन पर पानी फेरता है।'

इस पर मेरा यह उत्तर है कि जिस ताड़ पत्र की प्रति में यह 'संजद' पद है वह ताड़ पत्र प्रति शुद्ध ही है इसमें क्या प्रमाण है, उसमें अशुद्धियां बहुत हैं जो कि लेखक का हस्तदोष है देखिये इस सूत्र में 'संजद' न होकर 'संजदासंजदट्ठ संजदट्ठाणे' पद है। क्या यह हस्तदोष नहीं है अवश्य है यह हमारे कथन को पुष्ट करने वाला हेतु है। क्योंकि ताड पत्र में लेखक ने लिखते समय विचार नहीं किया है कि मैं क्या लिख रहा हूं। यदि विचार करता तो 'संजदासंजदट्ठ संजदट्ठाणे' यह कभी भी नहीं लिख सकता था।

तीसरा हेतु जब कागज की प्रति जो कनडी में है या नागरीलिपि में है उनमें क्यों यह पद नहीं आया? यह हमारी बात बहुत विचारणीय है। इस पर जो उत्तर मिलेगा सो उत्तर आपके हेतु का भी निराकरण करेगा।

लेखक के हस्तदोष को दूर न करके अपने सिद्धान्त का घात करना क्या बुद्धिमानी होगी? क्या आचार्यों को दोष देना बुद्धिमानी होगी? क्या निर्दोष आम्नाय का घात करना भी बुद्धिमानी होगी?

इसलिये प्रकरण वश अर्थ करने में कोई बाधा नहीं है। सर्वत्र एक ही अर्थ करना ठीक नहीं माणुसी शब्द का अर्थ कहीं पर द्रव्यस्त्री करना और कहीं पर भावस्त्री करना ठीक होता है।

यथा 'अज' शब्द है इस शब्द का अर्थ कोई 'परमात्मा' करते हैं, कोई न उत्पन्न होनेवाले 'धान' करते हैं, और कोई 'बकरा' करते हैं श्री शुभ चन्द्रा-

चार्य ने ज्ञानार्णव ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में "अजं-नौमि" यह पद रखा है इसका अर्थ परमात्मा के सिवाय 'बकरा' या 'सप्त या तीन वर्ष के धान' भी अर्थ किया जावे तो महा अनर्थ हो जायगा। इस लिये प्रकरण वश अनेक तरह के अर्थ करना ठीक है। एक अर्थ के पक्ष के हठ में ही अनेक पथ हो गये है। देखिय जैनियों मे भी श्वेतांबर, गोपुच्छक, द्राविड, यापनीय, आदि मतमतान्तर होने के लिये कारण एक हठवाद ही है।

'मानुषी' शब्द का अर्थ 'द्रव्यस्त्री' या 'भावस्त्री' कर सकोगे तो ठीक है। लेकिन द्रव्यनपुंसक कैसे करोगे ऐसा एक जबरदस्त शंका खड़ी हो सकती है। इस पर साधक बाधक रूप से विचार करेंगे।

द्रव्यस्त्री का वेष और द्रव्यनपुंसक का वेष तो एक ही होता है यह भली भान्ति सिद्ध है। वेष दो ही है। वह भी आज प्रत्यक्ष देखने में आते हैं एक पुरुष का वेष, दूसरा स्त्रियों का वेष। स्त्री वेष मे साड़ी आदि रहेगी और पुरुष वेष में धोती दुपट्टा टोपी आदि रहेंगे।

आजकल हमारे दक्षिण भाग में मुझे एक शिष्य ने द्रव्यनपुं को को दिखाया है। तब से मेरा विचार बहुत ही दृढ हो गया है कि द्रव्यनपुंसक इस जगत मे अभी भी हैं और वह भी द्रव्यस्त्री के वेष में है। कोई कोई लोक द्रव्यनपुंसक 'हिजड़े' को ही कहते थे। लेकिन साधक बाधक रूप से विचार करने से ये हिजड़े द्रव्यनपुंसक नहीं है। क्योंकि उनका लक्षण दि० जैन शास्त्र-कथित लक्षण से मेल खाता नहीं। 'उभयलिङ्गव्यतिरिक्त नपुंसक" ऐसा पाठ है। जिसका अर्थ पुरुषलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग से व्यतिरिक्त याने रहित ऐसा तीसरा लिङ्ग द्रव्यनपुंसक है, और हिजड़े जो आजकल देखने में आते हैं उनमें यह उभय लिङ्ग रहित लक्षण घटित नहीं होता है। क्योंकि बाह्य चिन्ह पुरुष के उनमें मौजूद हैं जैसे कि मूंछ, दाढी, स्तनरहितता, अण्डकोष, सिस्न इत्यादि पुरुष चिन्ह मौजूद हैं। इसलिये उनको द्रव्यनपुंसक नहीं कह सकते। क्योंकि पुरुष का चिन्ह मूंछ दाढी अण्डकोष सिस्न आदि है। वे चिन्ह द्रव्यस्त्रियों मे नहीं है। द्रव्यस्त्रियों में मूंछ रहितता, दाढी रहितता, स्तनदुग्धसहित, रजकोष, योनि, गर्भाशय, इत्यादि बाह्य द्रव्य चिन्ह हैं तथापि इन दोनों मे महान भेद करने वाले दो चिन्ह नहीं हैं। अण्डकोष और सिस्न क्योंकि, वीर्योत्पादक शक्ति बिना अण्डकोष के नहीं हो सकती पुरुष में अण्डकोष और सिस्न ये दोनों मुख्य चिन्ह होते है और द्रव्यस्त्रियों में रजकोष और योनि ये दोनो मुख्य चिन्ह हैं। रजकोष के बिना मासिक धर्म नहीं हो सकता है।

अब द्रव्यनपुंसक के विषय में विचार कीजिये, द्रव्यनपुंसक को पुरुष चिन्ह अण्डकोष और सिस्न तथा द्रव्यस्त्रियों का चिन्ह योनि और रजकोष गर्भाशय ऐसे दोनों प्रकार के चिन्ह नहीं होते द्रव्य-नपुंसक को और दूसरे चिन्ह मूंछ रहितता, दाढी-रहितता, स्तन पीवर तथा दुग्ध सहितता आदि भी नहीं होते। अर्थात पुरुषों की मूंछ दाढी और स्त्रियों के दुग्ध सहित या पीवर स्तन इन दोनों के चिन्ह नहीं होते है। इस प्रकार के द्रव्य नपुंसक भारत में है लेकिन विरले है।

मेरे शिष्य ने जो यह द्रव्यनपुंसक का विषय कहा है वह अपने मित्र के मुख से सुना है। उस मित्र ने एक द्रव्यनपुंसक के साथ शादी कर ली थी शादी करने से पहिले यह 'नपुंसक' है ऐसा समझ

में नहीं आया था। क्योंकि उसका वेष स्त्रियों के समान था। शिर पर बाल मांग सहित, साड़ी, चोली पहिनना, मूंछादि रहित ऐसे बाहिर चिन्ह द्रव्यस्त्रियों के समान ही उसके थे। जब गर्भाधान संस्कार का आया तब योनि द्वार न होने से मालूम हुवा कि इस स्त्री को कोई विकार है।

इस विचार से उसने कोल्हापुर में स्त्रियों के अस्पताल में उसको भेजा उस दवाखाने की सब व्यवस्था करने वाली डा० कृष्णाबाई बहुत निपुण हैं सब स्त्रियों के रोगों का इलाज हर प्रकार से वहां पर करती हैं आपरेशनादिसे स्त्रियों के जितने रोग हैं तथा प्रसूतिका आदि सब रोगों का इलाज वहांपर करती हैं। जबकि डा० कृष्णाबाई ने अच्छी तरह से निदान किया तो उनको मालूम हुवा, 'यह स्त्री नहीं है' यह नपुंसक है। न इसको योनि है, और न ओप्रेशन के बाद योनि हो सकती है। इस प्रकार जानकर उसके पति को तथा और सज्जन लोगों को बुला कर यह सब कह दिया तथा साथ में यह भी कहा कि इसे पुरुष समझ कर इसका पालन करो, इसको छोड़ना नहीं। इस प्रकार वचन-बद्ध करके घर को भेज दिया, तब से यह बात पब्लिक में मालूम हुई है। इस प्रकार द्रव्यनपुंसक का कथन है अब द्रव्यनपुंसक वाली स्त्री बहिरङ्ग चिन्हों से तथा उसके मासिक धर्म न होने से तथा उसकी नवयौवन भाव आदि देखने से शुद्ध द्रव्यनपुंसक है ऐसा प्रतीत होता है। इसी तरह अन्य स्थानों पर भी है।

इस द्रव्यनपुंसक वाली स्त्री को स्त्री शब्द से पुकारते हैं व्यवहार में स्त्री ही कहते हैं ऐसी जन रूढि है। इस रूढि से विचार किया जाय तो मानुषी शब्द का अर्थ द्रव्यनपुंसक भी कर सकते हैं क्योंकि उसके लिये स्त्री शब्द का ही प्रयोग होगा। तथा वेष भी द्रव्यस्त्री जैसा होने से स्त्री शब्द से ही कहेंगे।

इसी प्रकार मराठी में श्री हीराचन्द अमोलिकचन्द ने रामायण ग्रन्थ की रचना की है। उसमें भी द्रव्यनपुंसकों का कथन 'षंढा' शब्द से करके आगे उसे 'बाई' शब्द से पुकारा है। यह प्रकरण श्री महासती सीतादेवी के स्वयम्बर के प्रकरण में है। सो वाचकवर्ग वहां पर देखें।

इस प्रकरण से साफ सिद्ध होता है कि द्रव्य—नपुंसक को स्त्री शब्द से कहने की प्रथा है। प्राचीन राजाओं के रणवासों में भी इन द्रव्यस्त्रियों को रखने की प्रथा थी। ऐसा संस्कृत काव्य ग्रन्थों में जगह २ वर्णन मिलता है।

श्री षट्खण्डागम भाग नं० १ सूत्र नं० ९२-९३ का प्रकरण द्रव्यस्त्रियों का मानने पर द्रव्यनपुंसक को भी उसी सूत्र में अन्तर्भूत कर सकते हैं क्योंकि द्रव्य और भाव से द्रव्यस्त्री और द्रव्यनपुंसक में पांच गुणस्थानों की अपेक्षा समानता है कोई अंतर नहीं है। इस प्रकार मानने में कोई दोष भी नहीं आता है।

यदि हठाग्रहवश सूत्र ९२-९३का प्रकरण भावस्त्री का मानोगे तो अनेक दोष आते हैं। जैसे ग्रन्थ की अपूर्णता (द्रव्यस्त्री नपुंसक का कथन न होना) कुन्दकुन्दाचार्य से दिगम्बराम्नाय स्थापित होना व इन्हीं के मत से द्रव्यस्त्रियों की मुक्ति का निषेध होना, वेद की विषमता में ९ भंगों का न होना, द्रव्यनपुंसक का अस्तित्व जग में न होना इत्यादि दोष आते हैं।

इसलिये ९२-९३ सूत्रों का प्रकरण भाव न होकर द्रव्य का ही सिद्ध होता है जब इस प्रकरण से द्रव्य-

स्त्रियों का प्रकरण सिद्ध होता है तो उस सूत्र में 'संजद' शब्द को देखकर द्रव्यस्त्रियों के १४ गुणस्थान की सिद्धि होती है जो कि आगम और आम्नाय से विरुद्ध है। इस दोष को दूर करने के लिये यदि फिर भी भावस्त्री का प्रकरण समझोगे तो अपर्याप्त भाव स्त्री को तीन गुणस्थान श्री वीरसेन स्वामी ने माने हैं सूत्रमें अपर्याप्त भावस्त्री के मिथ्यात्व और सासादन दो ही गुणस्थानों का उल्लेख है। सयोग केवली का उल्लेख सूत्रकार ने क्यों नहीं किया ? इस प्रकार एक जबरदस्त प्रश्न खड़ा हो सकता है।

"लेखक के हस्तदोष से 'सयोग केवलपद' सूत्र में लिखते समय छूट गया है" ऐसा माननेपर न ६३ सूत्र में 'णियमा पज्जत्तियाओ' पद है उसमें 'नियम' शब्द निरर्थक ठहरता है।

इस कारण विचार करने से मूल लेखक के हस्तदोष से 'सयोग केवली' पद नहीं छूटा है यह सिद्ध होता है। इसलिये भावस्त्री का प्रकरण सिद्ध नहीं होता है।

तथा दूसरी एक शंका खड़ी होती है। कि यदि भावस्त्री का प्रकरण माना जाय तो भावनपुंसकों का अन्तर्भाव किस सूत्र मे करोगे। क्योंकि ग्रन्थकार ने स्वतन्त्र सूत्र नहीं लिखा।

यदि कहोगे कि भाव नपुंसकों का अन्तर्भाव द्रव्यपुरुषों के कथन करने वाले सूत्र ८९-९० में करगे तो भी बड़ा भारी यह दोष उपस्थित होता है कि भावनपुंसक के भी अपर्याप्त अवस्था में असंजद सम्यक्त्व नाम चौथा गुणस्थान होता है यह सिद्ध होगा तथा अपर्याप्त भावनपुंसक को सयोग केवली पद का भी अभाव सिद्ध हो सकेगा।

इस लिये विचार शील सज्जनो ! विचार करो ! एक भाव स्त्री का प्रकरण मान कर नं० ९३ सूत्र में 'संजद' शब्द रखने से क्या हानि होती है। लेखक के हस्तदोष से कई दोष लगते हैं लेकिन इस हस्तदोष को दोष न समझ कर सत्य समझ कर जैन धर्म पर कितना कुठाराघात कर रहे हो यह आप ही विचार करें।

पाठकवर्ग ! थोड़ा विचार करो कि मानुषणी शब्द का अर्थ सर्वत्र भावस्त्री मानने पर द्रव्यस्त्री और द्रव्यनपुंसकका कथन न होनेसे ग्रन्थ अपूर्ण रह जाता है तथा भाव नपुंसक को अपर्याप्त अवस्था में भी सम्यक्त्व रहता है यह जैन सिद्धांत से विरुद्ध हो जाताहै। यदि विवक्षावाले भावनपुंसक को अपर्याप्त अवस्था में सम्यक्त्व रहता है अर्थात भावनपुंसक जीव सम्यक्त्व सहित मरता है और विग्रह गति में सम्यक्त्वी रह कर फिर भाव नपुंसक होते समय में भावनपुंसक अपर्याप्त काल मे सम्यक्त्वी सिद्ध करने में सिद्ध नहीं होंगे।

सर्वत्र माणुसिणी का अर्थ भाव स्त्री करोगे तो एकांत हठवाद भी आपके माथे पर बैठेगा, एकान्त हठवाद मिथ्यात्व रूप है। तथा वेद साम्यता का कथन भी इस ग्रन्थ में न होने से ग्रन्थ की अपूर्णता सिद्ध होगी। क्योंकि वेद साम्यता में भाव से और द्रव्य में उतने ही गुणस्थान होते हैं, विषमवेद से ही गुणस्थानों में तारतम्य आता है। इस लिये सर्वत्र भावस्त्रियों का कथन करने पर द्रव्यस्त्रियों की संख्या का अभाव होगा जो सर्वत्र अनिष्ट है। क्योंकि माणुसिणी की संख्या बताते समय कभी द्रव्यस्त्रियों की भी संख्या बतायी है।

तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं।

यह जो गोम्मटसार जीवकांड की गाथा १६६ के

वृत्ति में द्रव्यस्त्रियों की संख्या कही है ऐसा साफ है। उसको अप्रामाणिक कहने के लिये खुद्दा बंध के सूत्र नं० २८-२६ देखेंगे तो उसमें विरोध नहीं आ सकता। क्योंकि, कथन शैली भी दो तरह की होती है। कभी द्रव्यापेक्षासे, कभी भावापेक्षासे ?

द्रव्य स्त्री का प्रमाण द्रव्य पुरुष से तिगुणा होता है। और कभी भावस्त्री की अपेक्षा से कथन करते समय कम अधिक भी होंगे ऐसे संख्या मे अन्तर होने का कारण कथन शैली है। द्रव्यस्त्री का या द्रव्य की अपेक्षा से कथन करते समय खुद्दा बंध मे बराबर कथन है देखिये—पेज नं० ४५६ सूत्र नं० २-३-४।

सव्वत्थोवा मणुसपज्जत्तागब्भोवक्कंतिया। वृत्ति-गब्भजामणुस्सा पज्जत्ता उवरि वुच्चमानसव्वरासी-ओ पेक्खिऊन थोवा होति। कुदो विस्सभादो। एद केत्तिया गब्भोवक्कंतिया ? मणुस्साणं चदुब्भागो २

अर्थ-गर्भज मनुष्य पर्याप्त गर्भोपक्रांतिक सबसे स्तोक है। २॥ गर्भज मनुष्य पर्याप्त आगे कही जाने वाली सब राशियों की अपेक्षा स्तोक हैं। क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

शंका—ये गर्भोपक्रांतिक कितने है ?

उत्तर—मनुष्यो के चतुर्थ भाग प्रमाण हैं।

सूत्र—मणुसिणीओ संखेज्जगुणाओ ।३।

वृत्ति—को गुणगारो ? तिण्णि रूवाणि। कुदो ? मणुस्सगब्भोवक्कंतिय चदुब्भागेण पज्जत्तदव्वेण तस्सेव तिसु चदुब्भागेसु ओसट्टिदेसु तिण्णि रूप वलंभादो।

अर्थ—पर्याप्त मनुष्यों में मनुसिनीया (स्त्रिया) संख्यात गुणी हैं ॥३॥

गुणाकार कितना है ? गुणाकार तीन रूप है। क्योंकि, मनुष्य गर्भोपक्रांतिको के चतुर्थ भाग प्रमाण पर्याप्त द्रव्य से उसके ही तीन चतुर्थ भागों का अप-वर्तन करने पर तीन रूप उपलब्ध होते हैं।

सव्वट्ठसिद्धिविमानवासियदेवा संखेज्जगुणा ४

वृत्ति—को गुणगारो ? संखेज्ज समया। केवि आयरिया सत्त रूवाणि केवि पुण चत्तारि रूवाणि केवि सामण्णेण संखेज्जाणि रूवाणि गुणगारोवि भणंति। तेणेत्थ गुणगारो तिण्णि उपदेसो। तिण्णं मज्झे एक्को चिय जहोयणमो सोवि ण णव्वइ। वि-सिट्ठोवएसाभावादो। तम्हा तिण्हं पि संगहो कायव्वो ॥४॥

अर्थ—मनुसिनिया (स्त्रिया) से सर्वार्थ सिद्धि विमान वासी देव संख्यात गुणे है।

वृत्ति अर्थ—गुणाकार क्या है ? संख्यात समय गुणाकार है। कोई आचार्य सात रूप, कोई आचार्य चार रूप और कितने ही आचार्य सामान्य से संख्यात रूप गुणाकार है ऐसा कहते हैं। इसलिये यहा गुणाकार के विषय में तीन उपदेश हैं। तीनो में से एक ही श्रेष्ठ है। परन्तु यह जाना नहीं जाता क्योंकि इस विषय में विशिष्ट उपदेश का अभाव है। इस कारण तीनो का ही संग्रह करना चाहिये ।४।

वाचकवर्ग ! अब विचार कीजियेगा। क्षुद्र बंध मे भी द्रव्यस्त्री और द्रव्यपुरुष पर्याप्तो का ही वर्णन है। सूत्रमे गर्भोपक्रांतिक शब्द उसको ही प्रक-टित करता है। तथा गोम्मटसार मे भी सर्वार्थसिद्धि देवो का प्रमाण भी इसी तरह, तिगुणा सत्तगुणा वा इत्यादि गाथा मे किया है और उसमे भी भिन्न २ आचार्यों के कथन शैली से तीन शैली हो गई है उन तीनो का संग्रह करना श्रेयस्कर है। तथा उसी प्रकार क्षुद्र बंधक के २७-२८ सूत्रों में भी कोई कोई

व्याख्यान आचार्यों में अंतर पड़ता है ऐसा कथन स्वयं आचार्यों ने किया है। वह कथन शैली से ही फरक पड़ता है। इस लिये किसी भी व्याख्यान में दोष नहीं देना, तीनों संग्रह करना ऐसा कहा है।

विशेष इतना है कि, द्रव्य की अपेक्षा के समय में माणुसी शब्द स द्रव्य स्त्री और द्रव्य नपुंसक का ग्रहण होता है। और भाव की अपेक्षा से कथन करते समय माणुसी से भावस्त्री और पर्याप्त पुरुष से भाव पुरुष, भाव नपुंसक ग्रहण होता है। ऐसे विधान भी पाये जाते हैं। इस शैली से कथन करनेसे संख्या में कुछ फरक पड़ता है। कभी तीनो के अलग २ कथन करने पर भी एक शैली और भी भिन्न होती है। इसलिये संख्या में कुछ फरक पडेगा ही। इस लिये ऐसी तीन उपदेश शैलियां होती हैं। इस प्रकार मान लेने पर कोई विरोध नहीं है भिन्न भिन्न कथन करने का विधान जैनियों में मुख्य रूप से है भी। इस लिये गोम्मटसार की गाथा में माणुसी का अर्थ द्रव्यस्त्री करना, षट्खण्डागम से विरुद्ध नहीं पड़ता।

और भी एक कथनशैली आप लोगों के दृष्टिपथ में लाता हूं। उस पर भी विचार करो। उसी अल्पा-बहुत्वानुगमसे में—सूत्र नं० ८-९ में देखिये।

सव्वत्थोवा मणुसिणिओ ॥८॥ सूत्र

मणुस्सा संखेज्जगुणा ॥९॥ सूत्र

इन दोनों सूत्रों से भी एक शैली सिद्ध होती है, वह हमारी बुद्धि के बाहिर है। लेकिन विरोध तो नहीं है। इसलिये परस्पर विरुद्ध नहीं है,। इन सब शैलियों से यह सिद्ध होता है कि, 'माणुसिणी' शब्द का सर्वत्र एक ही भावस्त्री लेना और एकांत हठवाद में पड़कर आचार्यों का अवर्णवाद करना बुद्धिमानों केलिये शोभनीय नहीं है। इसलिये प्रकरण अनुसार अर्थ करना बुद्धिमानी है। सर्वत्र एक भाव या द्रव्य, का अर्थ करना भी जैन सिद्धांत के अर्थाम्नाय से विरुद्ध है।

इसी प्रकार प्रोफे० हीरालाल जी भी माणुसिणी शब्द का अर्थ सर्वत्र द्रव्यस्त्री का करते आ रहे हैं वह भी दोषी है। भा० नं० १ सू० नं० ९२-९३ में खास-कर द्रव्यस्त्रियों का प्रकरण है। वहां पर द्रव्यस्त्री का अर्थ कर सूत्र में जो लेखक के हस्तदोष से 'संजद' शब्द पड़ा है वह हस्तदोष मानकर निकालना ठीक है और माणुसिणी का द्रव्यस्त्री अर्थ कर द्रव्यनपुंसकों को उसी में अन्तर्भूत करना श्रेयस्कर है। उसमें कोई प्रकार की भी त्रुटि नहीं रहती तथा ग्रन्थ में भी कोई दोष नहीं रहता। इसी ९३ सूत्र की वृत्ति में भी टीकाकार वीरसेन स्वामी जी ने "सवासस्त्वात्—अप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः" इसमें सवस्त्रपना और अप्रत्याख्यान गुणस्थान हेतु से द्रव्यस्त्री और द्रव्यनपुंसक को संयमपना नहीं होना सिद्ध किया है। क्योंकि बहिरङ्ग वस्त्रत्याग हेतु दोनो को है। दोनो को वस्त्र नहीं छूटता या दोनों ही वस्त्र को त्याग कर निर्ग्रन्थ नहीं होते। तथा अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों हेतु (द्रव्यस्त्री नपुंसकों) को बराबर लागू हो जाता है। इस एक ही बहिरङ्ग हेतु से दोनो को असंयम सिद्ध किया है।

धवला की पुस्तक नं० ७ की प्रस्तावना में प्रो० हीरालाल जी ने दो हेतु दिये हैं और उन हेतुओं से द्रव्यस्त्रियों को १४ गुणस्थान सिद्ध करना चाहे है। उनके हेतु निम्न प्रकार हैं।

"धवला के सब ग्रन्थों में मणुसिणी के १४ गुणस्थान कहे हैं। वो १४ गुणस्थानो का सद्भ बतलानेवाले सूत्र प्र० था० सू० ९३ में ही हैं अन्यथा

उसके सत्व की सिद्धि करने वाले सूत्र न होने से ग्रथ में भारी विषमता होगी।"

इस पर स्पष्ट रूप से विचार करनेसे यह विश्वास होता है कि मनुसिणी के गुणस्थान बतलाने वाले सूत्र भी मौजूद हैं और यह ९३वें सूत्र का प्रकरण द्रव्यस्त्रियों के लिये क्यों है ? उसका खुलासा किया है। इस लिये यहा पर फिर २ नहीं करेंगे। किचिन्मात्र कथन करेंगे। श्री षट्खण्डागम के कर्ताओं ने प्रथम द्रव्यस्त्री का कथन करके फिर भाव स्त्री के कथन रूप १४ गुणस्थानो की सत्ता उसी भाग के १६२ से १६५ तक के सूत्रों में की है।

यदि ९३ सूत्रमे १४ गुणस्थानों का सत्व दिखाना ग्रन्थकारों को इष्ट होता तो फिर १६२-१६५ सूत्र में १४ गुणस्थानों का कथन करने की जरूरत नहीं थी क्योंकि न० १६२ में १४ गुणस्थानों का कथन करना पुनरुक्त होगा तथा न० १६४ में चौदह गुणस्थान तथा तीनों सम्यक्त्व का कथन करके मणुसिणी के कथन में 'एवं मणुस्स-पज्जत्त-मणुसिणीसु", यह देकर साम्यता प्रगट की है। और मणुसिणी के १४ गुणस्थानों का सत्व प्रतिपादन किया है अन्यथा इस प्रकरण में १४ गुणस्थानो का कथन क्यों करते ? पूर्व ९३ सूत्र में १४ गुणस्थानो का सत्व नहीं बतलाया था। वहा पर द्रव्यस्त्री का प्रकरण न मान कर यदि पाच गुणस्थानों का प्रकरण सिद्ध करने का हेतु नहीं होता तो १६२ से १६५ तक के सूत्र में १४ गुणस्थानों का कथन नहीं हो सकता था। यदि करते तो पुनरुक्तदोष भी बड़ा भारी आ सकता था इसलिये यह समझना चाहिये कि न० ९३ सूत्र में पाच गुणस्थानो का ही कथन है। मणुसिणी शब्द के पीछे पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण न० ९२-९३ सूत्र में क्यों दिया ? तथा १६५ में पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण क्यों नहीं दिया इस पर आपने कभी निष्पक्षपातसे विचार किया है ? तथा नं० ९३ सूत्र में द्रव्यस्त्रियो का कथन न होता तो पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण क्यो लगायेहैं।

तथा श्री षट्खण्डागमकार ने नं० ९३ सूत्र को छोड़कर कहीं पर १४ गुणस्थान कथन करते समय मणुसिणी को पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण लगाये हो तो वह प्रमाण रूप मे दिखाइयेगा। तथा यदि न ९३ सूत्र में 'संजद' रखना जरूरी होता तो फिर लम्बे चौड़े दो सूत्रों को जरूरत भी क्यो होती जिस तरह न० ९१ सूत्र में 'एवं मणुस्सपज्जत्ता' सूत्र या उसके आगे 'मणुसिणीसु' इतना पद लगाते तो ठीक होता। लेकिन उस प्रकार न करने से यह मालूम होता है कि उन सूत्रों से कुछ फरक जरूरी था इसलिये दो सूत्रो की रचना करनी पड़ी। वह फरक द्रव्यस्त्रियो को सजम होना नहीं था इसलिये न० ९३ सूत्रमे 'सजद' शब्द रखने से दिगम्बर आम्नाय पर बड़ी भारी आपत्ति पड़ती है। आप लोग दिगम्बर आम्नाय का मूलोच्छेद करना चाहते है तो उसका नतीजा भी क्या होगा ? इसका विचार करो। क्या श्री कुन्दकुन्दाचार्य के सामने श्री षट्खण्डागम नहीं था, क्या उन्हो ने पढ़ा नहीं होगा, या उस समय भी संयम शब्द उनको नहीं दीखा था? जोकि द्रव्यस्त्री का सयम होता नहीं, पाच ही गुणस्थान होते हैं, ऐसा उन्हों ने विधान किया। वह विधान ही साफ बतलाता है कि श्री षट्खण्डागम की प्रति में 'सयत' नहीं था। श्री कुन्दकुन्दाचार्य गुरु आम्नाय को मानने वाले थे। वे गुरु आज्ञा शिरोधार्य करते थे। उन्हों ने ग्रन्थ में कई जगह गुरुओ को नमस्कार भी किया है। फिर आप उन्हें झगड़ालू कह कर द्रव्य स्त्रियों को चौदह

गुणस्थान सिद्ध करने का प्रयत्न क्यों करते हैं ?

दूसरी बात एक यह है कि धवला के ७ भाग की प्रस्तावना में यह बताया है कि "षट्खण्डागम जीवट्ठाण सत्प्ररूपणा" के सूत्र ९३ का जो पाठ उपलब्ध प्रति में पाया गया था उसमें संयत पद नहीं था। किन्तु उसका सम्पादन करते समय सम्पादकों को यह प्रतीत हुआ कि वहां सजद पद होना अवश्य चाहिये, इसलिये फुटनोट में सूचित किया।

यदि वहां पर सयत पद की खोज आपने की तो यह आपको प्रशंसात्मक है, यह थोड़ी देर तक मान लेते हैं। लेकिन आपने उन नं० ९३ सूत्र की व्याख्या करते समय कितना अनर्थ करके दिगम्बर सिद्धान्त के मूल का नाश करने का दुःसाहस किया है, वह अर्थ आपको सूझा है या नहीं? आपने सम्पूर्ण दिगम्बर आम्नाय पर पानी फेरा है. नं० ९२ सूत्र में साफ तौर से स्त्रियों को अपर्याप्तक अवस्था में सम्यक्त्व होने का निषेध होने पर भी ९३ सूत्र की टीका का अर्थ करते समय आपने "सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रियां में उत्पन्न होते हैं" यह लिखा है—जो कि समन्तभद्र ने भी साफ तौर से निषेध किया है। श्री षट्खण्डागमकार ने ही खुद जिसका निषेध किया है, उसका कथन और उसका विधान करने में आप अग्रसर हो गये यह आपको शोभनीय है क्या? उस समय संपादन में ऐसी गलती क्यों हुई? तथा अभी भी जो ९३ सूत्र में सजद पद की सिद्धि करने में कटिबद्ध हो गये हैं यह भी दोष से खाली है क्या?

यदि आपकी हिन्दी टीका के अनुसार देखा जाय तो नं० ९२ और ९३ सूत्रों की रचना निरर्थक ठहरता है। द्रव्यपुरुष के समान द्रव्यस्त्री को भी १४ गुणस्थानों की प्राप्ति होने की मान्यता होती तो ९२-९३ सूत्रों की रचना क्यों हुई? यह जबरदस्त शंका खड़ी होती है। उसका उत्तर पहिले सयुक्तिक सप्रमाण दीजियेगा।

प्रोफेसर हीरालाल जी ने अपनी प्रस्तावना में बड़ा भारी दोष दिखाने के समय में द्रव्यानुयोग में मणुसिणी के १४ गुणस्थानों की सत्ता दिखाने की प्रबल शंका की है। उस पर हमारा उत्तर यह है कि मणुसिणी के १४ गुणस्थानों की सत्ता दिखाने के सूत्र भा० नं० १ सूत्र नं० १६४-१६५ हैं, यह अच्छी तरह से जानो। इन सूत्रों में से १४ गुणस्थान की सिद्धि नहीं हुई तो शंका क्या है सो लिखियेगा उसका भी उत्तर सयुक्तिक दिया जायगा।

अब हम वाचकवर्ग के सामने और एक विषय रखते हैं, जो सयुक्तिक है या नहीं यह देखना जरूरी है। नं० ९३ सूत्र की वृत्ति में जो पंक्ति है।

"अस्मादेवार्षाद् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्धेयत। इति चेत् न, सवासस्त्वात् अप्रत्याख्यान गुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः।"

इस पंक्ति पर विचार करने से यही सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ में कहीं पर भी द्रव्यस्त्रियों का कथन होना जरूरी है। सर्वथा भावस्त्री का ही कथन ग्रंथमें है, ऐसा मानने वालों का मत उपरोक्त पंक्ति से खण्डित होता है। तथा निर्वृत्तिः शब्द का अर्थ मोक्ष ऐसा किस कोष के आधार से सम्पादकों ने किया है, वह वे ही जाने। यदि उनके पास कोई प्रमाण हो तो जनता के सामने रखना चाहिये।

किन्हीं २ लोगों का ऐसा भी कहना है कि यदि सूत्र में सजद शब्द नहीं होता तो यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता था इस लिये इस शंका से संयत, पद सूत्र में होना जरूरी है इस प्रकार कथन करने वालों

को प्रथम यह जानना जरूरी है कि निवृ॑त्ति शब्द का अर्थ जब 'मोक्ष' होगा वे तब ही सम्भव होगा लेकिन मोक्ष अर्थ नहीं होता है। इसलिये उनका कहना अयुक्तिक नहीं है।

यदि सूत्र में संजद शब्द होता तो "कथं पुनः-तासु सजद" ऐसा प्रश्न उठ सकता था लेकिन उस प्रकार न उठ कर १४ गुणस्थानों का प्रश्न उठा है, इसलिये भी सूत्र में सजद शब्द नहीं था यह सिद्ध होता है। द्रव्य पुरुष और भाव से स्त्री वेदी ऐसी स्त्रियों को १४ गुणस्थान की सिद्धि १६४-१६५ से होती है इसलिये इसी ६३वें सूत्र से सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं।

इस वृत्तिकार की टीका के तथा दूसरे भाग के मणुसिणी के १४ गुणस्थानों के आलाप प्रकरण से दूसरी यह बात सिद्ध होती है कि माणुसिणी का अर्थ प्रोफे० हीरालाल जी के समान सर्वत्र 'द्रव्यस्त्री' करने वालों का खण्डन होता है, सू० न० ०२ पृष्ठ १३

जेसिं भावो इत्थि वेदे दव्व पुण पुरिसवेदो।

पंक्ति आयी है इससे सर्वत्र द्रव्यस्त्री का अर्थ करने वाला मत खण्डित होता है।

इसलिये प्रकरण देख कर कहीं पर "माणुसी" शब्द का अर्थ द्रव्यस्त्री और कहींपर 'भावस्त्री' करना आवश्यक है तथा इसी प्रथम भाग सूत्र न० ६३ की वृत्ति में 'अत्र वेदस्य प्रधान्याभावात्।' यह पद भी इस बात को प्रकट करता है कि स्त्रियों में (भाववेदी स्त्री और द्रव्य से पुरुष वेद) भी १४ गुणस्थान का कथन किया है वह भी भाववेद की प्रधानता से न कहकर गति की अपेक्षा से कथन करते हैं। गतिश्रम शरीर मरण तक रहता है। इसलिये 'गति की प्रधानता ली है, वह भी आगे के मणुसिणी शब्द से भावस्त्री अपेक्षा से ही, न कि इसी ६३वें सूत्र की अपेक्षा से। क्योंकि ६३वां सूत्र द्रव्य स्त्री का कथन करने वाला होने से वहां द्रव्यस्त्रियों के सयम निषेध किया है यदि द्रव्यस्त्रियों को तथा द्रव्यनपुसकों को भी सयम होना मानोगे तो सवासस्त्व तथा अप्रत्याख्यान गुणस्थितत्व हेतु निरर्थक ठहरेंगे। तथा च "दव्वत्थिणपु सक वेदाण चलचाओ णत्थि।" इत्यादि सूत्र से विरोध आवेगा।

इसी प्रकार द्रव्यस्त्रियों के सयम का निषेध करने वाले प्रमाण बहुत मिलते हैं कुन्दकुन्दाचार्य ने भी अपने ग्रन्थों में साफ निषेध किया है तथा हेतु भी दिया है कि 'मासे मासे जायते स्राव" इसलिये स्त्रियों में निश्चल ध्यान करने की शक्ति नहीं है तथा सूत्र ६३ वृत्ति में सचेलत्वात्, सयमानुपपत्तेः। यह हेतु दिया है। तथा सचेलपणा का और असयमपणा का अविनाभावपणा दिया है। इसलिये इस सचेलत्वात् हेतु से द्रव्यनपुसक को भी सयम होता नहीं, यह सिद्ध होता है इसलिये न० ६३ सूत्र में ही द्रव्य स्त्री तथा द्रव्य नपुसक इन दोनों का कथन करने वाला सूत्र सिद्ध होता है तथा सचेलत्व का हेतु भी दोनों के सयम का निषेध करने वाला सिद्ध है। इसलिये षट्खण्डागम मे द्रव्यनपुसकों का भी कथन है और उसके भी तीन भङ्ग होते हैं इस प्रकार वेद की वैषम्यता से ६ भङ्ग सिद्ध होते हैं यह अच्छी तरह से प्रोफेसर साहब को विचार पूर्वक मनन करना चाहिये और अपना हठवाद छोड़ना चाहिये।

—: परिशिष्ट :—

द्रव्यनपुंसकों का लक्षण श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड में यों किया है—

णेवित्थीणेवपुम णउंसगो उहयलिङ्गविदिरित्तो ।
इट्ठावग्गिसमाणग वेदणगुरुओ कलुसचित्तो ॥

जिसके द्रव्यपुरुषों के चिन्ह, मूछ, दाढी, मिस्न, अण्डकोष आदि न हों तथा द्रव्यस्त्री के चिन्ह योनि, रज कोषादि नहीं उसको द्रव्यनपुंसक कहते हैं। यह हुआ द्रव्य चिन्ह तथा अन्तरङ्ग चिन्ह, ईंटो की भट्टी की अग्नि की तरह वेद, कलुषीत चित्त जिसके हो उसको द्रव्यनपुंसक कहते हैं। इसका बहिरङ्ग वेष स्त्रियों के समान रहता है इसलिये इसको स्त्री शब्द से ही कहते हैं।

उक्त च रामायणे—

देखिले बहुतेकिले आणि महापण्डित जो पढतो
मोन्या थोर ताची वेत छडीने हस्तात घेउनी तो।
दावा राजकुमार तोहि तिजला प्रत्येक प्रत्येक तो,
खोजा आणिक उ वशब्द कहतीं न्येसिओलाविती।
दासी कन्या लागी दावत गुण वर्णनी सकल भूप,
कोलातुलामनातयेनो सागमलावाणी पाहुनी रूप।
पाहा काशिधिपाला बाई तोकाही नव्हे,
मालवपति अद्भुतरूपाला बाई तो काही नव्हे।
मगधेश्वर लेवुनि दुशाला, बाई तो काही नव्हे,
कोण तुमया मनात येनो सागगे बाले।

भावार्थः— उसी द्रव्यनपुंसकों को दासी, बाई, आदि शब्द से पुकारते हैं। इससे उस द्रव्यनपुंसक को माणुसिणी कहने की रूढि थी।

संस्कृत रामायण में स्वयम्बर मण्डपागतसमये ततः स्थित्वा पुरस्तस्या कचुकी सुबहुश्रुतः। जगाद तारशब्देन हेमवेत्रलताकरः ॥२१०॥ २७ अ०

तात्पर्य यह है कि द्रव्यनपुंसक को संस्कृत में 'कंचुकी' नाम से कहते हैं जो कि रनवास में मुख्य रूप से रक्खा जाता था कोष में भी इसी प्रकार अर्थ करते हैं। प्राचीन काल में राजा के अन्तःपुर में उसी कचुकी को रखने की पद्धति थी यह काव्य ग्रन्थो से अच्छी तरह से ज्ञात होता है।

द्रव्यस्त्रियों को दिगम्बर दीक्षा का अधिकार नहीं है। इससे वह 'संयम' न होने से पाचवें गुणस्थान में ही रहती है। उक्त च—प्राभृते ग्रन्थे—

लिंग इत्थीण हवदि भुञ्जइ पिण्डं सुएयकालम्मि ।
अज्जाविय एयवत्थावरणेण भुञ्जेई ॥२२॥
णवि सिज्झइ वत्थधरोजिणसासणजइवि तित्थयरो ।
नग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥२३॥
लिगम्मि य इत्थीणं थणतरे णाहि कक्खदेसेसु ।
भणियो सुहमो काओ तासि कह होई पव्वज्जा ॥२४॥
जई दसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता ।
घोर चरवि चारित्त इत्थीसु ण पव्वया भणिया ॥२५॥
चिन्तासोहि तेंसि ढिल्ल भावं तहा सहावेण ।
विज्जदि मासा तेसि इत्थिसु ण सक्या भाण ॥२६॥

मूलाचारे तथोक्त अविकार वत्थवेसाजल्लमल लित्त चत्तदेहाओ धम्म कुलकित्ति दिक्खा पडिरूव विशुद्ध चरियाओ ॥१०॥

इन उपरोक्त गाथाओ स द्रव्यस्त्रियो को सयममूलभूत प्रव्रज्यानाम दिगम्बर दीक्षा का तथा सयम का निषेध किया है और अनेक ग्रन्थों में कथन किया है जो विस्तार भय से नहीं लिखा।

भावनपुंसक को अपर्याप्त-अवस्था में सम्यक्त्व निषेध किया है। देखिये—

देवनेरईयमणुस्सा अस जदसम्माइट्ठिणो यदि

मणुसेसु उपज्जंति तो णियमा पुरिसवेदेसु उपज्जंति। ण अण्णवेदेसु, तेण पुरिसवेदो चेव भणिदो। श्री धवला आलापाधिकार सू० ॥११८॥

तात्पर्य--इस उपरोक्त प्रमाण से द्रव्यनपुंसकों का कथन करते हुये भावनपुंसक का ही कथन है तथा भावस्त्री का ही कथन है। ऐसा कहने वालों से मेरा प्रश्न है कि द्रव्यनपुंसक तथा द्रव्यस्त्रियों का कथन श्री षट्खण्डागम में नहीं है और सर्वत्र भाव ही का कथन है तो भावनपुंसक किस सूत्र में अंतर्भूत करोगे? कहोगे कि द्रव्यपुरुषों का सूत्र नहीं होने पर वृत्तिकार भी किस आधार से निषेध करेंगे? उनके लिये आधारभूत ग्रन्थों का सूत्र तो चाहिये। अन्यथा पूर्वाचार्यों के वचन में विरोध आजायगा। तथा षट्खण्डागम भी अधूरा है ऐसा सिद्ध हो जायगा। द्रव्य पुरुष का शरीर आधार लेकर चौदह गुणस्थान सिद्ध होते हैं। न कि भाववेद की प्रधानता से? भाव वेद बादर कषाय गुणस्थान के ऊपर नहीं होने से १४ गुणस्थान की सिद्धि नहीं होती। फिर १४ गुणस्थान की सिद्धि को गति का ही अवलम्बन करना पड़ेगा। तथा गति का उदय भावमें न रहकर शरीर पर ही रहता है इस लिये शरीर मरण तक उसका सम्बन्ध रहता है 'गतिस्तु प्रधाना न साराद्विनश्यति' इसलिये बादर कषाय ऊपर वेद विशेषण नष्ट होने पर भी उपचार से कथन किया है उसमें कोई विरोध नहीं आता।

यदि नं० ९३ सूत्र में द्रव्यस्त्री का कथन न मान कर भाववेदका कथन मानेंगे तो 'णियमा पज्जत्तियाओ' शब्द निरर्थक या निष्प्रयोजन ठहरेगा। इसलिये उसमें 'सञ्जदासञ्जद' तक पद रखकर नियम शब्द को सार्थक लिखा है और द्रव्यस्त्रियों के पांच ही गुण—स्थान होते हैं इसको पुष्ट कर भावस्त्री को (द्रव्यपुरुष और भाव से स्त्री) ही चौदह गुणस्थान होते हैं यह सिद्ध किया है। यदि इसको न मानोगे तो द्रव्य शरीर से पांच ही गुणस्थान होते हैं यह कथन न रहकर द्रव्यस्त्रियों को भी १४ गुणस्थान होते हैं, द्रव्यस्त्री शरीर धार भाव पुरुष स्त्री नपुंसकों को भी १४ गुणस्थान होना मानना पड़ेगा। तथा द्रव्यनपुंसक शरीर से भी तीनों भाववेदी पुरुष स्त्री नपुंसकवालों को भी १४ गुणस्थान मानने पड़ेंगे। ऐसा मानने पर सिद्धांत विरुद्ध दोष आवेगा। तथा आम्नाय या भी नाश हो जायगा। इसलिये नं० ९३ सूत्र में 'संजद' पद नहीं होना चाहिये।

शंका—द्वितीय भाग धवला के आलापाधिकार में मणुसिणी को 'पज्जत्त' विशेषण लगाया है तथा अपज्जत्त भी। फिर विरोध क्यों नहीं आवेगा। क्योंकि पर्याप्त मनुसिणी को १४ गुणस्थान और अपर्याप्त मनुषिनी को ३ गुणस्थान (मिथ्यात्व १ सासादन २ सयोगकेवली ३) माने हैं।

उत्तर—वृत्तिकार ने जो भाव मानुषिण को पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण लगाया है वह उपचार मात्र से लगाया है। इससे गुणस्थानादिक कथन करने वाले सूत्र नं० ८९ ९० में अन्तर्भूत करते हैं तो इस पर शंका होती है कि अपर्याप्त पुरुष को सम्यक्त्व रहता है ऐसा लिखा है। इसलिये वह सम्यक्त्व अपर्याप्त भावनपुंसकों को भी होना सिद्ध हो जायगा। इस प्रकार मानने से उपरोक्त ग्रन्थाधार से विरोध आता है इस लिये नं० ८९ ९० सूत्रों में अन्तर्भूत नहीं कर सकते हैं।

क्योंकि सूत्र में साफ लिखा है कि "मणुस्सा मिच्छाइट्ठिसासण सम्माइट्ठि असंजद सम्माइट्ठि-ट्ठाणे

सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८६ ॥

अर्थ—मनुष्यगति में मनुष्य मिथ्यात्व सासादन सम्यक्त्व, असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं। इस सूत्रसे सिद्ध होता है कि अपर्याप्त नपुंसक जीव को इस सूत्र में अन्तर्भूत नहीं कर सकते। क्योंकि द्रव्य और भाव-नपुंसक अपर्याप्तक अवस्था में सम्यक्त्व सहित उत्पन्न नहीं होते, इस लिये इस सूत्रमें अन्तर्भूत कर नहीं सकते। इस सूत्र नं० ८६ से ६३ तक का कथन भाव से न होकर द्रव्यपुरुष स्त्रीनपुंसकवेदी का कथन है। यह भली भान्ति सिद्ध होता है।

तथा और प्रमाण भी है, देखिये—यहां पर प्रकरण है मनुष्यगति में कौन से गुणस्थान होते हैं, गति में मुख्य शरीर की अपेक्षा से कथन होना जरूरी है, क्योंकि गतिमें शरीर की अपेक्षा से कथन प्रथम होकर अनन्तर भावकी अपेक्षा से कथन करना न्यायपद्धति है।

इस पद्धति को न मानने पर ग्रन्थ में एक बड़ी भारी त्रुटि रह जायगी। इस समय ग्रन्थ में शरीर की अपेक्षा से कथन का अभाव हो जायगा। ग्रन्थ-कार शरीर की अपेक्षा से ही कथन कर रहे हैं। इसी लिये तो सूत्रोंमें पर्याप्त अपर्याप्त आदि विशेषण लगाये हैं। सूत्रकार के भाव का भी वृत्तिकार ने खुलासा किया है कि "शरीर निष्पत्त्यपेक्षया" इत्यादि शरीर की अपूर्णता की अपेक्षा से ही पर्याप्त और शरीर की अपूर्णता की अपेक्षा से अपर्याप्त ऐसे विशेषण को स्पष्ट किया है, जो कि सूर्यप्रकाशवत् स्पष्ट है।

वृत्तिकार ने भी द्रव्यस्त्री के वस्त्र सहित होने से उनको संयम की अनुपपत्ति है ऐसा प्रथम द्रव्यस्त्रीका कथन किया है अनन्तर "भावस्त्रियों को १४ गुण-स्थान होते हैं" यह कथन किया है। इस षट्खंडा-गम के सूत्रों में द्रव्यस्त्रियों के संयम का अभाव, मुख्य शरीर का अभाव और निमित्तभूत भावके होने से उपचार की प्रवृत्ति हो गई है। इसलिये कोई विरोध नहीं आता।

नम्बर ६२-६३ सूत्रों में द्रव्यस्त्रीनपुंसक दोनों का कथन सिद्ध होता है तथा उनके शरीराधार उनके वेद वैषम्य, भावत्रिक, शरीराधारभूत गुणस्थान तक सिद्ध होता है। अन्यथा वेदवैषम्य के ६ भंगवालों को भी मोक्ष की सिद्धि का प्रसंग आवेगा, जो कि इष्ट नहीं है। यदि आग्रहवश इष्ट मानोगे तो मनुष्यों के वेद-वैषम्य भंगों का कथन ही निरर्थक ठहरेगा। तथा "तेण परं सुद्धा मणुस्सा" इस सूत्र से विरोध आवेगा। इस लिये उपरोक्त हमारा कथन ठीक है। जो कि द्रव्यस्त्रीनपुंसक इन दो शरीर की अपेक्षा के ६ भंग वाले जीव संयम को प्राप्त नहीं होते, सिर्फ एक द्रव्यपुरुषके तीन भंगवाले जीव संयम को प्राप्त कर सकते हैं। और १४ गुणस्थानों की प्राप्ति करके अंत में मोक्ष को जाते हैं, इस प्रकार प्रकरण अनुसार अर्थ करना श्रेयस्कर है।

जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनं ॥

॥ नमो वीतरागाय ॥

देवाधिदेवं गतसर्वदोषम्, स्वानन्दभूतं धृतशान्तरूपम्।
नरामरेन्द्रैर्नुतपादयुग्मम्, श्रीवीरनाथं प्रणमामि नित्यम्॥

स्त्री—मुक्ति

प्रोफेसर जी ने जो कुछ लिखा है वह आगम, तर्क, युक्ति, प्रमाण, नय, निक्षेपादिकों के अनुकूल है या नहीं यह अवलोकन करना अत्यावश्यक है। अत एव वैसा प्रयत्न किया जा रहा है। प्रोफेसर जी ने प्राच्य आचार्य कुन्दकुन्दजी को आड़े हाथों लिया है यथा—

"भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने आगमों में स्त्रीमुक्ति का निषेध किया है। लेकिन उन्होंने न गुणस्थान की ही व्यवस्था से चर्चा की है, और न ही कर्मसिद्धान्त की विवेचना की है जिस से कि प्रस्तुत मान्यताका शास्त्रीयविचार बाकी रहजाता है" इत्यादि

विचार कीजिये कि भगवान् कुन्दकुन्द ने "वीर-शासन" अपने बुद्धि बल से कैसा प्रकट किया है, यह बात निम्नलिखित श्लोक से विदित हो जाती है।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

इस श्लोक के अनुसार वीर भगवान के और गौतम के द्वारा प्रतिपादित धर्म प्रवचन के समान धर्म प्रवचन के वक्ता स्वामी कुन्दकुन्द हैं उन पर समीक्षा की गई है कि वे स्त्रीमुक्ति निषेधमें बड़ीभारी गल्ती कर गये हैं। किमाश्चर्यमतः परम्॥

गुणस्थानचर्चा और कर्म सिद्धांत का प्रतिपादन किये बिना उन्होंने बड़े बड़े महत्वशाली ग्रन्थ यों ही लिख डाले? हम पूछते हैं प्रोफेसर जी से कि यह छोटे मुख बड़ी बात नहीं है? अस्तु,

स्त्रीमुक्ति निषेध पर श्रीप्रभाचन्द्राचार्य ने प्रमेय-कमलमार्तण्ड में यों लिखा है—

श्वेतपटा ब्रुवन्ति—"अस्ति स्त्रीणां मोक्षोऽवि-कलकारणत्वात् पुरुषवत्" इति तदसिद्धिर्हेतोरसिद्धेः। तथाहि— मोक्षहेतुर्ज्ञानादिपरमप्रकर्षः स्त्रीषु नास्ति परम-प्रकर्षत्वात्। सप्तमपृथ्वीगमनकारणापुण्यपरमप्रक-र्षवत्। कथमिति चेत् तर्हि अयं हि साहचर्यनियमोऽस्य-स्ति-यद्वेदस्य मोक्षहेतुपरमप्रकर्षः तद्वेदस्यापुण्यपरम-प्रकर्षोऽप्यस्त्येव यथा पुंवेदस्य। नपुंसकवेदे तु अपुण्यपरमप्रकर्षे सत्यपि अन्यस्यानभ्युपगमात् पुंसि अभ्युपगमाच्च। न खलु ज्ञानादयो यथा पुरुषे प्रकृष्यमाणाः प्रतीयन्ते तथा स्त्रीषु। अन्यथा नपुंसके ते तथा स्युः। तथाचास्याप्यपवर्गप्रसङ्गः। स्त्रीणां संयमो न मोक्षहेतुर्नियमेन ऋद्धिविशेषाहेतुत्वात्। सांसारिकलब्धीनामप्यहेतुः संयमः कथं मोक्षहेतुस्स्यात् सचेलसंयमत्वाच्च नासौ तद्धेतुर्गृहस्थसंयमवत्। न च स्त्रीणां निर्वस्त्रसंयमो दृष्टः प्रवचनप्रतिपादितो वा। यदि पुनः रागादिवत् अचेलसचेलसंयमकारणभेदात् मुक्तेरपि भेदोऽभ्युपगम्यते मोक्षसुखाकाङ्क्षया तदा देश-संयमिनोऽपि मुक्तिः प्रसज्यते तथा च लिंगग्रहणमन-र्थकम्। स्त्रियो न मोक्षहेतुसंयमवत्यः साधूनामवन्द्य-त्वात् गृहस्थवत्। बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहत्वाच्च न ताः तद्वत्यः तद्वत्।
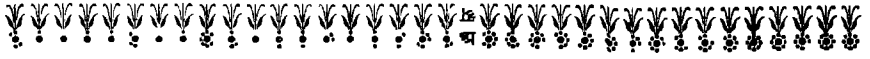
☞ इस चालू लेख के लेखक—

श्री १०८ पूज्य मुनिराज

* श्री विमलसागर जी महाराज *

[इस लेख पर पूज्य लेखक महानुभाव का नाम अङ्कित न था अतएव
पूर्व लेख के लेखक महानुभाव का ही अवशिष्ट अंश समझ कर
पू० मुनिराज जी का शुभनाम यथास्थान न दिया जा सका
महाराज का नाम पीछे ज्ञात हुआ। —मुद्रक]

❋ जैनसंघ भेद का बीज ❋

अनादि धारा प्रवाह से एक रूप में चला आया विश्व-हितकर जैनधर्म अनेक धाराओं में विभक्त क्यों हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर सम्राट चन्द्रगुप्त के समय होने वाला बारह वर्षीय घोर दुर्भिक्ष है। उस समय के आपद्धर्म का जिस साधु-वर्ग ने परित्याग नहीं किया वे तथा उनके अनुयायी 'श्वेताम्बर जैन' कहलाये। प्राचीन मार्ग के अनुयायियों का नाम 'दिगम्बर जैन' प्रसिद्ध हुआ। जैनसङ्घ भेद के बीज खोजनेवालों को इस तथ्य का अध्ययन तथा मनन करना चाहिये।

प्रत्यक्षप्रसिद्धो हि वस्त्रग्रहणादि बाह्यपरिग्रहोऽभ्यन्तर-स्वशरीरानुरागादि-परिग्रहमनुमापयति। बाल-कायिकादिजंतूपघातनिवारणार्थं सचेलत्वे-आचेलक्य-व्रतस्य पुंसः हिंसात्वानुषङ्गः। तथा च नार्हदादयो मुक्तिभाजः स्युः।

किंच परिग्रहपरित्याग संयमो याचनसीवन-प्रक्षालनशोषणनिक्षेपादानचौरहरणमनःसंक्षोभकारिणि वस्त्रे गृहीते कथं स्यात्? तदुक्तं च—

शीतार्तिनिवृत्त्यर्थं, वस्त्रादि यदि गृह्यते।
कामिन्यादिस्तथा किन्न, कामपीड़ादिशांतये।१।
वस्त्रखण्डे गृहीतेऽपि, विरक्तो यदि तत्त्वत.।
स्त्रीमात्रेऽपि तथा किन्न, तुल्याक्षेपसमाधितः।२।
स्त्रीपरीषहभग्नैश्च, बहुरागैश्च विग्रहे।
वस्त्रमादीयते यस्मात् सिद्धग्रन्थद्वयस्ततः॥ ३॥

रत्नत्रयाराधकस्यैव मुक्तिप्रसिद्धेः। न च पिच्छीपरादौ गृह्यमाणेऽप्ययं दोष जन्तुरक्षार्थत्वात् ममेद भावासूचकत्वात्। गण्डादेः प्रवृत्तिहेतुत्वात् नान्याविरोधित्वाच्च। नाप्यागमात् स्त्रीमुक्तिसिद्धि सम्यग्दर्शनोत्पत्त्यनन्तर च सर्वासु स्त्रीषूत्पत्तिरेव न सम्भवति तदा कथ स्त्रीणा मुक्तिः। ततोत्कृष्टध्यान-फलत्वात् मोक्षस्य न स्त्रीणामोक्षो युक्तः। किन्तु अनन्त चतुष्टयस्वरूपलक्षणो मोक्षः पुरुषस्यैव सम्भवति।

अर्थ--मुक्ति ज्ञानादि कारण के परमप्रकर्ष से होती है, उनका परमप्रकर्ष स्त्रियों में नहीं है, जैसे कि उनमें सातवीं नरकभूमि में जाने का कारण अपुण्य, (पाप) का परमप्रकर्ष नहीं है।

यहां शंका हो सकती है कि स्त्रियों मे सातवीं नरकभूमि जाने का कारण अपुण्य का परमप्रकर्ष नहीं है, तो न सही, इससे मोक्ष के कारण ज्ञानादिके परमप्रकर्ष के अभाव में अर्थात् ऊंचे अपुण्य के अभाव से ऊंचे ज्ञान का अभाव कैसा? क्योंकि इन दोनों में न कार्यकारणभाव है और न व्याप्यव्यापक भाव है, इन दोनों के बिना अन्य के अभाव में अन्य का अभाव कहना ठीक नहीं है।

उत्तर—यह कहना ठीक है किन्तु यह नियम है कि जिस वेद में मोक्ष जाने के कारण का परमप्रकर्ष है उसमें सातवीं नरकभूमि जाने का कारण अपुण्य का परमप्रकर्ष भी है यथा पुरुषवेद में।

चरम शरीर वाले पुरुषवेद के साथ यह दोष कहा जा सकता है लेकिन यह ठीक नहीं है, चरम शरीरी पुरुषवेद एक विशिष्ट पुरुषवेद है उसकी अपेक्षा ये यह नहीं कहा है किन्तु पुरुषवेद सामान्य की अपेक्षा से कहा गया है जिसमें सातवीं नरकभूमि में जाने का कारण अपुण्यकर्म का परमप्रकर्ष है, उस मे मोक्ष जाने के कारण का भी परमप्रकर्ष है। ऐसा विपरीत नियम तो संभवता ही नहीं है, क्योंकि नपुंसकवेद में सातवीं पृथ्वी में जाने का कारण अपुण्यकर्म का परमप्रकर्ष होते हुये भी उसके मोक्षके कारण ज्ञानादि का परमप्रकर्ष नहीं माना गया है और पुरुष में माना गया है। इस लिये स्त्रीवेद में भी यदि मोक्ष का हेतु परमप्रकर्ष है तो उसके अभ्युपगम से ही यह दूसरा अनिष्ट परिणाम भी जरूर प्राप्त हो जायगा, अन्यथा पुरुष में भी अनिष्ट दोष नहीं आ सकेगा? दोनो तादात्म्य तदुत्पत्ति लक्षण प्रतिबन्धोंका अभाव होते हुये भी कृत्तिकोदयादि हेतुओं के समान उक्त दोनों परमप्रकर्षों का अविनाभाव सिद्ध हो जाने पर सातवीं पृथ्वी में जाने का कारण अपुण्यकर्म के परमप्रकर्ष के निषेध से मोक्ष का हेतु ज्ञानादिके परमप्रकर्ष का भी निषेध हो जाता है इत्यादि।

तथा स्त्रियों का संयम मोक्ष का कारण नहीं है,

क्योंकि वह नियम से ऋद्धि विशेष का अकारण अन्यथा नहीं हो सकता। जिनमें सयम सासारिक लब्धियोंका भी कारण नहीं है उनमें वह नि.शेषकर्म विप्रमोक्ष लक्षण मोक्षका कारण कैसे हो सकता है ?

नियम से स्त्रियों का ही संयम ऋद्धि विशेष का कारण नहीं स्वीकार किया गया है, न कि पुरुषो का संयम। यथा—स्त्रियो का सयम सवस्त्र है इसलिये वह मोक्ष का कारण नहीं है, जैसे गृहस्थोंका सयम। इत्यादि स्त्रियों के मोक्ष के सम्बन्ध में अनेक भिन्न २ नाना दोषों का आक्षेप प्रमेयकमलमार्तण्ड के पृष्ठ ६४ से ६६ तक किये गये हैं।

स्त्रीमुक्ति के प्रतिपादक आगम भी न स्त्रियों का सप्तम नरक में गमन मानते हैं और न उनके सयम को आहारकादि ऋद्धि विशेष का कारण मानते हैं। साधुओं के संयम को ही जब वे सवस्त्र मानते हैं, तब स्त्रियों का सयम सवस्त्र मानने में तो बाधा ही क्या है ?

छठी पृथ्वी तक स्त्रिया जाती हैं। इस बात को भी कहने वाला उनका आगम प्रवचनसारोद्धार है।

छट्ठि च इत्थियाओ मच्छा मणुयाय सत्तमि पुढवि।
एसो परमुववाओ बोद्धव्वो नरयपढवोसु ॥ ६२ ॥

सत्प्ररूपणा के सूत्र ६२-६३ में स्पष्टरीत्या कहा है कि, द्रव्यस्त्री वेद वाले जीव संयम धारण नहीं करते हैं, क्योंकि, वे सवस्त्र होते हैं और सयम के बिना मुक्ति नहीं होती यह निषेध उससे निकलता ही है। स्त्रिया लज्जाशील होती हैं इस कारण वस्त्र का परित्याग नहीं कर सकतीं दूसरे वस्त्र छोड़ने से उनको भय भी बना रहता है कि कोई दुराचारी बलात्कार करने से उनके शील का खण्डन न करदे अतः स्पष्ट है कि उनके वस्त्र का त्याग नहीं इसलिये सयम भी नहीं है और जब संयम नहीं तो उनके मोक्ष भी नहीं है। दूसरे यह बात है कि स्त्रियों की अपर्याप्त दशा में सम्यक्त्व भी नहीं होता इसका प्रमाण गोम्मटसार जीवकाण्ड की १२७ गाथा है यथा—

हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं।
पुण्णिदरे णहि सम्मो णसासणो णारयापुण्णे १२७

यानी—प्रथम पृथिवी को छोड़कर नीचे की छह पृथ्वी के नारकों के, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देवोंमे, सब स्त्रियों की अपर्याप्त अवस्था में सम्यक्त्व नहीं होता है, और नारकों के अपर्याप्त अवस्था में सासादन भाव भी नहीं होता।

अयदापुण्णे णहि थी सढोविय घम्मणारय मुच्चा।
थी सढयवे कमसो णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू २८७

यानी—असंयत अपर्याप्त गुणस्थानमें स्त्रीवेद का उदय नहीं है, और घम्मा नाम की पहिली पृथ्वी को छोड़कर नपुसकवेद का भी उदय नहीं है। इसलिये स्त्रीवेद वाले असयत के चारों आनुपूर्वी का और नपुसकवेद के उदय वाले असयत के अन्तिम तीन आनुपूर्वी का उदय नहीं है। इससे मालूम होता है कि, द्रव्यस्त्री तो दूर ही रहे किन्तु भावस्त्री के भी अपर्याप्त अवस्था में चतुर्थ गुणस्थान नहीं होता है। प्रोक्तं च—रत्नकरण्डे स्वामी समन्तभद्राचार्येण—

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रता च व्रजति नाप्यव्रतिकाः

यानी—जो जीव सम्यग्दर्शन स शुद्ध हैं वे अव्रतिक होते हुये भी मर कर नारक, तिर्यंच, नपुसक, और स्त्री नहीं होते हैं। तथा न दुष्कुलीन, विकृत-शरीर और अल्प आयुवाले, दरिद्री, इत्यादि अवस्था को प्राप्त होते हैं।

इससे भी विदित होता है कि, अपर्याप्त अवस्था में स्त्रियों के चतुर्थ गुणस्थान नहीं होता है इससे स्पष्ट है कि स्त्री पर्याय निकृष्ट है अतः सम्यग्दृष्टि जीव उन में पैदा नहीं होता और पर्याप्त अवस्था में द्रव्यस्त्रिया वस्त्रसहित होती हैं इसलिये अप्रत्याख्यानगुण अर्थात् देशसंयत यानी संयतासंयत गुणस्थान मे ही स्थित रहती हैं। अतएव स्त्रियोंको निर्वस्त्र संयम नहीं देखा जाता है अथवा आगम में भी नहीं कहा गया है।

यदि स्वर्गादिसदृश सवस्त्र या निर्वस्त्र संयम के निमित्त नैमित्तिक के भेद से मोक्ष में भी भेद माना जायगा तो मोक्ष की अभिलाषा करने वाले विकल देश संयमिकों को भी मुक्ति प्राप्त हो जायगी तदा दैगम्बरीय निर्ग्रंथलिंग बिल्कुल अनर्थक हो जायगा।

प्रत्यक्ष प्रमाण से यह बात सिद्ध होती है कि, वस्त्रग्रहणादि यह बाह्य परिग्रह है और अभ्यन्तर परिग्रह स्वशरीर के ऊपर वस्त्रधारण करने से अत्यत अनुरागरूप ममत्व परिणाम देखा जाता है।

यदि वात कायिकादि जतुओ के उपघात के निवारणार्थ वस्त्र ग्रहण किया जाता है ऐसा कहोगे तो फिर निर्वस्त्र संयमी जिनकल्पी के निग्रंथ अवस्था में भी हिंसा दोष की सम्भावना हो जायगी। तथा च भगवान सर्वज्ञ अर्हदादिक भी मुक्ति के पात्र नहीं हो सकेंगे।

तथा समस्त परिग्रह त्याग रूप संयम "याचना-करना, और फटे हुये वस्त्र की सिलाई करना उसको धोना और सुखाना, नीचे रखना, स्वीकार करना और उस वस्त्र की चोरी होनेसे मनमे रागद्वेष उत्पन्न होना" इत्यादि असंयम का मूल वस्त्र रखने पर कैसे हो सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं हो सकता।

यदि शीतादिक से उत्पन्न बाधाओ के परिहार के लिये यह वस्त्र ग्रहण किया जाता है ऐसा कहोगे तो कामपीड़ादिक की शांति के लिये कामिन्यादिकों को भी स्वीकार करना पड़ेगा इस प्रकार यह बाह्याभ्यंतर उभय परिग्रह सिद्ध हो गया।

पीछी औषधादिक से यह दोष नहीं आ सकता क्योंकि समस्त षट्कायिकजंतु-संरक्षण केलिये साधु-संत महात्माओं ने यह मयूरपिच्छिका ग्रहण की है, उस पर भी 'यह मेरी है', ऐसा उनके ममत्व भाव नहीं होता है जैसे कि वस्त्रादिक पर होता है अतः नग्नत्व सिद्ध हो गया।

तथा आगम से भी स्त्रीमुक्ति सिद्ध नहीं होती है क्योंकि स्त्रियो को अपर्याप्त दशा में सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है अतः स्त्रियां मुक्ति की पात्र नहीं हैं। मोक्ष उत्कृष्ट ध्यान का फल होने से नारी में उस की योग्यता नहीं है। अनन्त चतुष्टय स्वरूप मोक्ष पुरुष को ही होती है।

प्रोफेसर साहब ने कहा है कि, स्त्रियो के चौदह गुणस्थान होते हैं यह आगमविरुद्ध है धवल सिद्धांत ग्रन्थ देखिये—

अस्मादेवार्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येदिति चेन्न सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमा— नुपपत्तेः। भावसंयमस्तासां सवाससामप्यविरुद्ध इति चेन्न तासां भावसंयमोऽस्ति भावासंयमाविनाभावि— वस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः। कथं पुनस्तासु चतुर्दश गुणस्थानानीति चेन्न भावस्त्री-विशिष्ट-मनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्। भाववेदो बादरकषायान्नोपर्यस्तीति न तत्र चतुर्दश गुणस्थानानां सम्भव इति चेन्न अत्र वेदस्य प्राधान्याभावात्, गतिस्तु प्रधाना न साराद्वि- नश्यति वेदविशेषणायां गतौ न तानि सम्भवन्तीति चेन्न विनष्टेऽपि विशेषणे उपचारेण तद्व्यपदेशमाद-

धानमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात् ।

इस प्रवचनभूत आगम से द्रव्यस्त्रियों के मुक्ति का निराकरण होता है, भाव संयम का निषेध भी होता है। द्रव्यस्त्रियों के आदि के पांच गुणस्थान ही होते हैं। और द्रव्य मनुष्य जिसका भाव स्त्री वेद रूप है उसके नौ गुणस्थान होते हैं ऊपर के गुणस्थान भाववेद में उपचरित हैं। इत्यादि अनेक युक्ति प्रयुक्तिया सिद्ध हो जाती हैं। 'आचार्य विद्यानंदी' श्लोकवार्तिक पृष्ठ ५११ में लिखते हैं कि—

सिद्धि सिद्धगति में होती है। अथवा मनुष्यगति में भी पुरुषों के होती है। अवेदता से वह सिद्धि होती है, अथवा भाव से तीनों वेदों से सिद्ध होती है। द्रव्य से तो साक्षात् पुल्लिङ्ग से होती है। जो स्त्री की निर्वाणवादी हैं उनके आगम व्याघात और युक्तिबाधा दोनों हैं। यथा—

सिद्धिः सिद्धगतौ पुंसां, स्यान्मनुष्यगतावपि ।
अवेदत्वेन सा वेदत्रितयाद्वास्ति भावत. ॥७॥
पुल्लिंगेनैव तु साक्षाद् द्रव्यतोऽन्या तथागम –
व्याघाताद्युक्तिबाधाच्च स्त्र्यादि निर्वाणवादिनाम् ८

इन दोनो श्लोकों मे भाव से तीनों वेदो से और द्रव्य से पुरुषलिङ्ग से मुक्ति कही गई है और अन्य द्रव्यलिंग से मुक्ति मानने में आगम और युक्ति दोनों से बाधा आती है, यह स्पष्ट कहा गया है।

अकलंकदेव राजवार्तिकालंकार में कहते हैं कि, "अतीत को विषय करने वाले नय की अपेक्षा से सामान्यतः तीनों वेदों से सिद्ध होती है" इस भाव को लेकर कहा गया है, द्रव्य को लेकर नहीं। द्रव्य अपेक्षासे तो पुल्लिङ्गसे ही सिद्ध होती है। तथा पर्याप्त मानुषी में भावलिङ्ग की अपेक्षा से चौदह ही गुणस्थान होते हैं। यथा—

अतीतगोचर—नयापेक्षया अविशेषेण त्रिभ्यो वेदेभ्यः सिद्धिर्भवति भावं प्रति, न तु द्रव्यं प्रति। द्रव्यापेक्षया तु पुल्लिंगेनैव सिद्धिः। राजवार्तिक

मानुषीपर्याप्तिकासु चतुर्दशापि गुणस्थानानि संति भावलिंगापेक्षया, द्रव्यलिङ्गापेक्षेण तु पंचाद्यानि।

इस प्रमाण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाव से तीनों वेदों से और द्रव्य से पुल्लिङ्गसे सिद्ध होती है। तथा भाव मानुषी के चौदह और द्रव्य मानुषी के प्रारम्भ के पांच गुणस्थान होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि द्रव्य स्त्री को मुक्ति नहीं होती है, और उसके पहिले ५ गुणस्थान ही होते हैं।

पञ्चाध्यायी के ४५२वे पृष्ठ पर लिखा है—

प्रत्येकं द्विविधान्येव लिङ्गानीह निसर्गत. ।
द्रव्यभावविभेदाभ्यां सर्वज्ञाज्ञानतिक्रमात् ॥१०७६॥

आगमानुसार तीनो ही वेद द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार के हैं।

उसी के पृष्ठ ४५४वें को देखिये—

रिरंसा द्रव्यनारीणां पुंवेदस्योदयात्किल ।
नारीवेदोदयाद्वेद. पुंसां भोगाभिलाषिता १०८४
नालं भोगाय नारीणां नापि पुंसामशक्तितः ।
अन्तर्दग्धोस्ति यो भावः क्लीबवेदोदयादिति १०८५

पुंवेद के उदय से जो द्रव्यस्त्रियों के साथ रमने की इच्छा होती है वह भाव पुंवेद कहलाता है और स्त्रीवेद के उदय से जो द्रव्यपुरुषों के साथ रमने की इच्छा होती है वह भाव स्त्रीवेद कहलाता है। तथा नपुंसकवेद के उदय से जो सदैव स्त्री और पुरुष दोनों में ही रमने की अत्यन्त इच्छा होती है परन्तु सामर्थ्य न होनेसे वह नपुंसक उन दोनोंमें से किसी के भी साथ भोग नहीं भोग सकता है। किन्तु सदैव अन्तरङ्ग में ही जलता रहता है।

कहीं पर द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग दोनों ही समान होते हैं। तथा कहीं पर दोनों ही विषम भी होते हैं अर्थात् द्रव्यलिङ्ग दूसरा होता है और भाव-लिङ्ग दूसरा होता है। जैसे देवाङ्गनाओं के द्रव्यस्त्री-वेद के साथ सदैव भावस्त्रीवेद का ही उदय रहता है। वैसे ही देवो के द्रव्यपुरुष वेद के साथ सदैव भाव पुरुषवेद का ही उदय रहता है भोगभूमिज स्त्री पुरुषों के भी ऐसे होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भाव से तीनों वेदों से और द्रव्य से पुरुषलिंग से ही मुक्ति कही गई है।

भावसंग्रह में अवलोकन कीजिये—

जइ तप्पइ उग्गतवं मासे मासे च पारणं कुणइ।
तहविण सिज्झइ इत्थी कुच्छियलिंगस्स दोषेण ९२
मायापमायपउरा पडिमासं तेसु होइपक्खलणं।
णिच्च जोणिस्सावो दारूढं णत्थि चित्तस्स ॥९३॥
सुहुमापज्जत्ताण मणुआण जोणिणाहिकक्खेसु।
उप्पत्ती होइ सया अण्णेसु य तणुप्पदेसेसु ॥९४॥
ण हु अत्थि तेण तेसिं इत्थीण दुविहसंजमोद्धरणं।
संजमधरणेण विणा णहु मोक्खो तेण जम्मेण ९५
अहवा एयं वयणं तेसिं जीवो ण होइ किं जीवो।
किं णत्थि णाणदंसण उवओगो चेयणा तस्स ९६
जइ एवं तो इत्थी धीवरि कल्लालि वेसआईणं।
सव्वेसिमत्थि जीवो सयलाओ तरिहि सिज्झंति ९७
तम्हा इत्थीपज्जय पडुच्च जीवस्स पयडिदोसेण।
जाओ अभव्वकालो तम्हा तेसिं ण णिव्वाणं ॥९८॥
अइउत्तमसंहणणो उत्तमपुरिसो कुलग्गओ संतो।
मोक्खस्स होइ जुग्गो णिग्गंथो धरियजिणलिङ्गो ९९

आचार्य देवसेन कहते हैं कि, यदि उग्रतप तपें, महीने २ की पारणा करें तो भी स्त्री अपने कुत्सित-लिङ्गलिंग दोष के कारण सिद्ध नहीं होती स्त्रियां माया और प्रमाद से भरी पूरी होती हैं, प्रति महीने उनमें प्रस्खलन होता रहता है। हमेशा योनि झरती रहती है चित्त की दृढता भी उनके नहीं होती है। उनकी योनि, नाभि और कुक्ष तथा स्तन इन चारों ही स्थानों में सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यो की उत्पत्ति हमेशा होती रहती है इस कारण स्त्रियों के दोनों तरह के संयम का धारण नहीं होता है और संयम को धारण किये बिना स्त्री के जन्म से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

यदि यह कहा जाय कि क्या स्त्रियों के जीव नहीं है? या उनके ज्ञान, दर्शन उपयोग चेतना नहीं है?

यदि ऐसा है तो धीवरी, कलारी वेश्या आदि सब स्त्रियो के जीव है तो फिर सभो स्त्रिया सिद्ध हो जानी चाहिये।

इस लिये स्त्री पर्याय को लेकर जीव के प्रकृति दोष से अभव्यकाल हो गया है, इस कारण से उनके निर्वाण पद नहीं होता है। अति उत्तम संहनन अर्थात् प्रथम संहननवाला कुलीन, काणत्वादि दोष रहित उत्तम पुरुष मोक्ष के योग्य है जो कि निर्ग्रंथ और जिनलिङ्ग का धारी होता है।

सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ३२०—

लिंगेन केन सिद्धिः? अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धि भावतो, न द्रव्यतः। द्रव्यतः पुल्लिंगेनैव।

अर्थ—किस लिंग से सिद्धि होती है? कहते हैं कि अवेदपने से सिद्धि होती है, अथवा स्त्री पुरुष और नपुंसक इन तीनों भाववेदों से सिद्धि होती है, द्रव्यवेदों से नहीं, द्रव्यवेद से तो पुल्लिङ्ग से ही सिद्धि होती है। इससे द्रव्यस्त्री वेद से और द्रव्यनपुंसकवेद से मोक्ष सिद्धि नहीं होती है यह सिद्ध हुआ।

सागारधर्मामृत पृष्ठ ५५२—

त्रिस्थानदोषयुक्तायाप्यापवादिकलिंगिने।
महाव्रतार्थिने दद्याल्लिङ्गमौत्सर्गिक तदा ॥३५॥

टीका—दद्याद्वितरेत् निर्यापकाचार्य। किं तल्लिंग आचेलक्यादि चतुर्विध। किं विशिष्टमौत्सर्गिकं उत्सर्ग सकलपरिग्रहत्यागे भव नान्यमित्यर्थः। क्व तदा संस्तरारोहणकाले। कस्मै आपवादिकलिंगिने सग्रन्थ-लिंगाय आर्यायेत्यर्थः। किंविशिष्टायत्रिस्थानदोषयुक्ता-याऽपि त्रिस्थानेषु दोषो वृषणयोः कुण्डलातिलम्बमा-नत्वादिर्मेहने च चर्मरहितत्वातिदीर्घत्वासकृदुत्थान-शीलत्वादिस्तेन सहितायापि पुनः किं विशिष्टाय महा-व्रतार्थिने महाव्रतं याचमानाय दद्यात्।

उस समय (संस्तरारोहणकाल मे) जिनके तीनों स्थानों में दोष हैं और जो सग्रन्थ श्रावको के चिन्ह ग्रहण कर रहा है यदि ऐसा गृहस्थ भी महाव्रत की इच्छा करेगा तब उस गृहस्थ को निर्यापकाचार्य नग्नत्व चिन्ह अवश्य दे देवे। इस अभिप्रायका मथितार्थ सिद्ध हुआ कि द्रव्यपु लिङ्गसे ही मुक्ति होती है, न कि शेष द्रव्यवेदो से—

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने सूत्र पाहुड पृष्ठ २३ पर स्त्री पर्याय से 'मुक्ति' प्राप्ति का निषेध किया है। तथा—

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संऽकयाझाण ॥२६॥

स्त्रियों के चित्त शुद्ध न होने से उसके स्वभावतः परिणाम शिथिल रहते हैं। वह प्रत्येक मास में रजस्वला होती रहती है इसलिये उस स्त्री को निःशङ्क ध्यान नहीं होता है। अत एव उसको महाव्रत, केवलज्ञान और मोक्ष नहीं होता।

प्रवचनसार अ० ३—

णिच्छयदो इत्थीण सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा।
तम्हा तप्पडिरूवं वियप्पियं लिङ्गमित्थीणं ॥

निश्चय से स्त्रियोंके स्त्री जन्म से सिद्धि नहीं होती है, इस लिये स्त्रियों के उनके योग्य वस्त्र युक्त लिङ्ग कहा गया है। इत्यादि—

पच संग्रह अमितगति कृत—

वेदकर्मोदयोत्पन्नो भाववेदस्त्रिधा स्मृतः।
नामकर्मोदयोत्पन्नो द्रव्यवेदोऽपि च त्रिधा ॥
जीवस्वभावसम्मोहो भाववेदोऽभिधीयते।
योनिलिङ्गादिको दक्षैर्द्रव्यवेदः शरीरिणाम् ॥
स्त्री पु नपु सका जीवा. सदृशा द्रव्यभावतः।
जायन्ते विसदृशाश्च कर्मपाकनियन्त्रिताः ॥

वेदकर्म के उदय से उत्पन्न हुआ भाववेद तीन प्रकार का होता है और नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुआ द्रव्यवेद भी तीन प्रकार का है। जीवके स्वभाव का जो मोह है वह 'भाववेद' कहा गया है और प्राणियों के योनि लिंग आदि को दक्ष पुरुषों ने 'द्रव्यवेद' कहा है। स्त्री पुरुष और नपु सक जीव द्रव्य और भाव से सदृश (समान) होते हैं और कर्म के उदय से नियन्त्रित वे जीव द्रव्य भाव से विसदृश भी होते हैं।

धवला टीका वीरसेन स्वामी विरचिता—

जेसिं भावो इत्थिवेदो दव्वं पुण पुरिसवेदो ते वि जीवा सजमं पडिवज्जंति, दव्वित्थिवेदा सजमं, ण पडिवज्जंति सचेलत्तादो। भावित्थिवेदाण दव्वेण पु वेदाणवि सजदाण णाहाररिद्धी समुप्पज्जदि, दव्व-भावेण पुरिसवेदाणमेव समुप्पज्जदि।

जिनका भाव स्त्रीवेद है और द्रव्य पुरुषवेद है वे भी सयम को प्राप्त होते, हैं द्रव्यस्त्री वेद वाले जीव सयम को प्राप्त नहीं होते, क्योंकि वे सवस्त्र होते हैं। भाव से स्त्री वेद वाले द्रव्य से पुरुष वेद वाले भी

संयतों के आहार ऋद्धि उत्पन्न नहीं होती है किन्तु जो द्रव्य भाव दोनों से पुरुष वेद वाले हैं उन्हीं संयत मुनियों के आहार ऋद्धि प्राप्त होती है।

जयधवला सिद्धांत जिनसेन विरचित—

इत्थिपुरिसणवुंसय वेदाणमण्णदरोवेदपरिणामो एदस्स होइ। तिण्हपि तेसिमुदएण सेढिसमारोहणे पडिसेहाभावादो, णवरि दव्वदो पुरिसवेदो चेव खयगसेढिमारोहदि त्ति वत्तव्वं तत्थ पयारांतरा-सम्भवादो।

स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों में से कोई भी एक वेद परिणाम इस क्षपक श्रेणी में आरोहण करने वाले के होता है, क्योंकि उन तीनों वेदों के उदय से श्रेणी चढने का निषेध नहीं है, विशेष इतना है कि द्रव्य से पुरुषवेद ही क्षपक श्रेणी में आरोहण करता है ऐसा कहना चाहिये क्योंकि वहां पर प्रकारांतर (द्रव्य स्त्री वेद और द्रव्य नपुंसक वेद) असम्भव है।

इस समीक्षा मे भी द्रव्य पुरुष में तीनो भाववेद कहे गये हैं इससे वेद की समता-विषमता सुप्रसिद्ध होती है। द्रव्य स्त्री वेद वाले और द्रव्य नपुंसक वेद वाले श्रेणी नहीं चढ़ते हैं यह प्रतिषेध हुआ।

षट्खण्डागम यथा—

सामित्तेण उक्कस्सपदे आउयवेयणा।

कालदो उक्कस्सिया कस्से ? ॥१०॥

स्वामित्वानुपेक्षा से उत्कृष्टमें आयु कर्म की वेदना काल से उत्कृष्ट किसके होती है और उत्कृष्ट आयु कौन बांधता है ?

अण्णदरस्स मणुसस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणीयस्स वा, सण्णिस्स, सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स, कम्मभूमिस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा, संखेज्जवासाउअस्स, इत्थिवेदस्स वा, णवुंसयवेदस्स वा, जलचरस्स वा, थलचरस्स वा, सागारजागारतप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स वा तप्पाओग्गविसुद्धस्स वा, उक्कस्सियाए आबाधाए जस्स तं देवणिरयाउअं पढमसमए बंधनस्स आउअवेयणा उक्कस्सा।

वेयणाखण्डे भूतबल्याचार्यः।

भाव यह है कि संज्ञी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि, छह पर्याप्तियों से पर्याप्त कर्मभूमिज अथवा कर्मभूमि प्रतिभाग वाला, सख्यातवर्ष की आयु वाला स्त्रीवेद वाला अथवा पुरुषवेद वाला अथवा नपुंसकवेद वाला, जलचर अथवा स्थलचर, साकार उपयोग वाला, जागृत, उत्कृष्ट आयु योग्य विशुद्ध परिणाम वाला, उत्कृष्ट आबाधा वाला, देवायु और नरकायुको पूर्वकोटि विभाग के प्रथम समय में बांधने वाला ऐसा कोई मनुष्य अथवा पचेंद्रिय तिर्यंच जीव के उत्कृष्ट आयु वेदना होती है।

विशेषता यह है कि परभवसबंधी सातवें नरक की तेतीस सागर की उत्कृष्ट आयु के बांधने वाले तो सक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि, मनुष्य और तिर्यंच दोनो हैं और सर्वार्थसिद्धि सम्बन्धी तेतीस सागर की उत्कृष्ट देवायु के बांधने वाला विशुद्ध परिणामी सम्यग्दृष्टि निर्ग्रंथ मनुष्य है। जलचर तिर्यंच ही होते हैं मनुष्य नहीं होते। कर्मभूमि प्रतिभागवाले भी अन्तके आधे द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्रवर्ती तिर्यंच होते हैं शेष विशेषण दोनों के समान हैं। इतना विशेष और समझना चाहिये कि सम्यग्दृष्टि तिर्यंच भी विशुद्ध परिणामो से अपने योग्य अच्युत स्वर्ग सम्बन्धी देवायु को बांधता है।

इस उत्कृष्ट आयु के बांधने वाले मनुष्य और

तिर्यंच कहे गये हैं, दोनों का वेद, स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेद कहा गया है। अब यहां यथार्थ विचार किया जा सकता है कि नरक की और देव की उत्कृष्ट तेतीस सागर की आयु बांधने वाला मनुष्य द्रव्यपुरुष है या द्रव्यस्त्री है ? द्रव्यस्त्री तो है नहीं क्योंकि द्रव्यस्त्री ६ नरक से नीचे सातवें नरक में और अच्युत कल्प से ऊपर नवग्रैवेयकादिकों में नहीं जाती है। इस लिये उत्कृष्ट आयु का बंध करने वाला द्रव्यमनुष्य ही होता है। वह भावों में चाहे स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेदी हो। अन्यथा इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा नपुंसकवेदस्स वा, इस वेदविधान की कोई आवश्यकता नहीं थी।

यदि मनुष्य पद से द्रव्यपुरुष का ग्रहण न किया जायेगा द्रव्यस्त्रियां भी ग्रहण की जायेंगी तो इसका अर्थ यह होगा कि "द्रव्यस्त्रियां भी सातवें नरक की उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम नरकायु को बांधती हैं और सातवें नरक जाती हैं। तथा अच्युत से ऊपर नवग्रैवेयक, नवानुदिश, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, और सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तरों की उत्कृष्ट देवायु को बांध कर उनमें भी जाती हैं।"

इससे हानि क्या होगी ? जाने दो

आ पंचमीति सीहा इत्थीओ जाति छट्ठिपुढवीति

इस तिलोयपण्णत्तीसे बड़ा भारी विरोध आवेगा तथैव 'णियमा णिग्गंथलिंगेण' इस मूलाचार सूत्र से भी विरोध आवेगा। कारण, नवग्रैवेयकादिकों में उत्पाद निग्रंथता से ही होता है, स्त्रियों में वस्त्रत्याग न होने से निर्ग्रंथता का अभाव है।

पुंवेदोदयेन स्त्रिया अभिलाषारूपमैथुनसंज्ञाक्रांत. जीवो भावपुरुषो भवति, स्त्रीवेदोदयेन पुरुषाभिलाषारूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवो भावस्त्री भवति, नपुंसकवेदोदयेन उभयाभिलाषारूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवो भावनपुंसकं भवति। पुंवेदोदयेन निर्माणकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयवशेन श्मश्रु कूर्च शिश्नादिलिंगांकितशरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्यपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगकर्मोदयेन निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिंगलक्षितशरीरयुक्तो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंत द्रव्यस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयेन निर्माणकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयेन उभयलिंगव्यतिरिक्त-देहांकितो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमपर्यन्त द्रव्यनपुंसकजीवो भवति।

स्त्रीणां च परिग्रह संज्ञा—सद्भावात् क्षपकश्रेण्यारोहणाभावेन कुतो तासां मुक्तिः, वस्त्रत्यागपूर्वकसकलसंयमस्य परमागमे प्रतिषिद्धत्वात्ततः स्त्रीणां मुक्तिर्नास्तीति सिद्धः सत्सूरिसिद्धांत.।

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हि।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥ ६४७ ॥

गोम्मटसार जीवकांड (सम्यग्ज्ञानचंद्रिका टीका)

भाव यह है कि दर्शनमोह कर्म के क्षय का प्रारंभ केवली--श्रुतकेवली के पादमूल में कर्मभूमि में उत्पन्न हुआ मनुष्य करता है और उसका निष्ठापन चारों ही गतियों में कर सकता है।

गाथामें मनुष्यपद है जो 'द्रव्यमनुष्य' का वाचक है। द्रव्यमनुष्य के ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है। द्रव्यस्त्रियों के और द्रव्यनपुंसकों के क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है और क्षायिक सम्यक्त्व के बिना मुक्ति नहीं होती है। इस तरह गाथा सूत्र से स्त्रीमुक्ति का खण्डन हुआ।

—:स्त्रीमुक्ति के अन्य बाधक कारण:—

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कर्म कलंक मेट कर केवली पद अथवा मुक्तिपद केवल पुरुष ही प्राप्त कर सकते हैं या स्त्री भी मोक्ष पा सकती है ? सामने आये हुए इस प्रश्न का उत्तर दिगम्बरसम्प्रदाय तो यह देता है कि मुक्तिपद अथवा केवलीपद—पुरुष (द्रव्यवेद) ही प्राप्त कर सकता है। स्त्रीलिंग (द्रव्य-वेद), से मोक्ष की या केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती

इसी प्रश्न के उत्तर में श्वेतांबर स्थानकवासी सम्प्रदाय का कहना यह है कि पुरुष और स्त्री दोनो समान हैं। जिस कार्य को पुरुष कर सकता है उस कार्य को स्त्री भी कर सकती है। इस कारण मोक्ष या केवलज्ञान पुरुषके समान स्त्री भी प्राप्त कर सकती है।

इस कारण यहां उस विषय का निर्णय करते हैं कि स्त्री (द्रव्यवेदी यानी-स्त्री शरीर धारण करने वाली) अपने उसी स्त्री शरीर से मुक्ति प्राप्त कर सकती है या नहीं ?

तदर्थ—प्रथम ही यदि शक्ति की अपेक्षा से विचार किया जाय तो स्त्री के शरीर में प्राप्त करने योग्य वह शक्ति नहीं पायी जाती है जो कि पुरुष के शरीर मे पायी जाती है। इस कारण पुरुष तो घोर कठिन तपस्या करके कर्मजंजाल काट कर मुक्ति पद प्राप्त कर सकता है। किन्तु स्त्री उतनी ऊंची कठिन तपस्या तक पहुंच नहीं सकती असह्य परिषहों का निश्चलरूपसे सामना करके शुक्लध्यान प्राप्त नहीं कर सकती अत एव उसे मोक्ष मिलना असंभव है।

मोक्ष वज्रऋषभनाराच संहनन वाले को ही प्राप्त हो सकती है ऐसा प्रवचनसारोद्धार के (चौथाभाग) संग्रहणीसूत्र नामक प्रकरण की १६० वी गाथा मे ७४ पृष्ठ पर स्पष्ट लिखा है—

'पढमेण जाव सिद्धोवि' ॥ १६० ॥

अर्थात्—पहले वज्रऋषभनाराच संहनन से देव इन्द्र, अहमिन्द्र, आदि ऊंचे २ स्थान प्राप्त होते हुये मोक्ष तक प्राप्त हो सकती है। इसकारण अपने आप सिद्ध होजाता है कि स्त्री मोक्ष नहीं पाती क्योंकि मोक्ष पद प्राप्त करने का कारण वज्रऋषभनाराच संहनन उसके नहीं होता है। स्त्री के वज्रऋषभनाराच संहनन नहीं होता यह बात इसी गाथासे अर्थात् श्वेताम्बरीय ग्रन्थ के प्रमाण से सिद्ध होती है।

—:—सारांश—:—

ऊपर बतलाये हुये कारणों से श्वेताम्बर सम्प्रदाय का कथन असत्य प्रमाणित होता है क्योंकि ज्ञान, चारित्र, शक्ति, शुचिता आदि जिस किसी दृष्टिसे भी विचार करते हैं यह ही सिद्ध होता है कि स्त्री को महाव्रत, शुक्लध्यान होना, यथाख्यात चारित्रकी प्राप्ति तथा मोक्ष का मिलना असम्भव है इस स्त्री मुक्ति के विषय मे श्री शुभचन्द्राचार्य यों लिखते है—

स्त्रीणां निर्वाणसिद्धिः कथमपि न भवेत्सत्यशौर्याद्यभावात्, मायाशौचप्रपञ्चान्मलभयकलुषान्नीचजातेर-शक्तेः। साधूनां नत्यभावात्प्रबलचरणताभावतः-पुरुषतोऽन्य, भावाद्धिसागसत्त्वात्सकलविमलसद्ध्यान हीनत्वतश्च ॥

अर्थात्—स्त्रियो में सत्य, शूरता आदि गुणों का अभाव होता है, मायाचार, अपवित्रता उनमें अधि-कतर पाई जाती है। रज, मल, भय और कलुषता उनमें सदा रहता है, उनकी जाति नीच होती है, उन मे उत्कृष्ट बल नहीं होता है, साधु उनको नमस्कार नहीं करते, उत्कृष्ट चारित्र उनके नहीं होता है, वे पुरुषों से भिन्न स्वभाववाली होती हैं उनमें सम्पूर्ण निर्मल ध्यान की हीनता होती है। इस कारण स्त्रियों

को कदापि मुक्ति नहीं हो सकती ।

आचाराङ्गसूत्र (श्वेताम्बरीय ग्रन्थ) के आठवें अध्याय के सातवें उद्देश के ४३४ वें सूत्र में १२६ वें पृष्ठ पर लिखा है कि—"अदुवा तत्थ परक्कमतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसती सीयफासा फुसतो, तेउफासा फुसती दसमसगफासा फुसती, एगयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासा अहियासेति अचेले लाघविय आगममाणे । तवेसे अभिसमन्नागए भवति । जहेतं भगवया पवेदियं तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ॥४३४॥

अर्थात्—जो साधु लज्जा जीत सकता हो वह वस्त्र रहित नग्न ही रहे । नग्न रहकर तृणस्पर्श, सर्दी गर्मी दंशमशक तथा और भी अनुकूल प्रतिकूल जो परीषह आवें उन्हें सहन करे ऐसा करने से साधु को अल्पचिन्ता (थोड़ी फिक्र) रहती है वैसा जानकर जैसे बने तैसे रहे ।,

आचारांग सूत्र के इस कथन से स्पष्ट होता है कि श्वेताम्बरीय ग्रन्थकार भी कपड़ों को परिग्रह मानते हैं । उसके कारण साधु के चित्तपर चिन्ता भार का होना स्वीकार करते हैं तथा इसकी कमी का भी अनुभव करते हैं । यानी श्वेताम्बरीय ग्रन्थकारों के मत से भी वस्त्र एक परिग्रह है बिना उसका त्याग किये साधुको कपड़ों के सम्भालने, रखने, उठाने, रक्षा करने, धोने आदि सम्बन्धी मानसिक चिता दूर नहीं होती है और न तप पूर्ण होता है । इस कारण अभिप्राय यह साफ प्रगट होता है कि वस्त्र छोड़े बिना साधु का चारित्र पूर्ण नहीं होता और चारित्र पूर्ण न होने से वस्त्र रखते हुये साधु को मुक्ति नहीं हो सकती । इसलिये स्पष्ट है कि श्वेताम्बरो ग्रन्थकारो के मत से वस्त्र पहननेवाली स्त्रियों के चारित्र की पूर्णता नहीं हो सकती और चारित्र की पूर्णता बिना मोक्ष नहीं होती यह उनके शास्त्र से ही सिद्ध हो चुका है ।

इस प्रकार प्रोफेसर साहब के वक्तव्य को निस्सार तथा तर्क, सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, युक्ति व आगम से बाधित कथन करने वाला यह प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ।

सवस्त्र—मुक्ति निषेध

प्रोफेसर हीरालालजीका कहना है कि 'श्वेताम्बर सम्प्रदायमें समस्त वस्त्रका त्याग करके सब गुणस्थान प्राप्त कर सकता है और सवस्त्र से भी मोक्ष का अधिकारी हो सकता है किन्तु दिगम्बर सम्प्रदायानुसार परिपूर्ण वस्त्र के त्याग से ही सकल संयमी और मोक्ष का अधिकारी हो सकता है । अत एव इस विषय का शास्त्रीय चिंतवन अत्यावश्यक है ।

किन्तु प्रोफेसर साहब को यह विषय अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार कर अवलोकन करना चाहिये था । उनका यह कहना है कि 'दिगम्बर सम्प्रदायमें शास्त्रीय चिंतवन करना अत्यावश्यक है' बिलकुल अनुचित और युक्ति बाह्य है क्योंकि दिगम्बर मत में सूक्ष्मतम शास्त्रीय निर्णय होने से 'वस्त्रक परित्यागसे ही मुक्ति प्राप्त होती है' यह निश्चय किया गया है इस में आधुनिक शास्त्रीय दृष्टिमें विचार करने का कोई स्थल नहीं है ।

किन्तु आपके मन्तव्य के अनुसार हमें सम्पूर्ण शास्त्रीय पद्धति से विचार करना आवश्यक है क्योंकि इसका यथार्थ निर्णय किये बिना आपका समाधान नहीं होगा भावसंग्रह में लिखा है कि—

जइ सग्गंथो मुक्खं, तित्थयरो किं मुण्डणियरज्जं ।
रयणणिहाणेहि समं, किंणिवसइणिज्जणो रण्णे ।८८।
रयणणिहाणं छड्ड, सो किं णिण्हेइ कवलाखइं ।

दुग्गिय हई व पई, गिहत्थजोग्गवि जं कि पि ८६

श्वेताम्बर मतानुसार जब हाथी पर बैठी हुई और देवालय में बुहारी देती हुई स्त्रियों को भी मुक्ति हो जाती है तब तीर्थंकर जिन भगवान जिन को कि मुक्ति अवश्यभाविनी है वे रत्नोंके खजाने त्यागते हैं, निर्जन अरण्यमें निवास करते हैं, घोर तप तपते हैं, परीषह और उपसर्ग सहन करते हैं, ये सब क्यों करते हैं ? कहिये तो सही। इससे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि सग्रन्थलिङ्ग से मोक्ष नहीं होती। अतएव तीर्थङ्कर भी निर्ग्रंथलिङ्ग धारण करते हैं।

सग्रन्थ मुक्ति मानने वाले इस बात को स्वीकार करते हैं वे कहते हैं कि अचेल दो तरह के होते हैं, एक जिसके पास चल वस्त्र है अन्य वह जिसके पास वस्त्र नहीं है तीर्थंकर तो अचेल अर्थात् निर्वस्त्र होते हैं और शेष सचेल अर्थात् सवस्त्र होते हैं तथा निर्वस्त्र भी होते हैं ऐसा वे मानते हैं यथा बृहत्कल्प

दुविहा होंति अचेला सता चेलो असतचेलाय।
तित्थगर असतचेला सताचेला भवे सेसा ॥

श्री कुन्दकुन्दाचार्य लिखते हैं कि जिनशासन में वस्त्रधर सिद्ध नहीं होता वह वस्त्रधर चाहे तीर्थंकर हो क्यों न हो। मोक्षका मार्ग नग्न है, इसके अलावा शेष सब उन्मार्ग हैं, यथा सूत्रपाहुड़—

हरिहरतुल्लोवि णरो, सग्गं गच्छइ एइ भवकोडी।
तहवि ण पावइ सिद्धि, संसारत्थो पुणो भणिदो ८।

यानी ऐसा वस्त्रधारी मुनि हरिहरादिको के समान महा पराक्रमी है वह करोड़ो बार स्वर्ग ही जाता है जन्ममरण के चक्रावर्त में परिभ्रमण करता है उसको सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। षट्पाहुड़ ग्रन्थे यथा—

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठ परमजिणवरिंदेहि।
एक्को वि मोक्खमग्गो, सेसा य अमग्गया सव्वे ॥

निर्वस्त्र यानी नग्नमुद्रा स्वीकारकरना और अपने पाणिपुट में पर कर दिये हुये अन्नग्रहण करने को जिनागम मे निर्ग्रंथ दीक्षा कहा है यही एक अद्वितीय मोक्ष मार्ग हो सकता है और शेष सब कपोलकल्पित उन्मार्ग हैं। पात्रकेशरी स्तोत्र यथा—

जिनेश्वर! न ते मत पटकवस्त्रपात्रग्रहो,
विमृश्य सुखकारणं स्वयमशक्तकैः कल्पितः।
अथायमपि सत्पथस्तव भवेद् वृथा नग्नता,
न हस्तसुलभे फले सति तरु समारुह्यते।४१।

यदि वस्त्र आदि के पहने हुय भी मुक्ति हो सकती तो वस्त्र त्याग कर नग्न होना बुद्धिमानी नहीं है। जो कार्य वस्त्र धारण करने से हो सकता है उसको प्राप्त करने के लिये वस्त्र त्यागना यह कोई उचित मार्ग नहीं है। वृक्ष के जो फल भूमि पर खड़े खड़े ही हाथ से तोड़े जा सकते हो तो उन फलो को तोड़नेके लिये वृक्ष पर चढ़ना बुद्धिमानी नहीं है।

आचार्य शिवकोटि ने औत्सर्गिकलिङ्ग के चार भेद कहे है—एक आचेलक्य, दूसरा लोच, तीसरा व्युत्सृष्टशरीरता और चौथा प्रतिलेखन यथा—

अच्चेलक्कं लोचो वोसट्टसरीरदा य पडिलहणं।
एसोहु लिंगकप्पो चदुव्विहो होदि उस्सग्गे ॥८०॥

हां स्त्रियां रह गई हैं उनके भी मरण काल में कौन सा लिंग होता है सुनिये स्त्रियो के अर्थात् आर्यिकाओं के और श्राविकाओं के जो मरणकाल में परिग्रह कम करना चाहती हैं उनके भी औत्सर्गिकलिंग होता है। यथा—

इत्थीविय जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियं व इदरं वा।
तं तह होदि हु लिंगं परित्तमुवधिं करंतीए ॥८१॥

टीकाकार 'स्त्री' शब्द का अर्थ तपस्विनी और

'इतर' शब्द का अर्थ श्राविका करते हैं और कहते हैं कि जो स्त्रिया महर्द्धिक हैं लज्जावती हैं और मिथ्या-दृष्टि जिनके बंधुवर्ग हैं उनके प्राक्तन अपवादलिंग ही होता है, इनके अलावा औरों के मरणकाल मे वसतिका में वह औत्सर्गिकलिंग भी होता है।

बाईस परीषहो के अंदर नग्न परीषह भी बताई है जिसका स्वरूप तत्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में बतलाया है।

यथा—जातरूपवन्निष्कलकजातरूपधारणमशक्य-प्रार्थनीय याचनरक्षणहिंसनदोषविनिर्मुक्त निष्परि-ग्रहत्वान्निर्वाणप्राप्ति प्रत्येक साधनमनन्यबाधन-नाग्न्य बिभ्रतो मनोविक्रिया विप्लुति विरहात् स्त्री-रूपाण्यत्यन्ताशुचिकुणपरूपेण भावयतो रात्रिन्दिव ब्रह्मचर्यमखण्डमातिष्ठमानस्याचेलव्रतधारणमनवद्यम - वगन्तव्यम्।

अर्थात - निर्ग्रंथ व्रत है वह अचेलत्व और यथाजातरूप है और निष्परिग्रह होने से मोक्ष प्राप्ति का कारण है। इसके बिना मोक्ष नहीं है सो जानना।

इस व्रत को पालने में उनको महान कष्ट सहन करना पडता है अर्थात निर्विकार अवस्था करनी पडती है। और 'मैं नग्न हूं' ऐसा उनको प्रतीत होता है। तथा परम ध्यान लवलीन रहते हैं तब अपने को परम चिद्रूप चिदानंद मूर्ति ही समझते हैं। अर्थात 'मैं हूं सो ही परमात्मा है, परमात्मा है सो ही मैं हूं' ऐसी उज्वल भावना धारण करते हुये पृथिवी तलपर परमात्मा के सदृश विहार करते हैं। इसलिये ये नग्न परीषह निर्ग्रंथता की पुष्टि करता है। और सवस्त्रमुक्ति का सर्वथा निषेध करता है। अतएव यह नग्न परीषह साधुओं के लिये अनिवार्य है।

नग्नत्व अचेल से परिपूर्ण होता है क्योंकि नग्न अवस्था न रहने से शीत, उष्ण, डास, मच्छर, आदिकों से उत्पन्न संताप को सहना पडता है। इन परीषहों का सहन करना शास्त्रों में साधुओं को बत-लाया है और इनका पालन करना साधुओं के लिये नितात आवश्यक है। इनके पालन बिना साधु नहीं हो सकता और साधुत्व बिना मुक्ति नहीं।

प्रोफेसर साहब लिखते हैं कि—'तत्वार्थसूत्र अ० ९वा सूत्र ४९ में मुनि का लक्षण पाच प्रकार का है और इन पाचो निर्ग्रंथो में भेद किया है और यह भी लिख दिया है कि मुनि वस्त्र धारण कर सकते हैं और सवस्त्र में भी मुक्ति होती है और निवस्त्र में भी मुक्ति होती है।' तत्वार्थ सूत्र १० अध्याय के सूत्र ९ के आधार से आपने इसके अनुकूल प्रमाण भी दे दिया है। यथा—

निग्रन्थलिंगेन-सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धिर्भूतपूर्वनयापेक्षया

आपने जितने भी प्रमाण दिये हैं सो अनुचित व अप्रमाण है देखिये—

प्रस्तुत पाचो प्रकार के साधु (पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रंथ, स्नातक) निर्ग्रंथ ही हैं। सर्वार्थसिद्धि टीका (अ० ९ सूत्र ४९) में स्पष्ट लिखा है कि,

"त एते पचापि निर्ग्रंथा चारित्रपरिणामस्य प्रक-र्षाप्रकर्षभेदे सत्यपि नैगमसग्रहादिनयापेक्षया सर्वेऽपि ते निर्ग्रन्था ज्ञेया."।

इसका अर्थ यह है कि ये पाचो मुनिराज सकल-संग परित्यागी अर्थात दिगम्बर हैं। बाह्य और आभ्यन्तर की अपेक्षा से कुछ चारित्र मे वृद्धि, कमी होने परभी पाचोंमुनि सम्यग्दृष्टि और निर्ग्रंथ ही हैं।

कैसे ? सो देखिये—

पुलाक मुनि को क्वचित् कदाचित (कहीं कभी)

बलात्कार से अथवा दुर्जनों द्वारा उपसर्ग आदि होने से इन पाच महाव्रतो में कुछ दोष लगता है न कि अपनी इच्छा से। और उपसर्ग शांत होने पर प्रायश्चित्त से शुद्ध होकर फिर अपने अट्ठाईस मूलगुणो को पालने में तत्पर रहता है। क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, डास मच्छर आदि परीषहो को सहन करते हुये इससे आगे जो उत्तरगुण हैं, उनको पालनेकी भावना रखता है लेकिन पाल नहीं सकता। उत्तरगुण न पालने से मुनिपना नही रहता यह बात नहीं है। मुनियो के लिये अट्ठाईस मूलगुण पालना आवश्यक है। इस प्रकार पुलाक मुनि का लक्षण है।

बकुश मुनि दो प्रकार के होते हैं उपकरण बकुश और शरीर बकुश। उपकरण बकुश मुनिके मन में कमण्डलु, शास्त्र, पीछी को साफ उज्वल रखने आदि का मोह रहता है। इसके सिवाय और उनमे कोई दोष नहीं है। नोकषाय का कुछ उदय होने से ऐसे सजावट के परिणाम हो जाते हैं।

शरीर बकुश जो सब की वैयावृत्य आदि करने के हेतु से अथवा पठन पाठन आदि करने के हेतु से एकान्तर बेला तेला उपवासादि नहीं करता है, केवल दिन मे आगमानुसार एकबार खड़ा होकर आहारादि ग्रहण करता है इसमे कमी वेशी नहीं करता है तथा घुटने से ऊपर पैर अथवा हाथ धोने का निषेध है किन्तु वह मुनि घुटनेसे ऊपर हाथ पैर धोता तो नहीं है किन्तु गीले हाथो से घुटने के ऊपर के शरीर पर उष्णता गर्मी के कारण से हाथ फेरता है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ शरीर का संस्कार नहीं करता है।

कुशील मुनि के भी दो भेद हैं, एक प्रतिसेवन कुशील, दूसरा कषाय कुशील। प्रतिसेवन कुशील मुनि के उत्तरगुणो में कभी कारणवश दोष लगता है जैसे वृक्षमूल आतापन वगैरह कार्यों में, इसके सिवाय इसमे और कुछ दोष की सम्भावना नहीं रहती।

कषाय कुशील, निर्ग्रंथ और स्नातक इन तीनों में कोई दोष नहीं है। किन्तु कषाय कुशील से निर्ग्रन्थ मुनि की अवस्था ऊंची है। गुणस्थान, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात इन पाचो की अपेक्षा से पाचो में भेद है। इसके सिवाय और कोई मौलिक भेद नहीं हैं अत ये पाचो सम्यग्दृष्टि, निर्ग्रंथ दिगम्बर होते हैं। कुछएक दो भव लेकर और कुछ उसी भव से मोक्ष जाते हैं। इस प्रकार नय निक्षेप प्रमाण इत्यादिको से ग्रन्थ यथार्थ समझे बिना अर्थ विसंगत और विपरीत बैठ जाता है।

राजवार्तिक पृष्ठ ३५८ पर स्पष्ट लिखा है —

कश्चिदाह—यथागृहस्थः चारित्र-भेदान्निर्ग्रंथव्य-पदेशभाग् न भवति तथा पुलाकादीनामपि प्रकृष्ट-प्रकृष्टमध्यमचारित्रभेदान्निर्ग्रंथत्व नोपपद्यते।

न वैष दोष, कुत.-यथा जात्या चारित्राध्ययनादि भेदेन भिन्नेषु ब्राह्मणशब्दोवर्तते तथा निर्ग्रंथशब्दोऽपि। किं च—सम्यग्दर्शन निर्ग्रंथरूप च भूषावेशायुधविर-हित तत्सामान्ययोगात्सर्वेषु हि पुलाकादिषु निर्ग्रंथ-शब्दो युक्त।

यदि भग्नव्रतेऽपि निर्ग्रंथशब्दो वर्तते श्रावकेऽपि स्यादित्यतिप्रसङ्गः।

नैष दोष, कुतो रूपाभावात्, निर्ग्रन्थरूपमत्र न. प्रमाण, न च श्रावके तदस्तीति नातिप्रसङ्ग।

स्यादेतत्, यथारूप प्रमाण अन्यस्मिन्नपि सरूपे निर्ग्रन्थव्यपदेश प्राप्नोतीति।

तन्न किं कारण ?

दृष्टयभावात्, दृष्टया सह यत्र रूप तत्र निर्ग्रंथ-व्यपदेशः, न रूपमात्रे, इति।

पाठक महोदय भगवान् अकलंकाचार्य के वाक्यों पर गौर कीजिये वे पाचों पुलाकादिकों को सम्यग्दर्शन और निर्ग्रंथरूप से युक्त मानते हैं, वस्त्रधारी श्रावकों को वे निर्ग्रंथ नहीं मानते, चाहे कौपीन मात्रधारी उत्कृष्ट श्रावक ही क्यों न हो। फिर धोती, दुपट्टे, कम्बल पहनने और ओढने वालों की बात बड़ी दूर जा पड़ती है।

निर्ग्रंथ शब्द की व्याख्या भी वे भूषा, वेश, आयुध रहित करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पुला-कादि पाचों निर्ग्रंथ भूषा, अर्थात् आभूषणों से, वेष अर्थात् वस्त्रों से, आयुध अर्थात् शस्त्र अस्त्र आदि से रहित नग्न हैं।

फिर भी कमाल है कि प्रोफेसर जी कहते हैं 'सर्वार्थसिद्धि व राजवार्तिक टीका के अनुसार कहीं भी वस्त्रत्याग अनिवार्य नहीं पाया जाता है। इत्यादि' आचार्य विद्यानन्दि तो स्पष्ट शब्दों में निर्ग्रंथ शब्द का अर्थ 'यथाजात, भूषा, वेष आयुध से रहित' करते हैं यथा—

निर्ग्रंथरूपं हि यथाजात-रूपमसंस्कृत भूषावेशा—युधविरहितम्।

श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४०७।

भगवान अकलंकदेव और विद्यानन्द आचार्य की यह मान्यता गणधरगौतम की मान्यता के अवि-रुद्ध है।

देखिये चैत्यभक्ति पृष्ठ २३२।

हे भगवन्! आपका रूप रागभाव का उदय न होने से आभरण रहित होते हुये भी भासुर अर्थात् ऊंची शोभा को लिये हुये है। आपका स्वाभाविक रूप निर्दोष है इस लिये वस्त्र रहित होते हुए भी मनोहर है। आपका यह रूप न तो औरों के द्वारा हिंस्य है और न औरों का हिंसक है इसलिये आयुध रहित होने पर भी अत्यन्त निर्भय स्वरूप है। तथा नाना प्रकार की क्षुत्पिपासादि वेदनाओं के विनाश हो जाने से आहार न करते हुये भी तृप्तिमान है।

यथा—निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदया-
न्निरम्बरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसक्रमात्,
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ॥३२॥

इस चैत्यभक्ति के श्लोक में भगवान तीर्थंकर का स्वरूप आभरण रहित, वस्त्र रहित और आयुध रहित कहा गया है। तथा यह भी इस श्लोक में कहा गया है कि 'भगवान कवलाहार से रहित हैं'। गणधरदेव ने भी भगवत्प्रतिमा का स्वरूप ऐसा लिखा है।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः,
प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कान्त्या,
प्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे ॥१३॥

आयुध विकार आभूषणों से रहित अपने स्वरूप में स्थित, कांति कर अतुल्य, कृतकृत्य जिनेश्वरों की चैत्यालयों में विराजमान प्रतिमाओं की मैं गौतम वन्दना करता हूं। अर्थात् जैसे जिनेश्वर का स्वरूप व उनकी प्रतिमा का जैसा स्वरूप है वैसा ही उनके शिष्य-प्रशिष्यों का स्वरूप होना चाहिये इसमें आश्चर्य क्या?

भर्तृहरि लिखते हैं—

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी,
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः।
शय्याभूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्,

थे ते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भय योगिनः ॥

हम प्रोफेसर जी से पूछते हैं कि अपवादलिंग का धारक शुद्ध होता है या नहीं ? यदि होता है तो किस उपाय से ? उत्तर देखिये—

अववादियलिंगकदोवि सत्ति, अगूहमाणोय ।
णिंदणगरहण जुत्तो उवधि परिहरतो ॥८७॥

विजयोदया टीका—अचेलक्क गद । अववादिय-लिंगकदो वि अपवादलिंगस्थोऽपि । करोति स्थानार्थे-वृत्तिरिह परिगृहीतः । यथा च प्रयोग एव च कृत्वा एव च स्थित्वेत्यर्थे शुध्यति च । कर्ममलापायेन शुध्यति । कीदृक् सन य स्वा शक्ति, अगूहमानः सन परिग्रह परिहरतो परित्यजन योगत्रयेण । सकलपरि-ग्रहत्यागो मुक्तेर्मार्गः, मया तु पातकेन वस्त्रपात्रादिक परिग्रह परीषहभीरुणा गृहीत , इत्यन्त सतापा निंदा ताभ्या युक्त. निंदागर्हाक्रियापरिणत इति यावत ।

उक्त सब गाथाओ मे अचेलता का कितना ऊचा माहात्म्य दिखाया है । जो माहात्म्य अचेलता मे है वह सचेलता म नहीं है यह बात भी अचेलता के माहा-त्म्य मे स्पष्ट हो जाती है । 'मुक्ति का उपाय भी अचे-लता, नग्नता, निवस्त्रता ही है इसमें विपरीत अ—नग्नता, यानी सवस्त्रता मुक्ति का उपाय नहीं है ।' यह बात उक्त गाथा सूत्रो पर मे तथा विजयोदया टीका पर से निर्भ्रान्त सिद्ध होती है । जो महोदय भगवती आराधना के अपवादलिंग से मुक्ति कह रहे है, उन्हे भगवती आराधना शास्त्र को कम से कम देखना तो चाहिए ।

अपवादलिंगधारण करनेवाले आर्यादिक अर्थात ऐलकादिक शुद्ध नहीं होते है क्या ? ऐसा प्रश्न उप-स्थित होने पर 'उनकी भी शुद्धि आगे कहे गये क्रम मे होती है' ऐसा आचार्य कहते है । अपवादलिंग—धारी ऐलकादिक भी अपनी चारित्र धारण शक्ति को न छिपाते हुए कर्ममल निकल जाने पर शुद्ध होते हैं क्योंकि वे अपनी निंदा, गर्हा इत्यादि करते है और मन वचन शरीर ऐसे तीनो योगपूर्वक परिग्रह त्याग करते है । 'सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना ही मुक्ति का मार्ग है, परन्तु परीषहो के भय से पापोदय से मैं ने वस्त्र परिग्रह का ग्रहण किया है ऐसी मनमे वह निंदा करता है तथा गुरु के समीप अपनी निंदा करता है, निन्दा और गर्हा ऐसे दो परिणामो से युक्त होकर परिग्रह अल्प करता है । अतएव उसकी पूर्व कर्म की निर्जरा होकर आत्मशुद्धि होती है ।

टीकाकार अपराजित सूरि निंदा गर्हा को निम्न-लिखित शब्दो में स्पष्ट स्पष्ट करते हैं ।

सकलपरिग्रहत्यागो मुक्तेर्मार्गो मया तु पातकेन वस्त्रपात्रादिक. परिग्रह. परीषहभीरुणा गृहीत इत्यत: सन्तापो निन्दा ।'

अर्थात—सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग मुक्ति का मार्ग है । मुझ परीषह भीरु पापीने वस्त्र पात्र आदि परिग्रहण कर रखा है ।

अब पाठक सोचिये यदि अपवादलिंग मे मुक्ति प्राप्ति का गुण होता तो मूलकर्ता शिवार्य क्यों उसकी निन्दा-गर्हा का विधान करते और विजयाचार्य क्यों उसे स्पष्ट करते । जब परिग्रह से मुक्ति हो सकती है तो शिवार्य उसका त्याग क्यो कराते है और नग्नता का इतना स्पष्ट रीत्या गुणगान करते हुये उसे मुक्ति का मार्ग क्यो मानते है ?

भगवतीकार यो तो महर्द्धिक आदि मनुष्यो को और स्त्रियो को अपवादलिंग धारण करने का और मरणकाल में उन्हे उत्सर्गलिंग प्रदान करने का विधान कर गये हैं तथा सामान्यत. अविरत अर्थात

श्रावकों के अपवादलिंग का भी विधान कर गये हैं। परन्तु स्पष्ट सरल शब्दों में उनका नाम ग्रहण कर रहे हैं। टीकाकार भी प्रायः उनके अनुकूल प्रतीत हो रहे हैं। हां, 'तपस्विनीनां और श्राविकाणां' इन पदों का प्रयोग वे अवश्य करते हैं इस से यह विदित होता है कि अपवादलिंगधारी तपस्विनी, और उत्कृष्ट श्राविका होती हैं। इससे अपवादलिंग के दो भेद सूचित हो जाते हैं।

साराश यह निकलता है कि उत्सर्गलिंग के धारी मुनि होते हैं तथा अपवादलिंग के धारी उत्कृष्ट श्रावक, श्राविकाएं और आर्यिकाएं होती हैं। इस प्रकार अपवादलिंग के दो भेद हो जाते हैं एक उत्कृष्ट श्रावकलिंग और दूसरा आर्यिकालिंग।

भगवती आराधना का यह उपदेश कुन्दकुन्द प्रभृति के उपदेश का ही अनुसरण करता है कुन्दकुन्ददेव भी कहते हैं कि एक लिंग तो जिनेन्द्र का नग्न रूप है, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का रूप है और तीसरा आर्यिकाओं का रूप है इन तीन लिंगों को छोड़ कर जिनागम में अन्य कोई चौथा लिंग नहीं है। यथा—

> एगं जिणस्स रूवं वीयं उक्किट्ठसावयाणं तु।
> अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुणलिंग दंसणे णत्थि॥

तब कहिये! मुक्ति पहुंचानेवाला वस्त्रधारी चौथा लिंग कहां से आया यह समझ में नहीं आता। कुन्दकुन्दाचार्य उत्सर्ग और अपवाद भेद न करके उन्हीं के जिनलिंग, उत्कृष्ट श्रावकलिंग और आर्यिकालिंग ऐसे तीन भेद करते हैं इसलिये दोनों आचार्यों के शासन में शब्द भेद छोड़कर अर्थ भेदमें अविरोध है यह बात सिद्ध हुई। अशाधर जी का प्रमाण—

> यदौत्सर्गिकमन्यद्वा लिंगमुक्तं जिनैः स्त्रियाः।
> पुंवत्तदिष्यते मृत्युकाले स्वल्पीकृतोपधेः॥३८॥

टीका—यल्लिंगमौत्सर्गिकमन्यद्वा पदादिकं स्त्रियाः जिनैरुक्तं तन्मृत्युकाले तस्या स्वल्पीकृतोपधेः विविक्तवसत्यादिसम्पत्तौ सत्या वस्त्रमात्रमपि त्यक्तवत्याः कृतैरिष्यते अभिमन्यते। कस्येव पुंवत्। अयमर्थः पुंसो यदौत्सर्गिकलिंगस्य मृत्यावौत्सर्गिकमेवलिंगमिष्यते आपवादिकलिंगस्य चानन्तरमेव व्याख्यात-प्रकारं तदा योषितोपि।

अब औत्सर्गिकलिंगके गुण बतलाते हैं जो भगवती आराधना के कर्ता शिवकोटि के द्वारा कहे गये हैं। लिंगग्रहण मे यह गुण है—

यात्रासाधन चिह्नकरण यह पहला गुण है, इसको टीकाकार इन शब्दों से स्पष्ट करते हैं कि यात्रा नाम शरीरकी स्थितिका कारणभूत भोजन क्रिया है उसका साधन चिह्न लिंग है क्योंकि गृहस्थ वेशमें भी जिनके समस्त उपाधि परिग्रह नष्ट हो चुके हैं ऐसे स्त्रीजीव को भी मृत्यु समय में ग्रहण करने के लिये कुछ हर्ज नहीं है, इस प्रकार शास्त्रज्ञ मुनिको सम्मत है। इसका खुलासा आगे की गाथा में किया जायगा।

> जत्तासाधणचिह्नकरणं खु जगपच्चयादठिदिकरणं।
> गिहभावविवेगोवि य लिंगग्गहणे गुणा होंति॥७९॥
> —भगवती आराधना

विजयोदया—यात्रा शरीरस्थितिहेतुर्भुजि क्रिया। तस्याः साधनं यल्लिंगजातं तस्य करणं। न हि गृहस्थवेषेण स्थितो गुणी इति सर्वे जनताधिगम्यो भवति। अज्ञातगुणविशेषश्च दानं न प्रयच्छति। ततो न स्याच्छरीरस्थिति। असत्या तस्या रत्नत्रयभावनाप्रकर्षः क्रमेणोपचीयमानो न स्यात्। विना तं न मुक्तिरित्यभिलषितकार्यसिद्धिरेव न स्यात्। गुणवत्ताया सूचनं लिंगं भवति। ततो दानादिपरम्परया

कार्यसिद्धिर्भवतीति भावः। अथवा यात्राशब्दो गति-वचनः यथा देवदत्तस्य यात्राकालोऽयम्। गतिसामान्यवचनादप्यत्र शिवगतावेव वर्तते। दारकं पश्यसीति यथा यात्राया शिवगतेः साधनं रत्नत्रयं तस्य चिह्नकरणं ध्वजकरणं। जगच्छब्दोऽत्र चेतनाचेतनद्रव्य-संहतिवचनो 'जगन्नैकावस्थं युगपदखिलानन्तविषयम्' इत्येवमादौ। इह प्राणिविशेषवृत्तिः। यथा-'अर्हतश्चिजगद्वन्द्यान्' इति। प्रत्ययशब्दोऽनेकार्थः। क्वचिज्ज्ञाने वर्तते यथा—'घटस्य प्रत्ययो' घट—ज्ञानमिति यावत्। तथा कारणवचनोऽपि 'मिथ्यात्वप्रत्ययोऽनन्तः संसारः' इति गदिते मिथ्यात्वहेतुकः इति प्रतीयते। तथा श्रद्धावचनोऽपि 'अयं अत्रास्य प्रत्ययः' श्रद्धेति गम्यते। इहापि श्रद्धावृत्तिः जगतः श्रद्धेति। ननु श्रद्धा प्राणिधर्मः अचेलादिकं शरीरधर्मो लिंगं तत्किमुच्यते 'लिंग जगत्प्रत्यय' इति। सकलसङ्ग-परिहारो मार्गो मुक्तेः इत्यत्र भव्यानां श्रद्धां जनयति। लिंगमिति जगत्प्रत्यय इत्यभिहितं। न चेत्सकल-परिग्रहत्यागो मुक्तिलिंगं किमिति नियोगतोऽनुष्ठी-यते इति।

आत्मनः स्वस्य अस्थिरस्य स्थिरतापादनं। क्व? मुक्ति वर्त्मनि प्रजने। किं मम परित्यक्तवसनस्य रागेण, रोषेण, मानेन, मायया, लोभेन वा। वस नामसरा सर्वा लोकेऽलक्रिया तच्च निरस्तं। को मम रागस्यावसर इति। तथा परिग्रहो निबन्धनं कोपस्य। तथा हि पित्रा सुतो युध्यते धनार्थितया ममेदं भवति तवेदमिति। तत्किमनेन स्वजनवैरिणा रिक्थेन, लोभं, आयासं पापं, दुर्गतिं च वर्द्धयताइति सकलं परित्यक्तो वसनपुरःसरं परिग्रहो रोष-विजितये। हसन्ति च मा परे सावद्यो रोषमुपयातम्। केयमवसनता मुमुक्षो काममस्य कोपहुताशनः ज्ञान-जलसेकपरिवृद्धतपोवनविनाशनबद्धविभ्रम इति। तथा च माया धनार्थिभिः प्रयुज्यते मायः तिर्यग्गतिं प्रापयतीति भीत्वा मायोन्मूलनार्थं वेदमनुष्ठितम्।

अर्थ—उत्सर्गलिंग अर्थात् नग्नता यह यात्रा का साधन है अर्थात् शरीर स्थिर रहने के लिये कारणीभूत जो आहार उसकी प्राप्ति होने के लिये कारणरूप चिह्न है। गृहस्थवेश से ही यदि भिक्षु भी रहने लगें तो 'यह गुणी है' ऐसे न समझे जायेंगे तथा उनका आदर न होगा। गृहस्थ वेश से उनके विशिष्ट गुण ज्ञात न होने से गृहस्थ उनको दान न देंगे। दान न मिलने से उनके शरीर की स्थिरता न होगी। शरीर-स्थिति के बिना रत्नत्रय भावनाका प्रकर्ष कैसे होगा?

रत्नत्रय के प्रकर्ष से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है उसके बिना वह मुक्ति न मिलेगी। अत एव अभि-लषित कार्य अर्थात् मुक्ति प्राप्ति गृहस्थ वेश से होती नहीं। इसलिये यह नग्नता गुणीपना का सूचक चिह्न है। इस नग्नता गुण से दानादि कार्य परम्परा की सिद्धि होती है। अथवा यात्रा सामान्य गति वाचक है जैसे 'देवदत्तस्य यात्राकालोऽयम्' अर्थात् यह देवदत्त का गमनकाल है। यहां यद्यपि यात्रा शब्द सामान्य गति वाचक है तो भी प्रस्तुत प्रकरण में वह शिवगति—मोक्ष गमन इस अर्थ में रूढ़ समझना चाहिये 'दारकं पश्यसि' इस वाक्य में दारक शब्दका सामान्य अर्थ लड़का ऐसा होने पर भी जो लड़केको देख रहा था उसका ही वह लड़का है ऐसा अभिप्राय सिद्ध होता है उसी तरह 'जत्तासाधणचिह्नकरणं' इस समुच्चय का अर्थ यात्रा का अर्थात् मोक्षगति का साधन रत्नत्रय उसका नग्नता यह लिंग ध्वज के समान है।

इस लिंग से जगत्प्रत्ययता यह गुण है 'जगत्प्र-

स्यय.' अर्थात् सर्व जगत की इसके ऊपर श्रद्धा होती है। चेतन अचेतनरूप सम्पूर्ण द्रव्य समूहको जगत कहते हैं ऐसा अन्य प्रकरण में जगत शब्द का अर्थ होगा। 'जगन्नैकावस्थं युगपदखिलानन्तविषयम्' अर्थात् चेतनाचेतनरूपी इस जगत की एक अवस्था नहीं है, यह सम्पूर्ण और अनन्त पर्यायों को धारण करने वाला है। परन्तु प्रस्तुत प्रकरणमें जगत शब्द का अर्थ प्राणि विशेष ही करना चाहिये। जैसे 'अर्हन्तस्त्रिजगद्वन्द्यान्' अर्थात् इंद्र, देव, मनुष्य व सिद्धादि तिर्यंच ऐसे विशिष्ट प्राणियों से वंदनीय जिनेश्वर को हम नमस्कार करते हैं। यहां जगत शब्द का 'विशिष्ट प्राणी' ऐसा अर्थ होता है। प्रत्यय शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं जैसे 'घटस्य प्रत्यय.' यानी घट का ज्ञान, यहां प्रत्यय शब्द कारण वाचक भी है जैसे 'मिथ्यात्वप्रत्यय. अनन्तसंसार.' अर्थात् इस अनन्तसंसार का मिथ्यात्व कारण है। प्रत्यय शब्द का 'श्रद्धा' ऐसा भी अर्थ होता है जैसे 'अयं अत्रास्य प्रत्यय' इस मनुष्य की इसके ऊपर श्रद्धा है। यहां प्रस्तुत प्रकरण में प्रत्यय शब्द का 'श्रद्धा' यह अभीष्ट अर्थ है। साधुकी नग्नता देखकर उनमें सब जगत का श्रद्धान होता है ऐसा जगत्प्रत्यय शब्द का अभिप्राय समझ लेना चाहिये।

शंका—श्रद्धा प्राणियों का स्वभाव है और अचेलतादिक शरीर का धर्म है अतएव लिंग का जगत्प्रत्यय यह विशेषण कैसे उपयुक्त है?

उत्तर—सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग ही मुक्ति का मार्ग है ऐसी नग्नता देख कर श्रद्धा उत्पन्न होती है अतएव लिंग का यह विशेषण सार्थक है, सम्पूर्ण परिग्रह त्याग ही मुक्ति का लिंग यदि नहीं होता तो नियोग से क्यों उसकी आराधना की जाती है?

नग्नता में 'आर्दाठीदिकरण' नामक एक गुण है 'अपने में अस्थिरता को निकाल कर स्थिरता उत्पन्न करना' यह आर्दाठीदिकरण इस शब्द का अर्थ है, मुक्ति मार्ग में प्रयाण करने में स्थिर होना ऐसा इस का अभिप्राय है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मुनि विचार करते हैं मैंने वस्त्र का त्याग किया है अतएव राग, द्वेष, अभिमान, माया और लोभ इनसे मेरा क्या प्रयोजन है? वस्त्र की इच्छा ही अलङ्कार आदि इच्छाओं को प्रगट करती है अर्थात् वस्त्र यदि पास होवे तो अलङ्कारादिक भी मुझे मिलेंगे तो अच्छा ही होगा ऐसी इच्छा होती है मैंने, वस्त्र ही फेंक दिया है अब रागभावना से मेरा क्या प्रयोजन है ऐसा विचार करते हैं।

तथा परिग्रह क्रोध उत्पत्ति का कारण है धन की आवश्यकता पडने पर पुत्र भी अपने पिता से लड़ता है यह धन मेरा है यह धन तेरा है इस रीति से झगडा करता है, अतएव स्वजनों में वैर उपस्थित करने वाले धन को लेकर मैं क्या करूं? यह परिग्रह लोभ, आयास पाप व दुर्गति को उत्पन्न करता है इसलिये मैंने वस्त्र प्रमुख समस्त परिग्रह को इस क्रोध को जीतने केलिये छोड दिया है, मैं यदि रोषवश होऊं तो मुझे इतरसाधु हसेंगे, वे कहेंगे देखिये इनकी नग्नता और देखिये इनकी कोपाग्नि। यह कोपाग्नि ज्ञान जलमें सींचा और वृद्धिगत हुआ, ऐसे तपरूपी वन का नाश करने केलिये तयार हुआ है।

धनिक लोग सदा कपट व्यवहारमें लगे रहतेहैं। वह उनको तिर्यग्गति में पटकता है। अतएव ऐसे घोर कपट से भयभीत होकर उसका नाश करने के लिये ही मैंने यह मुनिपद धारण किया है, ऐसा विचार मुनि मन में करते हैं। अतएव नग्नता

आत्मस्थिति करण गुणों को उत्पन्न करती है, ऐसा कहना युक्तिसङ्गत है इस नग्नता से मुनि गृहस्थों से, भिन्न है ऐसा भी व्यक्त होता है।

गंथच्चाओ लाघवमप्पडिलिहणं च गदभयत्तं च।
ससज्जणपरिहारो परिकम्मविवज्जणाचेव ॥८३॥

टीका—गंथच्चाओ परिग्रहत्याग. । लाघव हृदय-सम रोपित—शैल इव भवति परिग्रहवान् कथमिद-मन्येभ्य श्चौरादिभ्य. पालयामि इति दुधरचित्तखेद-विगमाल्लघुता भवति।

अर्थ—ग्रन्थत्याग लाघव, अप्रतिलेखन, गतभय-त्व, ससर्गपरिहार, परिकमविवजन ऐसे गुण मुनि-लिंग में समाविष्ट हुए हैं।

ग्रन्थत्याग— मुनिलिंग धारण करने से परिग्रह त्याग होता है, लाघव-परिग्रहवान मनुष्य का परि-ग्रह छाती पर रखे हुय पर्वत स समान बहुत कष्टप्रद होता है, परन्तु जो परिग्रह रहित है उसको अपने ऊपर से बड़ा भारी परिग्रह का बोझ उतर गया सा ज्ञात होता है। अतएव मुनिलिंग में लाघव गुण है यह बात सिद्ध हो जाती है। इस परिग्रह का मै चार आदि स कैसे रक्षा करू ? ऐसी चिंता निष्परिग्रही को नहीं होती, अत एव तद्विषयक खेद का नाश होने से लघुता गुण प्राप्त हो जाता है।

अप्रतिलेखन—जो सवस्त्र लिंग धारण करते हैं उनको वस्त्रखण्डादिक को बहुत शोधना पड़ता है परन्तु मयूरपिच्छ मात्र जिनके पास है उनको बहुत सोधने की आवश्यकता नहीं रहती है अतएव अप्रति-लेखन गुण उनको प्राप्त होता है।

परिकर्मवर्जना—वस्त्रके विषयमे याचना करना, उसको सीना, धूप मे सुखाना, जल स धोना, वगैरह अनेक क्रियाये करनी पड़ती हैं, तपध्यान, स्वाध्याया-दि कार्य में विघ्न उपस्थित होता है परन्तु जो मुनि अचेल हैं वस्त्र के त्यागी हैं उनको याचनादि कार्य नहीं करने पड़ते हैं। अतएव उनके ध्यान स्वाध्याया-दि क्रियायें निर्विघ्न होती रहती हैं।

गतभयत्व—निर्वस्त्र मुनीश्वरको परिग्रह न होने से भय नहीं रहता भय से जिसका चित्त व्याकुल हो उठा है उसकी रत्नत्रय में प्रवृत्ति नहीं होती, सवस्त्र मुनि वस्त्र मे यूकादि सम्मूर्च्छन जीवों का परिहार करने के लिये व्याकुल रहता है किन्तु निर्वस्त्र मुनि के पास वस्त्रही नहीं अत जूं आदि सम्मूर्च्छन जीवों का परिहार करने की उसमें आकुलता भी नहीं यह भी इसमें विशेषता है।

परीषहअधिवासना—नग्नमुनि शीत उष्ण, दश-मशकादि परीषह सहन करते हैं किन्तु वस्त्रवेष्टित यति को शीतादि बाधा नहीं होती अतएव वे शीतादि परीषह विजयी नहीं है पूर्वोपार्जित कर्म की निर्जरा करने के लिये परीषह सहन करने चाहिये ऐसा आ-गमवचन है इस लिये निर्जरार्थी मुनियों को परीषह सहन करनी चाहिये।

विस्सासकर-रूव अणादरो विसयदेहसुक्खेसु।
सव्वत्थ अप्पवसदा,परिसहअधिवासणा चेव ॥८४॥

टीका—विश्वासकारि जनाना रूप अचेलता-त्मक। एव असङ्गा नैतेऽन्यद्गृह्णन्ति नापि परोपघात-कारि शस्त्रग्रहण प्रच्छन्नमात्र सम्भाव्यते। विरूपेसु चामोषु नास्मदीया. स्त्रियो रागमनुबध्नतीति। अणा-दरो विसयदेहसुक्खेसु। विषयजनितेषु शरीरसुखेषु प्रेताकारस्य किं मम वामलोचनाविलोकितेन। तासा कलगीतश्रवणेन। ताभिर्जुगुप्सनीयस्य शरीरस्य का वा रतिक्रीडेति भावना चैवानादर अथवा शरीर सुखे विषय सुखे-चानादर.। विषयसुखव्यतिरेकेण न

शरीरसुखं, नाम किंचिदिति चेन् शरीरदुःखाभावः शारीरसुखं। इन्द्रियविषयसन्निधानजनिता प्रीतिर्विषयसुखमिति महाननयोर्भेदः। सङ्ग्रन्थ सर्वस्मिन्देशे, अप्यवसदा आत्मवशता। स्वेच्छया आस्ते, गच्छति, शेते वा। इहासनादिकरणे इदं मम विनश्यति वस्त्विति तदनुरोधकृता परतन्त्रता नास्ति संयतस्य। परिग्रह विनाशभीकरात्मनोऽयोग्येपि उद्गमादिदोषोपहते प्राणिसंयमविनाशकारिणि वा आसनस्थानशयनादिकं सपादय'त। त्रसस्थावरबाधाभावहता वर्त्मना व्रजति। एतद्दोषपरिहारोऽसगस्य भवति। परीसह अधियासणा चेव पूर्वोपात्तकर्मनिर्जरार्थिना यतिना सोढव्याः परीषहा नियोगेन क्षुदादयो बाधाविशेषः द्वाविंशतिप्रकारः तत्रायं सामान्यवचनोऽपि परीषहशब्दः प्रकरणादचेलाख्यानदनुरूपपरीषहवृत्तिर्ग्राह्यः। तेन नाग्न्य-शीतोष्ण-दंशमशकपरीषह-सहनमिह कथितं भवति। सचेलस्य हि सप्रावरणस्य न तादृशी शीतोष्ण-दंशमशकजनिता पीडा यथा अचेलस्येति मन्यते।

अर्थ—निर्वस्त्रता ही विश्वास उत्पन्न करानेवाली है इसका कोई हरण नहीं करता। निवस्त्र मुनि के पास शस्त्रादिक छिपे हुये नहीं रह सकते हैं। अर्थात शस्त्रादि परोपघातक वस्तु उनके पास रहती भी नहीं है, अतएव उनके ऊपर लोगों का विश्वास उत्पन्न होता है, वस्त्ररहित होने से विरूप ही दीखने वाले मुनियों पर स्त्रियां मोहित नहीं होती हैं। अतएव उन पर लोग विश्वास करते हैं।

अनादर—परिग्रह का त्याग करनेसे विषयजनित सुखों से आदर नष्ट होता है, 'मैं प्रेत के समान हूं अतएव स्त्रियों की ओर देखना मुझे योग्य नहीं है, उनका मधुर गीत सुनना उचित नहीं है, मेरा शरीर ग्लानि उत्पन्न करने वाला है। अत उनसे उनके साथ रतिक्रीड़ा करना क्या योग्य है?' इस तरह भावनाओं से अनादर गुण उत्पन्न होता है, अथवा इस निर्वस्त्रता से शरीर सुख में व विषयसुख में अनादर उत्पन्न होता है। विषय सुख को छोड़कर शरीर सुख भिन्न पदार्थ नहीं है, इस प्रश्न का उत्तर इस तरह समझना कि शरीर के दुःखों का अभाव होना शरीर सुख कहलाता है। व इन्द्रियों के विषयों से जो मनमें प्रेम आल्हाद उत्पन्न होता है, वह विषय सुख है। इस प्रकार इन दोनो में महान भेद है।

आत्मवशता—गुण भी प्राप्त होता है, मुनि के पास कोई परिग्रह न होने से वे स्वेच्छा से बैठते हैं, जाते है, तथा सोते है। बैठने में 'मेरी अमुक वस्तु नष्ट हुई, अमुक वस्तु मुझे चाहिये' इस प्रकार की चिन्ता उनको नहीं होती है, अतएव परिग्रह विषयक परतन्त्रता से वे छूट गये हैं मेरे परिग्रह का विनाश हो जायगा, ऐसा भय यदि मुनि को उत्पन्न हो जाय तो वे अपने को अयोग्य तथा उद्गमादि दोषों से सहित, प्राणिसंयम का नाश करने वाले ऐसे आसन शयनादिकों का सम्पादन करेंगे, परिग्रह को चोरादिक हरण करेंगे इस भीति से त्रस स्थावर जीवों को जिसमें दुःख पहुंचेगा ऐसे मार्ग से वे जायेंगे, किन्तु जो परिग्रह रहित हैं ऐसे मुनिराज उपयुक्त दोष से अलिप्त रहते हैं।

परिसह अधि आसणा—पूर्व कर्म की निर्जरा करने की इच्छा जिनको है ऐसे मुनिराज को परीषह सहन करने ही चाहिये। क्षुधादिक बाईस परीषह हैं, यद्यपि परीषह शब्द सामान्यतया प्रयुक्त किया है तो भी यहां अचेलत्व का प्रकरण होने से उनके अनुरूप परीषहों का ग्रहण हो जाता है, इस लिये नग्नता,

शीत, उष्ण, दंशमशक, इतने परीषहों को सहन करना चाहिये ऐसा अभिप्राय सिद्ध हुआ। निर्वस्त्र मुनि को शीत, उष्ण, दंशमशकों से जैसी पीड़ा होती है, वैसी वस्त्र ओढ़े हुये मनुष्य को नहीं होती है।

अचेलताया गुणांतरसूचनाय—

जिणपडिरूवं विरियायारो रागादिदोसपरिहरणं।
इच्चेवमादिबहुगा अच्चेलक्के गुणा होंति ॥८४॥

टीका—जिणपडिरूवं जिनाना प्रतिबिंब चेद अचेललिंग। ते हि मुमुक्षवो मुक्त्युपायज्ञा यद्गृहीतवन्तो लिंग तदेव तदर्थिना योग्यमित्यभिप्राय:। यो हि यदर्थी विवेकवान् नासौ तदनुपायमादत्ते यथा घटार्थी तन्तुरित्येवमादीन्। मुक्त्यर्थी च यतिर्न चेल गृह्णाति मुक्तेरनुपायत्वात्। यथात्मनोऽभिप्रायस्योपायस्तन्नियोगत उपादत्ते, यथा चक्रादिक तथा यतिरपि अचेलतां तदुपायतां वा अचेलताया जिनाचरणादेव ज्ञानदर्शनाचारयोरिव विरियायारो—वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितसामर्थ्यपरिणामो वीर्यं, तदविगूहनेन रत्नत्रयवृत्तिर्वीर्याचार:। स च पर्वविधेऽवा—चारेऽदेक: स च प्रवर्तितो भवति। अचेलतामुद्वहताऽशक्यचेलपरित्यागस्य कृतत्वात्। परित्यागो हि पंचम व्रत तन्नाचरित भवेत शक्तोऽपि यदि न परिहरेत्।

रागादिदोसपरिहरणं। लाभे रागोऽलाभे कोप। लब्धेममेद भावलक्षणो मोह। अथवा मृदुत्व दार्ढ्यमित्येवमादिषु वसनाच्छादनगुणेषु रागो मृदुस्पर्शनादिषु द्वेष इत्येषा परिहार:। इच्चेवमादि इत्येवमादय: बहुगा महात. महाफलतया अच्चेलक्के अचेलताया सत्या होंति याञ्चादीनतासक्लेशादिपरिहार. आदिशब्देन गृहीता।

अर्थ—जिनप्रतिरूप यह अचेलत्व का गुण है। मुक्ति प्राप्ति के अभिलाषी तीर्थङ्करों को मुक्ति का उपाय विदित था अतएव उन्हों ने जो लिंग धारण किया था वही मुमुक्षु मुनियों को धारण करना चाहिये। जो जिस वस्तु को चाहता है वह विवेकवान उसकी प्राप्ति के लिये जो उपाय हैं उनका ही आलम्बन करता है, उसके उपाय रूप न होने वाली वस्तु को वह ग्रहण नहीं करता। जैसे जिसको घट की चाह है तो वह मृत्पिण्ड, चक्र, इत्यादि कारकों को ही ग्रहण करेगा।

वह कदाचिदपि वस्त्रोत्पत्ति के कारण सूत आदि को स्वीकार न करेगा। उसी तरह वस्त्र मोक्ष प्राप्ति का उपाय नहीं है, अतएव मुमुक्षुजन उसका ग्रहण नहीं करते हैं।

जैसे श्री जिनेश्वरों ने ज्ञानाचार और दर्शनाचार धारण किये थे, वैसे उन्होंने नग्नता भी धारण की थी।

वीर्याचार—अचेलता से वीर्याचार गुण की प्राप्ति होती है। वीर्यान्तरायकर्म का क्षयोपशम होने से जो आत्मा में सामर्थ्य उत्पन्न होती है उसको 'वीर्य' कहते हैं इस वीर्य को न छिपाकर रत्नत्रय में प्रवृत्ति करना वीर्याचार है। जिसने अचेलता धारण की है उसने अशक्य वस्त्रत्याग को शक्य करके दिखाया है। यदि वस्त्रत्याग मुनियों ने नहीं किया तो परिग्रह त्याग नाम का पांचवा महाव्रत उन्होंने नहीं पाला है, ऐसा समझना चाहिये। सामर्थ्य होकर भी वस्त्रत्याग न करने से परिग्रहत्याग महाव्रत कैसे पाला जायगा?

रागादिदोसपरिहरणं-यह भी गुण अचेलता से ही मिलता है, वस्त्र का लाभ होने से उसमें आसक्ति हो जाती है, उसकी प्राप्ति न होने से कोप होता है।

वस्त्र मिलने से 'यह वस्त्र मेरा है' ऐसी मोह भावना उत्पन्न होती है, अथवा ओढ़ने पहनने के वस्त्रों में मृदुता, दृढता वगैरह गुण देख कर प्रेम उत्पन्न होता है, तथा उसके कठोरस्पर्श, जल्दी फट जाने से द्वेष पैदा होता है। वस्त्र का त्याग करनेसे ये सर्व रागादि दोष नहीं होते हैं अर्थात् अचेलता को धारण करने से पूर्वोक्त गुण मुनिराज को मिलते हैं वस्त्र का त्याग करने से याचना दोष नष्ट होता है, दीनता और सक्लेशपरिणाम विलीन हो जाते है।

और भी देखिये—

इयसव्वसमिदकरणोठाणासणसयणगमणकिरियासु
णिगिणं गुत्तिमुवगदो पग्गहिददर परक्कमदि ।८६।

टीका—इय एव । सव्वसमिदकरणो सम्यगिता- नि प्रवृत्तानि, क्रियते रूपाद्युपयोग एभिरिति करणानि इंद्रियाणि, समितानि च तानि करणानि च समित- करणानि, सर्वाणि च तानि समितकरणानि च सर्व- समितकरणानि, सर्वसमितकरणास्येति सर्वसमित— करणः। रागद्वेषरहिता भावेन्द्रियाणां प्रवृत्तिः समी- चीना तस्याश्च अचेलता निबंधनं। रागादिविजयाय गृहीतासङ्गत्वात्कथमिव रागादौ प्रेवर्त्यतेत।

ठाणासणसयणगमणकिरियासु एकपादसमपा- दादिका स्थानक्रिया, उत्कटासनादिका आसनक्रिया, दंडायतशयनादिका शयनक्रिया। सूर्याभिमुखगमना- दिका गमनक्रिया एतासु। पग्गहिददर प्रगृहीततर। परक्कमदि चेष्टते क. ? णिगिणं नग्नता। गुत्ति गुप्तिं। उवगदो उपगतः प्रतिपन्न। कृतवसनत्यागस्य शरीरे नि.स्पृहस्य मम किं शरीरतर्पणेन तपसा निर्जरामेव कर्त्तुमुत्सहते इति। तपसि यतते इति भावः।

अर्थ—इस अचेलता के प्रभाव से ही मुनिराज की स्पर्शनादि पाचों इंद्रिया रूपादिक विषयो मे समिति युक्त प्रवृत्ति करती हैं, अर्थात् उनके इंद्रियो की स्पर्शनादि विषयो मे रागद्वेष रहित प्रवृत्ति होती है।" अचेलता रागादि को जीतने केलिये ही मुनियों ने ग्रहण की है, अतएव वे रागादि विकारो में कैसे प्रवृत्त होंगे ?

अचेलता धारण करने से ही वे एक पाद से खड़े होना, समपाद रख कर कायोत्सर्ग करना, इत्यादिरूप स्थानक्रिया, उत्कटासनादि आसन क्रिया, दण्ड के समान शयन करना, एक पार्श्व से शयन करना इत्यादिक शयन करना, सूर्याभिमुख गमन करना इत्यादिक गमन क्रिया, वस्त्रत्याग करने वाले व गुप्ति को पालने वाले मुनि शरीर से प्रेम दूर करते हैं। वे नि स्पृह होकर 'शरीर को खुश करने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा, मै तपश्चरण के द्वारा कर्म को निर्जीर्ण करूगा' ऐसा विचार करके तपश्चर्या मे प्रयास करते हैं।

वयसमिदिकसायाणं दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं।
धारणपालणणिग्गहचागजया संजमो भणिओ ॥

—धवल ख० १ पृष्ठ १४५

जो इतने पर समस्त मुख्य व्रतों को नहीं समझ पाते हैं, उनके लिये अट्ठाईस मूल गुणों का कथन किया गया है उन अट्ठाईस मूल गुणों में यह एक नग्नत्व व्रत भी है। उक्त गाथा के अनुसार अट्ठाईस मूल गुणों की गिनती इस प्रकार है पचमहाव्रत, पचसमिति, पाच इंद्रियनिरोध क्षितिशयन, अदन्त- धावन, स्थितिभोजन, सकृद्भुक्ति, लोच, छह आ- वश्यक, अचेलता और अस्नान इन अट्ठाईस मूल गुणों को संक्षेप से, चौरासी लाख गुणों तथा अठारह हजार शीलों के साथ पालन करने को संयम कहा है, अत निर्वस्त्रता ही मुनियों के लिये

अनिवार्य सिद्ध होती है। इससे भी विस्तार देखना हो तो मूलाचार भगवती आराधना इत्यादि में देखा जा सकता है।

योगभक्ति को देखिये—

गिरिकदरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बरा.।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्ति परमा गति॥

दिशारूपी वस्त्र ओढनेवाले व हस्तरूपी पात्र में आहार करने वाले दिगम्बर महामुनि पर्वत की गुफा और भयानक वन मे निवास करके घोरानुघोर उत्कृष्ट तपश्चरण करके मरणोत्तर समय मे परम-गति अर्थात् मोक्षको जाते हैं, इत्यादि सूत्रप्राय ग्रन्थों मे वस्त्र त्याग का ही उपदेश है, भगवती आराधना की विजयोदया टीका तो वस्त्र धारण मे दोष और वस्त्रत्याग मे गुण विस्तार से प्रतिपादन करती है।

पूर्व पक्ष क उत्तर मे ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका और क्षुल्लिका केलिये वस्त्र स्वीकार करती हुई पूर्वपक्ष के जिनागमानुसार ही मुनिराजो के लिये वस्त्रत्याग का प्रतिपादन करती है। विस्तारभय से उन समस्त उद्धृत वृत्तात को यहा नहीं लिखा है, जिन्हे अव-लोकन करना हो तो 'आचेलक्कुद्देसिय' इस गाथा की विजयोदया टीका अवलोकन कर परीक्षा कर लेवे। अथालदकसंयम, परिहारविशुद्धिसयम, भक्त-प्रत्याख्यान, इंगिनीमरण, प्रायोपगमनमरण, जिन-कल्प, स्थविरकल्प इन सबमें एक औत्सर्गिकलिंग कहा गया है और अपवादलिग का तो नामोल्लेख भी नहीं किया गया है, प्रतिपादित सब पच परमे-ष्ठियों के नग्नलिंग ही होता है। गृहस्थ सग्रन्थ होते हैं जिनागम प्रतिपादित इन दो के अतिरिक्त तीसरा लिग मानना अनुचित, असत्य है।

किसी भी दिगम्बर जैन शास्त्र में मुनि के लिये वस्त्र का विधान नहीं है, वस्त्र का त्याग ही प्रत्येक ग्रन्थ में मिलता है, मुनि के औत्सर्गिक लिंग ही होता है। अत पुलाकादि पाच भी निर्ग्रंथ,नग्न ही होते हैं, अपवादलिग का अर्थ सग्रथलिंग है उससे मोक्ष नहीं होती इस लिये भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थों को अप्रमाण कहना उचित नहीं है श्री कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थ द्वादशाग के अशभूत होनेसे प्रामाणिक हैं।

इस प्रकार प्रमाण आदिको द्वारा सवस्त्रमुक्तिका, स्त्रीमुक्ति का निषध किया गया है। इस प्रकार यह सवस्त्रमुक्ति नाम का निषेधात्मक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ।

—केवली कवलाहार निषेध—

अब पाठक महाशय तीसरे प्रकरण पर आइये! इसमे प्रोफेसर जी ने 'तत्वार्थ के' प्रतिकूल 'केवली के भूख-प्यास आदि की वेदना' होती है इस कल्पना को पुष्ट करने का यत्न किया है। क्या मोक्ष शास्त्र को अभी तक किसी ने समझा ही नहीं? तत्वार्थसूत्र पर बीसो टीकाये अनेक भाषाओमें बड़े२ आचार्यों तथा विद्वानो ने लिखी हैं। क्या पूर्वाचार्यों में कोई भी परीक्षाप्रधानी नहीं था?

भगवान समन्तभद्राचार्य, भट्टाकलंकदेव, सैद्धा-तिक चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य और स्याद्वादविद्यापति भगवानविद्यानदाचार्य इत्यादि तार्किकचूड़ामणिमहा-विद्वद्वर सभी श्रीकुन्दकुन्दाचार्य के अविरोधी थे। भावी तीर्थंकर आचार्य समन्तभद्र इन सबमें प्रथम परीक्षा-प्रधानी माने गये हैं। इन सबने स्पष्ट लिखा है कि भगवान केवली मे क्षुधादि दोष नही होते हैं ऐसा प्रतिपादन भगवान समन्तभद्रप्रभृति ने स्वयम्भू-स्तोत्र, रत्नकरण्ड, आदि महासूत्रप्राय शास्त्रो में किया है प्रतिभाशाली तार्किक प्रभाचन्द्राचार्य ने भी

अपने प्रमेयकमलमार्तंडमे बहुत अच्छी तरह स्त्रीमुक्ति केवली कवलाहार इत्यादि का निषेध किया है।

धर्मसग्रह श्रावकाचार में श्री जिनचन्द्राचार्य ने पृष्ठ ३७ पर लिखा है।

क्षुधादिदोषनिर्मुक्त सर्वातिशयभासुरः।
प्राप्तानन्तचतुष्कोसौ कोट्यादित्यसदृक्प्रभ ॥६५॥
प्रातिहार्याष्टभूतीशश्चिसन्ध्यं चणदातरे।
प्रभु षण्णाडिका यावत्सूत्रार्थं ध्वनिता वदेत ॥६६॥

अर्थात्—क्षुधा, पिपासा, जरा, आतङ्क, जन्म, मरण, शोक, भय, चिन्ता, प्रस्वेदादि अठारह प्रकार के दोषों से रहित तथा दश जन्म के, दश केवलज्ञान के, और चौदह देवताओं के इस तरह चौंतीस अतिशयो से विराजमान, जिन्हें अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख, और अनन्त वीर्य ये अनन्त चतुष्टय प्राप्त हो गये हैं, अष्टप्रातिहार्यों से शोभित, और जिनकी शरीर की काति कोटि सूर्य से भी अधिक है ऐसे त्रिभुवन स्वामी श्री जिनदेव अपनी मेघ समान दिव्य ध्वनि से प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायकाल, और आधी रात्रि में तत्त्व का उपदेश नियम पूर्वक करते रहते हैं। रात्रि के समय जो दिव्यध्वनि होती है वह छह नाड़िका तक होती है। एक नाड़ी एक घड़ी (२४ मिनट) की होती है।

इन श्लोकोमें सर्वज्ञ देव का स्वरूप वर्णन किया गया है। सर्वज्ञ के पहले विशेषण में उन्हें क्षुधादि अठारह प्रकार के दोषों से रहित बताया है।

परन्तु हमारे प्रोफेसर जी जैसे व्यक्ति तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय वाले उसे ठीक नहीं बताते हैं। वे कहते हैं—जब यह बात हम अपनी दृष्टि से देख रहे हैं कि आहारादि के बिना शारीरिक स्थिति नहीं रह सकती फिर केवली भगवान के शरीर की स्थिति क्योकर आहार के बिना रह सकेगी?

परन्तु यह उनकी कल्पना बिल्कुल असङ्गत है। यह बात हम भी मानते हैं कि ससारी जीवों की शरीर की स्थिति आहारादि के बिना रहना मुश्किल ही नहीं किन्तु नितात असम्भव है, रहे? परन्तु क्या इस कथन से श्वेताम्बरी लोग यह भी स्वीकार करेंगे कि केवली भगवान भी ससारी लोगो के समान हैं यदि वे इम स्वीकार करें तो फिर उनका केवली को प्रभु मानना निरर्थक है। यदि वे इसे नहीं मानेंगे तो उन्हें और कितने केवली भगवान के अतिशय मानना पड़ते हैं। उसी के अनुसार आहारादिक की निवृत्तिरूप भी एक ओर अतिशय मानना पड़ेगा।

दूसरे जिन भगवान को जब अनन्त चतुष्टय का अधिपति कहते हैं, फिर उनसे हमारा इतना ही पूछना है कि केवली भगवान को क्षुधादिकों की प्रवृत्ति मानने से अनन्तशक्तिपने का उनमें निर्बाध निर्वाह हो जायगा या नहीं? खेद तो इस बात का है कि अनन्त चतुष्टय भी बताना और आहारादिक की कल्पना भी करना, यह कैसे बन सकता है मेरी समझ में तो ये माता को वन्ध्या कहने के समान है। इसे कौन बुद्धिमान मानेगा।

और भी यह बात है कि जब हमलोग भोजनादि करते हैं उसी के साथमें हमारे पीछे शोचादि की भी बाधाओ का अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध है। केवली भगवान को भी यह बाधा स्वीकार करना पड़ेगी। कदाचित् यह कहो कि यह तो उनका अतिशय है जो भोजन के करने पर भी उन्हें ये बाधायें बाधित नहीं करती तो फिर उसी तरह आहारादिकों का अभाव स्वरूप ही एक और अतिशय क्यो न मान लिया जाय जिससे इतनी विडम्बना का पहले से ही सूत्रपात न हो।

अच्छा यह तो कहो कि जब केवली भगवान आहार करते हैं, वह समवशरण में ही करते हैं या कहीं अन्यत्र ? और समवशरण में भी गन्धकुटी से कोई दूसरा स्थान है अथवा गन्धकुटी के ऊपर ही। मैं नहीं कह सकता इन लोगों की कैसी असङ्गत कल्पनायें हैं, जिनके देखने से दांतों के नीचे अगुली दबाना पड़ती है। हां, इसी सम्बन्ध में हम एक बात और स्मरण हो आई है। वह यह है—हम यह पूछना चाहते हैं कि ये लोग जिस तरह गृहस्थों तथा मुनियों के आहार के समय अन्तरायों की कल्पना करते हैं। उसी तरह केवली भगवान के अन्तरायों की कल्पना करते हैं या नहीं ? यदि स्वीकार करेंगे, तब जो दिगम्बरी लोगों का केवली को आहारादिका नहीं मानना है वही सुतरां सिद्ध हो जायगा। क्योंकि केवली भगवान त्रैलोक्य के जानने वाले और देखने वाले है। इसमें न तो श्वेताम्बरियों का कुछ विवाद है और न दिगम्बरी लोगों को। इससे यह सिद्ध होगा कि संसार में जितना अच्छा वा बुरा कृत्य उस समय मे होता होगा, वह चराचर केवली भगवान को मालूम पड़ता ही होगा। कहीं पर जीवों को दुष्ट लोग हिंसा करते है, कहीं कोई किस तरह का दुष्कृत्य कर रहा है इत्यादि, कर्मों को प्रत्यक्ष देखते हुये करुणासागर केवली भगवान आहारादि कभी नहीं कर सकते। इतने पर भी यही दुराग्रह बना रहे तो हम फिर कभी उनमें जिनत्व की कल्पना ही नहीं कर सकते। यदि कदाचित् अन्तराय स्वीकार न करें तो भी कितनी बुरी बात है जिस खोटे काम के देखने से गृहस्थ लोग तक आहार का परित्याग कर देते हैं उसी में त्रैलोक्य के नाथ को घृणा न उपजे यह कितने आश्चर्य की बात है।

इन लोगों की केवल यही कल्पना नहीं है किन्तु ऐसी सैंकड़ों असङ्गत कल्पनायें हैं यदि मौका मिला तो 'श्वेताम्बर पराजय' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ में खूब खुलासा वर्णन करेंगे। सच बात तो यह है कि जिन लोगों की कल्पनायें आधुनिक होती हैं वे कहां तक ठीक कही जा सकेंगी ? यह बात विचारणीय है।

णट्ठपमाए पढमा सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा।
सेसाकम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि ण हि कज्जे ॥१३६॥

टीका—नष्टप्रमादे-अप्रमत्तसंयताद्युपरितनगुण—स्थानेषु प्रथमासंज्ञा आहारसंज्ञा न भवति। कुत कारणात् तत्राप्रमत्तादौ आहारसंज्ञाकारणस्य असाता-वेदनीयोदीरणाख्यस्याभावात। सातासातावेदनीय-मनुष्यायुष्याणां त्रिप्रकृतीनां प्रमत्तविरते एव उदीरणा भवतीति परमागमे प्रसिद्धत्वात्। शेषा भयमैथुन-परिग्रहसंज्ञा अप्रमत्तसंयतादि-गुणस्थानेषु तत्तत्कारण भयवेदलोभकर्मोदीरणानां तत्तदुदय-व्युच्छित्तिचरम-समयपर्यंतमस्तित्वेन निमित्तेनोपचारेण सन्ति स्व स्व कार्यपलायनरतिक्रीडा-परीग्रह स्वीकाररूपे प्रवृत्यभा-वात्। मन्दमन्दतरमन्दतमातिसूक्ष्मानुभागोदयसहित-संयमविशेषसमाहितध्यानोपयुक्तानां महामुनीनां भया-दिसंज्ञा मुख्यवृत्त्या न सन्त्येव, अन्यथा कदाचिदपि शुक्लध्यानं घातिकर्मक्षयो वा न घटते . ...। ततो मोक्षमिच्छता स्याद्वादिना क्षपक श्रेण्यामाहारादि चतु संज्ञानामभाव एव सम्भावनीय इति केवलिनां कुत कवलाहारभुक्तिराहारसंज्ञानिषेधात्।

मन्दप्रबोधिकाया अभयचन्द्र। इति—

यहां मूल में अप्रमत्तादि गुणस्थानो में प्रथम आहारसंज्ञा का निषेध और उसके कारण का अभाव कहा गया है। अवशिष्ट तीन संज्ञाओं का वहां पर उपचार से सद्भाव कहा है, उपचार का कारण है उन

उन कर्मों की उदीरणा का अस्तित्व और कार्यरूप से वहा सज्ञायें नहीं होतीं। टीका मे तो प्राधान्यरूप से होने का कारण भी कह दिया गया है। तात्पर्य यह है कि अप्रमत्त आदि गुणस्थानों में उपचार से ये सज्ञायें हैं परमार्थिक में वे नहीं हैं। ऐसी प्रवृत्ति अर्थात् प्रथा केवली भगवान के क्षुधादि परीषहो के सम्बन्ध में है। केवली के वेदनीयकर्म के उदय का अस्तित्व है, कार्यरूप से या प्रमुखपन से अथवा स्पष्ट रूप से नहीं है। वक्तव्य कहीं उपचार से या शक्ति की अपेक्षा से होता है, और कहीं पर प्राधान्यरूप या सामर्थ्य की अपेक्षा से होता है। केवली मे क्षुधादिका सद्भाव उपचार से या सामर्थ्य की अपेक्षा से कहा गया है। इसलिये कहा जाता है कि 'तत्वार्थमहाशास्त्र में भी और प्रस्तुत आगम मे भी ग्यारह परीषह केवली भगवान में उपचार से हैं। वास्तविक उनका अभाव ही है। ऐसा उद्धरण शास्त्रोमे विद्यमान होते हुए भी आजकल के प्रोफेसर जी के समान मनुष्य स्वीकार नहीं करते हैं यह बडी दुःख की बात है।

जिस तरह सम्पूर्ण मोहनीय कर्म नष्ट होने पर और वेदनीय का सद्भाव होने से केवली भगवान को ग्यारह परीषह उपचार से मानी जाती है न कि पारमार्थिक न्याय से। इसी तरह ज्ञानावरण के नष्ट हो जाने पर युगपत् सम्पूर्ण पदार्थों का प्रकाशन करने वाले केवल ज्ञान रूप अतिशय के होते हुये भगवान के चिन्तानिरोध का अभाव है। उसके होते हुये भी उसका फल कर्मोदय की निर्जरारूप फल की अपेक्षा से ध्यान का उपचार किया जाता है। उसी प्रकार वास्तव मे क्षुधादिको का अभाव है किन्तु वेदनीयकर्म का सद्भाव होने से 'एकादश जिने' यही संज्ञा उपचार से कही है।

मथितार्थ यह है कि ध्यान भी जिस तरह उनमे उपचार से है, उसी तरह परीषह भी उपचार से हैं, वास्तविक मे ग्यारह-परीषह उनमे नहीं है। अतएव क्षुधादि वेदना का भगवान में अभाव है। यथा—

ननु मोहनीय-सहायाभावात् क्षुधादिवेदनाभावे परीषहव्यपदेशो न युक्त', सत्यमेवमेतत्, वेदनाभावेऽपि द्रव्यकर्मसद्भावापेक्षया परीषहोपचार. क्रियते। निरवशेषनिरस्ताज्ञानावरणे युगपत्सकल--पदार्थावभासिकेवलज्ञानातिशये चिन्तानिरोधाभावेऽपि तत्फल कर्मनिर्हरणापेक्षया ध्यानोपचारवत्। अथवा एकादश जिने न सन्तीति वाक्य शेष कल्पनीय सोपस्कारत्वात् सूत्राणां। मोहोदयसहायीकृतक्षुधादिवेदनाभावात्।" इति।

यहा टीका मे ग्यारह परीषहो का सद्भाव और अभाव कह दिया गया है, द्रव्य कर्म के सद्भाव की अपेक्षा से उपचार से सद्भाव और मोहनीय के उदय की सहायता न होने से कार्य रूप से उनका अभाव। यही बात अकलकदेवने राजवार्तिकमे और आचार्य विद्यानन्द ने श्लोकवार्तिक मे 'एकादश जिने' सूत्र मे कही है आदि पुराण पृष्ठ २५ देखिये—

न भुक्ति क्षीणमोहस्य तवानन्तसुखोदयात्।
क्षुत्क्लेशबाधितो जन्तु. कवलाहारभुग्भवेत ॥१॥
असद्वेद्योदयाद्भुक्ति त्वयि यो योजयेदधी।
मोहानिलप्रतीकारं तस्यान्वेष्य जरद्घृत ॥२॥
असद्वेद्यविप घातिविध्वस ध्वस्तशक्तिक।
त्वय्यकिंचित्कर मन्त्रशक्त्येवापबल विप ॥३॥
असद्वेद्योदयो घातिसहकारिव्यपायत।
त्वय्यकिंचित्करो नाथ सामग्र्या हि फलोदय ४

आचार्य देवसेन कवलाहार का निषेध मार्मिकता से व विस्तार के साथ करते है, वे कहते है कि

श्वेताम्बर लोग केवली मे कवलाहार कहते हैं सो भगवान मे वह नहीं है, क्योंकि उस परमभट्टारक अर्हन्त भगवान के मन नष्ट हो गया है। इन्द्रियों के व्यापार से जिनका चित्त रहित हो गया है और जिन के भावेन्द्रिय की प्रधानता है, उनके निश्चल ध्यान होता है। उस ध्यान से उस आत्मा के आत्मा और मन का एकीभाव होता है, और फिर एको भाव से सर्वित्ति होती है। उस सर्वित्ति म तृष्णा, निद्रा और क्षुधा, नष्ट हो जाते हैं तब वह ध्यानी पुरुष क्षपक-श्रेणि म आरूढ होता है वह निद्रादि के कारण, मोहकर्म का सम्पूर्ण क्षय करता है। उसके क्षय हो जाने स केवलज्ञान प्रगट होता है, वह केवलज्ञान समस्त अठारह दोष प्रलय हो जान से होता है। वे अठारह दोष क्षुधादिक है, व केवली भगवान के नही होते हैं।

नोकर्माहार, कर्माहार, कवलाहार, लेपाहार, ओजाहार और मनाहार इस प्रकार छह प्रकार का आहार होता है। इनमे स नोकर्माहार और कर्माहार ये दो तो समस्त चतुर्गति वाले जीवो के होते हैं, कवलाहार मनुष्यो और पशुओ के होता है, वृक्षो के लेपाहार होता है। अण्डो मे रहने वाले पक्षियो के ओजाहार होता है। और देवो के मानसिकाहार होता है। इन छहो आहार मे स कवलाहार, लेपाहार, ओजाहार, और मानसिकाहार ये चार प्रकार के आहार केवली के नहीं होते। जो नोकर्माहार और कर्माहार केवली के होते है। वे भी जिनागम म उपचार स कहे गये है। निश्चय स तो वे भी नहीं है। क्योंकि केवली भगवान उत्कृष्ट वीतराग परमेष्ठी है।

जो भोजन करता है वह सोता है, सोता हुआ अन्य विषयों का भी भोगोपभोग करता है। किन्तु विषयो का भोग करने वाला वीतरागी कैसे हो सकता है? इसलिये केवलीके कवलाहार प्रमाण-विरुद्ध है। प्रमेयकमल मार्तण्ड में प्रभाचन्द्राचार्य ने लिखा है—

'ये श्वेतपटा प्रतिपादयन्ति-आत्मनो जीवन्मुक्तौ कवलाहार प्रच्छन्ति, तेषा—अनन्तचतुष्टयस्वभावा भावाऽनन्तसुखविरहात्। तद्विरहश्चबुभुक्षापीडाक्रान्तत्वात्। तत्पीडाप्रतिकारार्थी हि निखिलजन्तूना कवलाहारग्रहणप्रसङ्ग।'

अर्थ—जो श्वेताम्बर लोग कहते हैं कि आत्मा के जीवन्मुक्तावस्था मे अर्थात् केवली भगवान के अनन्तचतुष्टय व वीतराग दशामें कवलाहार होता है, उन लोगो क प्रति अनेकांतमय, स्याद्वादसप्तभंगी-गर्भित स्यात्पदालकृतपरमागम के प्रमाण, नय, निक्षेप, तर्क और युक्तियो के द्वारा निषेध किया जाता है।

केवली को कवलाहार मानने म उनके अनन्त-चतुष्टय स्वभाव का अभाव हो जाने पर उन भगवान के 'घातिकर्म चतुष्टय के अभाव से' पैदा होने वाले नैसर्गिक अनन्तसुखादिको का सुतरा विनाश होता है। और उसका अभाव होने से उन परमात्मा म भी क्षुधादि अठारह दोषो का सद्भाव हो जाने स वे भगवान रागी, द्वेषी, मोही होन स उनमे वीतराग व सर्वज्ञत्व न रहेगा यह बड़ा भारी दोष उपस्थित हो जायगा और उस भूख के प्रतिकार करने के लिए सासारिक जीवो को कवलाहार ग्रहण करना पडता है। क्या केवली भी ऐसे ही है?

अर्हन्त भगवान म अनन्तचतुष्टय के सद्भाव और अठारह दोषो के अभाव होनेस वीतरागता सर्वज्ञता

और हितोपदेशता प्रगट होती है। यानी—अर्हन्त-भगवान् राग, द्वेष, मोह आदि दोष न रहने के कारण वीतराग कहलाते हैं। तदनुसार वे किसी पदार्थ पर राग, द्वेष यानी प्रेम और वैर नहीं करते हैं। केवलज्ञान हो जाने से वे समस्त लोक, समस्त काल की सब बातो को एक साथ स्पष्ट जानते है इस कारण वे सर्वज्ञ कहलाते हैं। और इच्छा न रहने पर भी वचनयोग के कारण तथा भव्यजीवो के पुण्य कर्मों के निमित्त से उन जीवो को कल्याण करने वाला उपदेश देते हैं। इस कारण हितोपदेशी कहलाते हैं।

ये तीनों बाते दिगम्बरीय अभिमत अर्हत में तो बन जाती हैं किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायानुसार अर्हत भगवान् में वीतरागता तथा सर्वज्ञता नहीं बनती है। सो आगे दिखलावेंगे।

इस प्रकार अर्हंतदेव का ठीक सच्चा स्वरूप दिगम्बर सम्प्रदायके सिद्धातानुसार तो ठीक बन जाता है किन्तु श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय के सिद्धातानुसार अर्हंतदेव का सच्चा स्वरूप ठीक नहीं बनता।

क्या केवली कवलाहार करते हैं?

अब यहा इस विषय पर विचार चलता है कि, अर्हंत भगवान जो कि मोहनीय कर्म का समूल नाश करके वीतराग हो चुके हैं, केवलज्ञान हो जाने से जिनको केवली भी कहते हैं कवलाहार (हमारे तुम्हारे समान ग्रास वाला भोजन) करते हैं या नहीं?

इस विषय में दिगम्बर सम्प्रदाय का यह सिद्धात है कि, केवली भगवान् वीतरागी और अनन्तसुखधारी होने के कारण कवलाहार नहीं करते है क्योकि उनके 'भूख' नामक दोष नहीं रहा है। श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय का यह कहना है कि केवली भगवान के वेदनीय कर्म का उदय विद्यमान है इस कारण उनको भूख लगती है जिससे कि उनको भोजन करना पड़ता है। बिना भोजन किये केवली भगवान जीवित नहीं रह सकते।

ऐसा परस्पर मतभेद रखते हुये भी तीनो सम्प्रदाय केवली भगवान को वीतरागी और अनन्तसुखी निर्विवादरूप से मानते हैं। इस समय हमारे सामने आये हुये प्रश्न का समाधान करने के पहिले यह जान लेना आवश्यक है कि, भूख लगती क्यो है? किन किन कारणो से जीवो के उदर में भूख आकुलता को उत्पन्न कर देती है? इस विषय में सिद्धात ग्रन्थ गो० जीवकाण्ड मे यो लिखा है। यथा—

आहारदसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोठाए।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहार सण्णाओ॥

अर्थात्—अच्छे २ भोजन देखने से, भोजन का स्मरण कथा आदि करने से, पेट खाली हो जाने से, और असाता वेदनीय की उदीरणा होने पर आहारसंज्ञा यानी भूख पैदा होती है। इन चार कारणो में से अन्तरङ्गमुख्य कारण असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा (अपक्वपाचन उदीरणा—यानी—आगामी समय मे उदय आने वाले कर्म निषको को बलपूर्वक वर्तमान में उदय ले आना। जैसे वृक्ष पर आम बहुत दिन में पकता, उसे तोड़ कर भूसे के भीतर रखकर जल्दी पहले ही पका देना) है। बिना असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा हुए भूख लगना नहीं है।

इस कारण अर्हंत भगवान को यदि भूख लगे तो उनके असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा अवश्य

होनी चाहिये किन्तु वेदनीय कर्म की उदीरणा तेरहवें गुणस्थान में विराजमान अर्हत भगवान के है ही नहीं। क्योंकि वेदनीय कर्म की उदीरणा छठे गुणस्थान तक ही है, आगे नहीं है।

श्वेताम्बरीय ग्रन्थ प्रकरण रत्नाकर चतुर्थ भाग के षडशीति नामक चौथे खण्ड की ६४वीं गाथा ४०७ पृष्ठ पर लिखी है कि—

उइरंति पमत्तता सगट्ठ मीसट्ठ वेअ आउविणा।
छग अपमत्ताइ तऊ छ पच सुदुमो पणुवसतो।६४।

अर्थात—मिश्र गुणस्थान के सिवाय पहले से छठे गुणस्थान तक आठों कर्मों की उदीरणा है। उसके आगे अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण इन तीन गुणस्थानों मे वेदनीय, आयु कर्म के बिना छह कर्मोंकी उदीरणा होती है। दशवें तथा ग्यारहवे गुणस्थान में मोहनीय, वेदनीय, आयु के बिना शेष पाच कर्मो की उदीरणा होती है।

आगे की ६५वीं गाथा इसी पृष्ठ पर यों है—

"पण दो खीण दु जोगी ऽणु [illegible] अजोगियोव वसता'

यानी-बारहवे गुणस्थान मे अन्त समय से पहले ग्यारहवे गुणस्थान की तरह पाच कर्मों की उदीरणा होती है। अन्तसमय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय वेदनीय आयु इन छह कर्मों के सिवाय शेष नाम गोत्र इन दो कर्मों की ही उदीरणा होती है। सयोग केवली १३वे गुणस्थान में नाम, गोत्रकर्म की ही उदीरणा होती है। १४वे गुणस्थान में उदीरणा नही होती है।

इस प्रकार जब कि वेदनीय कर्म की उदीरणा छठवें गुणस्थान तक ही होती है तो नियमानुसार यह भी मानना पड़ेगा कि भूख भी छठे गुणस्थान तक ही लगती है। उसके आगे के गुणस्थानो मे न तो उदीरणा है और न इस कारण उनके भूख ही लगती है।

तदनुसार जब कि तेरहवें गुणस्थानवर्ती अर्हत भगवान को वेदनीय कर्म की उदीरणा न होनसे भूख ही नहीं लगती फिर वे भोजन ही क्यो करेंगे, अर्थात नहीं करेंगे, क्योंकि कवलाहार (भोजन) भूख मिटाने के लिये ही भूख लगने पर ही किया जाता है। अन्यथा नही।

इस कारण कर्मग्रन्थों के सिद्धान्तानुसार तो केवली भगवान के कवलाहार सिद्ध नहीं होता है। यदि फिर भी श्वेताबरी भाई वेदनीय कर्म के उदय से ही भूख लगती बतलाकर केवली भगवान के कवलाहार सिद्ध करेंगे क्योंकि केवली भगवान के साता या असाता वेदनीय कर्म का उदय रहता है। परन्तु वेदनीय कर्म का उदय प्रत्येक जीव को प्रत्येक समय रहता है। सोते जागते कोई भी ऐसा समय नहीं जब कि वेदनीय कर्मका उदय न होवे, इस कारण आपके कहे अनुसार हर समय क्षुधा लगी ही रहना चाहिये और उसको मिटाने के लिये प्रत्येक जीव को प्रत्येक समय भोजन करते ही रहना चाहिये। इस तरह सातवें गुणस्थान से लेकर बारहवे गुणस्थान तक जो मुनियो के धर्मध्यान शुक्लध्यान की दशा है उस समय भी वेदनीयकर्मके उदय होने से आपके कहे अनुसार भूख लगेगी। उसको दूर करने के लिये उन्हे आहार करना आवश्यक होगा। इस लिये उनके ध्यान भी नहीं बन सकेगा।

तथा केवली भगवान के भी हर समय वेदनीय कर्म का उदय रहता है इस लिये उनको भी हर समय भूख लगेगी जिसके लिये कि उन्हें हर समय भोजन

करना आवश्यक होगा। बिना भोजन किये वेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न हुई क्षुधा उन्हें हर समय व्याकुल करती रहेगी। ऐसा होने पर श्वेताम्बरीय भाइयों का कहना यह ठीक नहीं रहेगा कि केवली भगवान दिन के तीसरे पहर में एक बार भोजन करते हैं। इस लिये मानना पडेगा कि भूख असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा होने पर लगती है। यदि फिर भी इस विषय में कोई महाशय यह कहें कि वेदनीय कर्मके तीव्र उदय होने पर ही भूख लगती है वेदनीय कर्म का जब तक मन्द उदय रहता है तब तक भूख नहीं लगती है।

तो इसका उत्तर यह मिलता है कि भूख लगाने वाले वेदनीय कर्म का उदय केवली भगवान के तीव्र हो नहीं सकता क्योंकि वे यथाख्यात चारित्रके धारक हैं तदनुसार उनके परिणाम परम विशुद्ध हैं। विशुद्ध परिणामों से दुख देने वाले अशुभ कर्मों का उदय मंद रहता है यह कर्म सिद्धांत अटल है। इस लिये केवली भगवान के मोहनीय कर्म न रहने से परम पवित्र परिणाम रहते हैं और इस कारण से आपके कहे अनुसार भाव पैदा करने वाले अशुभ कर्मों का बहुत मन्द उदय रहता है। इस लिये भी केवली भगवानको भूख नहीं लगती जिससे कि वे कवलाहार भी नहीं कर सकते।

इसका उदाहरण यह है कि छठे, सातवे, आठवें तथा नवम गुणस्थान में कुछ स्थानों मे स्त्री, पुरुष, नपुंसकभाव वेदों का मंद उदय है इस कारण उन गुणस्थान वाले मुनियों के विषय सेवन करने की इच्छा नहीं होती है।

यदि वेदनीय कर्म के मन्द उदय से केवली को भूख लग सकती है तो श्वेताम्बरी भाइयों को यह भी कहना पड़ेगा कि वेदों के मन्द उदय होने से छठे, सातवें, आठवें तथा नवम गुणस्थानवर्ती साधुओं के भी विषय सेवन की (मैथुन करने की) इच्छा उत्पन्न होती है। और इसी कारण उनके धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान नहीं है।

वेदनीय कर्म केवली के भूख उत्पन्न नहीं कर सकता—असाता वेदनीय कर्म के उदय से केवली भगवान को भूख इस लिये भी नहीं लग सकती कि उनके मोहनीय कर्म नष्ट हो चुका है। वेदनीय कर्म अपना फल मोहनीय कर्मको सहायता से ही देता है। मोहनीय कर्म के बिना वेदनीय कर्म वेदना उत्पन्न नहीं कर सकता। गोम्मटसार कर्मकाण्ड में लिखा है—

घादिव वेयणीय मोहस्स बलेण घाददे जीव।
इदि घादीण मज्झे मोहस्सादिम्मि पठिदतु ॥१९॥

अर्थात्-वेदनीय कर्म घाती कर्मके समान जीवके अव्याबाध गुण को मोहनीय कर्म की सहायता से घातता है। इसी कारण वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म के पहले पंच घाति कर्मों के बीच में तीसरी संख्या पर रक्खा गया है।

जब कि केवली भगवान को मोहनीय कर्म बिलकुल नहीं रहता तब वेदनीय कर्मको सहायता भी कहां से मिल सकती है? और जब कि वेदनीय कर्म को मोहनीय कर्म की सहायता न मिले तब वह वेदना कैसे उत्पन्न कर सकता है? यानी नहीं कर सकता।

मोहनीय कर्म जब रहता है तब साता वेदनीय के उदय से इन्द्रियजनित सुख होता है जो कि रागभाव से वेदन किया जाता है। और असाता वेदनीय कर्म के उदय होनेसे जो दुख होता है उसका द्वेषभाव

से वेदन किया जाता है। केवली भगवान के जबकि राग, द्वेष ही नहीं रहा तब इन्द्रिय सुख दु ख रूप वेदन ही कैसे होवे ? और जब दु खरूप वेदन नहीं, फिर भूख कैसे लगे ? जिससे कि केवली को भोजन अवश्य करना पड़े। भूख शब्दका शुद्धरूप बुभुक्षा है जिसका कि अर्थ 'खाने की इच्छा' होता है। केवली के जब मोहनीय कर्म नहीं तब उनके खाने की इच्छा भी नहीं हो सकती। खाने की इच्छा उत्पन्न हुये बिना उनके भूख का कहना व्यर्थ तथा असम्भव है। इसलिये भी केवली के कवलाहार नहीं बनता है।

भूख लगे दुख होय अनन्तसुखी कहिये किमि केवलज्ञानी, ३" अन्य सब बातो को छोड़कर मूल बात पर विचार चलाइये कि अनन्तसुख के स्वामी अर्हंत भगवान को भूख लग भी कैसे सकती है ? क्योंकि भूख लगने पर जीवो को बहुत भारी दु ख होता है। केवलज्ञानी को दु ख लेशमात्र भी नहीं है। इस कारण हमारे श्वेताम्बरी भाई या तो केवली भगवान को 'अनन्त सुखधारी' कहें—भूख वेदना से दुखी न बतलावें। अथवा केवली को भूख की वेदना से दुखी होना कहें इस लिये अनन्त सुखी न कहें। बात एक बनेगी दोनो नही।

भूख की वेदना कितनी तीव्र दु खदायिनी होती है इसको किसी कवि ने अच्छे शब्दो में यो कहा है—

आदौ रूपविनाशिनी कृशकरी कामस्य विध्वंसिनी,
ज्ञानभ्रंशकरी तप क्षयकरी धर्मस्य निर्मूलिनी।
पुत्रभ्रातृकलत्रभेदनकरी लज्जाकुलच्छेदिनी,
सा मा पीडति विश्वदोषजननी प्राणापहारी क्षुधा॥

अर्थात—क्षुधा पीडित मनुष्य कहता है कि भूख पहले तो रूप बिगाड़ देती है यानी मुख की आकृति फीकी कर देती है, फिर शरीर कृश (दुबला) कर देती है, कामवासना का नाश कर देती है, भूख से ज्ञान चला जाता है, भूख तप को नष्ट कर देती है, धर्म का निर्मूल क्षय कर देती है, भूख के कारण पुत्र, भाई, पत्नी मे भेद भाव (कलह) हो जाता है, भूख लज्जा को भगा देती है, अधिक कहा तक कहूँ प्राणों का भी नाश कर देती है। ऐसे समस्त दोष उत्पन्न करने वाली क्षुधा (भूख) मुझे व्याकुल कर रही है।

भूखे जीव की क्या दशा होती है इसको एक कवि ने इन मार्मिक शब्दो मे यों प्रगट किया है—

त्यजेत्क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रं, खादेत्क्षुधार्ता भुजगी स्वमण्डम्। बुभुक्षित किं न करोति पापं, क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति॥

यानी—भूखसे तड़फड़ाती हुई माता अपने उदर मे निकाले हुये प्रियपुत्र को छोड़ देती है। भूख से व्याकुल सर्पिणी अपने ही अण्डों को खा जाती है। विशेष क्या कहें भूखा मनुष्य कौन सा पाप नहीं कर सकता ? (यानी-सभी अनर्थ कर सकता है) क्योंकि भूखे मनुष्य निर्दय हो जाते हैं। ऐसी घोर दुख-दायिनी भूख परीषह यदि केवलज्ञानी को वेदना उत्पन्न करे तो फिर केवली का अनन्त सुख क्या कार्यकारी होगा ? इसका उत्तर तो प्रोफेसर साहब जो देवें। भूख अपनी दुखवेदना केवली को भी आपके अनुसार कष्ट तो देती है क्योंकि आप उनके क्षुधा परीषह नाम मात्र को ही नहीं किन्तु कार्यकारिणी भी बतलाते हैं। फिर जबकि केवली भूख की वेदना से दुखी होते हैं तब उनको पूर्ण सुखी बतलाना व्यर्थ है। हमारे तुम्हारे समान अल्पसुखी हुये। जैसे हमको भूख, प्यास लगती है खा पी लेने पर शान्त हो जाती है आपके कहे अनुसार केवली की भी ऐसी ही दशा रही।

खात विलोकत लोकालोक,

देखि कुद्रव्य भखे किमि ज्ञानी ?

तथा—अर्हंत भगवान् को समस्त लोक अलोक को हाथ की रेखा समान बिना उपयोग लगाये ही स्पष्ट जानने वाला केवलज्ञान प्राप्त हो चुका है जिसके कारण वे लोक मे भोजन के अन्तराय उत्पन्न करने वाले अनन्त अपवित्र पदार्थों को प्रत्येक समय बिना कुछ प्रयत्न किये साफ देख रहे हैं फिर वे भोजन कर भी कैसे सकते हैं ?

साधारण मुनि भी मास, रक्त, पीव, गीला चमड़ा गीली हड्डी किसी दुष्टके द्वारा किसी जीव का मारा जाना देखकर, शिकारी आततायी आदि द्वारा सताये गये जीवों का रोना विलाप सुनकर भोजन छोड़ देते हैं फिर भला उनसे बहुत कुछ ऊंचे पद म विराजमान, यथाख्यात चारित्रधारी केवलज्ञानी अपवित्र पदार्थों को तथा दु खी जीवो को केवलज्ञान से स्पष्ट जान कर भोजन किस प्रकार कर सकते हैं ? अर्थात अन्तराय टालकर निर्दोष आहार किसी तरह नहीं कर सकते।

मास, खून, पीव निरपराध जीव का निर्दयता से कतल (वध) आदि देखकर भोजन करते रहना दुष्ट मनुष्य का कार्य है, क्या केवलज्ञानी सब कुछ जान देख कर भी भोजन करते हैं सो क्या वे भी वैसे ही हैं ?

केवलज्ञानी के असाता का उदय कैसा है ?

कोई भी कर्म हो अपना अच्छा बुरा फल बाह्य निमित्त कारणों के मिलने पर ही देता है। यदि कर्म को प्रकृति अनुसार बाहरी निमित्त कारण न होवें तो कर्म बिना फल दिये झड़ जाता है। जैसे किसी मनुष्य ने विष खाकर उसको पचा जाने वाली प्रबल औषध भी खा ली हो तो वह विष अपना काम नहीं करने पाता है।

कर्मसिद्धात के अनुसार इस बात को यों समझ लेना चाहिये कि देवगति मे (स्वर्गों मे) असाता वेदनीय कर्म का उदय होता है। अहमिन्द्र आदि उच्चपद प्राप्त देवो के भी पूर्व बन्धे हुये असाता वेदनीय कर्म का स्थिति अनुसार उदय होता है किन्तु उनके पास बाहर के समस्त कारणकलाप सुखजनक हैं इस कारण वह असाता वेदनीय कर्म भी दु ख उत्पन्न नहीं करने पाता। साता वेदनीय रूप होकर चला जाता है।

तथा नरकों में नारकी जीवो के समय अनुसार कभी साता वेदनीय कर्म का भी उदय होता है किन्तु वहा पर द्रव्य क्षेत्रादि की सामग्री दुख--जनक ही है इस कारण वह साता वेदनीय कर्म नारकियो को सुख उत्पन्न नहीं कर पाता, दुख देकर ही चला जाता है।

एव तेरहवे गुणस्थान म यानी केवल--ज्ञानियों के ४२ कर्म प्रकृतियोका उदय होता जिसमेंसे अस्थिर अशुभ, दुस्वर, अप्रशस्त विहायोगति तथा तैजस-मिश्र आदि अनेक ऐसी अशुभ प्रकृतियां हैं जो उदय में तो आती है किन्तु बाहरी कारण अपने योग्य न मिल सकने के कारण बिना बुरा फल दिये चली जाती है। क्योंकि अस्थिर प्रकृति के उदय से केवलज्ञानी के धातु उपधातु अपने स्थान से चलायमान होकर शरीर को बिगाड़ते नहीं हैं। (श्वेताम्बरीय सिद्धान्तानुसार) न अशुभ नामकर्म के उदय से केवलज्ञानी का शरीर खराब हो जाता है और न दु.स्वर प्रकृति के उदय से केवलज्ञानी का असुन्दर स्वर हो पाता है। इत्यादि।

इसी प्रकार केवली भगवान के पर्याप्त असाता

वेदनीय कर्म का उदय होता है किन्तु केवलज्ञानी के निकट दुःख उत्पन्न करने वाला कोई निमित्त नहीं होता है, सब सुख उत्पन्न करने वाले ही कारण होते हैं। अनन्त सुख प्रगट हो जाता है। इसी कारण वह असाता वेदनीय निमित्त कारणों के अनुसार साता रूप में होकर बिना दुःख दिये चला जाता है।

श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धांत चक्रवर्ती ने अपने गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रन्थ की २७४-२७५ वीं गाथाओं में कहा है कि—

समयट्ठिदिगो बन्धो सादस्सुदयप्पिगो जुदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ, सादसरूवेण परिणमदि २७४
एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरन्तरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि।२७५।

अर्थात्—क्योंकि केवलज्ञानी के सिर्फ साता वेदनीय कर्म का बंध एक समय स्थिति वाला होता है जो कि उस ही समय आ जाता है। इस कारण उस साता वेदनीय के निमित्त से सातारूप होकर ही चला जाता है। इसी कारण केवलज्ञानी के सदा साता वेदनीय का उदय रहता है। अतएव असाता वेदनीय के उदय होने से क्षुधा आदि ११ परीषह नहीं हो पाते हैं।

इस प्रकार कर्म सिद्धांत से भी स्पष्ट सिद्ध हो गया कि केवलज्ञानी को न तो भूख लग सकती है और न वे इसके लिये भोजन ही करते हैं।

भोजन करना क्षुधाजनित दुःख का प्रतीकार है।

केवलज्ञान के प्रगट होने पर अर्हंत भगवान में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तबल यह अनन्त चतुष्टय प्रगट होते हैं जिससे कि केवलज्ञानी, अनन्तज्ञानी, अनन्तदर्शनधारी, अनन्तसुखी और अनन्त आत्मिक शक्ति—सम्पन्न होते हैं। तदनुसार केवली भगवान को कवलाहारी माननेवाला श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समक्ष यह प्रश्न स्वयमेव खड़ा हो जाता है कि 'जब केवलज्ञानी पूर्णतया अनन्तसुखी होते हैं तो फिर उनको भूख का दुःख किस प्रकार हो सकता है जिसको कि दूर करने के लिये उन्हें विवश (लाचार) होकर साधारण मनुष्यों के समान भोजन अवश्य करना पड़े?

इस प्रश्न का उत्तर यदि कोई प्रोफेसर सरीखे सज्जन यह दें जैसा कि कतिपय सज्जनों ने दिया भी है कि 'केवली वास्तव में अनन्तसुखी ही होते हैं। उनके आत्मा को लेशमात्र भी किसी दुःख का अनुभव नहीं हो सकता। हां, केवली भगवान को असाता वेदनीय कर्म के उदय से भूख अवश्य लगती है किन्तु वह भूख का दुःख शारीरिक होता है उनके शरीर को दुःख होता है आत्मा को नहीं। इस कारण भूख लगने के समय भी केवली भगवान अपने आत्मा के अनन्त सुख का अनुभव करते रहते हैं। जिस प्रकार ध्यानमग्न साधु के ऊपर असह्य शारीरिक वेदना देने वाला उपसर्ग होता है किन्तु उनको वह दुःख रञ्चमात्र भी नहीं मालूम होता। वे अपने आत्मा के अनुभव में लीन रहते हैं। श्वेताम्बरीय भाइयों का यह उत्तर भी निस्सार है अतएव उपहास जनक है। क्योंकि भूख से यदि केवलज्ञानी के आत्मा को असह्य कष्ट न होवे तो उनको भोजन करने की आवश्यकता ही क्या? भोजन मनुष्य तब ही करते हैं जबकि उनका आत्मा व्याकुल हो जाता है, वह किसी भी कार्य करने में समर्थ नहीं होता। ज्ञानशक्ति विद्यमान रहने पर भी क्षुधा की असह्य

वेदना से किसी विषय का विचार नहीं कर सकते।

इस कारण केवलज्ञानी को कवलाहारी माना जाय तो यह भी निःसन्देह मानना होगा कि उनको भूख का असह्य दुःख उत्पन्न होता है उसको दूर करने के लिये ही वे भोजन करते हैं। इस मानने से वे अनन्त अविच्छिन्न सुख के अधिकारी नहीं माने जा सकते।

केवलज्ञानी को भूख कैसे मालूम होती है? हम सरीखे अल्पज्ञ जीवों को तो भूख लगने पर बहुत भारी व्याकुलता उत्पन्न होती है। इस कारण हमारा मन हमको खबर दे देता है। उसकी सूचना पाते ही हम भोजन सामग्री एकत्र करने में लग जाते हैं। भोजन बन जाने पर खाना आरम्भ कर देते हैं और तब तक खाते पीते रहते हैं जब तक हमारा मन शान्ति न पा ले। मन की शान्ति देखकर हम खाना बन्द कर देते हैं।

इसी प्रकार केवलज्ञानी को जब भूख लगे तब उन्हें मालूम कैसे हो कि हमको भूख लगी है? क्योंकि उनके मन (भावरूप) रहा नहीं है। इस कारण मानसिक ज्ञान नहीं यदि वे केवलज्ञान से अपनी भूख को जानकर भोजन करते हैं तो बात कुछ बनती नहीं क्योंकि केवलज्ञान से तो वे सब जीवों की भूख को जान रहे हैं। फिर वे औरों की भूख जानने के समय भी भोजन क्यों नहीं करते हैं क्योंकि दोनों जानने बराबर है उनमें कुछ अन्तर नहीं।

तथा—जब उन्हें केवलज्ञान से यह बात मालूम हो कि मुझे भोजन अमुक घर का मिलेगा, फिर भिक्षा शुद्धि कैसे बनेगी? एवं भोजन ग्रहण करने वे स्वयं जाते नहीं। दूसरों द्वारा लाये हुये भोजन को खा लेते हैं। फिर उनके भिक्षाशुद्धि कैसे बने, और भिक्षाशुद्धि के बिना निर्दोष आहार कैसे हो?

तथा—भोजन करते-करते केवली की उदरपूर्ति को मन बिना कौन बतलावे? केवलज्ञान तो सभी मनुष्यों के भोजन द्वारा पेट भर जाने को बतलाता है।

मोह के बिना खाना पीना कैसे?

मनुष्य अपने लिये कोई भी कार्य करता है वह बिना मोह के नहीं करता है। यदि वह अपने किसी इस लोक परलोक सम्बन्धी लाभ के लिये कोई काम करता है तो उसके राग भाव होते हैं। और जहां जान बूझकर अपने या दूसरों के लिये बुरा कार्य करता है तो वहां द्वेषभाव होता है। तदनुसार जिस समय वह अपनी भूख मिटाने के लिये भोजन करने को तैयार होता है उस समय उसको अपने प्राणों में तथा उन प्राणों की रक्षा करने वाले उस भोजन में राग (प्रेम) होता है। वह समझता है कि यदि मैं भोजन नहीं करूंगा, तो मर जाऊंगा। इस कारण मरने के भय से भोजन करता है।

केवलज्ञानी जिनको लेश मात्र भी मोह नहीं रहा है, राग द्वेष जड़ मूल से दूर हो चुके हैं, उनके फिर भोजन करने की इच्छा किस प्रकार हो सकती है? और बिना इच्छा के अपने प्राण रक्षणार्थ भोजन भी वे कैसे कर सकते हैं?

उन्हें अपने औदारिक शरीर रक्षा की इच्छा तथा मरने में भय होगा तो वे भोजन करेंगे। बिना इच्छा के भोजन से हाथ क्यों लगावें? भोजन का ग्रास (कौर-कवल) बनाकर मुख में कैसे रक्खें? बिना इच्छा के उसे दांतों से चबाने का श्रम (मिहनत) तथा कष्ट क्यों करें, और बिना इच्छा के उस चबाये

हुये मुख के भोजनको गले के नीचे कैसे उतारे ? यानी—ये सब कार्य इच्छा—राग भाव से ही हो सकते हैं।

यह तो है नहीं कि विहायोगति कर्म के उदय से तथा अन्य देशवर्ती जीवोंके पुण्य विपाक के निमित्त से जैसे उनके गमन होता है या वचन योग के वश से तथा भव्य जीवों के पुण्य विपाक से जैसे दिव्य-ध्वनि होती है उसी प्रकार केवली भगवान के भोजन भी बिना इच्छा के वेदनीय कर्म के उदय से अपने आप हो जायगा, क्योंकि आकाशगमन और दिव्य-ध्वनि में एक तो केवली भगवान का कोई निजी स्वार्थ नहीं जिससे उनसे उस समय इच्छा अवश्य होवे। वे दोनों कार्यकर्मके उदय से परवश उन्हें करने पड़ते हैं, और वह नामकर्म कराता है। परन्तु वेदनीय कर्म तो ऐसा नहीं कर सकता।

वेदनीयकर्म यदि आपके कहे अनुसार कार्य भी करे तो अधिक से अधिक यही कर सकता है कि असह्य (न सहने योग्य) भूख वेदना उत्पन्न कर दे किन्तु वह भोजन करने की इच्छा तो किसी प्रकार भी उत्पन्न नहीं कर सकता, क्योंकि इच्छा वेदनीय का कार्य नहीं है। और न बलपूर्वक (जबरदस्ती) भोजन ही करा सकता है क्योंकि वह (असाता वेदनीय) केवल दुःख उत्पादक है। दुःख हटाने को चेष्टा मोह-नीय कर्म कराता है। इस कारण केवली भगवान के यदि वे भोजन करें तो मोह अवश्य मानना पड़ेगा।

तथा—एक बात यह भी है कि केवलज्ञानी यदि भोजन करें तो अपनी२ जठराग्नि के (पेटकी भोजन पचाने वाली अग्नि के) अनुसार कोई केवली थोड़ा भोजन करेंगे और कोई बहुत करेंगे, क्योंकि ऐसा किये बिना उनके पूर्ण तृप्ति नहीं होगी। पूर्ण तृप्ति हुए बिना उन्हें शान्ति, सुख नहीं मिलेगा। अतएव यदि वे पेट पूरा भरकर भोजन करें तो अव्रती लोगों के समान भोगाभिलाषी हुये। यदि भूख स कुछ कम भोजन करें तो दो दोष आते हैं, एक तो यह कि उन का पेट खाली रह जाने से पूरी तृप्ति नहीं होगी अत एव सुख मे कमी रहेगी। दूसरा यह कि—जब वे यथाख्यात चारित्र पा चुके हैं तब उन्हें ऊनोदर (भूख से कम खाना) तप करने की आवश्यकता ही क्या रही ?

तथा यदि भोजन कर लेने पर कुछ भोजन शेष रह जाय तो उसे क्या फिकवा देंगे ? या किसी को खिला देंगे ? यदि फेकवा देंगे तो उस भोजन में सम्मूर्छन जीव उत्पन्न होंगे, हिंसा के साधन बनेंगे। यदि उस बचे हुए भोजनको कोई खा ले तो उच्छिष्ट (जूठा) भोजन कराने का दूषण केवली को लगेगा।

सारांश—यह है कि भोजन कराने पर केवली भगवान मोही तथा दोष वाले अवश्य सिद्ध होंगे। इसी कारण गोम्मटसार कर्मकाण्ड में कहा है—

णट्ठायरायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्मि जदो।
तेणदु सादासादज सुहदुक्खं णत्थि इंदियजं १२७

यानी—केवली भगवान के रागद्वेष तथा इन्द्रिय ज्ञान नष्ट हो चुके हैं इस कारण साता वेदनीय तथा असाता वेदनीय के उदय से होनेवाला इंद्रिय जन्य सुख या दुःख केवली के नहीं है।

इस कारण मोहनीय कर्म बिलकुल नष्ट हो जाने से भी केवली भगवान भोजन नहीं कर सकते हैं—

केवली भोजन करें भी क्यों ?

मनुष्य भोजन मुख्यतया चार कारणों से करते हैं। १-भूख लगने से दुःख होता है उस दुःख को दूर करने के लिये भोजन करना आवश्यक है।

२–भोजन न करनेसे भूखके मारे बुद्धि कुछ काम नहीं करती है। ३–भोजन न करने से बल घट जाता है। ४–भोजन न करने से मृत्यु भी होती है। इन चार कारणों से विवश (लाचार) होकर मनुष्य भोजन किया करते है।

किन्तु केवली भगवान मे तो ये चारो ही कारण नहीं पाये जाते क्योकि पहला कारण तो इसलिये उन के नहीं है कि उनके मोहनीय कर्म के अभाव मे अनन्त सुख (अतींद्रिय सुख) प्रगट हो गया है इस कारण उनको किसी प्रकार का लेशमात्र भी दु:ख नहीं हो सकता। क्योकि अनन्त सुख वह है जिसमे कि किसी तरह का जरा भी दु:ख न हो फिर भूख का बड़ा भारी दु:ख तो उनके होवे ही क्यो ? और जब कि उनको भूख का कुछ दुख ही नहीं लगता तब उन्हें भोजन करनेका क्या आवश्यकता ? यानी कुछ आवश्यकता नहीं।

दूसरा कारण इसलिये नहीं है कि अर्हंत भगवान के ज्ञानावरण कर्म नष्ट हो जानेसे अनन्त, अविनाशी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है वह कभी न तो कम हो सकता है और न नष्ट हो सकता है जिसमे कि उनको भोजन करना आवश्यक है।

तीसरा कारण इसलिये नहीं है कि अन्तराय कर्म न रहने से उनके अनन्त बल उत्पन्न हो गया है इस कारण वे यदि भोजन न भी करें तो उनका बल कम नहीं हो सकता।

चौथा कारण इस लिये नहीं है कि वे आयु कर्म नष्ट होनेके पहले किसी भी प्रकार शरीर छोड़ (मर) नहीं सकते क्योकि केवली भगवान की अकालमृत्यु नहीं होती है ऐसा आप श्वेताम्बरी भाई भी मानते हैं। फिर जबकि उनकी आयु पूर्ण होने के पहले केवली भगवान की मृत्यु ही नहीं हो सकती तब भोजन करना व्यर्थ है। भोजन न करने पर भी उन का कुछ बिगाड़ नहीं।

इस कारण केवली भगवान को कवलाहार मानना निरर्थक है। भोजन करने मे उन्हे कुछ लाभ नहीं। फिर वे निष्प्रयोजन कार्य क्यो करें। क्योंकि 'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' यानी बिना मतलब विचारा मूर्ख (अल्पबुद्धि) आदमी भी किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता है।

—केवली की भोजन विधि—

श्वेताम्बरी भाई कहते हैं कि केवली भगवान अपने लिये भोजन लेने स्वयं नहीं जाते किन्तु उनके लिये गणधर या इतर कोई मुनि भोजन ले आते हैं। उस भोजन को अर्हंत भगवान दिन के तीसरे पहर यानी १२ बजे के पीछे ३ बजे तक के समय मे खाते हैं। अर्हंत भगवान के भोजन करने के लिये 'देवच्छन्दक' नाम का स्थान बना होता है उस पर बैठकर भोजन करते हैं। अतिशय से भोजन करते हुये इन्द्र या दिव्यज्ञान धारी मुनि के सिवाय किसी को दिखलाई नहीं देते।

इस प्रकार भोजन करने से केवली के एक तो भोजन करने की इच्छा सिद्ध होती है जिससे कि वे प्रत्येक दिन तीसरे पहर अपने स्थान (गन्धकुटी) से उठकर उस देवच्छन्दक स्थानपर जाकर बैठते हैं और भोजन करते हैं तथा भोजन करके फिर अपने स्थान पर चले जाते हैं।

दूसरे उनके परिणामो में व्याकुलता आ जाना सिद्ध हो जाता है क्योकि उनके परिणामो में जब भूख से व्याकुलता होगी तभी वे उठकर और कार्य छोड़कर भोजन करने जाते हैं।

तीसरे—भोजन करना केवली के लिये इस कारण भी अनुचित सिद्ध होता है कि वे भोजन करते हुये साधारण जनता को दिखाई नहीं देते हैं। जैसे उपदेश देते समय वे सबको दिखलाई देते। जो कार्य कुछ अनुचित होता है वह ही छिपकर किया जाता है। तथा लोग उस देवच्छंदक स्थान को जानते तो होंगे ही। तदनुसार सिंहासन खाली देखकर समझ भी लेते होंगे कि भगवान भोजन करने गये हैं।

चौथे भोजन करने के पीछे साधुओं को भोजन सम्बन्धी दोष हटाने के लिये कायोत्सर्ग प्रतिक्रमण करना पड़ता है सो केवली स्वयं करते हैं या नहीं? यदि करते हैं तो भोजन करना दोष ठहरा। यदि नहीं करते तो भोजन बनने में जो गृहस्थ से त्रस स्थावर जीवों का घात हुआ तथा भोजन लाने वाले मुनि से जाने आने में जो हिंसा हुई वे दोष केवली ने कैसे दूर किये?

पांचवें भोजन करने से उनको नीहार यानी पाखाना और पेशाब भी आता है ऐसा आप मानते हैं। किन्तु वे पाखाना तथा पेशाब करते दिखलाई नहीं‡ देते।

इस प्रकार भोजन करने से उनके शरीर में टट्टी पेशाब सरीखे गन्दे मैल और पैदा हो सकते हैं जिनके कारण अनन्त सुखी केवली भगवान को एक दूसरी घृणित आफत तयार हो गई।

मुनि आत्माराम जी का उसी ५७१वें पृष्ठ में यह भी कहना है कि "सामान्य केवलियों के तो विवक्त देश में (एकान्त में) मलोत्सर्ग (टट्टी पेशाब) करने से दोष नहीं है" इसलिये यह भी मालूम हुआ कि सामान्य केवलियों के टट्टी पेशाब करने को मनुष्य उस एकान्त स्थान में जाकर देख भी सकते हैं।

छटे केवली भगवान को भोजन कराने के लिये कोई मुनि पास रहता होगा जो केवली भगवान के हाथ में भोजन रखता जाता होगा क्योंकि केवली पाणिपात्र (हाथमें भोजन करने वाले) होते हैं, पात्रों में भोजन नहीं करते। जैसा कि आत्माराम जी ने तत्वनिर्णय प्रासाद के ५६७ पृष्ठ पर लिखा है कि 'अर्हन्त भगवन्तों को पाणिपात्र होने से'। इस लिये भोजन पान कराने वाले एक मनुष्य की आवश्यकता भी हुई।

सातवें बात, पित्त कफ के विषम हो जाने से अथवा आहार रूखा, सूखा, ठण्डा, गर्म आदि मिलने से केवली के पेट में कुछ गड़बड़ भी हो सकती है जिससे कि केवली भगवान को पेचिष आदि रोग भी हो सकते हैं। तब फिर उन रोगों को दूर करने के लिये औषध लेने की आवश्यकता भी केवली को होगी जैसे कि आप श्वेताम्बरी भाइयों के कहे अनुसार महावीर स्वामी को हुई थी।

आठवें नगर में या इधर उधर अग्नि लगने युद्ध आदि उपद्रव होने से अन्तराय हो जाने के कारण किसी दिन आहार नहीं भी मिल सकता है जिससे कि उस दिन केवली भगवान भूखे भी रह सकते हैं।

नौवें वैक्रियिक शरीरी देव ३२-३३ पक्ष यानी सोलह साढे सोलह मास पीछे थोड़ा सा आहार लेते हैं। औदारिक शरीर वाले भोग भूमिया मनुष्य तीन दिन पीछे बेर के बराबर आहार करते हैं और टट्टी

‡ देखो मुनि आत्माराम जी कृत वि० सं० १६४८ के छपे हुये तत्वनिर्णय प्रासाद की ५७१ वां पृष्ठ "अतिशय के प्रभाव से भगवन्त का नीहार भी मांस चक्षुओं वाले के अदृश्य होने से दोष नहीं है।"

पेशाब आदि मल मूत्र नहीं करते। किन्तु केवली प्रति दिन उनसे कई—गुणा अधिक आहार करते हैं तथा प्रति दिन टट्टी पेशाब भी उन्हें करना पड़ता है। इसलिये अनन्त सुख वाले केवली भगवान से तो वे देव और भोगभूमिया ही हजारों गुण अच्छे रहे। वेदनीय कर्म ने केवली भगवान को उनकी अपेक्षा बहुत कष्ट दिया।

दशवां एक अनिवार्य दोष यह भी आता है कि केवली भगवान मल मूत्र करने के पीछे शौच (गुदा आदि मल युक्त अङ्गों को साफ) कैसे करते होंगे? क्योंकि उनके पास कमण्डलु आदि जल रखने का बरतन नहीं होता है जिसमें कि पानी भरा रहे।

इत्यादि अनेक अटल दोष केवली के कवलाहार करने के विषय में आ उपस्थित होते हैं जिनके कारण श्वेताम्बरी भाइयों का अर्थात प्रोफेसर जी का पक्ष बालू की भीत के समान अपने आप गिरकर धराशायी हो जाता है। हमें दुख होता है कि श्वेताम्बरीय प्रसिद्ध साधु आत्माराम जी आदि ने केवली का कवलाहार सिद्ध करने में असीम परिश्रम करके व्यर्थ समय खोया। वे यदि केवली भगवान के वीतराग पद का तथा उनके अनन्त चतुष्टयों का जरा भी ध्यान रखते तो हमारी समझ से निष्पक्ष हो कर इतनी भूल कभी नहीं करते।

—सारांश—

यह सब लिखने का सारांश यह है कि क्षुधा (भूख) एक असह्य दुख है जो कि अनन्त सुखधारक केवली के नहीं हो सकता, क्योंकि या तो वे असह्य दुखधारी ही हो सकते हैं या अनन्त सुखधारी ही हो सकते हैं। तथा भोजन करना रागभाव से ही होता है। बिना राग भाव के भोजन करके अपना उदर तृप्त करना बनता नहीं। केवली भगवान मोहनीयकर्म को नष्ट कर चुके हैं इस कारण रागभाव उनमें लेशमात्र भी नहीं रहा है। अतएव वे राग भाव के अभाव में भोजन भी नहीं कर सकते। इसलिये या तो उनके कवलाहार का अभाव कहना पड़ेगा।

एवं भोजन न करने पर भी केवली भगवान का ज्ञान न तो घट सकता है और न बल कम हो सकता है तथा न उनको भोजन न करने के कारण मृत्यु हो हो सकती है, तथा न उन्हें कोई किसी प्रकार की व्याकुलता ही उत्पन्न हो सकती है। क्योंकि वे ज्ञानावरण मोहनीय और अन्तराय कर्मों का बिलकुल क्षय करके अविनाशी, अनन्तज्ञान, सुख और बल प्राप्त कर चुके हैं। इस कारण केवली को कवलाहार (ग्रासवाला भोजन) करना सर्वथा निष्प्रयोजन है।

वेदनीय कर्म विद्यमान रहता हुआ भी मोहनीय कर्म की सहायता न रहने से केवली भगवान को कुछ फल नहीं दे सकता। तथा—वेदनीय कर्म में स्थिति, अनुभाग (फल देने की शक्ति) कषाय के निमित्त से पड़ते हैं सो केवली भगवान के कषाय बिलकुल न रहने से वेदनीय कर्म में बिलकुल स्थिति नहीं पड़ती है। पहले समय में आकर उसी समय में कर्म झड़ जाता है। वह एक समय भी आत्मा के साथ नहीं रहने पाता।

दूसरे उसमें अनुभाग शक्ति जरा भी नहीं होती भस्म किये हुये (प्रयोग द्वारा मारे हुये) संखिया के समान वह कर्म अपना कुछ भी फल नहीं दे सकता। इसलिये वेदनीय कर्म का उदय कर्म सिद्धांत के अनुसार क्षुधा, तृषा, आदि परीषहों को उत्पन्न नहीं कर सकता। इसलिये श्वेताम्बरीय ग्रन्थकार स्वयं केवली से अक्षय, अतीन्द्रिय, अनुपम, अनन्त, अप्रतिहत,

स्वाधीन सुख मानते हैं। फिर भला वे ही बतलावें कि ऐसा सुख रहते हुए भी उन्हें क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण आदि परीषह किस प्रकार कष्ट दे सकती हैं।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि अपने पक्ष में अटल दूषण आते भी देखकर हमारे श्वेताम्बरी भाई केवली भगवान के वेदनीय कर्म के उदय से ११ ग्यारह परीषहों का होना हठकर बतलावें तो उन्हें इस बात का भी उत्तर देना होगा कि क्षुधा, तृषा परीषह मिटाने के लिये तो आपने सदोष कवलाहार करने की कल्पना कर ली किन्तु शेष ६ परीषहों का कष्ट केवली भगवान के ऊपर से टालने के लिये क्या प्रबन्ध कर छोड़ा है।

क्या केवली भगवान को शीत उष्ण, परीषह से सर्दी गर्मी का कष्ट होता रहता है, उसको हटाने का कोई उपाय नहीं? क्या उन्हें दंशमशक परीषह के अनुसार डांस, मच्छर आदि कष्ट देते रहते हैं, कोई उन्हें बचाता नहीं है? चर्या शय्या परीषह के अनुसार क्या केवली भगवान को चलने और लेटने का कष्ट सहना पड़ता है? बध परीषह के अनुसार क्या कोई दुष्ट मनुष्य देव तिर्यंच उन्हें आकर मारता भी है? रोग परीषह क्या उनके शरीर में रोग पैदा कर देती है? तृणस्पर्श परीषह के निमित्त से क्या उनके हाथ पैरों में तिनके कांटे आदि चुभते रहते हैं, और क्या मल परीषह उनके शरीर पर मैल उत्पन्न करके केवली को दुख देती रहती है।

इन दुखोंके दूर करने का भी कोई प्रबन्ध सोचा होगा यदि केवली के उक्त ६ परीषहों के द्वारा ६ प्रकार के कष्ट होते हैं तो उनके निवारण का उपाय क्या होता है?

यदि इन ६ परीषहों का कष्ट केवली महाराज को होता ही नहीं तो क्षुधा, तृषा का ही क्यों कष्ट उन्हें अवश्य होना माना जाय?

इसी कारण स्वर्गीय कविवर प० द्यानतराय जी ने एक सवैया में कहा है—

भूख लगे दुख होय, अनन्तसुखी किमि केवल-ज्ञानी। खात विलोकत लोकालोक देख कुद्रव्य भखे किमि ज्ञानी॥ खाय के नींद करे सब जीव न स्वामि के नींद की नाम निशानी। केवली कवलाहार करें नहिं साची दिगम्बर ग्रन्थ की बानी॥

यानी—भूख लगने पर बहुत दु:ख होता है फिर भूख लगने पर केवलज्ञानी अनन्तसुखी कैसे हो सकते हैं? तथा केवली भगवान भोजन करते हुये भी समस्त लोक, अलोक को स्पष्ट देखते हैं फिर वे मल, मूत्र, रक्त, पीव आदि अपवित्र घृणित लोक के पदार्थों को देखकर भोजन कैसे कर सकते हैं? एवं भोजन करने के पीछे सभी कोई आराम करने के लिये सोया करते हैं किन्तु केवलज्ञानी सोते नहीं। इस कारण केवली भगवान के कवलाहार नहीं है यह कथन दिगम्बर जैन ग्रन्थों में है और वह बिलकुल ठीक है।

—केवली भगवान का स्वरूप—

अब हम संक्षेपरूप से केवली भगवान के स्वरूप का उल्लेख करते हैं।

जिस समय दशवें गुणस्थान के अन्त में अथवा बारहवें गुणस्थान के आदि में मोहनीयकर्म का और उसके अन्तमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्म का क्षय हो जाता है उस समय साधु तेरहवें गुणस्थान में पहुच जाते हैं और उनके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख और अनंतवीर्य यह अनन्त-

चतुष्टय उत्पन्न हो जाता है। केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे उन्हें केवली तथा सर्वज्ञ भी कहते हैं क्योंकि वे उस समय समस्त काल और समस्त लोक के समस्त पदार्थों को एक साथ जानते हैं।

उस समय उनमें जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, आश्चर्य, पीड़ा, खेद, रोग, शोक, मान, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता, पसीना, राग, द्वेष और मरण ये १८ अठारह दोष नहीं रहते हैं ? तथा १० अतिशय प्रगट होते हैं। उनके आस पास चारों ओर सौ योजन तक दुर्भिक्ष नहीं होता है, उनके ऊपर कोई उपसर्ग नहीं होता है, उनके कवलाहार नहीं होता है, उनके नख और केश नहीं बढ़ते हैं न उनके नेत्रों के पलक झपकते हैं उनके शरीर की छाया भी नहीं पड़ती वे ऊंचे निराधार गमन करते हैं उनके आस पास रहने वाले जाति विरोधी जीव भी विरोधी भाव छोड़कर प्रेम से रहते हैं इत्यादि।

केवली भगवान का शरीर मूत्र, पाखाना, आदि मल रहित होता है, न उसमें निगोद राशि रहती है और न उसमें रक्त मांस आदि धातुए बनती हैं।

शुद्धस्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः।
जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम्॥

यानी—दोष रहित केवली भगवान का शरीर शुद्ध स्फटिक मणि के समान तेजस्वी और सप्तधातु रहित होता है केवली भगवान यद्यपि कवलाहार (भोजन) नहीं करते हैं किन्तु लाभान्तराय कर्म का क्षय हो जाने से उनको क्षायिक लाभ नामक लब्धि प्राप्त हो जाती है इस कारण उनके शरीर पोषण के लिये प्रति समय असाधारण, शुभ अनन्त नोकर्म वर्गणायें आती रहती हैं। इस कारण कवलाहार न करने पर भी नोकर्म और कर्माहार उनके होता है। इसलिये उनका परम औदारिक शरीर निर्बल नहीं होने पाता।

इसी कारण कवलाहार न होने पर भी केवलज्ञानी भगवान का परमौदारिक शरीर नोकर्म और कर्माहार से ठहरा रहता है यह सिद्ध हुआ।

इस प्रकार प्रोफेसर साहब तथा उन सरीखे यद्वा तद्वा कहने वाले सभी महाशयों का निराकरण करने वाला यह तृतीय कुसुम (प्रकरण) समाप्त हुआ।

—: सारांश :—

प्रोफेसर जी कहते हैं कि, श्री अनादि अनिधन सनातन जैन धर्म प्रस्थापक श्री कुन्दकुन्दाचार्य ही हैं, और कुन्दकुन्द के गुरु भद्रबाहु, कहना यह बात बिलकुल युक्ति शून्य व गलत है, क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु जिनचन्द्राचार्य होने पर भी जिनागम युक्त अन्वर्थक नाम ढककर कपोल कल्पित कहना यह मुख की शोभा नहीं है। और कुन्दकुन्द को इस युग के समस्त आचार्यों में प्रथम और प्रधान बतलाने में स्वार्थ है, इत्यादि—

मङ्गलं भगवान वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥

इस प्रस्तुत मङ्गलाचरण का क्या अभिप्राय है ?

अर्थात्—सभी पूर्वाचार्यों से भी प्रथम कुन्दकुन्दाचार्य हैं यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है।

आगे लिखते हैं कि—स्थविरावली के अनुसार शिवभूति के शिष्य और उत्तराधिकारी 'भद्र' हुये। इस लिखावट से आपने 'भद्र' से द्वितीय 'भद्रबाहु' को समझा है, जिसकी कि पुष्टि आपने श्रवणबेलगोला शिलालेख नं० ४० (६४) से की है। किन्तु उस शिला लेख का अर्थ आपने बिलकुल उलटा (विपरीत) ही किया है। शिला लेख निम्न लिखे

अनुसार है—

शिलालेख नं० ३

श्री भद्रस्सर्वतो यो हि भद्रबाहुरिति श्रुतः।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरमः परमो मुनिः।
चन्द्रप्रकाशोज्वलसान्द्रकीर्तिः।
श्रीचन्द्रगुप्तोजनि तस्य शिष्यः।
यस्य प्रभावाद्वनदेवताभिराराधित
स्वस्य गणो मुनीनाम्॥

भावार्थ—सर्व प्रकार से कल्याण कारक श्रुत—केवलियों में अन्तिम श्रुत केवली श्री भद्रबाहु परम मुनि हुये। उनके शिष्य चन्द्रगुप्त हुये जिनका यश चन्द्र समान उज्ज्वल है और जिनके प्रभाव से वन देवता ने मुनियों की आराधना की थी।

इस शिलालेख से यह बात प्रमाणित होती है कि सम्राट चन्द्रगुप्त जिन भद्रबाहु मुनीश्वर के शिष्य थे वे श्री भद्रबाहु अन्तिम श्रुत केवली ही थे, दूसरे भद्रबाहु नहीं।

शिलालेख नं० ४

वरर्य कथन्नु महिमा भण भद्रबाहो.,
मोहोरुमल्लमदमर्दनवृत्तबाहोः।
यच्छिष्यताप्तसुकृतेन च चन्द्रगुप्त,
सुश्रूषते स्म सुचिरं वनदेवताभिः॥

अर्थ—भला कहो तो सही कि मोहरूपी महामल्ल के मद को चूर्ण करने वाले श्री भद्रबाहु स्वामी की महिमा कौन कह सकता है जिनके शिष्यत्व के प्राप्त पुण्य प्रभाव से वन-देवताओं ने चन्द्रगुप्त की बहुत दिनों तक सेवा की।

शिलालेख नं० ५

तदन्वये शुद्धमतिप्रतीते समग्रशीलामलरत्नजाले।
अभूद्यतीन्द्रो भुवि भद्रबाहुः पयः पयोधाविव पूर्णचन्द्र
भद्रबाहुरग्रिमस्समग्रबुद्धिसम्पदा,
शुद्धसिद्धशासनः सुशब्दबन्धसुन्दरम्।
इद्धवृत्तिरत्र बद्धकर्मभित्तपोद्ध,
ऋद्धिवर्द्धित प्रकीर्तिरुद्धधीमहर्द्धिकः॥
यो भद्रबाहुः श्रुतकेवलीनां,
मुनीश्वराणामिह पश्चिमोपि।
अपश्चिमोऽभूद्विदुषां विनेता,
सर्वश्रुतार्थप्रतिपादनेन॥

यदीयशिष्योऽजनि चन्द्रगुप्तः समग्रशीलानतदेववृद्धः
विवेश यत्तीव्रतपः प्रभावात प्रभूतकीर्तिर्भुवनांतराणि

भावार्थ—जिसमें समस्त शीलरूपी रत्नसमूह भरे हुये हैं और जो शुद्धबुद्धि से प्रख्यात है उस वंश समुद्र में चन्द्रमासमान श्री भद्रबाहु स्वामी हुये।१।

समस्त बुद्धिशालियों मे श्री भद्रबाहु स्वामी अग्रेसर थे। शुद्ध सिद्ध शासन और सुन्दर प्रबन्ध से शोभा सहित बढ़ी हुई है व्रत की सिद्धि जिनकी तथा कर्मनाशक तपस्या से भरी हुई है कीर्ति जिनकी ऐसे ऋद्धिधारक श्री भद्रबाहु स्वामी थे।२।

जो भद्रबाहु स्वामी श्रुत केवलियों में अन्तिम थे किन्तु शास्त्रोंका प्रतिपादन करनेवाले समस्त विद्वानों में प्रथम थे।३।

जिनके शिष्य चन्द्रगुप्त ने अपने शील से बड़े २ देवों को नम्रीभूत बना दिया था। जिन चन्द्रगुप्त के घोर तपश्चरण के प्रभाव से उनकी कीर्ति समस्त लोकों में व्याप्त हो गई है।४।

इन शिलालेखों से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि सम्राट् चन्द्रगुप्त अन्तिम श्रुत केवली के शिष्य होकर मुनि हुये थे। और उनके साथ चन्द्रगिरि पर्वत पर उन्होंने तपस्या की थी। पूर्व अवस्था में चन्द्रगुप्त एक अच्छे प्रसिद्ध शूरवीर सम्राट् थे इस कारण शिला-

लेखों में भी उनका नाम प्रभाचन्द्र (मुनि दीक्षा के समय का नाम) न लेकर अधिकांश चन्द्रगुप्त ही लिया गया है। तथा उनके नाम के ऊपर ही कटवप्र पर्वत का नाम चन्द्रगिरि रख दिया गया। एव उन के पौत्र सम्राट् अशोक द्वारा निर्माण कराये गये इस पर्वत के जैन मन्दिरो का नाम 'चन्द्रगुप्त बस्ती' प्रसिद्ध हुआ।

इसके सिवाय गौतम क्षेत्र के अपर भाग मे बहने वाली कावेरी नदीके पश्चिम भागमे जो रामपुर ग्राम है उसके अधिपति सिङ्गरी गौडाके खेतमें जो दो शिलालेख मिले हैं वे इस प्रकार है।

शिलालेख न० ६

श्री राज्यविजय सम्वत्सर सत्यवाक्य परमानदि-गलु आलुत नाल्किनेय वर्षात मार्गशीर्ष मासद पेर-तले दिवास भागे स्वस्ति समस्तविशालदमी प्रधान—निवास प्रभव प्रणत सकल सामन्त समूह भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मुनिपति चरणलाञ्छनाचित त्रिशिलसिर-कलवप्पु गिरिपनाथ बेलगुलाधिपति गण धा श्री त्र मतिसागर पण्डितभट्टार वेसदोल अश्रयनु देवकुमार-नु धोटनु इलटुर आरगणो बागपल्लिय कोगद श्रीके सिग तनेो नेरिपुल कट्टन ट्टू मुडरके।

कोट्टस्थिति क्रमवएन्तुव यन्दोदे बडर नियनीर वयगीय गिड वरिस पत्तन्दि परदनय वरिसमेम्ब आर्जिसुरनेयवरिस नन्दिगे गडलत्रायेलाकेला यल्ला इत्र गल्लु सलगु।

अर्थ—समस्त लक्ष्मी तथा सरस्वती का निवास-स्थान और समस्त सामन्तों द्वारा नमस्कृत श्री भद्र-बाहु और चन्द्रगुप्त महामुनि के चरणों से मण्डित कटवप्र सदा विजयशील रहे।

सत्यवाक्य परमानन्दी महाराज के राज्य के चौथे वर्ष में मार्गशीर्ष शुक्लाष्टमी को श्री मतिसागर पण्डित भट्टारक की आज्ञानुसार अश्रय्या, देवकुमार और घोर इन तीनो ने वेनपल्लिके खरीदार कर्शी क लिये तेल्लुरमें सतु निर्माणके बदले में निम्नलिखित दान दिया है।

सब ग्राम निवासियो ने खेती के लिये इस सतु म जल लेने का प्रयोग किया प्रथमवर्ष में बिना कुछ दिये ही जल का उपयोग करना। दूसरे वर्ष मे कुछ देकर उपयोग करना और तीसरे वर्ष मे जो कुछ दिया जायगा वह निश्चित रूप से निर्धारित कर समझा जाय।

शिलालेख ७

(६वीं शताब्दी)

भद्रमस्तु जिनशासनाय। अनवरत अखिल सुरासर नरपति मौलिमाला चरणारविन्द युगल सकल श्री राज्य युवराज्य भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मुनिपति मुद्राङ्कित विशाल जगल ललामायित श्री कलवप्पु तीर्थमनाथ बेलगुलनिवासि • श्व (म) गामह स्याद्वादाधार भूतरप्पा श्रीमत्त्रमित सत्यवा - क्यकुगुम वर्मा धर्म महाराजाधिराजकु वलाल पुर-वर नन्दिगिरिनाथ स्वस्ति समस्त भुवनविनुतगङ्ग-कुलगगननिर्मलतारापतिजलधिजलविपुलवलयमेख-लाकलापालङ्कृतलाभिपत्य लक्ष्मी स्वयम्वृत पतिवश आगणितगुणगणभूषण भूपतिाम्भूनि श्रीमत्परमान-दिगलु येरेयप्पसर इलुवगि परमनदि गल १ प— साद आग्यरप्पा परपिग कुमारमन भट्टारकपद स्थिति विलय आविक्य मोल्लुगेय विट्टिउनदृवर मन यल्ला-कलकम मर्वबाधा परिहरं आगे विदिसिदार इदन— लिड़ अडान कोहन पशुव परवर करेय अभेय बा-सिगुन अलिद पंच महापातक।

देवस्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते ।
विषमेकाकिन हन्ति देवस्व पुत्रपौत्रकं ॥

यह शिलालेख क्यातनहल्ली ग्राम के दक्षिण भाग में जो चट्टानी है वहां पर है ।

तात्पर्य—जैनधर्म का कल्याण हो । समस्त देव राक्षस तथा राजा लोगों के मस्तक झुकाने से मुकुट-मणि की चमक से प्रकाशमय चरणकमल वाले श्री भद्रबाहु स्वामी को नमस्कार करो । गंग राज्य के युवराज, स्याद्वाद के संरक्षक, बेलगुलस्थ श्रमणसङ्घ के अधिपति अपने चरणकमल से जगद् भूषण कटवप्र पर्वत को पवित्र करने वाले श्रीमान भद्रबाहु स्वामी और चन्द्रगुप्त मुनि हमारा संरक्षण करें । गङ्ग राजकुलाकाश के निष्कलङ्क चन्द्रमा और कुवलयपुर तथा नन्दगिरि के स्वामी श्रीसत्यवाक्योङ्गणि वर्मा धर्ममहाराधिराज की स्तुति समस्त संसार ने की है । समुद्रमेखला से परिवेष्टित तथा पृथ्वी के स्वयम्वरित पति सकलगुणविभूषित श्रीपरमानदी पर्वेरसगण्णाने जिनेन्द्र भवन के लिये श्री कुमारसेन भट्टारक को निम्नलिखित दान दिया है ।

एक ग्राम स्वच्छ चावल बेगार था इन दान की हुई वस्तुओं के अपहरण करनेवालों को हिंसा और पंच महापाप का पातक लगेगा ।

केवल विष ही विष नहीं होता है किन्तु देव धन को भी परं विष समझना चाहिये क्योंकि विष तो भक्षण करने वाले केवल एक प्राणी को मारता है किन्तु देवधन सारे परिवार का नाश कर देता है ।

इन शिलालेखों से भी हमारी पूर्वोक्त बात पुष्ट हो गई । इस कारण सारा यह निकलार्थ कि अन्तिम श्रुत केवली श्री भद्रबाहु स्वामी के समय मालवा आदि उत्तर दिशा में बारह वर्ष का दुर्भिक्ष अवश्य पड़ा था । उसके प्रारम्भ होने से पहिले ही भद्रबाहु स्वामी अपने मुनि सघसहित दक्षिण देश को रवाना हो गये थे । वहां कटवप्र पर्वत के समीप निमित्त ज्ञान से उनको अपना मृत्यु समय निकट मालूम हुआ इसलिये अपने पास केवल नव दीक्षित चन्द्रगुप्त अपरनाम प्रभाचन्द्र को अपने पास रखकर कटवप्र पर्वत पर समाधिमरण धारण कर ठहर गये और समस्त मुनिसङ्घ को चोलपाण्ड्य देश की तरफ भेज दिया ।

—शास्त्रीय-प्रमाण—

अब हम इस विषय में पुरातन ग्रन्थों का प्रमाण उपस्थित करते हैं जिससे कि पाठक महानुभावों को उक्त कथा की सत्यता और भी दृढ़रूप से मालूम हो जावे । राजबली कथा—नामक कर्नाटक भाषा में एक अच्छा प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जो कि देवचन्द्र ने सम्वत् १८०० में लिखा है । उस ग्रन्थमें ग्रन्थ लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि—

"सम्राट चन्द्रगुप्त अन्तिम श्रुत केवली श्री भद्रबाहु का शिष्य था । संसार से विरक्त होकर भद्रबाहु से मुनिव्रत की दीक्षा लेकर मुनि हुआ था । मुनि दीक्षा देते समय श्री भद्रबाहु स्वामी ने उसका नाम 'प्रभाचन्द्' रक्खा था । बारह वर्ष के दुष्काल के समय वह भद्रबाहु के साथ दक्षिण देश आया था और वहां पर भद्रबाहु के समाधिमरण करने के समय उनकी वैयावृत्य के लिये कटवप्र (कलवप्पु) पर्वत पर रहा था ।"

श्री हरिषेणाचार्यकृत 'बृहत्कथाकोष' नामक ग्रन्थ में भी जो कि सम्वत् ६३१ में बना है श्री भद्रबाहु स्वामी और सम्राट् चन्द्रगुप्त के विषय में उपर्युक्त लेख के अनुसार ही उल्लेख है ।

श्री रत्ननन्द्याचार्यने सम्बत् १४५० में जो भद्रबाहु चरित्र नामक ग्रन्थ बनाया है उसमें लिखा है—

चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्मोदकर्तृणाम् ।
चन्द्रगुप्तिनृपस्तत्राचकचारुगुणोदयः ॥७॥

द्वितीय परिच्छेद,

राजस्त्वदीयपुण्येन भद्रबाहुः गणाग्रणीः
आजगाम तदुद्याने मुनिसन्दोहसयुतः ॥२१॥

तृतीय परिच्छेद,

चन्द्रगुप्तिस्तदावादीद्विनयाग्नवदीक्षितः ।
द्वादशाब्दगुरो पादौ पर्युपासेनिभक्तितः ॥२॥
भयसप्तपरित्यक्तो भद्रबाहुर्महामुनिः ।
अशनाय पिपासोत्थ जिगाय श्रममुल्वणम ॥३७॥
समाधिना परित्यज्य देह गेह रुजा मुनि ।
नाकिलोक परिप्राप्तो देवदेवीनमस्कृत ॥३८॥
चन्द्रगुप्तिर्मुनिस्तत्र चचच्चारित्रभूषणम ।
आलिख्य चरणौ चारू गुरोः समेवते सदा ॥४०॥

भावार्थ—चन्द्रसमान उज्वल कीर्तिधारक, चन्द्रमा तुल्य आनन्द करनेवाले, सुन्दर गुणो से विभूषित महाराज चन्द्रगुप्त उयज्जनी मे हुए ।

हे राजन ! आपके पुण्य बल से मुनि सघ के नेता अपने सघ सहित नगर के बाहर उद्यान मे आये हैं ।

तब नव दीक्षित चन्द्रगुप्त मुनि विनय से बोले कि मैं बारह वर्ष से अपने गुरु श्री भद्रबाहु स्वामी के चरणकमलों की उपासना करता हूं ।

तदनन्तर सात भय छोडकर महामुनि भद्रबाहु स्वामी ने बलवती क्षुधा और पिपासा को रोका ।

श्री भद्रबाहु स्वामी रोगो के घर इस शरीर को समाधिपूर्वक छोडकर देव व देवियो से नमस्कृत स्वर्गलोक मे पहुच गये । दीप्तिमान मुनि चारित्र से विभूषित चन्द्रगुप्ति मुनि वहा पर अपने गुरु श्री भद्रबाहु स्वामी के चरणों को लिखकर उनकी सेवा करने लगे ।

इसके आगे इसी ग्रन्थ मे श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति का वर्णन पीछे लिखे अनुसार किया है ।

इस प्रकार पुरातन ग्रन्थो से भी दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार ही श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति का वृतान्त मिलता है ।

—विदेशी इतिहासवेत्ताओं की सम्मति—

मिस्टर बी० लुईस राइस महाशय ऐपिग्राफिका कर्नाटिका में लिखते हैं कि—चन्द्रगुप्त नि सन्देह जैन था और श्री भद्रबाहु स्वामी का समकालीन तथा उनका शिष्य था ।

इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन में लिखा हुआ है कि "सम्राट् चन्द्रगुप्त ने बी०सी० २९० में (ईसवीय सन से २९० वर्ष पहले) ससार से विरक्त होकर मैसूर प्रान्त के श्रवण बेलगुल में जिन दीक्षा से दीक्षित होकर तपस्या की और तपस्या करते हुये स्वर्ग को पधारे ।

इस प्रकार इस विषय में जितनी भी खोज की जावे ऐतिहासिक सामग्री हमारे कथन को ही पुष्ट करती है । इस कारण निष्पक्ष पुरातत्व-खोजी महानुभावो को स्वीकार करना पड़ेगा कि श्री भद्रबाहु स्वामी तथा सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय मे बारह वर्ष का घोर दुष्काल पड़ा था इसके निमित्त से जो जैन साधु उत्तर प्रांत में रहे वे विकराल काल के निमित्त से वस्त्र, पात्र, लाठी धारी हो गये और जो साधु श्री भद्रबाहु स्वामी के साथ दक्षिण देश को चले गये वे पहले के समान नग्न वेश मे दृढ़ रहे । अर्थात बारह वर्ष के दुष्काल ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के

समय में जैनमत में श्वेताम्बर नामक एक नवीन पथ तयार कर दिया।

इस प्रकार विक्रम सवत् से भी लगभग २०१ वर्ष पहिले लिखे गये इस लेख से भी यह बात सत्य प्रमाणित होती है कि श्री भद्रबाहु स्वामी के समयमें भारतवर्ष के उत्तर प्रांत में १२ वर्ष का घोर दुष्काल पड़ा था और उस समय भद्रबाहु स्वामी अपने मुनि सङ्घ को साथ लेकर दक्षिण देशों में विहार कर गये थे। इसके सिवाय "दिगम्बर मत विक्रम सम्वत् १३८ से प्रचलित नहीं हुआ बल्कि विक्रम सम्वत से भी पहले विद्यमान था" इस बात को सिद्ध करने के लिये अनेक पुष्ट सत्य प्रमाण विद्यमान हैं। देखिये, ज्योतिष शास्त्र के प्रख्यात विद्वान वराहमिहिर राजा विक्रमादित्य को (जिनके कि स्मारक रूप में विक्रम सम्वत उनकी मृत्यु होने के पीछे चला है।) राज सभा के नौ रत्नों में से एक रत्न थे। जैसाकि निम्न लिखित श्लोक से भी सिद्ध होता है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटखर्पर कालिदासः। ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।

इन ही वराहमिहिर ने अपने प्रतिष्ठा काण्ड में एक स्थान पर यह लिखा है कि—

विष्णोर्भागवता मयाश्च सवितुर्विप्राविदुर्ब्राह्मणा,
मातृणामिति मातृमण्डलविदः शम्भोः सभस्माद्विजाः।

शाक्याः सर्वहिताय शान्तमनसो नग्ना जिनानां विदुः। यं यं देवमुपाश्रिताः स्वविधिना ते तस्य कुर्युः क्रियाम्।

अर्थात्—वैष्णव लोग विष्णु की, मय लोग सूर्यदेव की, विप्र लोग ब्राह्मण क्रिया की, मातृ—मण्डल के जानकार ब्रह्माणी, इन्द्राणी आदि माताओं की उपासना करें। बौद्ध लोग बुद्ध की उपासना करें। और नग्न लोग (दिगम्बर साधु) जिन भग—वान का पूजन करें। अभिप्राय यह है जो जिस देव के उपासक हैं वे विधिपूर्वक उसकी उपासना करें।

वराहमिहिर के इस लेख से सिद्ध होता है कि दिगम्बर साधु राजा विक्रमादित्य के जीवनकाल में भी विद्यमान थे इस कारण श्वेताम्बरी ग्रन्थों ने जो विक्रम सम्वत के १३७ वर्ष पीछे दिगम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति बतलाई है वह असत्य है।

तथा—महाभारत जो कि ऋषि वेदव्यास जी ने विक्रम संवत् से सैंकड़ों वर्ष पहिले लिखा है उसमें एक स्थान पर ऐसा उल्लेख है—

साधयामस्तावदित्युक्त्वा प्रातिष्ठतोत्तङ्कस्ते कुण्डले गृहीत्वा सोऽपश्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छन्तं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च।

अर्थात्—उत्तङ्क नामक कोई विद्यार्थी कुण्डल ले कर चल दिया उसने रास्ते में कुछ दीखते हुये, कुछ न दीखते हुये नग्न मुनि को देखा।

महाभारत का यह उल्लेख भी सिद्ध करता है कि जैन साधुओं का दिगम्बर रूप ही प्राचीन काल से चला आ रहा है पहले श्वेत वस्त्रधारी जैन साधु नहीं होते थे।

कुसुमाञ्जलि ग्रन्थ के रचयिता उदयनाचार्य अपने ग्रन्थ के १६वें पृष्ठ पर लिखते हैं कि—

'निरावरणा इति दिगम्बराः।'

अर्थात्—वस्त्ररहित यानी नग्नरूप दिगम्बर होते हैं। न्यायमञ्जरी ग्रन्थ के ग्रन्थकार जयन्तभट्ट ग्रन्थ के १६७वे पृष्ठ पर लिखते हैं—

क्रिया तु विचित्रा प्रत्यागमं भवतु नाम। भस्म—जटा परिग्रहो दण्डकमण्डलुग्रहणं वा रक्तपटधारणं

वा दिगम्बरता वावलम्ब्यतां कोऽत्र विरोधः।

अर्थात्—क्रिया अनेक प्रकार की होती है। शरीर से भस्म लगाना शिर पर जटा रखना अथवा दण्ड कमण्डलु का रखना या लाल कपड़े का पहनना अथवा दिगम्बरपने का नग्नरूप अवलम्ब (ग्रहण) करो, इसमें क्या विरोध है। इस प्रकार इन ग्रन्थोंमें भी दिगम्बरमत की प्राचीनता का उल्लेख है।

इस प्रकार चाहे जिस प्राचीन ग्रन्थ का अवलो-कन किया जाय उसमें यदि जैन साधु का उल्लेख आया होगा तो उसका स्वरूप नग्न दिगम्बर वेश में ही बतलाया गया होगा। श्वेताम्बर, पीताम्बर, (सफेद पीले कपड़े पहनने वाले) रूप मे कहीं भी जैन साधु का उल्लेख नही मिलता है। इस कारण सिद्ध होता है कि श्वेताम्बरमत भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गवास हुये पीछे दुर्भिक्ष के कारण भ्रष्ट होने से प्रचलित हुआ है और उसका प्रचार विक्रम सम्वत की दूसरी शताब्दी मे चल पड़ा है।

इस प्रकार अनेक शास्त्र प्रमाण, अनेक शिलालेख और अनेक अजैन ग्रन्थों के प्रमाणों से प्रोफेसर जी के मन्तव्य का निषेध करने वाला यह चौथा प्रकरण समाप्त।

३०
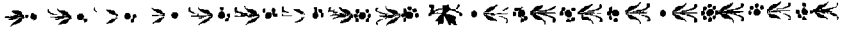
पं० वर्धमान जी पार्श्वनाथ शास्त्री,

न्यायतीर्थ विद्यावाचस्पति

सोलापुर।

* श्री अकलंकदेवाय नमः *
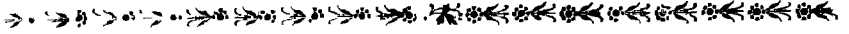
प्रो० हीरालाल जी का मन्तव्य दि० जैन आर्ष से विरुद्ध है।

आजकल सङ्गठन का युग है। सङ्गठन को सब चाहते हैं, परन्तु सुधारवादी व धार्मिक विद्वानो के सङ्गठन के दृष्टिकोणों में अन्तर है, धार्मिक विद्वान तो सङ्गठन, धर्म-अविरोधी चाहते हैं—जिसमें धर्म व समाजकी वृद्धि में कोई बाधा न हो, आगममर्यादा को उल्लङ्घन करने का अवसर जिससे न आता हो और समाज के उत्थान में जहा धर्मोत्थान के दर्शन मिलते हों, किंतु सुधारवादी विद्वान येनकेन प्रकारेण सङ्गठन चाहते हैं जिसमें कोई भी आगम मर्यादा आदि पर लक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं।

इतना ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर आगम के अर्थ को भी अपने मतपोषण के अनुकुल लगाने का प्रयत्न करना, यदि किसी आगम ग्रंथ मे उनकी मत-पुष्टि का कोई प्रमाण न मिले तो तत्कर्ता आचार्य को उस विषय मे अनभिज्ञ बता देना, यदि अपने मत के विरोध में कोई प्रमाण मिले तो ऐतिहासिक झमेले में डालकर तद्विषयक आचार्यों को अमुक से बाद का, अमुक से पहिले का कहकर उनके मत को आम्नाय ठहराने की चेष्टा करना, और यदि कुछ भी नहीं मिले तो ग्रन्थकर्ता को भट्टारक ठहराकर अप्रमाण घोषित कर देना आदि आदि आज कल की अनुसंधान प्रणाली से काम लेने वाले विद्वानों का उद्देश-आगम को अपनी बुद्धि के अनुकूल बनाने का होता है आगम के अनुकूल अपनी बुद्धि को बनाने का नहीं।

जैन सम्प्रदाय वर्तमान में दिगम्बर, श्वेताम्बर, इस प्रकार दो आम्नाय प्रचलित हैं दोनों ही महावीर शासन के अनुयायी जैन कहलाते हैं फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टिसे इन दोनों सम्प्रदायों में बड़ा भारी अंतर है। नैतिकदृष्टि से, सत्यशोध की ओर अभिरुचि न होने पर भी, दोनो भाई आपस में न लड़े, परस्पर ईर्षा द्वेष न रक्खें, और कम से कम, वे सदत्तक पुत्रों के समान, व्यवहार करें यह उचित है। इस शिष्टतापूर्ण व्यवहार से अपनी अपनी मान्यता को कायम रखते हुये भी सङ्गठन की वृद्धि हो सकती है, उसके लिये प्रयत्न करना आवश्यक है।

किन्तु कुछ विद्वान उनकी तात्विकता के संरक्षण की बात को भुलाकर केवल सङ्गठन को ही प्रधानता देते हैं और उस सङ्गठन की तीव्र प्रेरणा से अपने सैद्धान्तिक तत्वों को, जिनसे विरुद्ध तत्वों से, युक्ति आगम—शून्य समन्वय करने का प्रयत्न करते हैं। इसी का एक उदाहरण, प्रोफेसर हीरालाल जी के द्वारा उपस्थित चर्चा है।

प्रारम्भ में यह कहा जाता था कि प्रो० साहब ने जिज्ञासा बुद्धि से इस चर्चा को उठाया है—मान भी सकते थे, परन्तु सार्वजनिक सभा मे अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण, उसके समर्थन मे किये गये हर तरह के प्रयत्न तथा पूर्वाचार्यों की आगम-प्रणाली की अवहेलना आदि बातो को देखकर हृदय स्वीकार नही करता कि जिज्ञासाबुद्धि से उठाई गई यह चर्चा है। अस्तु, प्रोफेसर सा० के अभिमत से श्वेताम्बरी व दिगम्बरी मान्यताओं मे कोई अन्तर नहीं है यही निश्चित मानना पडता है।

दिगम्बर मान्यता के उच्च आदर्शो को श्वेताम्बराचार्यों ने भी अपने ग्रन्थो म स्वीकृत किया है, किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय की समय के प्रभाव से निर्मित शिथिल व निसग विरुद्ध मान्यताओ का समर्थन किसी भी तरह दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्यो न नहीं किया है। इसलिय दोना सम्प्रदायो की एक मान्यता सिद्ध करने के लिय प्रो० साहब को आवश्यकता तो इस बात की हुई कि दिगम्बरी मान्यताओ मे ही श्वेताम्बर—मान्यताओ की पुष्टि किसी प्रकार की जाय। इसलिये उन्हो ने दिगम्बर आगमो में स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति व केवली कवलाहार सदृश विषयो को ढूढ निकालने का प्रयत्न किया जैसे कि कोई मक्खन में से तेल निकालने का प्रयत्न करे।

दिगम्बर और श्वेताम्बर मान्यताओं में यद्यपि इन तीनो विषयो के अलावा और भी कई मतभेद हैं और इन तीन विषयो के अन्तर को निकालने पर मतभेद की अन्य बातें ज्यो की त्यो रह सकती हैं, किन्तु अनुसन्धान करने वाले विद्वान उन बातो में भी दिगम्बर मान्यता को सिद्ध करने की खोज मे होगे, वे बाते फिर कभी बाहर आयेंगी, परन्तु आज हमें प्रस्तुत इन तीन बातो पर विचार करना है कि, वस्तुत. क्या महावीर शासन इन तीन बातो को स्वीकार करता है?

—स्त्रीमुक्ति विचार—

मनुष्य पर्याय में स्त्री पुरुष भेद निसर्ग-जन्य है, वह कर्म कृत भेद है। पुरुषवेद के निमित्त से पुरुष व स्त्रीवेद के निमित्त से स्त्रियो की निष्पत्ति होती है, तब इन दोनो प्रकृतियो मे विभिन्नता का रहना अवश्यम्भावी है। वैसे तो प्रत्यक्ष म भी देखा जाता है कि, पुरुष प्रकृति के गाम्भीर्य, औदार्य, शौर्य आदि विशिष्ट गुण स्त्री प्रकृति मे, और स्त्री प्रकृति के स्वाभाविक लज्जा, सङ्कोच, छादन शीलता, दौर्बल्य आदि पुरुष प्रकृति मे नहीं होते, पुरुष में पौरुष है तो स्त्री में स्त्रैण भाव। इस लिये जो महाशय स्त्री—पुरुषो में समानता देखना चाहते हैं वे निसर्ग को ही बदलना चाहते हैं ऐसा कहना होगा।

मोक्ष प्राप्ति के लिये शुक्लध्यान की आवश्यकता होती है, शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिये उत्तम सहनन की आवश्यकता होती है और चित्तैकाग्रता के लिये बाह्य शरीर की योग्यता आवश्यक है। क्योकि बाह्य सहनन की अयोग्यता मे अभेद भक्तिरूप शुक्लध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। स्त्री शरीर की निर्मिति ही इस प्रकार प्रकृति ने की है, जिसमें बुद्धि, बल, वीर्य आदि की न्यूनता होती है। उसमें भेद-भक्ति की पात्रता है चित्त चाचल्य इतना प्रबल है कि वह देह धर्म-ध्यान का ही पात्र बन सकती है शुक्लध्यान की नहीं, क्योकि ग्रन्थकारो ने, शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिये जिन शरीर सहनन को आवश्यकता बतलाई है उन सहननों का सर्वथा निषेध किया गया है।

शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिये, निर्ग्रंथलिङ्ग की आवश्यकता है, तिल तुष मात्र परिग्रह रहने पर भी आत्मा में निर्मलता नहीं आ सकती। स्त्रियो के शरीर की रचना, अङ्ग प्रत्यङ्गो के निर्माण का प्रकार तथा उनके पास रहने वाली अपरिहार्य लज्जा आदि बाते, निर्ग्रंथलिङ्ग को धारण करने मे सर्वथा बाधक हैं, इसलिये उनको उपचार महाव्रत क अधिकार बताते हुये आचार्यों ने एक वस्त्र रखने का विधान किया है। उन आर्यिकाओ के परिणामो में विशुद्धि हो सकती है, किन्तु धर्म ध्यान के योग्य। शुक्ल विशुद्धि वहा किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है।

बाह्य परिग्रह का सर्वथा त्याग किये बिना सकल सयम नहीं हो सकता है और सकल सयम के बिना मोक्ष नहीं है। हा, स्त्रिया धर्म्य योग के बल से स्त्री पर्याय को छेद कर पुरुष पर्याय को पा सकती हैं, और उस हालत में मुक्ति प्राप्त करने का कोई विरोध नहीं है।

कुछ महाशयों का आरोप है कि ग्रन्थकार आचार्य, पुरुषवर्गमें से रहे हैं अतः उन्होने स्त्रीवर्ग के उच्च अधिकारों का अपहरण बलात् कर लिया है। परन्तु यह विचारणीय बात है कि ऐसे अधिकार तो किसी के द्वारा छीने नहीं जा सकते, यह तो प्रकृति की देन है जब स्त्रीरूप निंद्य पर्याय में प्रकृति ने अर्थात कर्म ने उस आत्मा को पहुचाया तो वह आत्मा उस पर्याय-जन्य विशेषताओंसे अलिप्त किस प्रकार रह सकता है? उस तो उस पर्याय को उसी अवस्था मे व्यतीत करना होगा।

मुक्ति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे उठा कर कोई दे सके वह तो परिणामो की अत्यन्त विशुद्धि होने से, आत्मा की बढती हुई निष्कलङ्क एव निर्विकल्प अवस्था की सर्वोत्कृष्ट चरमभूमि है जो स्वयं के द्वारा स्वय को ही प्राप्त होती है।

स्त्रीमुक्ति के समर्थन के लिये जैनागम में कहीं भी प्रमाण नहीं मिल सकता है। अत प्रयत्न इस बात का होने लगा कि षट्खण्डागम सूत्रो में ही कहीं इस विषय का प्रमाण मिल जाय। दैवक्शात षट्खण्डागम के सूत्र न० ९३वे में सजद शब्द का पाठ अधिक मिला ताड पत्र की प्रति में उस शब्द के होने से उसका वहा पर होना अत्यन्त आवश्यक बतलाया जा रहा है। यद्यपि दे भी विद्वान स्त्रीमुक्ति को सिद्ध नहीं करते हैं, उनका कहना है कि यहा पर भाववेद की अपेक्षा से कथन है। भावस्त्री को सयतादिक गुणस्थानो का होना अविरुद्ध है, यहा तक वा भाव सद्भावना पूर्ण है। परन्तु विद्वानो मे ही एकवर्ग इस प्रकरण को द्रव्यस्त्रीका प्रकरण बतला रहा है एव अनेक प्रमाणो मे सिद्ध कर चुका है। साथ मे प्रोफे० हीरालाल जी भी इसे द्रव्यस्त्री का ही प्रकरण समझ रहे हैं व प्रकट कर चुके हैं। ऐसी परिस्थिति मे यह भाववेद का प्रकरण है, और भावस्त्रियो के लिये मोक्ष हो सकता है आदि बाते भले ही ग्रन्थकारो से अविरुद्ध हो परन्तु जबकि प्रकरण द्रव्यवेदको सूचित करता है, एव स्त्रीमुक्ति समर्थक व विरोधक दोनो प्रकार के विद्वान उसे द्रव्यस्त्री का ही प्रकरण समझ रहे हैं तो आज 'उसे भाववेदके अर्थ में मान लेना चाहिये।' इतना कहकर समय टालने से कैसे काम चलेगा? हमें तो भावी परिणाम पर विचारना चाहिये। दूसरी बात यह है कि भाववेदापेक्षया यहा सर्वत्र कथन इष्ट हो तो जहा द्रव्यस्त्री के भाव में पौरुष भाव हो तो उस भाव पुरुष को भी १४ गुणस्थान मानना होगा अन्य प्रकरणो मे इसी प्रकार

का अर्थ स्वीकार करना होगा, ऐसी दशा में द्रव्यस्त्री को १४ गुणस्थान होते है इसका समाधान क्या है। द्रव्यवेद का प्रकरण तो सिद्ध हो गया। अब संजद शब्द के अस्तित्व मे द्रव्यवेद का प्रकरण रहे तो कितनी गड़बडी पैदा होगी यह विचारणीय विषय है। भाववेद के अर्थ को स्वीकार करने वाले विद्वान प्रोफेसर साहब के इस मन्तव्य पर क्यों नहीं ध्यान देते हैं कि संजद शब्द के अस्तित्व मे भी प्रोफेसर साहब उसे भाववेदी स्त्रियो का प्रकरण क्यो नहीं मानते है? यही तो मुद्दे की बात है। इसलिये इसके परिणाम पर बहुत गंभीरता से दृष्टि—पात करना चाहिये।

दूसरी एक महत्व की बात यह है कि षट्खण्डागम सदृश महत्व पूर्ण व प्राचीन राद्धांत ग्रन्थ मे द्रव्यस्त्रियो के लिये गुणस्थानो की व्यवस्था ही न हो यह कैसे माना जा सकता है? कुछ विद्वान 'गुणस्थान भाव की अपेक्षा से ही होते है, द्रव्यवेद का उसमें सम्बन्ध ही नहीं है' ऐसा कह कर अपने सिद्धांत विषयक अगाध (?) ज्ञान को व्यक्त करते हैं। परन्तु उनको सोचना चाहिये कि आगमो में तिर्यञ्चों को देवो को व नपुंसको को गुणस्थान की व्यवस्था कर सीमित कर दिया गया है फिर द्रव्यस्त्रियो को ही क्यो नहीं? वहा पर भावात्मक गुणस्थान क्यो नहीं। इस लिये ऐसी बातो को लिखकर जनता को भ्रम में डालना उचित नहीं है। अनुसंधान इस बात का होना चाहिये कि षट्खण्डागम में द्रव्यस्त्रियों के लिये गुणस्थान की स्पष्ट व निश्चित व्यवस्था कहा पर है? यदि वह उपलब्ध नहीं होता है तो प्रकृत प्रकरण को भाववेद सूचक मानकर ही सतोष नहीं करना चाहिये क्योंकि प्रत्येक विषय का भावी परिणाम क्या होता है इस बात पर दूर-दर्शिता से विचार करना विद्वानो का कर्तव्य है सार्वजनिक पत्रो मे आये हुये विषयो में अपने मतलब के शिथिलाचार पोषक विषयो को चुनने में जन साधारण को अधिक हर्ष होता है, इस लिये इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये।

—सवस्त्र मुक्ति विचार—

स्त्रीमुक्ति के निषेध से ही सवस्त्रमुक्ति का भी निषेध हो जाता है, सकलसंयम के अभाव मे किसी भी तरह मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती और बाह्य आभ्यंतर दोनो ही प्रकार के परिग्रह सकल संयम मे पूर्ण बाधक हैं। परिग्रहों का अस्तित्व, मोहनीयकर्म के अस्तित्व की ही सूचना है इसलिये आचेलक्य में ही मोक्ष मार्ग सन्निहित है रत्नत्रय की पूर्ति सकल चारित्र के बिना नहीं हो सकती है, सकल चारित्र का आदर्श नैग्रन्थ्य लिंग में ही प्रगट होता है अतः आत्म विशुद्धि की चरम सीमा में जो पहुंचना चाहते हैं उनको सर्व बाह्य व अन्तरङ्ग-परिग्रहों का परित्याग करना चाहिये।

परिग्रह ही आत्मा में मोह, मद, माया को उत्पन्न करने में सहायक है—निमित्त है। और इन परिग्रहो के सम्बन्ध से ही आत्मा अपने वस्तु स्वरूप से च्युत है, ऐसी परिस्थिति में तिल तुष मात्र परिग्रह की स्थिति भी उस आत्मा की विशुद्धि में शङ्का उत्पन्न कर सकती है।

आचेलक्य के आदर्श को श्वेताम्बर समाज ने भी स्वीकार किया है, वे अपने ग्रन्थो मे स्थान स्थान पर जिनकल्पि-स्थविरकल्पि भेद से साधुओ के भेद करते हुये आचेलक्य को आदर्श पद लिखते हैं। फिर प्रोफेसर साहब को ही इसमें न्यूनता का क्यो अनुभव हुआ समझ में नहीं आता।

आपने भगवती आराधना के उल्लेख देते हुये सवस्त्रमुक्ति का समर्थन किया है किन्तु इसमे पहली बात तो यह है कि भगवती आराधना का यह कथन अपवादमार्ग का है विशिष्ट अवस्था का है। अपवाद मार्ग के आदेश को हमेशा विधानात्मक समझना नहीं चाहिये। क्योंकि वह तो विशिष्ट किसी समयमे परवशगत रूप प्राप्त विषय है उसे सरासर वैधानिक राजमार्ग समझना भूल है। परिस्थिति—वश उसे मनुष्य को जबरदस्ती करना पडता है। उस हालत में वैसा करने से ही चित्त क्षोभ का अभाव हो सकता है इस हेतु को सामने रखकर यदि आचार्योंने प्रतिपादन किया तो वह सबके लिये राजमार्ग ही हुवा, ऐसा अर्थ क्यो लिया जाय ?

दूसरी बात महत्व की यह है कि उस हालत मे मुनि को मुक्ति हो जाती है ऐसा विधान तो आचार्यों ने वहा पर किया नही है फिर उस उद्धरण से प्रोफे० साहब क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? साधुओ के अनेक भेद हैं, इन्हीं में यह भी एक विशिष्ट अवस्था गत साधु का भेद है इससे मोक्ष प्राप्ति का क्या सम्बन्ध है।

जैन सिद्धात के किसी भी ग्रन्थ में इस बात का पोषण नहीं मिल सकता है केवल शिथिलाचार के वशीभूत सम्प्रदाय वालो ने इसे अपनाया है यदि वस्त्रादि परिग्रहों को रखते हुये भी मोक्ष प्राप्ति सुलभ है तो फिर इन सासारिक परिग्रहो को छोडने के लिय कौन प्रयत्न करेगा ? और उसकी आवश्यकता भी क्या है ? यदि घर बैठे ही मुक्ति हो सकती है तो सपत्ति, वैभव, पुत्र कलत्रादिको के परित्याग की क्या आवश्यकता है, फिर तो महाव्रत, समिति, गुप्ति परीषह जय आदि सभी बातें व्यर्थ ठहरेंगी उनकी आवश्यकता है ही नही।

मोक्षगत उन परमात्माओ में कोई अन्तर तो है नहीं कि, यह तो सपरिग्रह मुक्त हुवा है और यह त्यक्तपरिग्रह।

इस प्रकार दिगम्बर मान्यता के अनुसार परिग्रहो के अस्तित्व मे मुक्ति का होना असम्भव है।

—केवली कवलाहार—

घातिचतुष्टय के क्षय के पश्चात भी केवली भगवान को सासारिक प्राणियो के समान ही भूख प्यास की वेदना होती है, यह विधान परिहास पूर्ण है। जहा अरहत भगवान के अनन्त सुख का प्रादुर्भाव हुआ वहापर उन्हे वेदना का अनुभव क्यो कर होता है ? इन परस्पर-विरुद्ध बातो का सामञ्जस्य क्या है।

वेदनीय कर्म का सद्भाव मात्र कवलाहार के लिये कार्यकारी नहीं हो सकता है क्योंकि अरथाण अणुभवण वेयणिय' ऐसा जहा वेदनीयकर्म का लक्षण निर्देश किया है वहा स्पष्ट रूप से समझ में आना चाहिये कि वेदनीयकर्म-मोहनीयकर्म के सद्भाव मे ही अपने कार्य को कर सकता है यदि मोहनीयकर्म की क्रिया उसके साथ न हो तो वेदनीयकर्म कुछ भी नहीं कर सकता है। उदाहरणार्थ—हमारी थाली मे अनेक भक्ष्य पदार्थ है, उनमे किसी पदार्थ के प्रति हमारा चित्त आकृष्ट हुआ कि अमुक मिष्टान्न को खाऊ जो मुझे अभीष्ट है, बाद मे हम उसे उठा कर खा लेते हैं हमे बडा अनन्द आता है, वह आनन्द ही वेदनीय है परन्तु उसे खाने के पहले जो यह अभिलाषा हुई कि अमुक मिष्टान्न को खाऊ यह तो मोहनीयकर्म का कार्य है।

हमे कोई व्यक्ति गाली दे रहा है, हम उस तरफ ध्यान न देवें तो कोई बुरा नहीं मालूम होता है,

परन्तु हमारा चित्त जब उधर आकृष्ट हो जाता है और हम यह समझने लगते हैं कि यह मुझे गाली दे रहा है, तो हमें बहुत बुरा मालूम होता है, दुःख होता है, वह दुख वेदनीय है, परन्तु यह मुझे गाली दे रहा है, यह आकर्षण मोहनीय है। इस लिये यह निश्चय है कि मोहनीयकर्म के अस्तित्व मे ही वेद-नीयकर्म अपना कार्य करता है, उसके अभाव मे वह दग्धरज्जुवत् कार्यकारी नहीं हो सकता।

जहा अर्हत केवली को लाभान्तराय के अत्यन्त क्षय होनेसे अनन्त लाभ की प्राप्ति हुई है एवं अनंत वीर्य जागृत हुवा है, वहा पर इस भौतिक आहार की आवश्यकता ही क्या है? उनका परमौदारिक दिव्य शरीर तो प्रति समय प्राप्त होने वाले, शुभ, सूक्ष्म और अनन्त परमाणुओं के कारण से ही स्थिरता को प्राप्त करता है ऐसी हालत में, भगवन्त मे भी सामान्य मनुष्योंके समान आहार की कल्पना करना, भगवन्त का उपहास करना है।

अब इस विषय पर अधिक ऊहापोह करने की आवश्यकता इस लिये नहीं है कि, यह तीनो विषय, सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट हैं, इन तीन विषयो के कारण से ही दिगम्बर श्वेताम्बर मान्यता में प्रधान अन्तर है। इस मान्य, आदर्श अथ च सिंहवृत्ति के समान कठिन व्रत से घबराकर लोगोने शिथिलाचार के मार्ग को निकाला। परन्तु आत्म संयमी दि० जैनाचार्य अपने मार्ग मे डटे ही रहे।

ऐसी अवस्था मे फिर से उस आदर्श मार्ग को निम्नपथ मे मिलाकर आत्म विशुद्धि के मार्ग को रोक देना, यह विद्वानों का कर्तव्य नहीं है। प्रोफेसर साहब ने तो यहा तक लिखने का अतिसाहस किया है कि भगवान कुन्दकुन्द ने इन विषयो पर आगम के दृष्टिकोण से विचार नहीं किया है।

आचार्य-प्रवर कुन्दकुन्दस्वामी सदृश आगमवेत्ता आद्यप्रवक्ता महर्षि के कथन को भी अविचारित कहने का यत्न करना सचमुच मे आश्चर्य—जनक विषय है। बड़े२ आचार्य जिन्हें ग्रन्थारम्भ मे आदर के साथ स्मरण करें सूरि मङ्गल के स्थान मे सर्व ससार जिनकी आद्य वदना करे ऐसे कुन्दकुन्द भग-वान को आगम के मर्म तत्वो से अनभिज्ञ बताकर उन महर्षियो की अवहेलना करना उचित नहीं है समाज मे कुछ विद्वान अपने विषयों के समर्थन के लिये जिन आचार्यों का प्रमाण बहुत गौरव के साथ पेश करते है, उन्हीं आचार्यों को, क्वचित अपने विचारो से न मिलते देखकर, अप्रमाण कोटि मे भी ढकेल देते है यह नीति क्या है समझ मे नहीं आती।

जैन धर्म के सत्यतत्वो में आस्था रखने वाला व्यक्ति कभी भी जैनाचार्यों की अवहेलना नहीं कर सकता है, एव दूसरो के द्वारा किये जाने पर स्वय सहन भी नहीं कर सकता है, इसलिये इस प्रसङ्ग में बम्बई के दिगम्बर जैन समाज ने धर्मरक्षार्थ जो तत्परता दिखलाई है वह प्रशसनीय है, धर्म सकट के समय धर्मात्मा ही उसके सरक्षण के लिये तैयार होते है।

वैसे जैनधर्म ऐसी चीज नहीं है जो कहीं हवा मे उड जाये जबकि वस्तु के यथार्थ स्वरूप को कथन करने वाला वह तत्त्व है या यो कहिये कि वस्तु स्वरूप का ही नाम जहा धर्म की परिभाषा मे कहा गया है, वहा पर किसी के द्वारा उस सम्बन्ध मे विपर्यस्त विचार प्रगट हो जाय तो धर्म का इसमे क्या बिगडता क्या है।

स्त्रीमुक्ति, सपरिग्रहमुक्ति व केवलि जिन आहार ग्रहण यदि यथार्थं धर्म का विकृत रूप है, निसर्ग से विरुद्ध विषय है तो उस सम्बन्ध मे किसी की कल्पना विपरीत होने पर वस्तु स्वभाव तो बदल नहीं सकता है. वह तो वैसा ही बना रहेगा।

वस्तु स्थिति इसी प्रकार बनी रहने पर भी कई अल्पज्ञ लोगो के विचलित होने की सम्भावना है, एवं उनको आगम कथन में शङ्का पैदा होकर उनका अकल्याण सम्भव है। इस हेतु से केवल उन भव्यात्माओं के स्थितिकरण केलिये बम्बई की पंचायत ने जो प्रयत्न किया है वह स्तुत्य है।

बम्बई समाज में अनेक सज्जन व आगममर्यादा के परम पोषक है उनको इस प्रकार धर्म की अवहेलना रच मात्र भी सह्य नहीं होती है, धर्मात्मा सज्जनो के हृदय मे धर्माभिमान होना ही चाहिये, यही जीवन का सार है।
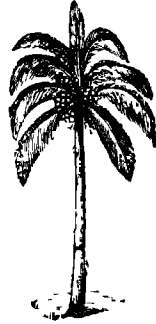
३१
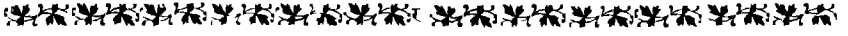
श्रीमान् पं० सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर,

शास्त्री, न्यायतीर्थ बी० ए० एल एल० बी०

सिवनी।
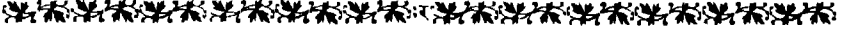
* श्री अकलङ्कदेवाय नमः । *

दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायों में तात्त्विक मतभेद है !

श्रीयुत प्राध्यापक हीरालाल जी ने जो स्त्रीमुक्ति सवस्त्रमुक्ति और केवली के कवलाहार की चर्चा अपने अ० भा० प्राच्य सम्मेलन काशी में उपस्थित विद्वन् मण्डल के समक्ष की थी, उस पर क्रमशः विचार करना उचित है।

—स्त्री-मुक्ति—

शङ्काकार महोदय दिगम्बर परम्परा के परम पूज्य आचार्य भगवान कुन्दकुन्द द्वारा स्त्री-मुक्ति का स्पष्ट विरोध जानते हुये भी उसे स्वीकार करने में सङ्कोचशील प्रतीत होते हैं क्योंकि उसमें उन्हें गुणस्थान चर्चा और कर्मसिद्धांत के विवेचन का दर्शन नहीं होता। जहां आगमिक विषय आप्तवाणी होने मात्र से ही प्रामाणिकता को प्राप्त होते हैं, वहां यह विचारना कि उसमें हमारी चिंतित अमुक २ बातें और होतीं तो ठीक होता, विचित्र बात मालूम पड़ती है। यद्यपि वृन्दावन जी के शब्दों में 'हुये' न है, न होयगे, मुनि कुन्दकुन्द से' के प्रभावक तथा परमार्थ कथन के होते हुये ग्रन्थान्तर के अन्वेषण की आवश्यकता न थी किन्तु शङ्काकार के समाधानार्थ अन्य आगम ग्रन्थों के भी प्रमाण उपस्थित करना आवश्यक है।

स्त्री में जिस प्रकार ७वें नरक में गमनके हेतुरूप अत्यन्त रौद्र परिणामों का अभाव पाया जाता है, उसी प्रकार मुक्ति हेतुक उत्कृष्ट भावों का भी सद्भाव नहीं पाया जाता, जैसे नपुंसकवेद में। दूसरी बात नारी जाति में ममत्व की मात्रा अधिक होती है, इसलिए मोह का पूर्ण विजय उनमें नहीं हो सकता। आ० शब्द की गाथा पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि निसर्गतः द्रव्य नारी जाति में पूर्ण वीतरागता का स्फुरण नहीं होता है। ‡

कर्म भूमियां नारी के वज्रवृषभ नाराच संहनन न होने से अष्ट निर्वाण योग्य तप नहीं बनता। 'अन्तिम तिय सहडणस्सुदओ पुण कम्म भूमि महिलाणं' गोम्मटसार कर्मकाण्ड की गाथा को क्षेपक मानना उचित नहीं है, कारण प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार पर पूर्ण दृष्टि देने से वह प्रकरण में पूर्ण सम्बद्ध प्रतीत होती है।

स्त्री पर्याय में ऋद्धि विशेष या महान संयम की प्राप्ति नहीं होती। जब सम्यग्दृष्टि जीव § का स्त्री

---

‡ छादयदि सयंपदोसेण यदो छादयदि परंपि दोसेण। छादणसीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी ॥

§ सम्यग्दर्शनशुद्धा: नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि च। दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥

रत्न० श्रा०

पर्याय में उत्पाद निषिद्ध है तब उसके मोक्ष की मान्यता सुखद कल्पना ही कही जायगी। यह बात ध्यान देने की है कि नपुंसक रूप में तो सम्यक्दृष्टि का नरकापेक्षया उत्पाद वर्णित है किन्तु स्त्री रूप से उत्पाद नहीं कहा गया। नारी में वस्त्रत्याग पूर्वक सकल संग त्यागात्मक दिगम्बर रूप मुख्य महाव्रत संयम नहीं बनता।

पुरातन दीक्षिता वृद्धा आर्यिका को नवदीक्षित दिगम्बर मुनि की वंदना करने की आगम में आज्ञा है। इसका कारण मुनि के संयम की उच्चता है।

सूत्रों में प्रयुक्त 'मानिनी' शब्द का अर्थ भाष्यकार वीरसेन स्वामी ने भाव स्त्री किया है, तब उसे द्रव्यस्त्री मानना असङ्गत है। द्रव्यस्त्री के १४ गुणस्थानों का सम्बन्ध आगम और युक्ति के प्रतिकूल है। वेद आठवें तक नहीं, नौवें गुणस्थान के सवेद भाग पर्यंत पाया जाता है।

वेद वैषम्य कर्मसिद्धान्त के प्रतिकूल नहीं है, जिस प्रकार हास्य, रति, अरति, शोक आदि प्रकृतियों में परिवर्तन हुआ करता है उसी प्रकार वेदों में भी। द्रव्यवेद कुछ हो और भाववेद कुछ और हो सकता है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में लिखा है ‡ कि पुरुष में स्त्रीवेद का उदय हो सकता है और स्त्री में पुंवेद का भी भाववेद की अपेक्षा हो सकता है। शरीराकार की रचना नामकर्म कृत है, इसलिये वह पर्याय परिवर्तन तक रहता है। भाववेद में ऐसी बात नहीं है। वेद को औदयिकभाव में गिना है और इन्द्रियजनित ज्ञान को क्षायोपशमिक भाव में। अतः शङ्काकार जी का औदयिक भाव के बारे में क्षायोपशमिक भाव कृत व्यभिचार प्रदर्शन यथार्थ में बाधक नहीं है।

स्त्री में पुरुष सम्बन्धी मनोभावों का व्यवहार में भी वर्णन देखा जाता है। वीराङ्गना लक्ष्मीबाई की कीर्ति में कहते हैं—'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी'। इसी प्रकार अन्य वेदों के बारे में कहा जा सकता है।

नपुंसकवेद में न तो स्त्री के और न पुरुष के पूर्ण चिन्ह पाये जाते हैं इससे उसे स्वतंत्र वेद कहा है। 'वह उहयलिङ्गवदिरित्त' — 'उभयलिङ्ग व्यतिरिक्त' कहा गया है।

इन्द्रिय वैषम्य के अभाव में वेद वैषम्य का सद्भाव न मानना ही अयुक्त है। कारण उनमें अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है। वेद और इन्द्रिय की व्यवस्था में बहुत अन्तर है। इन्द्रिय के लिये द्रव्येन्द्रिय की अनिवार्य आवश्यकता है। नेत्र कर्ण आदि इन्द्रियों के द्रव्य साधनों में त्रुटि होने पर भावेन्द्रिय अकार्यकारी हो जाती है, किन्तु वेद के विषय में ऐसी बात नहीं है। द्रव्यवेद के अङ्गोपाङ्ग के क्षत विक्षत होने पर भी भाववेद का कुछ विगाड़ नहीं बिगड़ता है। द्रव्य शरीराकार के विनष्ट होने पर भी मानसिक विचारों में वेदोदय जनित मलिनता पाई जा सकती है। इस कारण काम भाव को मनसिज, मनोज, मनोभू आदि शब्दों में सङ्कीर्तित किया है इस कारण इन्द्रियों का दृष्टान्त विषम है।

‡ यस्योदयात् स्त्रैणान् भावान् मार्दवास्फुटत्वक्लैव्य-मदनावेशनेत्रविभ्रमास्फालन—सुखपुंस्कामादीन् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेद ॥ ननु लोके प्रतीत योनि मृदु स्तनादि स्त्रीवेद लिंग ? न तस्य नामकर्मोदयनिमित्तत्वात्। अतः पुंसोऽपि स्त्रीवेदोदयः कदाचित्योषितोऽपि पुंवेदोदयोऽप्याभ्यंतरविशेषात् शरीराकारस्तु नामकर्मनिर्वर्तितः (३०४ त० रा०)

—संयमी और वस्त्रत्याग—

संयमी जीव के हिंसा रहित विमल भावों के लिये वस्त्रादि परिग्रह का परित्याग अनिवार्य है। वस्त्रादि धोने सुखाने आदि के निमित्त से असंयम होना अवश्यंभावी है। इसी लिये स्वामी समन्तभद्र ने श्रेष्ठ करुणाशील भगवान को बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह रहित कहा है। *

कुन्दकुन्द स्वामी प्रवचनसार में युक्तिपूर्वक कहते हैं कि—

ण हि णिरवेक्खो चागो ण हवदि भिक्खुस्स आसय विसुद्धी। अविसुद्धस्स य चित्ते कह णु कम्मक्खओ विहिओ॥ पृ० २६५॥

यदि परिग्रह की अपेक्षा से सर्वथा रहित परिग्रह त्याग न हो तो निश्चय से मुनि के चित्त की निर्मलता नहीं होगी। भला मलीन चित्त साधु के कर्मक्षय कैसे होगा।

किधतम्हि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स। तध परदव्वम्मि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि।२६६।

उस परिग्रहके होते हुये ममत्व परिणाम अथवा आरम्भ वा असंयम क्यों न होगा? ऐसा मुनि पर-द्रव्य में रत होकर किस प्रकार निज स्वरूप की साधना करेगा? इस प्रसङ्ग में कविवर द्यानतराय जी के ये शब्द भी विशेष अनुभवरस से भरे मालूम पड़ते हैं 'चाह लङ्गोटी की दुख भाले। भाले न समता सुख कभी नर बिना मुनि मुद्रा धरे। धन नगन पर तन नगन ठाडे, सुर असुर पायन परे॥'

---

* अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं, न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ। ततस्तत्सिध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं, भवानेवात्याक्षीन्न च विकृत वेषोपधिरत.॥ वृ० स्वयम्भू स्तोत्र।

जब परिग्रह के निमित्त से आत्मशांति और निराकुलता तथा समता परिणामों को क्षति पहुंचती है तब अखण्ड शांतिमय निर्वाण के लिये सकल सङ्ग त्याग क्यों न आवश्यक होगा?

शङ्काकार महाशय ने जो भगवती आराधना का उल्लेख किया है वह सम्पूर्ण प्रसङ्ग पर दृष्टि डालने से सदोष प्रतीत होता है उस ग्रन्थ में अपवाद अवस्था में लज्जाशील, बहु कुटुम्बी मिथ्यात्वी परिवार आदि से वेष्टित अव्रती गृहस्थ के लिये भक्तप्रत्याख्यान नामक समाधिमरण के लिये वस्त्र त्याग का विधान नहीं किया है। यह कोई अनोखी बात नहीं। आज भी गृहस्थजन मृत्युकाल में वस्त्र सहित होते हुये भी भक्तप्रत्याख्यान करते हैं — भोजन आदि का त्याग करते हैं इससे वे मुनि नहीं हो जाते। जब तक वे विधि पूर्वक उभय परिग्रह का परित्याग करके सकल संयम नहीं धारण करते—तब फिर उनको मुनि कैसे कहा जायगा?

भगवती आराधना गाथा ७८ पृष्ठ २०४ में कहा है—

अरिहो मत्त पइण्णाइ होदि विरदो अविरदोवा॥

विरत अथवा अविरत भक्तप्रत्याख्यानके योग्य है

अपवादलिङ्ग के अधिकारी के विषय में उसी ग्रन्थ में कहते हैं—

आवसधेवा अप्पे उग्गे जो वा महढ्ढिओ हिरिम, मिच्छजणे सजणे वा तस्स होज्ज अववादियं लिंग॥

७६ पृ २०६

जहां वसतिका अयोग्य है जो व्यक्ति महर्द्धिक हो लज्जाशील हो, जिसके मिथ्यात्वी कुटुम्बी हो उसके अपवादलिङ्ग--सचेलकत्व होता है।

तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त परिस्थिति सम्पन्न पुरुष

सवस्त्र भक्तप्रत्याख्यान करे। इसका यह अर्थ नहीं है कि मुनि वस्त्रधारण करे। उपरोक्त कथन में कुन्दकुन्दस्वामी के दिगम्बरत्व—समर्थक वाक्य का पूर्णतया समर्थन ही है कि 'णग्गो हि मोक्खमग्गो, सेस उम्मग्गया सव्वे'॥

दिगम्बरत्व ही मोक्ष का मार्ग है बाकी सब उन्मार्ग है।

तत्त्वार्थसूत्र में पुलाक आदि पांच निग्रंथ कहे गये हैं इस पर भाष्यकार अकलङ्क स्वामी राजवार्तिक पृ० ३५८ में कहते हैं 'सम्यग्दर्शनं निर्ग्रंथरूपं च भूषावेशायुधविरहितं तत्सामान्ययोगात् सर्वेषु हि पुलाकादिषु निर्ग्रंथशब्दो युक्तः'॥

सम्यक् दर्शन, भूषण हथियार विरहित सामान्य गुण के योग से पुलाक आदि में निर्ग्रंथ शब्द का प्रयोग पाया जाता है।

श्रावक में निर्ग्रंथ रूप का अभाव है इसलिये उस में निग्रंथ शब्द का प्रयोग नहीं होगा। कहते हैं यदि भग्नव्रतेऽपि निर्ग्रंथ शब्दो वर्तते श्रावकेऽपि स्यादिति अतिप्रसङ्गः। नैष दोषः। कुतः? रूपाभावात्। निर्ग्रंथ रूपमत्र नः प्रमाणं, न च श्रावके तदस्तीति नातिप्रसङ्गः॥ त० रा० पृ० ३५८

इससे यह स्पष्ट है कि पांचों प्रकार के मुनियों में दिगम्बरत्व अनिवार्य है शङ्काकार लिखते हैं 'भावलिंग प्रतीत्य पंच निर्ग्रंथलिंगिनो भवन्ति द्रव्यलिंग प्रतीत्य भाज्याः।' गम्भीर विचार तथा प्रकरण को देखते हुये विदित होगा कि यहां भावलिङ्ग के स्थान में द्रव्यलिंग पाठ होना चाहिये। जब पहले लिङ्ग के द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग इस प्रकार दो भेद किये तब द्रव्यलिङ्ग का वर्णन क्रम प्राप्त है, न कि भावलिङ्ग का। अतः भावलिङ्ग के स्थान में द्रव्यलिङ्ग होना चाहिये और द्रव्यलिङ्ग के स्थान में भावलिङ्ग होना चाहिये। उसका अर्थ है द्रव्यलिङ्गापेक्षया तु पुल्लिंगेनैव सिद्धिः (त० रा० पृ० ३६६) द्रव्यलिङ्ग की अपेक्षा पुरुष लिङ्गधारी के निर्वाण होगा। भावलिङ्ग की अपेक्षा अन्य लिङ्ग भी कहे जा सकते हैं।

पूज्यपादस्वामी भी लिखते हैं 'द्रव्यतः पुल्लिंगेनैव' (पृ० ३२० स० सि०) यहां 'एव' शब्द के अन्य द्रव्यलिङ्ग से मुक्ति का निराकरण हो जाता है।

शङ्काकार बन्धु ने 'निर्ग्रंथलिंगेन, सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धि भूतपूर्वनयापेक्षया' यहां भूतपूर्व का अर्थ अनन्तरपूर्व लगाया है, किन्तु पूर्व शब्द के पहले भूत का प्रयोग अनन्तर पूर्वत्व का निषेधक है। और भी देखिये। मूलाचार में कहा है—

वदसमिदिंदिय रोधो लोचो आवस्सयमचेल—मण्हाणं। खिदिसयणं मदन्तवणं ठिदिभोयण मेयभत्तं च॥

५ महाव्रतों के सिवाय अचेलत्व नाम का पृथक् मूलगुण बताया है, यद्यपि परिग्रह त्याग महाव्रत में ही अचेलत्व का समावेश हो सकता था, किन्तु उसका पृथक् उल्लेख उस विषय की मुख्यता पर प्रकाश डालता है।

वस्त्रादि ग्रहण करते हुये भी निर्ग्रंथत्वकी कल्पना करने वालों के समाधानार्थ विद्यानन्द स्वामी श्लोकवार्तिक में लिखते हैं— "जो वस्त्रादि धारण करते हुये भी निर्ग्रंथपना मानते हैं वे नारी आदि को सेवन करते हुये भी निर्ग्रंथत्व क्यों नहीं मानते। मूर्छा कारण है, विषय ग्रहण कार्य है। कारण के ध्वंस होने पर कार्य न होगा। अतः मोहोदयसे मूर्छा होगी ततः स्वार्थ का ग्रहण होगा। जिसके परिग्रह होगा, उसके निर्ग्रंथपना कदापि न होगा।"—आचार्य महा-

राज के शब्द ये हैं।

ये वस्त्रादिग्रहेप्याहु निर्ग्रन्थत्वं यथोदित।
मूर्छानुद्भूतितस्तेषा स्त्याद्यादानेपि किं न तत।
विषयग्रहण कार्यं मूर्छा स्यात्तस्य कारणं।
न च कारणविध्वंसे जातुकार्यस्य सम्भवः॥
तस्मान्मोहोदयान्मूर्छा स्वार्थे तस्य ग्रहाततः।
स यस्यास्ति स्वयं तस्य न नैर्ग्रन्थ्य कदाचन॥

श्लो० वा० पृ० ४०७। ३,४,६,

पृ० ४११ में स्याद्वाद विद्यापति विद्यानन्दिस्वामी लिखते हैं—

साक्षात समर्थलिंगेन सिद्धौ निर्ग्रंथतावृथा॥

यदि वस्त्रादिसहित मुक्ति मिले, तब निर्ग्रंथपना अङ्गीकार करना व्यर्थ है। जहा तक पता चला है, अत्यन्त प्राचीन जैन मूर्ति दिगम्बर ही प्राप्त हुई है, जिनसे ज्ञात होता है कि यथार्थ मे जैन दृष्टि म निर्वाण का मार्ग दिगम्बरत्व है। सवस्त्र मुक्ति का मार्ग आराम पसद व्यक्तियों ने निकाला। वह बात महर्षि कुन्दकुन्द की स्मरण योग्य है कि शरीर की नग्नता के साथ तद्रूप नग्न मनोवृत्ति भी नितान्त आवश्यक है।

केवली भगवान के क्षुधादि का सद्भाव नहीं है।

केवली के कवलाहार मानने पर उनके अनन्त-ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य रूप गुण चतुष्टय सङ्कट में फस जायगे। क्षुधा की पीडा होने पर अनन्त सुख पर विपत्ति आयगी बल मे न्यूनता आयगी, और कैवल्य पर भी आपत्ति आये बिना न रहेगी।

यह भी विचारणीय है कि मोहनीय के क्षय होने पर अनुकूल ग्रासादि का ग्रहण और प्रतिकूल के परित्याग रूप सराग परिणति कैसे होगी? परम यथाख्यात चारित्र रूप परम उपेक्षा संयम में निमग्न केवली के कवलाहार मानने पर सरागता की विपत्ति आये बिना न रहेगी। जब सातिशय अप्रमत्त आदि गुणस्थानों मे आहार ग्रहण नहीं है तब केवली के आहार की कल्पना विशेष विचित्रता उत्पन्न करती है।

जब अशुचि पदार्थों का दर्शन होते हुये मुनि तो क्या गृहस्थ भी आहार नहीं करता तब केवलज्ञान के प्रभाव से सर्व पदार्थों का सतत प्रत्यक्ष ज्ञान होते हये मुनीन्द्रो के भी नृणामणि आहार ग्रहण करें, यह कैसे न्यायोचित्त होगा! कैवल्य की अवस्था मे अन्तराय रहित आहार प्राप्ति की योजना एक प्रकार से असम्भव है।

मोहनीय आदि परिकर के अभाव होते हुये भी यदि क्षीण शक्ति वाला असाता केवली को भोजन पान मे प्रवृत्त करेगा तो परघात का उदय केवली को किसी पर दड प्रहार करने पर भी उत्साहित करेगा। और ऐसा कैवल्य विनोद जनक होगा।

यदि सकल साधन हीन कर्म का उदय मात्र कार्यकारी हो तो कषायों और वेदो के उदय वश प्रमत्त आदि गुणस्थानो में कामादि विकार पाये जायगे। ऐसा होने पर शुक्लध्यान, कर्म क्षपण आदि की बात कल्पना मात्र ही रह जायगी।

एक बात यह भी है कि आहार ग्रहण करने के लिये भोजन की इच्छा आवश्यक है, और इच्छा भाव मोह ही का नामातर है अतएव कवलाहार मानने पर मोह का निषेध नहीं किया जा सकता। जैसे वैराग्य आदि भावनाओ के द्वारा ब्रह्मचर्य युक्त महामुनि काम के प्रति पूर्णतया इच्छा का परित्याग

करते हैं, उसी प्रकार विशुद्ध भावो के बल से वे क्षुधा आदि की बाधा पर विजय प्राप्त करते हैं।

विद्यानन्द स्वामी ने लिखा है कि क्षुधा के लिये असाता वेदनीय के उदय के सिवाय मोहनीय का सद्भाव, पेट का खाली होना, भोजन के प्रति उपयोग होना आदि कारण है। इसलिये सकल साधन सामग्री के अभाव मे असाता का अकेला उदय अकार्यकारी है। विशुद्ध भावो के प्रकर्ष मे कर्मशास्त्रानुसार असाता आदि प्रकृतियो के अनुभाग का खण्डन होता है अतएव केवली के मृत प्राय असाता कुछ नही कर पाता।

केवली के इन्द्रिय जनित सुख दुख का सद्भाव नही है। स्वामी समन्तभद्र ने भी केवली के इन्द्रिय-जनित सुख का सद्भाव नहीं बताया है।

सुख और दुःख किसे मानना यह बात व्यक्ति की रुचि, स्वभाव, मनोवृत्ति आदि पर निर्भर है। एक को मधुर भोजन आनन्दप्रद है तो दूसरे को भोजन की अप्राप्ति विशेष आनन्ददायी है। तपस्वी लोग उग्र तप को ही अपना भोजन मानते है—"तपः सदशन"। इच्छा का निरोध करने से और बाहर प्रतिकूल सामग्री होने से हमारी भाषा मे उन्हें सुखी या दुःखी कहते हैं, इसी दृष्टि को लेकर समन्तभद्र स्वामी ने 'पुण्य ध्रुव स्वतो दुःखात्' आदि कारिका लिखा है। यथार्थ मे तपस्वियो के पीड़ा रञ्चमात्र भी नहीं होती हम मोही जीवो की भाषा मे उनको कष्ट-सहिष्णु कहा है किन्तु अनुभव की भाषा मे उन योगीन्द्रो को अनुपम आनन्द का अधिपति बताया है। जिन सुकुमाल को गृहस्थ की अवस्था में साधारण सी वस्तु पीडाकारी थी, मुनि बनने पर उनका ही स्यालनी द्वारा भक्षण किया जाना किंचित भी पीड़ा या संक्लेश का दाता नहीं हुआ। इसी रस का वर्णन महर्षि पूज्यपाद करते हुये कहते हैं।

> आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहि स्थितेः।
> जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः॥
> आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।
> न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥

व्यवहार से बाह्य आत्मा की साधना में निमग्न मुनीश्वर के योग के निमित्त से उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त होता है। वह आनन्द निरन्तर कर्म रूपी ईंधन को भस्म करता है। यह योगी तनिक भी खेद नहीं प्राप्त करता, कारण वह बाह्य दुःखो के विषय में अचेतन है अर्थात् बाह्य दुःख उसे ज्ञात ही नहीं होते। इसी का नाम तो आत्म निमग्नता है। आत्मानन्द कितना अपूर्व है इसका अनुमान इससे होता है कि नरक का नारकी भी सम्यक्त्व की आनन्दधारा से सिक्त-अन्तःकरण होने के कारण विषय के सागर में निमग्न अहमिन्द्रो तक से भी उच्च कहा गया है। सुख और दुःख यथार्थ में आत्म वृत्ति पर निर्भर है। पूर्ण विरागता के शिखर पर समारूढ केवली भगवान के क्षुधा आदिक की कल्पना, प्रतीत होता है योगविद्या से बिना भीग हुये छद्मस्थों की कल्पना है।

केवली के क्षायिक ज्ञान होते हुये भी असाता की पीड़ा अथवा उसका भाव नहीं होता इसके लिये तो कविवर दौलतराम जी का यह पद्य उपयोगी है

> 'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन।
> सो जिनेन्द्र जयवत नित, अरि रज रहस विहीन'।

केवली भगवान के लाभान्तराय के पूर्ण क्षय होने से अनन्तानन्त पुद्गल वर्गणाये आकर उनके शरीर का रक्षण करती हैं इसलिये कवलाहार की आवश्यकता ही नहीं रहती। इसलिये केवली भगवान के

कवलाहार मानना उन परम वीतराग अनन्त चतुष्टय के नायक जिनेन्द्र को साधारण मनुष्य की कोटि में गिरा देना है। यही कारण है कि इस कवलाहार के प्रपञ्च को प्रभु के पीछे लादना दर्शन मोहनीय के आस्रव का कारण कहा है। ऐसी दशा में कवलाहार की मान्यता साधारण दोष नहीं है। वह अनन्त संसार के परिभ्रमण का कारण है। इसलिये उपरोक्त तीनो मान्यतायें नगण्य नहीं हैं उनके आधार पर ही दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायों का उदय होता है।

यद्यपि लौकिक सङ्गठन की दृष्टि से उनको नगण्य कह भी दिया जाय किन्तु आत्म हित की दृष्टि से इस बात को मान्य करना कल्याणकारी नहीं है।

कतिपय गणनीय महानुभावों
—के—
* अभिमत *

>>>>*<<<<

रायसाहिब श्रीमान् ला० प्रद्युम्नकुमार जी रईस
सहारनपुर।

श्रीमान सेठ जुहारुमल मूलचन्द्र जी सा० तथा श्री दि० जैन समाज बम्बई,

सस्नेह जुहारु! आपके पत्र मिले, प्रोफे० हीरालाल जी की शङ्काओं का समाधान बहुत शान्ति के साथ हो सकता है। समाज में ऐसी शङ्कायें उठाकर व्यर्थ क्षोभ पैदा करना ठीक नहीं है शेष कुशल, योग्य कार्य लिखें।

भवदीय'—प्रद्युम्नकुमार।

—अलीगढ़ के विद्वानों का वक्तव्य—

श्रीमान सेठ जुहारुमल मूलचन्द जी प्रेसीडेंट दि० जैन पञ्चायत बम्बई,

पत्र आपका मय 'क्या दिगम्बर और श्वेतांबर सम्प्रदायों के शासनों में कोई मौलिक भेद है' इस शीर्षक विज्ञप्ति के साथ मिला—

उत्तर में निवेदन है—

प्रोफेसर हीरालाल जी ने जो श्वेतांबर सम्प्रदायों में ३ भेद प्रधान माने हैं वह ही प्रधान नहीं हैं किन्तु (१) भगवान महावीर का रोग निवारणार्थ मांस—भक्षण, (२) भगवान महावीर का ब्राह्मणी के गर्भ में आकर उनका इन्द्र द्वारा क्षत्रियाणी के गर्भ में जाना (३) घोड़े का गणधर होना आदि अनेक २ भेद हैं, परन्तु या तो इन प्रोफेसर जी को ये विषय अज्ञात है या उन्होंने प्रगट नहीं किया है केवल ३ भेद मूल रक्खे हैं, उनके भी लोपने में जो भगवान कुन्दकुन्द स्वामी को गुणस्थान चर्चा का और कर्मसिद्धान्त का अजानकार बताया है यह प्रोफेसर जी का दुःसाहस है तथा जिन सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, गोम्मटसार

आदि ग्रन्थकारों को प्रोफेसर जी ने संदिग्धज्ञानी व अज्ञानी ठहराया है यह कलिका नग्न नृत्य है। अस्तु, आपकी पञ्चायत ने जो ट्रैक्ट निकालकर प्रकाशित करना निश्चय किया है यह प्रशसनीय है—

कृपादृष्टि पुरस्सर धर्म स्नेह बनाये रखियेगा।

१-श्रीलाल पाटनी, (धर्म धीर प० श्रीलाल पाटनी, अलीगढ।

२-रामलाल जैन वैद्य, (प० रामलाल जी वैद्य शास्त्री आ० मुंसिफ ऑयस चेयरमेन ग्रामसुधार

३-इन्द्रमणि (प० इन्द्रमणि जी वैद्य शास्त्री जातिरत्न, भूतपूर्व सभापति जैसवाल जैन महासभा दि० जैन औषधालय, कविसम्मेलन, उपसभापति वैद्यसभा सम्पादक जैसवाल जैन आदि २।

४-सोनपाल जैन, (प० सोनपाल भूतपूर्व उपदेशक भा० दिगम्बर जैन महासभा, अलीगढ)

५-दुर्गाप्रसाद जैन, (प० दुर्गाप्रसाद प्रधानाध्यापक कुन्दनलाल जैन पाठशाला अलीगढ)

कविरत्न श्रीमान् पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ,

मन्त्री.— राजस्थान दिगम्बर जैन संघ

जयपुर।

श्रीमान प० रामप्रसाद जी शास्त्री व भाई निरञ्जनलाल जी, आपका १६ अगस्त का पत्र मिला।

इस समय जब किसी को भी मुक्ति नहीं हो सकती, तब स्त्री मुक्ति के समर्थन के लिये शास्त्रीय प्रमाणों को ढूढने मे अपनी शक्ति का व्यय करना बिल्कुल निरर्थक है। यही बात केवलज्ञान के लिये भी है। स्त्रीमुक्ति की तरह यह भी आज के युग का पदार्थ नहीं है।

फिर भी दि० आचार्यों का इस विषय मे क्या अभिमत है इस बारे में मुझे लिखना ही चाहिये। दि० सम्प्रदाय के शास्त्रो का, जहां तक मैंने अध्ययन किया है—मैं कह सकता हूं कि ये स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति और सवस्त्रमुक्ति का विरोध ही करते है। षट्खण्डागम के अनुसार चलने वाले श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती यदि स्पष्ट रूप से षट्खण्डागम मे स्त्रीमुक्ति का समर्थन पाते तो वे उसका उल्लेख अपने ग्रन्थों मे भी निर्भय होकर कर सकते थे। षट्खण्डागम के सूत्रों का अर्थ तो वे अवश्य ही समझे होंगे। जैन शास्त्रो में भाव और द्रव्य यह भेद अनेक स्थलो मे मिलते हैं। भावस्त्री और द्रव्यस्त्री का प्रसङ्ग हमे कर्म ग्रन्थों में मिलता ही है। कई स्थानो मे औपचारिक वर्णन भी है। मनुष्यणी अथवा योनिनी शब्द का अर्थ तो स्वामी वीरसेन भी समझे होंगे। जब द्रव्यवेद स्त्री को श्रेणी माडने का अधिकार भी नहीं बतलाया तब वह दिगम्बर शास्त्रो में मुक्ति की अधिकारिणी कैसे मानी जा सकती है। भाववेद स्त्री और द्रव्यवेद स्त्री का उल्लेख तो श्वेताम्बर शास्त्रो में भी हुआ है।

महा तार्किक श्री प्रभाचन्द्राचार्यने अपने प्रमेयकमलमार्तंड में स्त्रीमुक्ति का सयुक्तिक खण्डन किया है यही बात केवली भुक्ति और सवस्त्र मुक्ति के सम्बन्ध में भी है। गोम्मटसार के टीकाकारों व

आचार्य अमितगति ने जो तीनों भाववेदों का तीनों द्रव्यवेदो के साथ पृथक् पृथक् सयोग बताया है वह क्यो नहीं बन सकता ? इस बारे में प्रोफेसर साहब ने कोई दलील नहीं दी। द्रव्य मे पुरुष और स्त्रीलिङ्ग के सिवाय तीसरा कोई प्रकार ही नहीं पाया जाता, यह कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। लिंगों में जगत प्रसिद्ध नपुसक का भेद प्रोफेसर साहब क्यो नहीं स्वीकार कर रहे हैं ? कर्मसिद्धात के अनुसार वेदवैषम्य मान लेने मे कोई बाधा नही आती।

मुक्ति एवं केवलज्ञान का जैसा वर्णन श्वेताम्बर शास्त्रोमे है उस पर ध्यान देते हुये तो यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वह सवस्त्र एवं स्त्री के लिये प्राप्य नहीं है। अनन्त केवलज्ञान और अनन्त शक्ति को रखकर भी यदि केवली भोजन करेगा तो उसका अपरिमित माहात्म्य वाला अनन्त चतुष्टय स्वयं ही छिन्न-भिन्न हो जावेगा। यदि मुक्ति केलिये स्त्रियों के प्रति उदारता प्रदर्शित करें तो फिर यह उदारता नपुसको के प्रति क्यो नहीं प्रदर्शित की गई आदि बातो का उत्तर श्वेताम्बर शास्त्रों में भी नहीं है।

पत्र का उत्तर देने मे काफी विलम्ब हो गया है आशा है आप क्षमा करेंगे इस विषय को जहा तक हो शान्ति से निबटाना चाहिये। सङ्घर्ष बढ़ाना किसी तरह भी उचित नहीं।

श्रीमान् पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार,

सम्पादक-अनेकात

सरसावा, [सहारनपुर]

श्रीमान पण्डित जी, सस्नेह जय जिनेन्द्र !

आपका भेजा हुआ पत्र मुझे यथा समय मिल गया इधर उधर रहने के कारण उत्तर न दे सका।

प्रोफे० हीरालाल जी के उस लेख से मै सहमत नहीं हू। मैं उसके विषय में कितना ही लिखना चाहता हू परन्तु अवकाश नहीं मिल रहा यथावकाश लिखने का प्रयत्न करूंगा।

भवदीय-जुगलकिशोर,

श्रीमान् पं० दरबारीलाल जी न्यायाचार्य,

सरसावा, [सहारनपुर]

श्रीमान प० रामप्रसाद जी शास्त्री, जयजिनेन्द्र !

मुख्तार सा० ने आपको जो पहिले पत्र दिया था उसमे उन्होने साफ लिख दिया है कि हम प्रोफे० जी के मन्तव्यो से सहमत नहीं हैं वे बहुत आपत्ति के योग्य हैं। अतः उस पत्र को ही उनकी सम्मति समझें। मेरी सम्मति निम्न प्रकार है :—

'हाल में प्रोफे० हीरालाल जी सा० ने शिवभूति और शिवार्य' तथा 'जैन इतिहास का एक विलुप्त अध्याय' शीर्षक निबन्धो (ट्रैक्टों) और दूसरे लेखों द्वारा जो मन्तव्य प्रकट किये हैं मैं उनसे सहमत नही हू। यह मन्तव्य युक्ति, आगम और इतिहास से स्पष्ट विरुद्ध हैं। —दरबारीलाल,

श्रीमान् पं० बी० शान्तिराज जी शास्त्री न्यायतीर्थ,

श्री० ना० प्रा० दि० जैन विद्यालय,
नागपुर सिटी।

स्त्रीमुक्ति पर विचार—

यदि स्त्रीमुक्ति इष्ट हो तो बावीस परीषह में स्त्री परीषह मात्र न होकर स्त्री की अपेक्षा पुरुष परीषह का भी नाम होता।

स्त्रियोंको आदिके ३ सहननो का अभाव है सप्तम नरक गमन योग्य परिणाम तद्योग्य सहननाभाव के समान उर्ध्व गमन (मोक्ष गमन) कैसे शक्य है? 'अन्तिमतिय सहडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाण' गो० क० गा० ३२ मे अन्तिम तीन सहनन नहीं बताया है।

श्री समन्त भद्र स्वामी 'सम्यग्दृष्टि को स्त्री पर्याय न होगी 'सम्यग्दर्शन शुद्धानारकतिर्यङ्नपुसक स्त्री-त्वानि' रत्नकरण्डमें बताते हैं भाव मनुष्यणी को १४ गुणस्थान हैं भूतपूर्वनयापेक्षा से, अवेद भाग में मनु-षिणी शब्द व्यवहार इसी अपेक्षा से है, श्री अकलङ्क ने राजवार्तिक पृष्ठ ३६६ में 'द्रव्यापेक्षया तु पुल्लिंगे-नैव सिद्धिः' लिखा है एव विद्यानन्दीस्वामी श्लोकवा-र्तिक पृ० ५११ मे 'सिद्धि सिद्धिगतौ पु सा स्यान्मनु-ष्यगतावपि, अवेदत्वेन सा वेदत्रितयाद्वास्ति भावत.' बताया है इन सब बातों से स्त्रीमुक्ति नहीं बनती है।

वस्त्रत्याग पर प्रमाण—

सचेलत्व से भी मोक्ष होता हो 'अर्केचेन्मधुविन्देत किमर्थम्पर्वत व्रजेत, इस नीति से सुलभोपाय छोड़कर श्रमसाध्य अचेलत्वादि की क्या जरूरत है? नग्न—परीषह भी मानना व्यर्थ है।

वस्त्रत्याग पर श्री स्वामी समन्तभद्र 'नग्ना तत्रा-रम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रम विधौ' स्वयम्भूस्तोत्र 'चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभाव, रत्न-करड मे लिखते हैं।

भगवती आराधना में वस्त्रधारण का अपवाद नियम भक्तप्रत्याख्यान समाधिमरणोचित गृहस्थ के लिये है।

'अरिहो सत्थपट्टणणाए होदि विरदो अविरदोवा'
भगवती आ० पृ० २०४

यह उक्ति रहने पर भी निम्न नियम से गृहस्थ के लिये ही समझा जावेगा।

आवसथवा अप्पा उग्गे आदि पृष्ठ २०६ श्लो० ७८

थोड़ी देर के लिये मुनि को अपवादलिङ्ग मानने पर भी मुक्ति का अधिकारी सचेलक होने का कोई प्रमाण नहीं है।

सर्वार्थसिद्धि मे अ० ६ सू० ४७ की व्याख्या में 'भावलिंगं प्रतीत्य पच निर्ग्रंथा लिङ्गिनो भवन्ति। द्रव्यलिङ्गम्प्रतीत्य भाज्या' यह आधार लेकर सचेल सिद्धि कर रहे हैं परन्तु यह पाठ अशुद्ध है यह बात 'लिंग द्विविधं द्रव्यलिंग भावलिंगचेति' इस तरह जब पूर्व निर्देश है तदनुसार प्रथमत. 'द्रव्य लिङ्गम्प्र-तीत्य पच निर्ग्रंथा लिङ्गिनो भवन्ति' आदि सङ्गत है एव इन्हें सचेलत्व इष्ट हो तो नग्न परीषह का निषेध करते? दोनों इष्ट होता तो सुलभ मार्ग छोड़ते क्यों।

श्लो० वा० में 'वस्त्रादिग्रन्थसम्पन्नास्ततोऽन्येने-तिगम्यते' से अचेलत्व की सिद्धि है।

कवलाहार निषेध—

'ये त्वात्मनो जीवन्मुक्तौ कवलाहारमिच्छन्ति तेषां तत्रास्यानन्तचतुष्टय—स्वभावाभावोऽनन्तसुख-विरहात् तद्विरहश्च बुभुक्षाप्रभवपीडाक्रांतत्वात्' इस रूप से श्री प्रभाचन्द्र ने मार्तण्ड में विशद रूप से खण्डन किया है।

राजवार्तिक पृ० २२७ वेदनीयोदयभावात् क्षुधा-दिप्रसङ्गः इति चेन्न घातिकर्मोदय—सहायाभावात् तत्सामर्थ्यविरहात् इत्यादि रूप से श्री भट्टाकलङ्क ने सुन्दर विवेचन किया है। श्री विद्यानन्दी ने श्लो० पृ० ४६२ मे 'न क्षुधादेरभिव्यक्तिस्तत्र तद्धेतुभावतः। योगशून्ये जिनेयद्वदन्यथातिप्रसङ्गतः।' इत्यादि रूपसे कवलाहार निषेध किया है।

श्रीमती पं० पार्वतीदेवी जी जैन हैड अध्यापिका,

श्री लालचन्द जैन कन्या पाठशाला,
टीकरी, [मेरठ]

श्रीमान दिगम्बर जैन सकल पञ्चायत,

सेवामें सादर जय जिनेन्द्र देव की!

नम्र निवेदन यह है कि जो प्रोफेसर हीरालाल जी साहब ने जो विपरीत बातें कही हैं सो यह सब मिथ्या है। श्वेताम्बर धर्म आम्नाय (अनुसार) स्त्री को आचार्य पदवी नहीं है, फिर अर्हत किस तरहसे हो सकती है। अर्हंत आचार्यसे बडे हैं स्त्री मे वीर रस नहीं है तो वह मुनि व्रत किस तरह धारण कर सकती है। अर्थात कभी नहीं। सीता जी को अग्नि का जल हो गया मगर केवलज्ञान नहीं हुआ, और सोलह स्वर्ग तक गई। ऐसे असंख्यात उदाहरण शास्त्रों में मिलते हैं।

वस्त्र सहित मुक्ति कैसे हो सकती है अचेलक का विधान है चेल कहते हैं कपड़ा, अर्थात नहीं कपड़ा सो ऐसा साधु होना चाहिये। भगवती आराधनासार, गोम्मटसार इत्यादि शास्त्रो मे बडे २ आचार्यों ने वर्णन किया है देखो दश लक्षणी पूजा के आकिंचन अङ्ग मे यह कहा है कि—फांस तनक सी तन में साले चाह लङ्गोटी की दुख भाले। भाले न समता सुख कभी नर बिना मुनि मुद्रा धरें, धन नगन पर तन नगन ठाडे सुर असुर पायन परैं।' इससे यह साफ मालूम हो गया कि बिना मुनि, (नग्न मुद्रा धारण किये बिना) मुक्ति नहीं हो सकती अतः नारीको मुक्ति नहीं हो सकती पुरुष को मुक्ति हो सकती है।

केवली का कवलाहार करना जो हीरालाल जी ने कहा है। गलत है हम संसारी जीव भी अशुद्ध चीजों को देखकर अन्तराय मानते हैं तो केवली के ज्ञान में सब पदार्थ झलकते हैं, जब वह (केवली) आहार लेते होंगे तो क्या उस वक्त केवलज्ञान दूर हट जाता होगा यदि नहीं तो फिर वह अशुद्ध पदार्थ को देख करके भी आहार ले लेते होंगे। तो हम लोगो से भी नीच हुये देखो तुच्छ व्रत के धारण करने वाले साधु अशुद्ध चीजोंको देखकर या सुनकर अंतराय मानते हैं, तो क्या केवली आहार ले सकते हैं? कभी नहीं। १८ दोष रहित केवली है, जिनमें पहले क्षुधा दोष है क्षुधा लगने से क्या सुख मे अन्तराय नहीं होता है,

क्या मोहनीयकर्म का सम्बन्ध न होनेपर भी आहार करने में इच्छा होती है ?

बिना मोहनीय के वेदनीय कुछ कार्यकारी नहीं, कहने मात्र है, जैसे जली जेवड़ी। •

श्रीमान् पं० सुरेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ आयुर्वेदाचार्य

जैन औषधालय, भानुपुरा।

जब से श्री प्रो० हीरालाल जी सा० ने, 'स्त्रीमुक्ति, केवली कवलाहारी हैं, उनको सुख दुःख संभव है, सवस्त्रमुक्ति होती है, इनका समर्थन किया है तब से भारत वर्षीय समस्त दि० जैन समाज में अत्यधिक क्षोभ हो गया है। जब प्रोफे० साहब ने दि० जैन सम्प्रदाय के विरुद्ध कदम उठाया है और अपने असत्य कल्पित और शिथिलाचार पूर्ण विचारो का प्रचार किया है तो समाज में क्षोभ होना स्वाभाविक ही है। इस असत्यपूर्ण वातावरण को परीक्षा प्रधानी दि० जैन समाज कब सहन कर सकता है ? इस स्थिति में समाज का सर्व प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि जिस प्रकार हो उस प्रकार से अपने धर्म और सिद्धातो की रक्षा करे।

यही नहीं, प्रोफे० साहब ने सर्व मान्य आचार्य प्रवर भगवान कुन्दकुन्द को भी असत्य ठहरने का विफल प्रयास किया है। कुछ भी लिखते समय प्रो० साहब को यह स्मरण नहीं हुआ कि जिन आचार्य को साक्षात समवशरणमें पहुचने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। और जिनकी रचनाओ में एक २ अक्षर चुन २ कर रखा गया है उनको बिना विचारे लिख डालनेका दोष कैसे लगावें? यदि इन तमाम बातोंका निर्णय किया जाय तो इन सब के लिये प्रोफेसर साहब ही दोषी कहे जा सकते हैं।

मुझे स्वयं उपलब्ध जैन न्याय, सिद्धांत, और साहित्य के अध्ययन व मनन करने का पुण्य अवसर मिला है साथ ही समस्त श्वेताम्बर जैन न्याय, सिद्धात, साहित्य और वैष्णव सिद्धात के पढने का मौका मिला है। जब मै सबका तुलनात्मक विचार करता हू तो केवल दिगम्बर जैन सिद्धात ही आत्मोत्थान का पूर्ण साधक सिद्ध होता है। उसमें शिथिलता या आडम्बर का लवलेश नहीं जो कि मुक्ति का बाधक होता है।

जब २ मै ने अजैन विद्वानो और श्वेताबर जैन विद्वान साधु जनों या गृहस्थ विद्वानो से ऊहापोह किया तो उन लोगों मे दि० जैन सिद्धात और आचार की मुक्त कण्ठ से प्रशसा सुनी। जब कभी केवली कवलाहारी, सवस्त्रमुक्ति तथा केवलीको सुख दु.ख के विषय की चर्चा हुई तो उन्होंने निसङ्कोच स्वीकार किया है कि यह विषय तो दि० सम्प्रदाय से ही उचित है किन्तु समय की परिस्थिति ने आचार्यों के विचारों में एक महान परिवर्तन पैदा कर दिया था फलत उनको यह शिथिलाचार अङ्गीकार करना पड़ा और तदनुसार लिपि बद्ध करना पडा किन्तु यह सब मुनि चर्या का बाधक है। इत्यादि—

इसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द के प्रति उभय

सम्प्रदाय की पूर्ण श्रद्धा और मान्यता है उभय समाज इनको धुरंधर विद्वान स्वीकार करते हैं इनकी रचनाओं का एक २ अक्षर प्रामाणिक हैं ऐसा माना जाता है। नूतन प्रकाशित 'श्रीमद् रायचन्द्र में, श्री रायचन्द्र जी ने स्वयं अनेक स्थलों पर उनको सर्व श्रेष्ठ अद्वितीय विद्वान स्वीकार किया है और उनको अत्यंत श्रद्धा व भक्ति से नमस्कार किया है।

जो कुछ प्रोफेसर साहब या उनके समर्थकों ने स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति, केवली कवलाहारी केवली को सुख दुःख होते हैं आदि बातों का समर्थन किया है और समाज को मिथ्यामार्ग की ओर ले जाने का प्रयत्न किया है यह सर्वथा अनुचित है। इसी प्रकार आचार्यवर कुन्दकुन्दस्वामी को बिना विचारे लिखने का दोषारोपण किया है यह भी नितांत भूल है।

विशेष क्या ट्रैक्ट का विरोधात्मक जवाब लिख रहा था किन्तु मुझे मालूम हुआ कि बहुत से और भी विद्वान ऐसा कर रहे हैं तो मैंने अपना विचार स्थगित रखा और केवल अपनी सम्मति भेजनी ही पर्याप्त समझी।

श्रीमान् पं० सतीशचन्द्र जी शास्त्री न्यायतीर्थ आयुर्वेदाचार्य,

मकौट, (एटा)

प्रोफेसर हीरालाल जी ने दिगम्बर जैन सिद्धांतानुसार ३ बातों का विधान किया है, वह बिलकुल गलत है। दिगम्बर जैन सिद्धान्त इसे स्वीकार नहीं करता।

१- स्त्री को मुक्ति नहीं हो सकती।
बाह्यांतरपरित्याग संयम तस्याभावात न स्त्रीणां मुक्तिः।

२- और सवस्त्र को भी मुक्ति नहीं हो सकती।
स च याचनसीवनप्रक्षालनशोषणनिक्षेपा—दानचौरहरणादिमन सङ्क्षोभकारिणि वस्त्रे कथं स्यात्?
इसका विवेचन प्रमेय कमल मार्तण्ड पृष्ठ ६४ से ६६ तक खूब लिखा है।

३- भगवान कवलाहार नहीं करते हैं। नीचे लिखे अनुमान से सिद्ध होता है।
"केवली न भुङ्क्ते रागद्वेषाभावानन्तवीर्य—सद्भावान्यथानुपपत्ते.।
यह प्रमेयकमलमार्तण्ड पृष्ठ ८४ से ८७ तक खूब प्रत्युत्तर किया है। देख लें।

प्रोफेसर हीरालाल जी ने दिगम्बर सिद्धांत के विपरीत बातें पेश की हैं वह हमें मान्य नहीं हैं। कुन्दकुन्द आचार्य प्रणीत जो धारा प्रवाह से कथन चला आ रहा है वही मान्य है।

श्रीमान् ला० पोस्तीलाल जी जैन,

श्री समस्त जैन पचान् मुम्बई! आपके पास जो प्रोफेसर हीरालाल जी ने तीन प्रश्न लिखकर समाज

में खलबली मचा दी है। स्त्रीमुक्ति, वस्त्र सहित मुनि और केवलज्ञानी कवलाहार करते हैं इस प्रकार लिखा है इसका उत्तर इस मुजिब समझना।

स्त्रीमुक्ति—

इस विषय मे शास्त्रों में ३ वेद माने हैं पुरुष स्त्री नपुंसक। इनमे तीनो वेदों में वज्रवृषभनाराचसहनन का धारी पुरुष ही होता है स्त्री तथा नपुंसक नहीं होते। स्त्री के अन्त के तीन सहनन यानी, नाराच कीलक स्फाटिक ही होते हैं और स्त्री छटेनरक तक तथा सोलह स्वर्ग तक ही जाती है अगाडी हीन सहनन होने से उसे अधिकार नहीं है और स्त्री के पाचवा गुणस्थान ही होता है कारण साड़ी वस्त्र की धारणा रहती है और भावस्त्री की अपेक्षा आठवा गुणस्थान तक ही रहता है अगाड़ी क्षपक श्रेणी मे वह वेद भी नहीं रहता: इससे स्त्री को मोक्ष होने का अधिकार नहीं है। स्त्री रजस्राव से भी असयत रहती है।

मुनीश्वर वस्त्र धारण कर सकते है इसके उत्तर मे तत्वार्थसूत्र में नवमें अध्याय में यह बतलाया है पुलाकवकुश कुशील निर्ग्रंथ स्नातक इस प्रकार निर्ग्रंथ मुनि पंच प्रकार के होते हैं यह सब ही नग्न रहते हैं उनके भावो में भेद है और सर्व ही पूजनीय है इसका उलटा अर्थ नहीं करना चाहिये अगर मुनि वस्त्र सहित होते तो जो मूल गुण २८ माने हैं उसमे नग्नत्व जो मूल गुण है वह नहीं ठहरता विचार कीजिये।

अन्तिम श्रुत केवली श्री भद्रबाहु स्वामी के समय १२ वर्ष के अकाल के चक्कर में पड़कर कुछ साधुओं ने शिथिलाचारसे कपड़ा पहनना शुरूकर दिया था।

केवली कवलाहार करते हैं इस विषय मे केवली भगवान के अनन्तचतुष्टय होता है यह इतना बलवान होताहै कि उसमें भूखप्यास तथा सुख दुख की वेदना होती नहीं केवलज्ञानी के जो ११ परीषह होते हैं वह जली हुई जेवड़ीवत होते हैं क्योंकि आठ कर्मो मे चार घातिया कर्म तो बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं और चार अघातिकर्म रहते हैं आयु, नाम गोत्र, वेदनीय। इस प्रकार से योग केवली तक रहते हैं और उनका असर रहता है लेकिन जिस प्रकार जली जेवड़ी अपना असर नहीं करती इस मुजिब आप विचार करें। केवलज्ञानी को तमाम भूतभविष्यत् वर्तमान पदार्थ यथार्थ दिखते हैं और आहार जो होता है वह ४६ दोष रहित होता है जब आहार करते समय उनके ज्ञान में सब दीखते हैं तो वह आहार किस तरह बनेगा हर समय अतराय रहेगा इसमे भी केवली के कवलाहार नहीं बनता।

इस प्रकार कथन है और नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती तथा अकलङ्कदेव खुद नग्न अवस्था में थे। वे गोम्मटसार और राजवार्तिक मे वस्त्रधारी मुनि होते हैं इस प्रकार कैसे लिखते। तथा भगवती आराधनासार में भी यह कथन कहीं नहीं है क्योंकि शिवकोटि मुनि श्री समन्तभद्र स्वामी के शिष्य थे और नग्न रहते थे उनके परिणाम कभी शिथिल नहीं हो सकते? अत. विचारना चाहिये कि महावीर स्वामी समवशरण में मुनि नग्न तथा वस्त्रधारी होते थे यह सब मिथ्या कल्पना है।

भद्रबाहु श्रुतकेवली तक नग्नत्व मे किसी प्रकार बाधा नहीं पहुंची तब महावीर स्वामी के समवशरण मे मुनि वस्त्रधारी थे यह लिखना नितात मिथ्या है।

इस तरह पर विचार करनेसे प्रोफेसर सा० की तीनो बातें घटित नहीं होतीं इसमे इस विषय का हठ छोडकर प्रोफे० जी सत्यनिर्णय का यत्न करें।

* पूज्य संयमियों का अभिमत *

श्री १०८ पूज्य मुनिवर सुमतिसागर जी महाराज

—तथा—

पूज्य मुनि सन्मतिसागर जी महाराज

(चातुर्मास छपारा)

जगत में जैनधर्म वीतराग मार्ग का अनुयायी है शेष मत सरागमार्ग के पोषक हैं। अतएव जैनधर्म के सञ्चालक श्री जिनेन्द्रदेव पूर्ण वीतराग होते हैं, उनके उपदिष्ट मार्ग के प्रचारक आचार्य, उपाध्याय साधु समस्त वस्त्र आदि परिग्रह से विमुक्त नग्न होते हैं। जो इतना त्याग नहीं कर सकते लज्जा के कारण वे लङ्गोटी पहन कर उत्कृष्ट श्रावक का रूप धारण करते हैं उनके महाव्रत नहीं।

स्त्रियां पूर्ण नग्न नहीं हो सकतीं अत पूर्ण आत्मशुद्धि उन्हें उसी शरीर से प्राप्त नहीं हो सकती सहनन शक्ति की हीनता भी उनके मुक्ति गमन में बाधक कारण है।

केवलज्ञानी घातिचतुष्टय नष्ट करके अनन्तचतुष्टय प्राप्त करते हैं अत अनन्त सुख के कारण उन्हें भूख नहीं लगती, अनन्त वीर्य के कारण उनमें भोजन न करने पर भी निर्बलता नहीं आती और अनन्त लाभ के कारण उनके परमौदारिक शरीर के बलाधान की कारणभूत नोकर्मवर्गणाओं से उनका शरीर पुष्ट होता रहता है। अतः वे कवलाहार नहीं करते।

पूज्य श्री आर्यिका धर्मवती जी,

सुसनेर।

दिगम्बर जैन ग्रन्थो से स्त्री-मुक्ति वस्त्र सहित मुक्ति, केवली भगवान का कवलाहार ये तीनो बातें विपरीत मानी गई है। न तो ऐसा हुआ है न होगा। तीनो बाते असम्भव हैं। प्रोफेसर हीरालाल जी ने आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के विचारों के विषय में विपरीत बातें लिखकर अपने ही आत्मा को निंदनीय किया है।

श्री १०५ पूज्य ऐलक कुलभूषण जी महाराज,
निमशिरगांव ।

स्त्रियों को मुक्ति होना, वस्त्र सहित मुक्ति होना, केवली भगवान का कवलाहार करना, यह तीनों बातें सिद्धांत विरुद्ध असम्भव हैं ।

*** शास्त्रीय प्रमाण ***

प्रवचनसार में, पृष्ठ २७० से ३३६ तक, वस्त्र—सहित स्त्रियोको मोक्ष नहीं होती ऐसा स्पष्ट लिखा है ।

श्रीमद्देवसेनाचार्यने भावसंग्रहमे (मराठी टीका) पृष्ठ ४७ से ६५ तक, यही विषय और केवलि कवलाहार नहीं करते हैं ऐसा बताया है, आगे चलकर स्थविरकल्पी साधु का तथा जिन जिनकल्पी साधु का स्वरूप, श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति आदि बताया है ।

केवलि भगवान कवलाहार नहीं करते हैं, उन्हें सुख दुःख नहीं होता है ऐसा प्रमेयकमल मार्तण्ड में तथा दूसरे न्याय ग्रन्थों में भी आया है ।

श्री समन्तभद्राचार्य कृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार के छठे श्लोक की टीका में संस्कृत टीकाकार ने केवलि कवलाहार का खण्डन किया है स्त्रियों को मोक्ष क्यों नहीं होता है और स्त्रियो में क्या २ दोष है वह सभी खुलासा किया है ।

माघनन्दी आचार्य ने शास्त्रसार समुच्चय में—

लोकद्वयानपेक्षा हि धर्मस्सर्वज्ञभाषितः ।
अतस्तस्मिन् कृतस्त्रीणां लिंगं सग्रंथमिष्यते ॥१॥
कर्मभूद्रव्यनारीणां नाद्यं संहननत्रयं ।
वस्त्रादानाच्चरित्रं च तासां मुक्तिकथा वृथा ॥२॥
तेनैव जन्मना नास्ति मुक्तिः स्त्रीणां हि निश्चयात् ।
तासां योग्यं तपश्चिन्नं पृथक्त्वोपवर्णितं ॥३॥
एकमप्येषु दोषेषु बिना नारी न वर्तते ।
गात्रसंवरणं नास्ति तस्यास्संवरणं ततः ॥४॥
चित्तस्रावोऽल्पशक्तिश्च रज:प्रस्खलनं तथा ।
स्त्रीपूत्पत्तिश्च सूक्ष्माणामपर्याप्तनृणां भवेत् ॥५॥
कक्षस्तनांतरे देशे नाभौ गुह्ये च सम्भवः ।
सूक्ष्माणां च ततः स्त्रीणां संयमो नास्ति तत्वतः ॥६॥
दर्शनं निर्मलज्ञानं सूत्रपाठेन बोधितं ।
यद्यप्युमाचरेच्चर्या तथापि स्त्री न सिध्यति ॥७॥
यदि त्रिरत्नमात्रेण सा पुंसा नग्नता वृथा ।
तिरश्चामपि दुर्वारा निर्वाणाप्तिरलिङ्गिता ॥८॥
मुक्तिश्चेदस्ति किं तासां प्रतिमा स्तभनार्य्यपि ।
क्रियन्तेऽपूज्या श्चेत्तासां मुक्तेरस्तु जलांजलि ॥९॥
ततस्तद्योग्यमेवोक्तं लिंगं स्त्रीणां जिनोत्तमैः ।
तल्लिंगंयोग्यचारित्रं सज्जातिप्रकटात्तत ॥१०॥
देशव्रतान्वितैस्तासामारोप्यते बुधैः स्तत ।
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारत ॥११॥

धवलग्रन्थ के प्रथम भागमें लिखा है कि 'स्त्रियों को भाव तथा द्रव्य दोनो संयम नहीं होते हैं ।

सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः । भावसंयमस्तासां, सवाससामप्यविरुद्ध इति-चेत्? न तासां भावासंयमोऽस्ति भावासंयमाविनाभा विवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः ।

षट्प्राभृत में श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने 'स्त्रियो तथा गृहस्थो को भी मोक्ष नहीं होता है' ऐसा स्पष्ट लिखा है, स्त्रियोको तो महाव्रत (छठा गुणस्थान) होता ही नहीं, फिर मोक्ष कैसे होगी ।

तत्वार्थ राजवार्तिक में ३३१ ३३२ पृष्ठ में लिखा है कि स्त्री को क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है । जब दर्शनमोहनीयकर्म का नाश वह नहीं कर सकती है तो चारित्र मोहनीय कर्म को कैसे नाश कर सकती है ।

सुज्ञेषु किमधिकमित्यलम् ।

श्रीमान् पूज्य अनुमतत्याग प्रतिमाधारक स्वरूपचन्द्र जी तथा अशरफीलाल जी महाराज,

सवस्त्र साधु चर्या, स्त्री मुक्ति और केवली कवलाहार ये तीनो विषय आगम तथा युक्ति के विरुद्ध हैं, प्राक्तन विद्वान ग्रन्थकारो ने अनेक सरल युक्तियो से इनका सुन्दर खण्डन किया है। अन्तिम श्रुत केवली श्री भद्रबाहु स्वामी के समय पर १२ वर्ष के दुर्भिक्ष के समय अकाल से प्रभावित जो जैन मुनि चारित्र भ्रष्ट हुये उन्होंने अपने शिथिलाचार की पुष्टि में इन सिद्धांतों का प्रचार किया। प्रोफेसर जी को इस ऐतिहासिक तथ्य का मनन करना चाहिये। निराधार कुतर्कों से सत्य सिद्धात को दूषित करने का यत्न न करना चाहिये।

श्रीमान् ब्रह्मचारी मोतीलाल जी महाराज

माधोगञ्ज, लश्कर।

—:[रथ यात्रा के समय]:—

मोक्ष की प्राप्ति यथाख्यात चारित्र होने पर होती है वह वज्रवृषभनाराच सहननधारक, समस्त परिग्रह त्यागी साधु के होता है। कर्मभूमिज स्त्री को न पहला सहनन है, न सकल परिग्रह का त्याग है अतः उसे मुक्ति होना असम्भव है।

वस्त्र अनेक चिंताओं का साधनभूत एक परिग्रह है वह रञ्च भर भी जिसके पास होगा वह परिग्रह त्याग महाव्रती नहीं हो सकता।

मोहनीय कर्म सर्वथा नष्ट हो जाने पर समस्त इच्छाओं का नाश हो जाता है फिर अनन्तसुखी, अनन्तबली केवली के भोजन करने की इच्छा होगी ही कैसे ?

अत. प्रोफे० हीरालाल जी की तीनों बातें युक्ति आगम से विरुद्ध हैं।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

फिरोजाबाद, [आगरा]।

प्रोफेसर हीरालाल जी अमरावती वालो के तथा कथित दि० जैन धर्म पर दोषारोपण के विषय मे फिरोजाबाद की दि० जैन पंचायत सर्व सम्मति से निम्न लिखित निश्चय करती है।

१- धवलादि महान सिद्धांत ग्रन्थो का प्रकाशन करने वाले प्रोफे० हीरालाल जी ने स्त्रीमुक्ति, सवस्त्र-मुक्ति, केवली कवलाहारी आदि परमागम विरुद्ध जो मान्यतायें प्रचारित की है वे सर्वथा असङ्गत एवं

अयुक्ति पूर्ण हैं उनका परम्पराचार्य सम्प्रदाय द्वारा प्रणीत आर्षमार्ग के मुकाबले में कोई मूल्य नहीं है।

२– इन मान्यताओं की पुष्टि में उक्त प्रो० सा० ने जिन आचार्य वाक्यों के उद्धरणो से मन माना अभिप्राय निकाला है वे उद्धरण उन्हें पुष्ट नहीं करते अपितु इन मान्यताओं के विरुद्ध उन्हीं आचार्यों के पुष्ट एवं तर्क सम्मत प्रमाण मिलते हैं। ऐसा जान पडता है प्रोफे० साहब मात्र लिपिविशेषज्ञ हैं आगम की गूढ़ गुत्थिया उन्हो ने नहीं समझीं।

३– जब हम उक्त प्रौफेसर साहब को भगवत्कुन्द-कुन्द-भट्ट अकलङ्कस्वामी आचार्य पूज्यपाद जैसे प्रात स्मरणीय परम पाण्डित्यप्रवीण दिग्गज आचार्य एव उनकी पट्टावली के विषय में 'अमुक ग्रन्थकार ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है' यह साधारण शिष्टाचार के भी विरुद्ध लिखते देखते हैं तो हमें खेद होता है।

४– अन्त मे प्रोफेसर साहब की इस चेष्टा के प्रति खेद प्रगट करते हुये हम अखिल भारतीय दि० जैन समाज से निवेदन करते हैं भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी प्रणीत जो धारा प्रवाह आर्षमार्ग चला आ रहा है उस पर अटल रहा जाय एव तदनुसार आत्मकल्याण किया जाय।

हजारीलाल जैन बी० ए०एलएल०बी०
सभापति श्री दि० जै० प० पु० पचायत।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

ठकुराई, [*ग्वालियर*]।

'स्त्री को मुक्ति नहीं हो सकती' यह सिद्धात श्वेताम्बर मत का भी है। देखिये—पंच परमेष्ठी में कोई भी स्त्री वेदी नहीं है प्रतिमा, चरणपादुका (पगल्या) जो मन्दिरो और मोक्ष स्थानो में है वे स्त्रियोंके नहीं आज से जो २००० दो हजार पहले की मूर्ति मिली हैं उनमे कोई भी स्त्री की प्रतिमा नहीं है स्त्रीमुक्ति होती तो उसकी भी मूर्ति मिलतीं, स्त्री के संहनन बल निर्भयता, गुणस्थान, (छठे से लेकर १४ तक) तथा तीर्थङ्कर, गणधर, चक्री आदि पद पाने एकाकी विहार करने व पूर्ण लज्जा छोड़ने केलिये भी वह समर्थ नहीं, श्वेताबरीय सिद्धातानुसार स्त्री को १४ पूर्वों का भी ज्ञान नहीं होता तब प्रोफेसर हीरालाल जी स्वयं विचार करें कि वे फिर मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकती हैं ?

सवस्त्र साधु को मुक्ति बतलाना भी गलत है प्रथम तो मुनिचर्या बिना मोक्ष नहीं और मुनिचर्या कपड़े सहित नहीं, इसी कारण दिगम्बर अर्थात वस्त्र रहित नग्नवेष साधु का माना गया है। वि० स० ६०० मे पहले की समस्त श्वेताम्बर मूर्ति भी नग्न है जिनके पास लेश भी वस्त्र नहीं।

एक धागा डालकर उसको सराग मानकर अकलङ्कदेव ने मूर्ति को रुलाया था। कपडो से, भय, याचना, मैल होना, धोना, जिससे त्रस स्थावर जीवों की विराधना और उससे सयम का घात इत्यादि अनेक दोष आते है तथा जैन साधु के २८ मूलगुणो में नग्नता की कमी होती है और परीषह मे भी

दशमसक शीत, नग्न, स्त्री इत्यादि परीषहों में कमी होती है वस्त्र के सम्बन्ध से रागद्वेष होना अनिवार्य है जिससे मोक्ष होने में पूर्ण बाधा है।

प्रथमानुयोग में जो अरहंत केवलियों का कथन आया है उसमें केवली कहीं भी आहार लेने नहीं पधारे और न उनको समवशरण या गंधकुटीमें कोई देव, मनुष्यो ने ही आहार लाकर वा बनाकर दिया है समवशरण मे कवलाहार से नौधाभक्ति, अन्तराय मलदोष का निवारण वा दातारके गुण वगैरह सब ही विधि असम्भव है। केवली को अक्षय अनन्त सुख है। मोहनीय की सहायता से असाता वेदनीय दुःख उत्पन्न कर सकती है अन्यथा नहीं। अतः केवली को कुछ भी दुःख नहीं होता।

अतः स्त्रीमुक्ति वस्त्रसहित मुक्ति, केवली को कवलाहार सुखदुःखादि होना ये सब बातें श्वेताम्बर आम्नाय की हैं उनका दिगम्बर आम्नाय सम्बन्धी लिखना गलत है हम उक्त बातों का विरोध करते हैं स्वामी कुन्दकुन्द को बिना विचारे लिखना अपनी ही हंसी उड़ाना है।

—ह० समस्त पंचान।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

निबोहड़ा।

स्त्री-मुक्ति पर विचार—

दिगम्बर जैनधर्म में प्रत्येक आचार्य ने (बाईस) २२ परीषह मानी हैं उन बाईस परीषहों में नग्न परीषह भी है, बिना नग्न अवस्था के मुक्ति होना नितात असम्भव है क्योकि लङ्गोटी मात्र परिग्रह से हजारों प्रकार की चिन्तायें लगी रहती है जब तक उन चिन्ताओ से स्वतन्त्र न होगे ध्यान की एकाग्रता प्राय असम्भव हो जायगी इससे सिद्ध होता है कि नग्नावस्था मुक्ति होने के लिये परमावश्यक है किन्तु स्त्री नग्न नहीं हो सकती और न वह नग्न परीषह जीत सकती है अतः स्त्री का मोक्ष होना नितान्त असम्भव है।

उमास्वामी, पूज्यपाद, समन्तभद्र आदि आचार्य गण जो कि दिगम्बर जैनधर्म के नायक हैं उन्हो ने स्त्री को नग्न रहना निषिद्ध बतलाया है पुरुष मे पाप भी अधिक से अधिक करने की शक्ति है और पुण्य तथा ध्यान भी, जिसके प्रभाव से वह मोक्ष तक जा सकता है। स्वभावत: स्त्री में वह शक्ति नहीं है।

निर्वस्त्र संयम न पाल सकने से स्त्री महाव्रत धारण नहीं कर सकती और बिना महाव्रत के मोक्ष प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है।

शुक्लध्यान के लिये वज्रवृषभनाराचसहनन का होना अनिवार्य है और इसका अभाव कर्मभूमिज स्त्रियो में है मोक्ष वज्रवृषभनाराचसहनन ही से होता है (देखो श्वे० ग्रन्थ संग्रहणी सूत्र नामक प्रकरण १६०वीं गाथा)।

श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी स्त्री मे वज्रवृषभनाराच-सहनन का अभाव बतलाया है प्रकरण रत्नाकर (चौथा भाग) २३६वीं गाथा। चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदि उत्कृष्ट बल धारक पद पुरुषो को ही प्राप्त होते हैं।

देखो प्रवचनसारोद्धार तीसरा भाग ५४४से५४५ तक

पुरानी दीक्षित आर्यिका को एक दिन के दीक्षित मुनि को बन्दना करनी पड़ती है (देखो कल्प सूत्र के दूसरे पत्र को)

श्वेताम्बर शास्त्रानुसार आनत प्राणत विमान-वासी देव मर कर पुरुष ही होते हैं इससे पुरुष की उच्चता सिद्ध होती है (देखो प्रकरण रत्नाकर ७७-७८ पृष्ठ ५८।

ज्ञानशक्तिकी हीनता—स्त्री को १२ अङ्ग को छोड़ो किन्तु दृष्टिवाद अङ्ग के एक भाग रूप १४ पूर्व का ज्ञान भी नहीं होता है (देखो प्रकरण रत्नाकर) इसके अलावा दृष्टिवाद अङ्ग का पढ़ना स्त्री के लिये मना है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने भी स्त्री को जिनकल्प नहीं माना है 'णो कप्पादि लिङ्ग थीए अचेलाए होत्ताए'।

स्त्रियोंकी शारीरिक रचना—उनकी रचना परम पवित्रता में बाधक है अतः यथाख्यात चारित्र भी उनको नहीं हो सकता। मासिक धर्म के समय साड़ी बिना बदले शुद्ध नहीं होती इसलिये पानी लेना, साडी को याचना करनी पड़ती है इससे उसके महाव्रत होना असम्भव है।

श्री शुभचन्द्राचार्य जी के कथनानुसार स्त्रियों के सत्य, शूरता आदि गुणों का अभाव है। मायाचार अपवित्रता अधिक पाई जाती है। रजमल, भय हमेशा रहता है उनकी जाति नीच होती है। बल नहीं होता, साधु उनको नमस्कार नहीं करते उत्कृष्ट चारित्र उनके नहीं होता। इन कारणो से स्त्रीमुक्ति होना असम्भव है।

सवस्त्र-मुक्ति—

कपड़े सहित मुक्ति मानने से वीतरागता का अत हो जाता है कपड़े की चिंता ध्यान में बाधक होती है क्योंकि उनके फट जाने पर सुई डोरे से सीने की चिंता लगी रहती है निश्चिन्त ध्यान नहीं बन सकता।

१-वस्त्र पहनते रहने से शीत, उष्ण, दंशमशक आदि परीषहों को जीत नहीं सकता। २-कपड़े पहने हुये मुनि की परीक्षा नहीं हो सकती कि वह पूर्ण ब्रह्मचारी व वीतरागी भी है या नहीं। ३-इच्छा-नुसार कपडे मिलने पर सुख और न मिलने पर दुःख होगा। मैले कपड़े के धोने, निचोड़ने, सुखाने, जोडने आदि में मुनि को चिन्ता, असयम, भय, आरम्भ आदि करने पड़ते हैं। ४-कपडे पहनने के कारण जो पसीना होता है इससे जूयें उत्पन्न होते हैं जिससे हिंसा का दोष लगता है। उपर्युक्त बातें निश्चिन्त ध्यान में बाधक हैं अत वस्त्र सहित मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।

केवली कवलाहार—

अर्हंत भगवान के कवलाहार मानने पर अनंत चतुष्टय में बाधा आती है। आहार करने की चिता, न मिलने पर क्षोभ इत्यादि बातें क्षोभ पैदा करती हैं।

वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म की सहायता से फल देता है। जब मोहनीयकर्म का नाश हो जाता है तब वेदनीयकर्म नाम मात्र रह जाता है परिपाक कुछ नहीं दे सकता। अतः वेदनीय के रहते हुए भी केवली भगवान को भूख नहीं लगती।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

तिलकपुर तलवाड़ा

श्रीमान् मान्यवर सकल दिगम्बर जैन पंचायत मुंबई! तिलकपुर (तलवाड़ा) से समस्त दिगम्बर जैन पञ्चायतका सादर जयजिनेन्द्र बंचना जी। अपरंच यहा पर श्रीमान् विश्ववन्द्य, परम पूज्य, तपोनिधि चारित्र चूड़ामणि, ज्ञानध्याननिष्ठ श्री श्री श्री १०८ श्री आचार्यवर्य श्री कुन्थुसागर जी महाराजके संघसहित विराजने से आनन्द मङ्गल है। आपके वहा भी आनन्द होगा। अपरञ्च आपने पत्र नं० १ छपा हुआ भेजा जिसमें प्रोफे० हीरालाल जी साहब द्वारा श्वेताम्बर दिगम्बर मत में कोई मौलिक भेद है? तथा श्वेताम्बरोंने जो सवस्त्र मुक्ति, स्त्रीमुक्ति केवली-कवलाहार माना है वह दिगम्बरों के ग्रन्थों से भी सिद्ध होता है तथा कुन्दकुन्दाचार्य ने दिगम्बर मत स्थापित किया है आदि लिखा है उसके प्रत्युत्तर के लिखा सो समाचार विदित हुए।

श्रीमान् प्रोफेसर हीरालाल जी ने जो यह प्रश्न उठाये हैं वे केवल उनके उथले स्वाध्य का ही फल है। क्योंकि वीतराग धर्म अनादिकालसे इस भूतल पर वरत रहा है और इसके प्रवर्तक अनादि काल से त्रेसठ शलाका पुरुष चले आये हैं। जब उन महापुरुषों के हाथ में यह धर्म था तब तक इस भूतल पर सुख साम्राज्य छाया हुआ था और एक ही धर्म था। किन्तु हुंडावसर्पिणी काल के दोष से ये अनेक मत मतांतर पैदा हुए। और आज विदेह क्षेत्र में हमेशाके लिये एक वीतराग धर्म ही मौजूद रहता है। वहा पर कोई मतमतांतर नहीं है। और यह वीतराग धर्म आत्मा का वास्तविक रूप है। क्योंकि परिग्रह वगैरह सब उपाधि है और परिग्रह रखकर मोक्ष को जावे यह बात असम्भव ही है। दिगम्बर शास्त्रों में तो कहीं भी सवस्त्र मुक्ति नहीं बतलायी। जहां पर अन्तरङ्ग परिग्रह भी दुखदायी व आत्माके वास्तविक रूप प्राप्त करने में बाधक है तो बाह्य परिग्रह रखते हुए मोक्ष प्राप्त करना आत्मा के वास्तविक पद को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। इस लिये प्रोफेसर साहब द्वारा सवस्त्रमुक्ति दिगम्बरशास्त्रमें विधेय कहना तो झूठा, अवर्णवाद करना है। तथा श्वेताम्बर शास्त्रों में भी आखिर में वस्त्र का त्याग ही बतलाया है।

स्त्रीमुक्ति कहना भी बिलकुल असत्य है। दिगम्बर शास्त्रोंमें तो स्त्री मुक्ति का निषेध ही है। क्योंकि स्त्री के लिये उत्कृष्ट संहनन हो नहीं बतलाया और उत्कृष्ट सहनन न होने के कारण महिला जाति अगर नरक में जावे तो छठे नरक तक जा सकती है और ऊपर सोलहवें तक ही जा सकती है। इस लिये दिगम्बर शास्त्र में स्त्री मुक्ति का निषेध ही है। और कर्म सिद्धांत के अनुसार भी इसकी सिद्धि नहीं हो सकती। तथा आज कल हम वर्तमान व्यवहार में भी देख रहे हैं कि उच्च शक्ति स्त्रियों में नहीं है। इस लिये स्त्री पर्याय से मुक्ति पाना निराधार है।

केवली कवलाहार भी कदापि सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि केवली भगवान परमौदारिक शरीर को धारण करने वाले महापुरुषों के लिये अर्हंत अवस्था में नो कर्म वर्गणा के सिवाय कोई आहार नहीं है क्योंकि कवलाहार छठे गुणस्थानवर्ती साधुओं के लिये और सामान्य पुरुषों के लिये है। साधु अवस्था में बारह तपादि करने पड़ते हैं क्यों कि तप आदि न करने से प्रमादादि बढ़ जाता है। अतः

केवली को कवलाहार मानें तो अर्हंत के ४६ गुण माने हैं उसमें भी बाधा पड़ती है। और उसके अनन्त चतुष्टयमें भी बाधा पड़ती है। फिर सामान्य मनुष्य व केवली भगवान में अन्तर ही क्या रहा। अतः केवली भगवान तो अनन्त चतुष्टय के धारक हैं उनको भूख का दुखी कहना उनके अनन्त सुख और उनके अनन्त बल का उपहास करना है अतः हमारे दिगम्बर शास्त्र में तो केवली कवलाहार का निषेध किया है।

प्रोफेसर साहब का कहना है कि दिगम्बर धर्म कुन्दकुन्दाचार्य ने स्थापित किया है यह कहना भी बिलकुल गलत है। क्योंकि उनके पहले पुष्पदन्त भूतबली आदि कई आचार्य हुए उन्हों ने वीतराग धर्मका ही उपदेश दिया है। औरभी इस वीतराग धर्म को सब ने अपनाया है किन्तु दिगम्बर मत में स्नान पानादि कठिन वृत्ति होने से उसको न सह सकनेके कारण मतमतातर खड़े होगये हैं। लेकिन वीतराग धर्म का सब पर प्रभाव पड़ा हुआ है। इस लिये वीतराग दिगम्बर धर्म को कुंदकुन्दाचार्य द्वारा स्थापित कहने से पहले प्रोफेसर जी अन्तिम श्रुत-केवली के बाद के इतिहास का मनन करें जब से कि वस्त्रधारक जैन साधुओं का प्रारम्भ हुआ है।

हमारे पूज्य गुरुवर्य तपोनिधि विश्ववन्द्य आचार्य देव ने जो इसका प्रत्युत्तर लिखा है। वह अक्षर अक्षर प्रमाणीक है।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

बेलवां

श्वेताम्बर आम्नाय से दिगम्बर आम्नाय के ग्रन्थ पहले के लिखे हुये हैं, श्वेताम्बर आम्नाय के देवर्द्धिगणि आदि ने वल्लभीपुर में वीर संवत ९८० में आगम ग्रन्थ लिखे थे। श्लोक —

वल्लहिपुरम्मि नयरे देवड्ढिपमुहसयलसंघेहिं।
आगम पुत्थे लिहिओ, णवसय असी आओ वीराओ॥

जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर में आत्मानन्द सभा भाव नगर द्वारा वीर सं० २४३५ में प्रकाशित पृष्ठ २३९ में उन्हीं के लिखे अनुसार दिगम्बर शास्त्र ३०० वर्ष पहिले के लिखे हैं वीर स० ६८३ वर्ष ज्येष्ठ सुदी ५ के दिन श्रीभूतबली पुष्पदन्त आचार्योंने षट्खंडा-गम को पूर्ण कर पूजा की है।

अब इनकी रचना हुई उस ही ईसा की पहिली या दूसरी शताब्दी में कुन्दकुन्दाचार्य जैसे सरीखे दिग्गज विद्वान हुए जिनके विषय में कहा जाता है कि विदेहक्षेत्र में जाकर साक्षात दिव्य ध्वनि द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना था वही वस्तुस्वरूप धर्मोपदेश आज तक शास्त्रोंमें वर्णित है। क्या कुन्दकुन्द स्वामी अन्यथा वर्णन कर सकते हैं?

श्वे० ग्रन्थ प्रवचनसारोद्धार प्रकरण रत्नाकर भाग तीसरा (छपा स० १९६४ भीमसेन माणक जी बम्बई) पृष्ठ नम्बर ५४४-४५ में लिखा है कि—

अरहंत चक्कि केसव बल संभिन्नेयचारणे पुव्वा।
गणहर पुलाय आहारगय न हु भवियमहिलाणं॥

यानी—अरहन्त, चक्री, नारायण, बलदेव, संभिन्न श्रोता, चारण ऋद्धि, पूर्व का ज्ञान, गणधर

पुलाकपना, आहारक शरीर ये दश लब्धियें भव्य-स्त्री के नहीं होतीं।

जब श्वेताम्बर आम्नाय अनुसार ये पद स्त्री को प्राप्त नहीं होते तो मुक्ति पद, अर्हंत अवस्था क्योंकर हो सकती है।

श्री दिगम्बराम्नाय के श्री प्रवचनसार में लिखा है कि :—

सति धुवं पमदाणं मोहपदोसा भयदुगच्छाय।
चित्ते चित्तमाया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं ॥३३॥

स्त्रियो के चित्त में निश्चय से मोह, द्वेष, भय, ग्लानि तथा विचित्र माया होती है इसलिये उनके निर्वाण नहीं होता।

जदि दसणेण सुद्धा सुत्तज्झयणेण चावि सजुत्ता।
घोर चरदिव्व चरिय इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा॥

यद्यपि कोई स्त्री सम्यग्दर्शन से शुद्ध हो तथा शास्त्रज्ञान से भी सयुक्त हो और घोर चारित्र को भी आचरण करे तो भी स्त्री के सर्व कम की निर्जरा नही कही गई है।

अतिमतिगसहणणं णियमेण य कम्मभूमिमहिलाणं
आदिमतिग सहणण णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥

कर्मभूमि की स्त्रियों के अन्त के तीन सहनन नियम से होते हैं तथा आदि के तीन नहीं होते ऐसा जिनेन्द्रों ने कहा है अर्थात वज्रवृषभ नाराच सहनन स्त्रियों के नहीं होता जिसके द्वारा शुक्लध्यान होता है जिससे समस्त कर्म छूटकर मोक्ष होता है।

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा
तम्हा तप्पडिरूवं वियप्पियं लिंगमित्थीणं॥३१॥

वास्तव में उसी जन्म से स्त्रियों को मोक्ष नहीं देखी गई है इसलिये स्त्रियो का भेष आवरण सहित (साड़ी सहित) पृथक कहा गया है।

निग्रंथ साधु मोक्ष पद प्राप्त करता है सो कहते हैं।

यथाजातरूपमुत्पाटितकेशश्मश्रुकं।
रहित हिंसादितो प्रतिकर्मं भवति लिङ्गम् ॥५॥
मूर्छारम्भवियुक्त युक्तमुपयोगशुद्धिभ्याम्।
लिंगं न परापेक्षमपुनर्भवकारणं जैनम्॥

मुनि का द्रव्य या बाहरी चिन्ह जैसा परिग्रह रहित नग्न स्वरूप होता है वैसा होता है जिससे शिर और दाढ़ी के बालों का लोच किया जाता है, जो निर्मल और हिंसादि पापों से रहित तथा शृङ्गार रहित होता है अतः। परिग्रह सहित मुनि मोक्ष मार्ग में स्थित नहीं।

श्वेताम्बराम्नाय के शास्त्रों में भी नग्न मुनि को विशुद्ध जिन कल्पी लिखा है प्रवचनसारोद्धार के भाग तीसरा पृष्ठ १२४ में लिखा है—

पाउरण वज्जियाणं विसुद्धजिण कप्पियाणं तु॥

श्वेताम्बर आचाराङ्ग सूत्र—

जेभिक्खू अचेले, जो साधु वस्त्र रहित दिगम्बर हो वह धन्य है। इसी सूत्र में यह भी कथन है कि महावीर स्वामी ने नग्न दीक्षा ली थी इन्द्र ने रत्न-कम्बल उनके कधे पर रख दिया था वह भी १३ मास बाद न रहा और अत तक पूर्ण नग्न रहे।

श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी में छः प्रकारका आहार लिखा है, कर्म आहार, नोकर्म आहार, ओजाहार, मानसिक आहार- लेपन आहार, कवलाहार।

केवली भगवान को नोकर्म आहार बताया है तथा मोहनीय कर्म नष्ट होने से वेदनीय कर्म केवली भगवान को क्षुधादि उत्पन्न नहीं कर सकता।

हस्ताक्षरः- समस्त पंचान।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

आवद ।

श्रीमान प्रोफेसर हीरालाल जी साहब की तरफ से (१) स्त्री को मुक्ति हो सकती है। (२) वस्त्र सहित को मुक्ति हो सकती है। (३) केवली भगवान कवलाहार करते हैं, केवली को सुख दुखादि भी होते हैं। आदि विषयक जो ट्रैक्ट छपा है वह दिगंबर मान्यता के बिलकुल प्रतिकूल है इसलिये हमको मान्य नहीं है कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय के मानने वाले श्री नेमिचन्द्र जी सिद्धांत चक्रवर्ती व शुभचन्द्राचार्य के कथन से भी निम्न प्रकार सिद्ध होता है।

१-स्त्री को मोक्ष नहीं हो सकता।

गोम्मटसार कर्मकांड गाथा नं० ३४ में कर्मभूमि वाली स्त्रियों के शरीर के संहनन निम्न प्रकार बतलाये हैं:—

अंतिमतियसंहणणस्सुदओ पुणकम्मभूमिमहिलाण
आदिमतियसंहणणं णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥

इस तरह से कर्मभूमि वाली स्त्रियों के अन्त के तीन संहनन ही, होते हैं पहले का वज्रवृषभनाराच संहनन नहीं होता और वज्रवृषभनाराचसंहनन के हुये बिना सातवीं नरक व मोक्ष दोनों ही नहीं हो सकते जैसा कि शास्त्रों के कथन से स्पष्ट है। इसी विषय को शुभचन्द्राचार्य विशेष स्पष्ट करते हैं —

स्त्रीणां निर्वाणसिद्धिः कथमपि न भवेत्सत्यशौर्याद्यभावात्। मायाशौचप्रपंचान्मलभयकलुषाभीक्षजातेरशक्तेः॥ साधूनात्यभावात् प्रबलचरणताभावत पुरुषतोन्य—भावाद्धिसाक्रुत्वात् सकलविमल—सद्ध्यानहीनत्वतश्च॥

अर्थात—स्त्रियों में सत्य, शूरता आदि गुणों का अभाव होता है। मायाचार, अपवित्रता अधिकतर पाई जाती है। रज, मल, भय और कलुषता सदा रहती है। उत्कृष्ट चारित्र भी नहीं होता व सम्पूर्ण निर्मलज्ञान की हीनता होती है इत्यादि कारणों से स्त्री मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकती। इस तरह से द्रव्य स्त्री मोक्ष प्राप्त करने को अधिकारिणी कदापि नहीं हो सकती यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है।

२-सवस्त्र को मुक्ति नहीं हो सकती।

मोक्ष के लिये संयम की पूर्ण आवश्यकता है और पूर्ण संयम का साधन साधु ही कर सकता है और साधु को परिग्रह त्याग अत्यन्त आवश्यक है। गृहस्थ अवस्था में आरम्भ परिग्रह के कारण हिंसादि पांचों पापों के पूरे विकल्पों का त्याग नहीं हो सकता है क्योंकि निश्चलता की बाधक परिग्रह की चिन्ता बनी रहती है। इस तरह से यह साबित हो जाता है कि साधु ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है और साधु के लिये अन्य परिग्रह की तरह वस्त्र परिग्रह का भी सर्वथा त्याग होना चाहिये।

अन्तरङ्ग परिग्रह घटाने में भी नग्न अवस्था ही मुख्य कारण है क्योंकि बिना बाह्य परिग्रह के त्याग किये अन्तरङ्ग परिग्रह जो रागादिक हैं वे त्याग नहीं किये जा सकते और बिना परिग्रह (अन्तरङ्ग बाह्य) के त्याग किये संयम नहीं बन सकता और संयम धारण किये बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती।

अगर परिग्रह का त्याग किये बिना ही मोक्ष प्राप्त कर लिया जा सकता होता तो तीर्थंकर जो कि पुण्य की हद और चरमशरीरी होते हैं उन्हें वस्त्रादि त्याग करके जङ्गल क्यों जाना पड़ता कहा भी है :—

णवि सिज्झइवत्थधरो जिणसासणे जेधिहोइ तित्थ-यरो। णग्गोहि मोक्खमग्गो सेसा अमग्गयासव्वे॥

केवली के कवलाहार नहीं होता, दुखादिका भी अनुभव नहीं होता।

आहार के विषय में आर्ष ग्रन्थों में निम्नलिखित विधान है—

णोकम्मकम्महारो कवलाहारोय लेप्यमाहारो।
उज्झमणोवियकमसो आहारो छव्विहो णेयो॥
णोकम्म तित्थयरे कम्मं णारेय माणसो अमरे।
कवलाहारो णर पसु उज्भो पक्खीय इगिलेऊ॥

इस तरह से बिना कवलाहार के भी औदारिक शरीर की स्थिरता हो सकती है और केवली के तो परमौदारिक शरीर होने के कारण नोकर्म आहार ही होता है।

अगर कदाचित यह कहा जाय कि तत्वार्थ सूत्र-कार ने "एकादश जिने" यह कहा है, सो ठीक है क्योंकि ये वेदनीय के उदय से ११ परीषहें होती हैं, किन्तु मोहनीयकर्म के बिना वेदनीय क्षुधा के पैदा करने में असमर्थ है।

कहा भी है :—

घादिंव वेयणीय मोहस्स बलेण घाददे जीवं।
इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्मि पढिदं तु॥

इस तरह नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती ने कर्मकाड गाथा नं० १८ में स्पष्ट कर दिया है कि मोहनीय के बिना वेदनीय आत्मा के अव्याबाध गुण को नहीं घात सकता जो कि वेदनीय का कार्य है। और केवली के मोहनीयकर्म का सर्वथा अभाव हो गया है। इस तरह से यह प्रामाणिक सिद्धात मिलता है।

कहीं पर भी शास्त्रों में यह उल्लेख नहीं पाया जाता कि केवली ने अमुक के घर आहार किया। और न देवताओं के हाथ से ही लेना लिखा है।

इच्छा का होना मोहनीय कर्म का काम है सो अगर इच्छा न हो तो ग्रास किस प्रकार लिया जा सकता है व किस तरह चबाया जा सकता है।

एक सबसे जबरदस्त विरोध यह आता है कि अगर ग्रास उठाकर मुंह में रखा जाता है तो मुंह का खोलना, होंठ (ओठो) का हिलाना, दांतों से चबाना आदि सब कार्य करने पड़ने हैं जो कि केवली के इच्छा नष्ट हो जाने से होते नहीं।

सुख दुःख के अनुभव होनेके विषय में गोम्मट-सार कर्मकाड गाथा नं० १२७ में लिखा है—

णट्ठाय रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्स जदो।
तेण दु सातासातज सुहदुक्खं णत्थि इंदियजं॥

इस तरह राग द्वेष तथा इन्द्रियज्ञान के नष्ट हो जाने से वेदनीय के उदय से होने वाला इन्द्रिय जन्य सुख या दुःख नहीं होता। और भी आगे गाथा न० २७४ व २७५ में भी यो लिखते हैं।

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि॥
एदेण कारणेणदु सादस्सेवहु णिरतरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि॥

इस तरह से सदा साता वेदनीय का उदय बना रहने से क्षुधा आदि ग्यारह परीषह-जन्य दुःख नहीं हो सकता। इस प्रकार केवली भगवान के कवलाहार व सुखदुखादि अनुभव का पूर्ण विरोध हो जाता है।

मोहनीय का उदय जब तक रहता है तब तक जीव को इच्छा रहती है किन्तु मोहनीय के नाश हो जाने पर इच्छा का नाश हो जाता है और इच्छा का

नाश हो जाने पर कवलाहार नहीं बन सकता जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

उपरोक्त कुल कारणों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि स्त्री को मुक्ति नहीं हो सकती, वस्त्र सहित को मुक्ति नहीं हो सकती, केवली भगवान कवलाहार नहीं करते, इन्द्रिय जनित सुख दुखादि का अनुभव भी उनको नहीं होता। अन्त मे हमारी यह सम्मति है कि जब कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय के नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती व शुभचन्द्राचार्य व और भी कई आचार्य गण ऐसा लिख रहे हैं फिर समन्तभद्र सरीखे आचार्य दिगम्बर आम्नाय के सर्वथा विरुद्ध केवली के दुख लिख दें, ऐसा नहीं बन सकता यह सिर्फ भ्रम है।

—हस्ताक्षर समस्त दि० जैन पञ्चान।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

कौड़ियागञ्ज (अलीगढ़),

स्त्री को जैन धर्मानुसार अपने लिंग छेदन बिना मुक्ति सम्भव नहीं। दिगम्बर जैन धर्म में कहीं भी ऐसा निर्देश नहीं है कि स्त्री अपना स्त्रीभव लेकर मोक्षगामिनी हो सके।

"सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्" अर्थात् हमेशा ही समान धर्म वाले भावो से समान धर्म वाले भावों की अभिवृद्धि होती है।

वस्त्रसहित मुक्ति भी असम्भव है।

स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी 'बारस अणु-वेक्खा' —(बारह अनुप्रेक्षा)— में ८६वा श्लोक इस प्रकार लिखा है: —

प्राकृत—

सावयधम्म चत्ता जदिधम्मे जोहु वट्टये जीवो।
सो ण य वज्जदि मोक्खं धम्मं इदि चितए णिच्च

संस्कृत—

श्रावकधर्मं त्यक्त्वा यतिधर्मे य हि वर्तते जीवः।
स न च वर्जति मोक्षं धर्ममिति चिंतयेत नित्यम् ॥

अर्थात्—श्रावक धर्म को त्याग कर जो मुनिधर्म का आचरण करता है वह मोक्ष नहीं छोड़ता।

मुनि धर्माचरण में नाग्न्य परीषह है। उसे पराभूत करना होता है। तब नग्नता स्वयं प्रगट है। पुनः, 'शरीर ही अपना नहीं है, इससे मेरा किंचिन्मात्र ममत्व नहीं है, यह विनाशी है' भाव जब होता है तब वस्त्र का अभाव तो स्वयं सिद्ध है।

सब प्रकार के परिग्रहो से रहित होकर आकिंचन्य धर्म जब इतनी विशालता को पा गया है तब वस्त्र की स्थिति का होना कब सम्भव है।

सवस्त्र यदि मुक्ति हम मान लेते हैं, तो हमें मानना होगा कि सपरिग्रह भी मुक्ति है। किन्तु यह सिद्धात विरुद्ध है। परिग्रह में बधन है, ममत्व है। और मोहनीय की स्थिति मे हो केवल्य की भी प्राप्ति नहीं, तब मुक्ति होना कहां सम्भव है?

केवली कवलाहार नहीं करते हैं और उन्हें सुख दुःख भी नहीं होता।

घाति और अघाति ८ कर्मों — ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र,

अन्तराय के क्षय करने के बाद ही मोक्ष प्राप्ति होती है।

कैवल्य प्राप्ति घातिया कर्म नाश करने के बाद हुई। कैवल्य प्राप्ति में वेदनीयकर्म का (साता वेदनीय असाता वेदनीय) पराभव हुआ। तब शक्ति रहित असाता वेदनीय केवली को क्षुधादिक वेदना कष्ट नहीं दे सकता। जैसे स्वयम्भूरमण समुद्र के समस्त जल को सरसों का अनन्तवा भाग प्रमाण विष की कणिका विषरूप करने में समर्थ नहीं, उसी प्रकार अनन्त गुण अनुभाग का धारक साता वेदनीय के उदय सहित केवली भगवान को असाता वेदनीयकर्म क्षुधादिक वेदना को उत्पन्न नहीं कर सकता है।

शङ्का होती है कि कवलाहार बिना केवली के औदारिक शरीर की स्थिति कैसे है? तो ठीक ऐसे जानना कि जैसे देवो की स्थिति कवलाहार बिना है (सिर्फ उनके मानसिक आहार है) वैसे ही केवलियो का भी निरन्तर शुभ सूक्ष्म शरीर के बलाधान को ऐसा नोकर्म पुद्गलो का ग्रहण रूप आहार ही है। वह साधारण मनुष्यो जैसा आहारादिक की अपेक्षा नहीं रखते।

अन्य मनुष्यो की भांति केवलीजिन को वेदनीय के उदय के कारण कवलाहार होना मानों, तो सयोगी के द्रव्य मन के सद्भाव से मन का विकल्प भी मानों, और द्रव्येन्द्रिय की विद्यमानता के कारण इंद्रियजन्य ज्ञान भी मानो। जब शुक्ललेश्या विद्यमान है तब कषाय भी केवली के लिए मानने का प्रश्न आया। जिस मुनि के कायबल ऋद्धि है उसको ऐसा सामर्थ्य है कि वह त्रैलोक्य को चलायमान कर सकता है, तो केवलियों के सामर्थ्य की कौन कहे। अतः केवली में कषायादिक सद्भाव मानना बिल्कुल गलत है।

भोजन की इच्छा को बुभुक्षा कहते हैं। किन्तु केवली भगवान के मोहनीयकर्म के अभाव में भोजन की इच्छा कहां रही। यदि मोहनीय कर्म के अभाव में भी इच्छा मानो तो फिर स्त्री आदि भोगने का भी सद्भाव आया, तब वीतरागता कहां रही।

अतः सिद्ध होता है कि ध्यानाग्नि द्वारा दग्ध किये हैं घाति कर्म जिनने ऐसे, अनन्त दर्शन सुख वीर्य प्रगट हुआ है जिनमें ऐसे केवली अन्तराय कर्म के अत्यन्त अभाव में निरन्तर समय समय शुभसूक्ष्म पुद्गलों का सचय होनेसे औदारिक शरीर को बिना कवलाहार के ही धारण करते हैं और सुख दुःख भी अनुभव नहीं करते हैं, तथा अन्य शेष अघाति कर्मो को भी खपाकर निर्वाणपद प्राप्त करते हैं।

श्री हीरालाल जी को यह मार्ग अग्राह्य है। उन्हें चाहिये कि वास्तविक तथ्य को ग्रहण करें अपने भ्रम को निवारण करें। और स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य का धारा प्रवाह कथन जो मूलतः चला आ रहा है, उसे स्वीकार कर उसको ज्यों का त्यो प्रचारित करें।

—ह० समन्त पंचान, कौडियागंज।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

रानापुर ।

प्रोफेसर हीरालाल जी ने स्त्रीमुक्ति सवस्त्रमुक्ति केवली कवलाहार की मान्यता पर अपने युक्ति प्रमाणों द्वारा दि० जैनमत से भगवत कुन्दकुन्द जैसे सर्वोच्च आचार्य की विद्वत्ता पर आवरण डालकर मूल आम्नाय तथा आर्ष विरुद्ध भ्रांतिमूलक विचार प्रकट कर समस्त दि० जैन समाज में ऊहापोह उत्पन्न किया है हमारी समझ में ऐसी भ्रमोत्पादक विचार धारायें जैनधर्म की रक्षक और श्रेयस्कर नहीं होंगी प्रत्युत-विघ तक सिद्ध होंगी और समाज में विद्वेषाग्नि प्रज्वलित करेंगी निश्चय ही किसी भी प्रकार के भ्रमोत्पादक विचारों से जैनधर्म का सामंजस्य कदापि नहीं हो सकता क्या स्वामी श्री वीरसेन ने षट्खण्डागम का मतलब नहीं समझा ? जब आपने स्वय कर्म सिद्धांत की मूल उत्पत्तिभूत षट्खण्डागम की रचना वीर नि० स० ६१४ में स्वामी भूतबलि पुष्पदंत द्वारा मूल सूत्र कर्म प्राभृत परिकर्म के आधार पर मानी है और उसी परिकर्म के रचयिता श्री कुन्दकुन्द को माना है। लेकिन आज दैवदुर्विपाक से परिकर्म सूत्र हमारे समक्ष उपलब्ध नहीं है परन्तु उसकी सिद्धि षटखण्डागम के प्रथम भाग सत्प्ररूपणाधिकार की भूमिका से स्पष्ट है और जिसका अनेक स्थानों पर शङ्का समाधान द्वारा उल्लेख उपर्युक्त ग्रन्थ में किया है।

इसी भूमिका के पेज ४२ में धवला टीका के रचयिता वीरसेन स्वामी द्वारा ई० सन् ८१६ में पूर्ण होना मानते हैं। जिसको आपने ही सिद्ध किया है कि स्वामी कुन्दकुन्दने षटखण्डागम के ३ खण्डों के ऊपर परिकर्म नामक ग्रन्थ की रचना की थी इससे यह निर्विवाद सिद्ध है कि कुन्दकुन्द भूतबली पुष्पदन्त तीनो समकालीन थे और उनमें कोई मतभेद नहीं था।

सम्भवत. परिकर्म सूत्र में आचार्य श्री ने इन विवाद ग्रस्त विषयों का विवेचन किया हो क्योंकि उस समय द्वादशाङ्ग की परिपाटी धारा प्रवाहिरूपेण प्रचलित थी और स्वामी कुन्दकुन्द भी एक अङ्ग से कुछ कम के अभ्यासी थे उन्होने हम संसारी भव्य जीवों के कल्याणार्थ उक्त सूत्र की रचना की। यहा तक कि कुन्दकुन्द ने विदेह क्षेत्र में जाकर दिव्य-ध्वनि द्वारा वस्तु स्वरूप का अनुभव किया जो हमारे सामने मौजूद है ऐसे आचार्य भला वस्तु स्वरूप को अयथार्थ समझकर विपरीत प्ररूपण करें यह कैसे सम्भव हो सकता है क्योंकि तदाम्नायी ग्रन्थों में स्त्री मुक्ति आदि विषयों का परिहार अवश्य पाया जाता है अतएव उनके ज्ञान में दोषारोपण करना उचित नहीं।

देखिये प्रोफेसर जी ! षटखण्डागम प्रथम भाग सूत्र ९३।

"सम्मा मिच्छाइट्ठि असजद सम्माइट्ठि सजदा-सजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ।

इसकी व्याख्या में शङ्का का समाधान किया है।
ननु द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येत इतिचेन्न सवासस्त्वात अप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः इति वचनात्।

अर्थात वस्त्र सहित होने से द्रव्य स्त्री को मुक्ति

नहीं होती सवस्त्र होनेसे उनके संयतासंयत गुणस्थान होता है संयम (महाव्रत) की उत्पत्ति नहीं हो सकती और बिना संयम के चारित्र की पूर्णता नहीं होती पूर्ण संयम नहीं होने से क्षिया श्रेणी का आरोहण नहीं कर सकती और तब शुक्लध्यान की तथात्मोपलब्धि नहीं हो पाती। जैसा पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि मार्ग प्ररूपणा में कहा है 'द्रव्यवेद—स्त्रीणा तासां चायिकासम्भवात्' और भावसंयम भी नहीं होता क्योंकि भावसंयम का अविनाभावी वस्त्र का ग्रहण करना नहीं हो सकता तथा मनुष्य के समान मानुषी के मोक्ष साधक उत्तम संहनन भी नहीं होता अतएव स्त्रीमुक्ति किस प्रकार युक्तिसङ्गत हो सकती है ?

—केवली कवलाहार—

बिना कारण कार्य की उत्पत्ति नहीं होती षट्खडागम भाग १ पृष्ठ ४३ की व्याख्या में लिखा है:-

"नहि मोहमन्तरेण शेषकर्माणि स्वकार्यनिष्पत्तौ व्यापृतान्युपलभ्यन्ते येन तेषां स्वातन्त्र्य जायेत" जब समस्त कर्मों का व्यापार मोहकर्म के आधीन है और मोहरूपी अरि के नष्ट हो जाने पर जन्म मरण की परम्परा रूप संसार के उत्पादन की सामर्थ्य शेष कर्मों में नहीं रहने से उन अवशिष्ट कर्मों का सत्व असत्व के समान ही रह जाता है। तब मोह कर्म के अभाव में उसका अविनाभावी वेदनीय कर्म कृत क्षुधादि वेदना का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता तथा केवली भगवान के लाभांतराय के नाश से कवलाहार का अभाव होकर उनमें उसका प्रतिपक्षी गुण (अतिशय) परम शुभ पुद्गल परमाणुओं का सम्बन्ध हो जाता है जिसको परमौदारिक नाम से प्रतिपादन करते हैं सातिशय प्रकट हो जाता है जैसे राजवार्तिक कार अकलङ्कदेव ने कहा है— 'अशेष लाभांतरायस्य निरासात परमशुभपुद्गलादान चायिकलाभः।-तस्मात्-औदारिक — शरीरस्य किञ्चिन्न्यूनपूर्वकोटिवर्ष— स्थितिः कवलाहारमन्तरेण सम्भवति' तथा 'एकादश जिने इति वचनात्' 'भगवति जिने घातिकर्मोदय—सहायाभावात् तत्सामर्थ्य—विरहात्' घातिकर्मों का क्षय होने से वेदनीय कर्मोदय जनित क्षुधादि वेदना का अभाव स्वयमेव सिद्ध हो जाता है।

तथा सवस्त्र मुक्तित्व की कल्पना तो दिगम्बर आम्नाय की सर्वथा घातक है क्योंकि वस्त्र सहित यानी परिग्रह सहित मोक्ष मानने में बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह का सद्भाव प्राप्त होता है जो आत्मा में विकार परिणति एवं राग द्वेष के उत्पादक हैं। भगवती आराधना में 'विकारो वस्त्रवेष्टितः' यानी वस्त्रधारण से विकारभाव राग द्वेष मोह उत्पन्न होते हैं। बाह्य परिग्रह के त्याग बिना आभ्यतर आत्मा कभी उज्वल नहीं हो सकती। उमास्वामी ने कहा है—

'बाह्याभ्यंतरोपध्योः' अर्थात मोक्ष मार्ग में दोनों ही प्रकार के परिग्रह के त्याग का विधान है और भगवती आराधना श्लोक २३

'रागो लोभो मोहो सण्णाओगार वाणिय उदिण्णा तो, तइया चेत्तु जे गथे बुद्धीणरो कुणई। देशामासिय सुत्त आचेलकंति तखु ठिदि कप्पे, लुत्तोत्थ आदि शहो जहि ताल पलम्ब सुत्तम्मि ॥२३॥

अर्थात् आचाराङ्ग के स्थिति कल्प अधिकार में आचेलक्य पद है सो वह भी देशामर्षिक पद है मतलब यह है कि आचार्य पूर्ण ज्ञानी थे उन्होंने वस्तु स्वरूप को अच्छी तरह समझकर भव्य प्राणियों के हितार्थ ग्रन्थ रचना कर आर्ष वाक्यों का प्रतिपादन किया, वह सत्य है।

ह० समस्त पंचान राणापुर।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

घोद।

सादर जुहार!

अत्र कुशलम् तत्रास्तु।

१–स्त्रीवेदी (द्रव्य स्त्रीवेदी) मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता भाव स्त्रीवेदी अवश्य मुक्ति पा सकता है यह भी नवम गुणस्थान से ऊंचा नहीं जा सकता। विशेष कर्म सम्पादन शक्ति तथा विशेष कर्म क्षय की शक्ति स्त्री में नहीं है क्योंकि वह सप्तम नरक जाने के योग्य परिणाम भी नहीं बना सकती। स्त्री के सम्पूर्ण चारित्र प्राप्ति की योग्यता भी नहीं है क्योंकि उसके पंचम गुणस्थान ही रहता है। स्त्री का सर्व परिग्रह से मुक्त होना निर्विवाद असिद्ध है। बिना सर्व परिग्रह से छुटकारा पाये सम्पूर्ण चारित्र नहीं हो सकता तथा गुण श्रेणी भी नहीं चढ़ सकती और बिना गुण श्रेणी (क्षपक) चढ़े शुक्लध्यान भी नहीं बन सकता और बिना शुक्लध्यान के कोई भी जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता तब स्त्री कैसे प्राप्ति कर सकती है अतः सिद्ध होता है कि स्त्री को मुक्ति कहना सर्वथा मिथ्या है।

२–परिग्रही को मुक्ति बतलाना वैसे ही असत्य है जैसा कि आकाश के फूल बतलाना है। जब परिग्रही सदा काल ही अपने परिग्रह से चिन्तातुर तथा आकुलित देखा जाता है तथा विचारा भी जाता है तो फिर उसे निराकुल मोक्ष बतलाना कैसे सम्भव हो सकता है। जैन धर्म में तो एक कोपीन मात्र धारक को भी दुखित बतलाया है। और उसकी श्रावक संज्ञा कही है अर्थात् अणुव्रती ही बतलाया है तो वह मुक्ति योग्य महाव्रती हुये बिना कैसे मोक्ष पा सकता है। जब अणुव्रती के उत्कृष्ट धर्म ध्यान ही नहीं बन सकता तो फिर कर्म क्षय योग्य शुक्लध्यान तो वह बन ही कैसे सकता है जब उसके कर्म क्षय नहीं तो मुक्ति कैसी। अतः परिग्रह सहित मुक्ति बतलाना निरा भ्रम है।

३–केवली को कवलाहारी कहना किसी भी प्रकार युक्ति सङ्गत नहीं है क्योंकि जब सामान्य जन की तरह केवली भी कवलाहार करेगा तो केवली में ईश्वरपना कहा ठहरा वह तो सामान्य जन सारिखा ही ठहरा। प्राणी आहार तभी करता है जबकि वह क्षुधातुर होता है जब केवली क्षुधातुर हुआ तो उसके अनन्त सुख रूप कहा रहा। केवली के तो अनन्त चतुष्टयों में एक अनन्त सुख का होना भी है यदि केवली आहार करे तो उसके अनन्त सुख का उसी क्षण अभाव होता है, सो हो नहीं सकता। दुख से दुखी केवल मोह से होता है, केवली ने तो मोह का नाश करके ही केवल पदवी पाई है फिर उसके क्षुधा का दुखित होना तथा उसके अभाव करने को कवलाहार करना कैसे सम्भव हो सकता है। बिना इच्छा के आहार भी नहीं कर सकता और उसे पचनादिक के द्वार निर्गलन भी नहीं कर सकता केवली भगवान के तो इच्छा का सर्वथा ही अभाव है फिर कवलाहारपना कैसे बने (तीव्र उदय में ही कवलाहार की प्रवृत्ति होती है) इनके तो अत्यन्त मंद उदय है और जो है वह व्यर्थ है अतः केवली कवलाहार नहीं लेते। यह बात तो ऐसे भी बनती है कि उनको निरन्तराय आहार कैसे हो सकता है उनके ज्ञान में तो

सर्व दोष प्रत्यक्ष दीखते हैं और बिना दोष के आहार सम्पन्न होना सम्भव नहीं फिर दोष पूर्ण आहार को केवली कैसे लें तब साबित हुआ कि केवली कवला-हारी नहीं होते।

केवलियों के सुख (इंद्रिय जनित) दुख होना कैसे बन सकता है। सुख दुख अज्ञानता से, मोह से, इच्छा से, भय से, वियोग से हुआ करते हैं केवली के तो इन सबका ही अभाव हो चुका सर्व वस्तु यथावत भासने लग गई सर्व तरफ से इष्टानिष्ट कल्पना मिट गई तब कैसे सुख दुख हो सकता है सुख दुख तो मिथ्या कल्पना में है सो उनके तो केवलज्ञान मे सब पदार्थ जैसे के तैसे दर्श चुके किसमें कल्पना करें अत उनके सुख दुख बतलाना सर्वथा असत्य है। जिसको कुछ करना हो उसे ही सुख दुख होता है वह तो कृतकृत्य हो चुके, चार घातिया घात चुके तथा मोक्ष के संनिकट हो चुके फिर कैसे सुखी और दुखी हो सकते हैं।

यहां पर सांसारिक सुख से ही प्रयोजन है पार-मार्थिक आत्मजन्य सुख से नहीं है। अत: सिद्ध हुवा कि श्रीमान प्रो० हीरालाल जी सा० का ट्रैक्ट मिथ्या है। उन्हें पण्डित जन समझाकर उनका मिथ्यापन मिटाने की कोशिश करें हमारी समझ में तथा देखने में तथा सुनने में जो आया लिखा है। पण्डित जन और सुधार लें। इतिशुभम्—

द० समस्त पञ्चान घोद।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

सुमनेर।

श्री दिगम्बर पचायत भूलेश्वर बम्बई।

सादर जयजिनेन्द्र बञ्चना.

सेवा में सादर निवेदन है कि प्रोफेसर हीरालाल जी ने जो दिगम्बर जैनधर्म सिद्धात के विपरीत बातें पेश की हैं श्वेताम्बर धर्म की प्रधानता बताते हुये भाषण दिया है वह हमारी पंचायत को मान्य नहीं हैं। कुन्दकुन्द आचार्य ऋषि प्रणीत जो धारा प्रवाह कथन चला आ रहा है वही मान्य है।

द० समस्त पचान सुमनेर।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

हटा, (सागर)

१-स्त्री को मोक्ष कदापि नहीं हो सकती क्योंकि स्त्री के पचम गुणस्थान सिवाय आगे गुणस्थान ही नहीं पहले तीन सहनन वज्रवृषभनाराच, वृषभनाराच नाराचसहनन, कर्मभूमिज स्त्री के नहीं होते तथा अहमिन्द्रलोक नहीं जाती सातवें नरक में गमन नहीं फिर शक्ति के अभाव में स्त्री के मुक्ति कैसे कही जावे? अगर स्त्रियों को मुक्ति होती तो महासती राजुल सीता जी आदि घोर तपश्चरण करने पर

भी मोक्ष क्यों न पहुंची ? तथा च महाव्रती मुनि वस्त्ररहित नग्न निर्ग्रंथ होते हैं, ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक ऐलक और क्षुल्लक होते हैं, वस्त्र रखना पराधीनता और चिन्ता का कारण है अनेक दोषो से सहित है। अतः वस्त्र सहित मोक्ष का मानना अयुक्त है वस्त्र सहित गृहस्थाश्रम ही है। तथा किसी प्रकार की इच्छा का होना मोहनीय कर्म का कार्य है मोह नष्ट हो जानेपर इच्छा का अभाव है फिर मोह रहित भगवान केवली को भोजन करने की इच्छा कैसे उत्पन्न हो ? जहां भोजन की इच्छा हुई तो समस्त संसारी भोग उपभोग वस्तुओं के भोगने की इच्छा होनी चाहिये। आहार के करने से यदि केवली के शक्ति रहती है तो फिर उनके अनन्त बल कैसे रहा ?

श्री आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य जी के वचन सत्य प्रमाण हैं वे अन्यथा नहीं हो सकते।

ह० समस्त पचान हटा।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

पाली।

स्त्री को मुक्ति कदापि नहीं हो सकती है क्योंकि स्त्रियों के वस्त्र का त्याग न होने से पूर्ण रूप से महाव्रत नहीं हो सकते। बिना महाव्रत के मुक्ति नहीं हो सकती है क्योंकि जब तक वस्त्र है तब तक परिग्रह त्याग महाव्रत नहीं है और बिना महाव्रत के साक्षात् मुक्ति नहीं हो सकती है जिसके प्रमाण मे निम्न लिखित श्लोक हैं।

कर्मभूद्रव्यनारीणां नाद्यं संहननत्रयम्।
वस्त्रादानाच्चरित्रं च तासां मुक्ति कथा वृथा ॥१॥

देशव्रतान्वितैस्तासामारोप्यते बुधैस्ततः।
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः ॥२॥

स्त्रीणां निर्वाणसिद्धिः कथमपि न भवेत्सत्यशौर्याद्यभावाद्, मायाशौचप्रपञ्चान्मलभयकलुषास्त्रीचजातेरशक्तेः। साधूनां नत्यभावात्प्रबलचरणताभावतः पुरुषतोन्य — भावाद्धिमांगत्वात्सकलविमलमद्ध्यानहीनत्वतश्च ॥३॥

स्नाने चालयतः कुत कृतजलाद्यारम्भतः संयमो।
व्याकुलचित्तताथ महतामप्यन्यतः प्रार्थनम् ॥
कौपीनेपि हृते परैश्च झटिति क्रोधः समुत्पद्यते।
तन्नित्यं शुचिरागहृत्समवतां वस्त्रं ककुम्मण्डलम् ॥४॥

(संशय वदन विदारण)

भगवान केवली कवलाहार भी नहीं करते हैं क्योंकि केवली भगवान के इच्छा का अभाव है बिना इच्छा के ग्रास उठाना, मुख मे देना, चबाना, निगलना, नहीं बन सकता तथा सर्वज्ञ होने से निरन्तराय आहार नहीं होसकता क्योंकि भगवान के ज्ञान मे तमाम पवित्र व अपवित्र पदार्थ झलकते हैं अत. अपवित्र पदार्थ के देखते जानते हुये निरन्तराय आहार नहीं बन सकता है। इत्यादि अनेक सुयुक्तियों से केवली भगवान के कवलाहार का निराकरण हो जाता है केवली भगवान के कवलाहार नहीं है बल्कि नोकर्म आहार है जिसमे शरीर की स्थिति बनी रहती है। तद्यथा गाथा—

णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो।
उज्जमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो भणिओ।
णोकम्म तित्थयरे कम्म णारेय माणसो अमरे :
कवलाहारो णरपसु उज्जो पक्खीय इगिलेपो ॥

तथा केवली भगवान के क्षुधा-जनित दु.ख भी नहीं है। दु.ख देने वाला वेदनीय कर्म का सद्भाव अवश्य है लेकिन मोहनीय कम की सहायता के बिना वेदनीय कर्म जली जेवरी के समान केवली भगवान को दु.ख देने को शक्ति नहीं रखता है जैसे राजा के मर जाने पर फौज अकेली कुछ नहीं कर सकती वैसे ही मोहनीय कर्म रूपी राजा के नष्ट होने पर वेदनीय कर्म कुछ नहीं कर सकता है।

अतएव प्रोफेसर हीरालाल जी ने जो दिगम्बर जैन धर्म सिद्धात के विपरीत भाषण दिया है व श्वेताम्बर धर्म की प्रधानता बताते हुये कथन किया है। सो उनका भाषण तथा ट्रैक्ट हमारी पचायतको मान्य नहीं है।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य ऋषि प्रणीत शुद्ध आम्नायानुसार धर्म सिद्धात का कथन जो धारा प्रवाह चला आ रहा है वही वास्तविक और सत्य है वही हमारी सब पचायत को मान्य है। जिसकी साक्षी स्वरूप हम सब पचायत के हस्ताक्षर निम्नाङ्कित हैं।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य प्रणीत सत्यसिद्धात की जय।

ह० समस्त पचान पाली।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

रतलाम।

आज तारीख १०-९-४४ की रात को श्री रतलाम दिगबर जैन नया मन्दिर जुना तोपखाना रतलाम में दिगबर जैन समाज एकत्रित हुई और पास हुवा कि—

प्रोफेसर हीरालाल जी ने जो लिखा है कि :—
(१) "केवली भगवान के कवल आहार होता है (२) स्त्री को मोक्ष होती है (३) वस्त्र सहित मोक्ष होती है" सो मान्य नहीं है क्योंकि केवली चार अनन्त चतुष्टय सयुक्त होते हैं। १-अनन्तज्ञान २-अनन्तदर्शन ३-अनतसुख ४-अनतवीय। तदनुसार अनतसुखधारक कवली को भूख का दु ख क्यो होवे ? तथा आहार की इच्छा मोहनीय कर्म के उदय से होती है किन्तु मोहनीय कर्म का १२वें गुणस्थान में नाश हो जाता है एव युगपत सर्व वस्तुओं को सर्वज्ञ स्पष्ट देखते हैं फिर उनके निरन्तराय आहार कैसे हो सकता है।

स्त्री को पचम गुणस्थान स आगे गुणस्थान नहीं है तथा वज्रवृषभ नाराच सहनन नहीं है, सम्यकदृष्टि जीव मर कर के स्त्री के पर्याय नहीं पाता और स्त्री छठे नरक से तथा १६ स्वर्ग से आगे नहीं जाती जब कि पुरुष सातवें नरक तक तथा सर्वार्थसिद्धि तक जाता है इससे सिद्ध होता है कि स्त्री पुरुष के बराबर पाप और पुण्य नहीं कर सकती तो वह मोक्ष कैसे जा सकती है स्त्री को क्षायिक सम्यक्त्व नहीं हो सकता श्वेताम्बरो ने भी माना है कि स्त्री के मन पर्ययज्ञान नहीं होता, स्त्री गणधर, आचार्य, उपाध्याय आदि पद भी धारण नहीं कर सकती, शलाका पद, चक्री, नारायण, तीर्थङ्कर आदि पदवी धारण नहीं कर सकती फिर वह केवलज्ञान और मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकती है। साध्वी चौरासी लक्ष पूर्व वर्ष

की दीक्षित,हो तब भी तत्काल के दीक्षित साधु को जन्म भर नमस्कार करती रहेगी क्योंकि नमस्कार चमत्कार को है (धन्य है इस नग्न मुद्रा को) नग्न मुद्रा से मुक्ति मिलती है ऐसी दशा मे स्त्री पर्याय से कदापि मोक्ष नहीं हो सकती।

अन्तरङ्ग व बाह्य परिग्रह के त्याग किये बिना मुक्ति नहीं और वस्त्रत्याग शक्यानुष्ठान है वस्त्र छोडे जा सकते हैं। ऐसी हालत में वस्त्र सहित मोक्ष कैसे हो सकता है। हालाकि शरीर भी बाह्य परिग्रह है किंतु शरीर को छोड़ना अशक्य है मगर वस्त्र छोड़ना आसान है और उसे कायम रखते हुवे पाचों इन्द्रियों से विजय प्राप्त किये बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

ह० समस्त पचान रतलाम।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

खांदू (बांसवाड़ा)

प्रोफेसर साहब हीरालाल द्वारा कथित तर्कों पर विचार।

स्त्रीमुक्ति के सम्बन्ध में प्रोफेसर हीरालाल सा० ने आगम प्रमाण की समीक्षा करते हुये जो तर्क किये हैं वे युक्ति और आगम से विरुद्ध हैं।

श्री मुनि सुव्रतनाथ तीर्थङ्कर के समय मे सीता ने दीक्षित होकर तपस्या के बल से इसी भव मे स्त्री लिङ्ग छेदा और सोलहवेंस्वर्ग मे देव हुई और राजमती भी स्त्री लिङ्ग छेदकर देव हुई बाद मे पुनर्जन्म लेकर पुरुष होकर मोक्ष जावेग ऐसे कई उदाहरण जैन ग्रन्थो में मिलते हैं। पर "स्त्रियाको मुक्ति हुई" ऐसा उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता है।

चूंकि स्त्री द्रव्यवेद को छठा गुणस्थान ही नहीं होता है और न वज्रवृषभ नाराचसहनन होता है यह उत्तम सहनन पुरुषवर्गों को ही होता है इस उत्तम सहनन वाला ही शुक्लध्यान व मोक्ष का पात्र होता है। उमास्वामी आचार्य ने तत्वार्थ सूत्र में कहा है कि— "उत्तमसहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्तात्" यानी उत्तम सहनन वाला ही उत्तम ध्यानी होता है और उत्तम ध्यानी ही मोक्ष का पात्र है अत हीन सहनन वाली स्त्री को मुक्ति मानना आगम के विरुद्ध है।

स्त्रीवेद अशुभ नाम कर्म है जिसे मोक्ष जाने वाले जीव उपर्युक्त उदाहरणो के अनुसार अगले ही भव मे निर्जीर्ण कर देता है।

प्रमेयकमल मार्तण्ड में पेज न० ३३१ मे बताया है कि स्त्री वस्त्रत्याग नहीं कर सकती अत द्रव्य स्त्री को महाव्रत नहीं बन सकते और महाव्रत बिना मोक्ष नहीं होती इससे सिद्ध है कि द्रव्य स्त्री वेदी मोक्ष की अधिकारिणी नहीं हो सकती।

—वस्त्र सहित मुक्ति पर विचार—

यह भी असङ्गत है चूंकि सिर्फ लङ्गोट मात्र रखने वाला उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है। अत साधु मार्ग नग्नत्व लिये हुये ही है चूकि मूलगुणों में वस्त्र त्याग व पंच महाव्रत मे परिग्रह त्याग महाव्रत बतलाया गया है यथाजात लिङ्ग बिना साधु पद नहीं

और साधु बिना मुक्ति नहीं। श्री भरत चक्रवर्ती को वस्त्र त्याग पूर्वक दीक्षित होते ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी उसके पहले परिणामो की विशुद्धता अवश्य थी किन्तु बिना यथाजात लिंग के केवलज्ञान व मुक्ति होना असम्भव होने के कारण केवलोत्पत्ति गृहस्थावस्था में नहीं हुई।

कहा है कि—

फास तनिक सी तन मे साले।
चाह लङ्गोटी की दुख भाले॥

भगवान महावीर ने दिव्य ध्वनि मे १० धर्म उत्तम क्षमादि बताये है उसमे भी आकिंचन (परिग्रह का सर्वथा त्याग) बतलाया गया है।

भगवती आराधना में शिवकोटि आचार्य ने मुनि का तिल तुष मात्र परिग्रह रखना निगोद का पात्र बनाया है। इससे सिद्ध है कि वस्त्र सहित मुक्ति नहीं हो सकती।

एक बात यह है कि तीर्थङ्कर भगवान को जन्म कल्याण के समय पाण्डुक शिला पर अभिषेक कराकर इन्द्र वस्त्राभूषणो से भूषित करता है मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा से वही तीर्थङ्कर तप साधनार्थ बन को प्रस्थान करते हैं उस समय तमाम वस्त्राभूषणो का त्याग कर आत्म कल्याण करने मे सलग्न हो जाते हैं। तीर्थङ्करो को असाधारण पुण्योदय से प्राप्त हुये देवो के वस्त्रो का त्याग कर शीतोष्ण की बाधाये सहन करने की क्या आवश्यकता थी क्योंकि आप और हम अल्पज्ञानी हैं परन्तु तीर्थङ्कर महाराज तो मति, श्रुति, अवधिज्ञानी थे इससे निर्विवाद सिद्ध है कि वस्त्र सहित हरगिज मुक्ति नहीं होती।

प्राचीन आर्ष प्राकृत गाथायें इस प्रकार है—

जस्स परिग्गहगहणं अप्प बहुयं च हवइ लिङ्गस्स।
सो गहियो जीववयेण परिग्गहरहिओ णिरायारो॥
पंच महव्वय जुत्तोतिहि गुत्तिहि जोसु सजुदो होई।
निग्गंथ मोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य॥
णवि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासण जइवि होदितित्थयरो। णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उमग्गया सव्वे॥

केवली कवलाहार करते हैं और उन्हें सुख दुख होते हैं यह भी असङ्गत है चूंकि आहार ही ६ प्रकार के हैं जिनमे से मानसिक आहार देव करते हैं कवल आहार सामान्य मनुष्य तिर्यंच करते हैं और नोकर्म आहार केवली भगवान। वे अघातिया कर्म सत्ता में अवशेष रहनेके कारण नोकर्म वर्गणा को ग्रहण करते हैं। प्रथम दो आहार इच्छा पूर्वक होते हैं। केवली के समस्त इच्छाओं का अभाव हो जाता है उनका गमन व दिव्य ध्वनि निरिच्छा से होती है। अतः वे भोजन नहीं कर सकते।

तथा दुख का तो केवली के सर्वथा अभाव ही है क्योंकि अशुभकर्म असाता वेदनीय नि सत्व हो चुका है। और साता वेदनीय का सद्भाव होने पर भी कर्म जनित सुख का भी अनुभव नहीं करना पड़ता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रचारित मार्ग ही सत्यार्थ है यही वास्तविक वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करने वाला है। ऐसे विद्वानो को ऐसी धर्म विरुद्ध शङ्कायें उठाकर भोली समाज को भ्रम में डालना उचित नहीं क्योंकि आपका व हमारा ज्ञान सिर्फ पुस्तकज्ञान व मन्दज्ञान है। हम कट्टर दिगम्बर जैन धर्मानुयायी होकर विपरीत शङ्कायें उठाकर धर्म पर आघात पहुचावे तो अन्य लोगों का क्या कहना।

ह० समस्त पचान खादू, बासवाड़ा।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

रीड़।

प्रोफेसर हीरालाल जी ने तीन बातों पर (यानी स्त्रीमुक्ति, केवली कवलाहार और सवस्त्र साधुचर्या) भाषण देकर एक लेख निकाला है। वह बिल्कुल निर्मूल है क्योंकि जितने भी शास्त्रों का आज तक हमने स्वाध्याय किया उनमें इन तीनो बातों के खंडन के सिवाय मण्डन कहीं पर भी न देखा और न सुना इससे यह बात मालूम होती है कि प्रोफेसर सा० ने ग्रन्थों की प्रकाशकी ही की है स्वाध्याय व मनन नहीं किया है। अगर करते तो ऐसी बातो पर शङ्का न उठाते इन बातों का समाधान आगे कई बार समाज में आया है शायद वह बाते प्रोफेसर जी भूल गये होंगे। प्रोफेसर जी यदि श्वेताम्बर समाज के मान्य ग्रन्थ देखें जिनमें स्त्रियो को अर्हंत, चक्री, गणधर, नारायण, मनपर्ययज्ञान, चौदह पूर्वों का ज्ञान आदि होने का निषेध किया है। 'पाणिपात्र नग्न जिनकल्पी साधु को सर्वोत्तम साधु माना है, वस्त्र रखने में चिन्ता, याचना, धोने आदि के मानसिक क्लेश बतलाये हैं, मोहनीय कर्म के अभाव में शेष कर्म निःसत्व हो जाते हैं।' आदि स्पष्ट विधान पाया जाता है। प्रोफेसर जी विचार करें कि क्या इन विधानो से स्त्रीमुक्ति, सवस्त्र साधु चर्या और केवली कवलाहार का डंके की चोट पर खण्डन नहीं होता? जो बात आपको श्वेताम्बरी विद्वानोको समझानी थी सो तो समझाई नहीं और जो समझे हुये हैं उन्हें बालो से तेल निकालने जैसी बात समझाने आये हैं।

द० समस्त पचान रीड।

—श्री दिगम्बर जैन पंचायत—

नादगांव।

* हमारी सम्मति *

दिगम्बर जैन आगम मे कहीं भी स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति तथा केवली के कवलाहारादिक का विधान नहीं है। यह बात दिगम्बर जैन धर्मानुयायी प्रत्येक व्यक्ति जानता है किन्तु प्रोफे० हीरालाल जी ने इन तीनो ही बातोंका दिगम्बर जैन धर्मानुकूल बतलाया है। दूसरा कोई अन्य धर्मी इस बातको कहे तो क्षम्य हो सकता है, किन्तु मुख्यतया धवलादि सिद्धात ग्रन्थो के प्रकाशन का कार्य जिनके हाथ मे दिया गया है ऐसे व्यक्ति का शास्त्र विरुद्ध इस प्रकार कथन करना दिगम्बर जैन आगम का घोर अवर्णवाद एव धार्मिक जैन समाज के श्रद्धान पर कुठाराघात करने वाला है। अतएव यह पचायत इसका घोर विरोध करती है, और प्रस्ताव करती है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्रों को अमान्य बतलाने वाले ऐसे व्यक्ति के कथन का तीव्र विरोध किया जाय।

निवेदक—
श्री खण्डेलवाल दि० जैन पचायत,
नादगाव।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

नगीना, माड़िखेड़ा ।

प्रोफेसर हीरालाल जी की तीनों बातें असत्य हैं ।

(१) स्त्री सर्व परिग्रह छोड़कर नग्नरूपमें तप नहीं कर सकती, न उसके पहला संहनन होता है । अतः मुक्त होने योग्य न उसके यथाख्यात चारित्र हो सकता है और न शुक्लध्यान । अत: स्त्री मुक्ति उसी भव से नहीं पा सकती ।

(२) वस्त्र अन्य पदार्थों के समान शरीर को सुख-दायक परिग्रह है । इसके मांगने रखने, धोने सुखाने, फटने, ओढ़ने, सीने आदि से चिंता, व्याकुलता, हर्ष, दुःख आदि क्षोभ होता है । अतः उसको पूर्णतया त्याग किये बिना परिग्रह त्याग महाव्रत नहीं हो सकता अतः साधु वस्त्र रहित नग्न होना चाहिये ।

(३) केवलज्ञानी के असाता वेदनीय की उदीरणा नहीं अतः उन्हें भूख नहीं लग सकती, न उनके मोहनीय कर्म है जिससे उन्हें भोजन करने की इच्छा हो । उनके अनन्तबल तथा अनन्तलाभ है इसलिये वे भोजन न करते हुये भी निर्बल नहीं हो सकते । उनके अनन्त सुख प्रगट हो चुका है अतः उन्हें भूख प्यास आदि की रञ्चमात्र भी बाधा नहीं हो सकती फिर वे भोजन क्यों करें ?

प्रोफेसर हीरालाल जी ने आप्तमीमांसा के श्लोक का अर्थ उल्टा समझा है ।

द० समस्त पञ्चान नगीना ।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

बूढ़िया ।

स्त्री में लज्जा नामा परीषह जीतने की शक्ति नहीं और न उसके पहिले तीन संहनन होते हैं इसलिये उसके पांचवां ही गुणस्थान है । श्रेणी चढ़ने के भाव या सातवां गुणस्थान नहीं है और क्षपक श्रेणी में नहीं चढ़ती, न चार घातियाकर्मों का और न अघातिया कर्मों का नाश कर सकती है फिर स्त्री को कैसे मोक्ष हो सकती है ?

परिग्रह धारण किये शुक्लध्यान नहीं होता धर्म ध्यान होता है इस कारण से ही स्त्री स्वर्ग को जाती है अहमिन्द्रों में भी नहीं जन्म लेती ।

कहा है कि जरा सी फांस लगने से शरीर व्याकुल रहता है उसी तरह एक लंगोटी की चाह दुख देने वाली है । स्त्री परिग्रह सहित है इसलिये स्त्री के मोक्ष नहीं होती है ।

आसापिशाच गहिय जीवो पावहि दारुणं दुख ।

अर्थः – जिस जीव को आशा रूपी पिशाच ने ग्रहण कर लिया है वह जीव दारुण दुख को भोगता है इसलिये ही जब स्त्री के वस्त्र की चाहना है साड़ी कपड़ा धारण किये हुये हैं तो इसी कारण उसको मोक्ष का होना असम्भव है परिग्रह-धारी को किसी तरह मोक्ष नहीं ।

निरारम्भोऽपरिग्रहः ।

आरम्भ रहित वा परिग्रह रहित हो वही साधु वन्दनीक है और मोक्ष में जाने वाला है। केवली भगवान के अनन्त सुख व अनन्त वीर्य होता है इस लिये भगवान कवलाहार नहीं लेते। कवलाहार की इच्छा मोहनीय कर्म नष्ट होने से नहीं होती अतएव कवलाहार नहीं लेते। भगवान केवली हैं शुद्ध अथवा अशुद्ध सब ही पदार्थों को प्रत्यक्ष देखते हैं तो अशन पान कवलाहार अन्तराय सहित भोजन कैसे करें। जब श्रावक मुनि भी मांसादिक, जीवों का कलेवर देख भोजन का त्याग कर देते हैं फिर केवली भगवान अन्तराय के समस्त कारणों को स्पष्ट देखते हुये किस तरह भोजन कर सकते हैं? जब भोजन के आधीन शरीर की स्थिति रही तो अनन्त चतुष्टय न रहा अनन्त सुख व अनन्त वीर्य न रहने से अरहत भगवान कैसे हों।

आप यदि यह कहें कि असाता वेदनीय कर्म उनके मौजूद है इसलिये भोजन करते हैं। सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि पूर्व बद्ध असाता वेदनीय का अनुभाग असख्यात बार अनन्त गुणा रस घट कर अतिमंद रह जाता है और नवीन साता का बन्ध होता है, असाता का नहीं होता। केवली भगवान के साता कर्म बंधता है सो भी एक समय की स्थितिरूप बंधता है सो उदय रूप ही होता है अतः असाता का उदय भी सातारूप परिणत हो जाता है। इस तरह अमृत के समुद्र में एक विष की बूंद जैसी असाता समर्थ नहीं। अतएव भगवान को भोजन की इच्छा तथा क्षुधा की वेदना नहीं होती और भगवान सांसारिक सुख दुखादि से रहित रहते हैं।

द० समस्त पचान बूढ़िया।

—श्री दिगम्बर जैन पञ्चायत—

मेंडू, (अलीगढ़)।

प्रोफेसर हीरालाल जी के सिद्धांत गलत हैं—

१-स्त्रियोंके पहला सहनन न होने के कारण जब १६वें स्वर्ग से ऊपर न जाने योग्य ध्यान और तप नहीं तब मोक्ष किस प्रकार हो सकती है। वह परिग्रह का पूर्ण त्याग नहीं कर सकती इसलिये उसके सकल सयम नहीं होता।

२- सिर्फ एक लङ्गोटी पहनने वाला भी ऐलक नामका ग्यारहवीं प्रतिमाधारक श्रावक होता है, कपड़े मांगने, पसीना लगने, मैला होने, जू पड़ने, धोने, सुखाने, खोने, फटने, सीने, चुराये जाने आदि में मनुष्य के परिणामों में दीनता, ग्लानि, हिंसा, असयम, क्षोभ आदि भाव होते हैं। ऐसे व्यक्ति के न महाव्रत हो सकते हैं और न निश्चलध्यान। इसलिये साधु नग्न दिगम्बर ही हो सकता है।

३-केवलज्ञानी कृतकृत्य, अनन्तसुखी होते हैं उन को कोई इच्छा और कोई रचमात्र दुख नहीं होता है। वेदनीयकर्म जली हुई रस्सी की तरह हो जाता है। पहले असाता वेदनीय का अनुभाग क्षीण हो जाता है वह भी सातारूप में होकर उदय आता है इसलिये केवली भगवान को भूख तथा वेदना नहीं होती।

द० प्रसादीलाल रि० स्टेशनमास्टर आदि पंचान।

* शेषपंचायतों की नामावली *

—पिछले लिखित लेखों के सिवाय निम्नलिखित लगभग ५५० पञ्चायतों ने—
प्रोफे० हीरालाल जी के ट्रैक्ट के विरुद्ध अपनी सम्मतियां
पत्र द्वारा भेजी है।

खामखाम मथुरा बनारस अवागढ़ ईडर इलाहाबाद जोधपुर जामनेर बेंगलौर अजमेरी रामपुर मकराना शाहगा लखनौ पचेवर पञ्चार देहरादून धनौरा जसवतनगर अमरौली अङ्कलेश्वर रामपुर सिकोहाबाद हिसार महरौनी येनापुर कासगञ्ज कटनी खुरई गढ़ी रामाजी गुड़गावा सारङ्गपुर मुगेर बीना भिण्ड आलन्द कानपुर औरङ्गाबाद उज्जैन जगाधरी जाखलौन बज्ररङ्गगढ़ भरतपुर रामनलाई मदनगंज शाहपुर ललीपुर प्रतापगढ पनागर फरयाबाद नानेपूते गलतरा रतलाम रत्नगढ़ रामगढ़ शोपुर हासन मागरोल येवलमहल कायमगज ऐरगढ़ खुरजा गुना गुलबर्गा गादेगाव हुबली मूडबद्री कैराना सहारनपुर कामा कोसी खतौली छिदवाड़ा छपरा बड़याल भावनगर राजपुर मन्सूरी शाहबाद लातूर पपौरा परनापुर नागौर पाली ओरछा नगीना रामपुर रामनगर धासी हिम्मतपुर मानवस करहल सारङ्गा खाचरोद समसाबाद सारधना सरवाड़ हैदराबाद जैनबद्री अजयगढ़ खतरौली कुड़वाड़ उडेसर उगाव जौनपुर जावद बड़वाना भीलवाड़ा राजमहल मऊ की छावनी शाला लालगढ़ परभिनी पलवल फतेहपुर कोपरगाव गिरनार धुलया राजपुर राजनादगाव सतना छिन्नघाट मालेगाव केकड़ी काशीपुर मलावा रावलपिण्डी खामली मिरजापुर इटा अकोला आरा गोरखपुर चापानेर चावली चिरौली आलना बड़नगर भुसावल राजलू मलकापुर सुजानगढ़ लाहौर पाचवा पानीपत बिजारा कोटा अमरवासी गोविंदगढ़ राजाखेड़ा रानीपुर सतारा हुगली मालथौन करौली कुचो खादू सहपऊ रिढ़ साहपुर मिरज हरदा जमालपुर जलेसर जलगांव जटौआ चोकू चन्देरी चन्दोसी लारखी बड़ोत भोपाल राजाबास मुहम्मदाबाद शेरगढ लुहारी पटना पाटन थांदला कुम्भोज गङ्गापुर अङ्कली रायपुर रायचूर सनवाद हुशङ्गाबाद सीढा कलकत्ता कून खातेगाव सागानेर सागली सांपला मुक्तसर हिण्डौन बसाना टीकमगढ़ रीमा मुलताई सिकन्दरपुर रूपाड़ी मैनसर बैनूर फरीदाबाद कोडयागज मैनपुरी देवगढ़ देवबन्द बरेली बनेडिया पेंडापुर सुलतानपुर नांदेर बड़ागाव बारामती सआदतपुर मन्दारगिर मोमनाबाद सिहोर छावनी वाशिम बीकानेर विजयगढ विजयपुर बिजौल्या उदयपुर बुलन्दशहर गाजियाबाद जेठाना फतेपुर (सीकर) डिग्गी रूपा सासनी हुकेरी रोसनाबाद मोहबतपुर बैतूल फाजलका किसनगढ़ महेकल्ला दौलतपुर नरसिंघगढ बरहन पाली मुक्ताई

हस्तिनापुर नामा बाड़ी हिम्मतपुर मन्दसौर मेहरू सिवनी सुनपत विनौली बीरपुर विरनाल जामनेर जबलपुर जावद जखौरा जयपर चाकरोद छतरपुर जमरासर मुजफ्फरनगर रैनी सोनी हुथरी भोज वैजाई फफौंद फिरोजपुर केशली दहीगाव धामपुर नसीराबाद बलदेवगढ पालम सिकन्दरा मोजमाबाद नाराट बादीकुई सुल्तानपुर भिडाना मेलाखेड़ा सिरौंज साढोदिया विलहरा चित्तौरगढ़ छतरपुर चिरगाव सागर सोलापुर साभरलेक सारङ्गपुर सुजानगढ घाटौल जबलपुर मेंडू रैन जहेर मुरार विलासपुर फलौदी विलसी फुलेरा करावरा दुमदुमा धारवाड नयावास वृन्दावन पिपरई मुबः सिलवानी नारायनगढ बादशाहपुर हिम्मतगढ भिलडी मोड़ी सिरसागंज शाली सीकर सावलौंदा शेड़वाल भामी भावुआ फिरोजाबाद राजमल राजा का ताल रीवा सूरत वानथा रैपुरा मुर्शिदाबाद मैनपुर बहराम घाट फलटन बांसवाड़ा बीना कंकरवाहा दुधनी नजीबाबाद बहादरपुर बहराइच पुलगाव सिलोदा बेवपुर बागपत बावनगजा सुलतानगञ्ज भादवा मोहबतपुर सालिगराम शिव राजमहेल रानापुर रूपाहडी रामगढ़ रामपुर राढौली रिवाडी गिरीठी गनेसपुर सिकन्द्राबाद रानौली मुरारिया मुरतिजापुर बोरसद झालरापाटन फरुख नगर बागपत बड़ौदा कारंजा देवरी नजफगढ वरधा बडनेरा पाचोरा सोजना बरेछा वाजनी वामोरी सनारा मूहगाव मोहमदी सनरामपुर ग्वालियर गौनरेका गुना गोदेगाव पूना पनागर चिरहरूआ प्रीठ परतापगढ़ परतापुर पसहरेहा पासोला परतापुर परसौन पांचना वरवा मेरठ मैनपुरी मोरेना भीलोड़ा सरधना सहादरा सीतापुर हजारीबाग सिकन्द्रानैपुर लोहारदा आगरा ओनरी औरङ्गाबाद निमोला धरयाबाद अजना तालबरमा तलवाड़ा ठाकरड़ा तिस्सा वेलगाव मडा मङ्गलपात्रास मोड़निव भैंरूपुरा मरसावा महडोर सीलौर हीरापुर सुजानगढ लछमनगढ ओरछा ईमरी नरसिङ्गपुर निमोडा देवगढ मुजफ्फरनगर चूरू करवर कोट कुचामन बडनेरा मऊछोटी मालेगाव मुरादाबाद भैंसदेही सारोला सोजना सवाई माधोपुर हुरी ललितपुर इन्दौर ऐनमादपुर अजमेर नरयाली नलखेडा दवेल निवहेड़ा कोटकादा कासीपुर कुरावली कोल्हापुर व्यावर मुलतान डेरागाजीखां मनिहारान भानपुरा मेनला सतगुवा सागवाडा सेवा हाथरस लुडावा अत्रागढ आरन्या अमरमो नरखी निमशिरगाव डूंगरपुर पिपरई कोलारस वीछीपाडा बूंदी बबीना मखा महाराजपुर मोडी भैंसलाना भादुआ मामर शाहपुरास्टेट सुसनेर हापुड लसकर पेटा अलीगंज अम्बाह नयान्य दाहौद टाभी बुढ़िया विसाऊ बबीना वामोरा मवाना मालवा मीडा भूपाल भिवानी सोनागिर सालाथोड़ मुमारी अलीगढ लाडनूं इटावा औवरी अथणी नासिक दिगोडा देनाऊ कोटा मागरोल हाडोव बारा खानपुर महाना माडलया दई अलाद नोगाव पाटनकेशोराय झालावाड़ चचेर हाबनीमडी रामगंज भवानीमंडी साङ्गोद ऊदरगढ कराबाद बुलोय खेड़ा रसूलपुर सीसवाली धीपाबडोद कापरेन।

उपर्युक्त पञ्चायतों को धन्यवाद है।

भवदीय— निरञ्जनलाल जैन, बम्बई।

* परिशिष्ट *

निम्नलिखित तीन लेख प्रमादवश यथास्थान प्रकाशित नहीं हो सके अतः उनको यहां पर प्रकाशित किया जाता है।

श्री १०८ पूज्य मुनिवर
श्री सुमतिसागर जी महाराज,
— का —
❋ अभिमत ❋

स्त्रियों की शारीरिक रचना स्वभावतः ऐसी है कि वह लज्जा परीषह जीत कर परिग्रह का पूर्ण परित्याग करके नग्न नहीं हो सकती। उनमें पुरुष-तुल्य महती शक्ति का अभाव होने से स्त्रियां उग्र कठिन तपश्चर्या नहीं कर सकतीं। उनके अनेक अङ्गोपाङ्ग जीवराशि के उत्पत्ति होने से, मासिकस्राव होने से वस्त्रपरिधान होने से उनके पूर्ण संयम नहीं हो सकता इसी कारण दिगम्बरीय तथा श्वेताम्बरीय कर्म ग्रन्थों में स्वर्गों से ऊपर अहमिन्द्र विमानों में स्त्री जाति के पहुंचने का निषेध है। श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार स्त्री को १४ पूर्वों का भी ज्ञान नहीं होता। फिर उसे केवलज्ञान और मुक्ति किस प्रकार हो सकती है। मोक्ष प्राभृत में इसका स्पष्ट विवेचन है।

यदि साधु वस्त्र परिधान करते भी परिग्रह त्याग महाव्रती हो सकते तो वस्त्रों को १० प्रकार के परिग्रहों में दिगम्बर श्वेताम्बर ग्रन्थों में क्यों लिखा? यदि महाव्रती साधु वस्त्र पहने मुक्त हो जाते तो तीर्थङ्कर दिगम्बर, श्वेताम्बर मान्यतानुसार वस्त्र त्याग कर साधुचर्या क्यों ग्रहण करते? श्वेताम्बर सिद्धान्तानुसार सर्वोत्कृष्ट साधु (जिनकल्पी) नग्न पाणिपात्र ही होते हैं।

तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवलज्ञानी के असाता वेदनीय की उदीरणा नहीं होती बिना उस उदीरणा के

भूख नहीं लग सकती। मोहनीय कर्म का निर्मूल नाश हो जाने से खानपान की अभिलाषा अर्हन भगवान के हो नहीं सकती। अनन्तसौख्य के स्वामी को किसी भी तरह की रंचमात्र वेदना कदापि नहीं हो सकती। फिर वे दुख का अनुभव क्यों करें और बुभुक्षा क्यों उनको व्याकुल करे ?

श्रीमान् सेठ तनसुखलाल जी काला,

मुंबई।

[मन्त्रीः—श्री० गो० दि० जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेना]

स्त्री मुक्ति, सवस्त्र मुक्ति तथा केवलियों के कवलाहार मानना दि० जैन आगम के सर्वथा विरुद्ध है।

धवलादि सिद्धान्त ग्रन्थों के अध्ययन करने के अधिकारी गृहस्थ नहीं हैं यह बात माननीय न्याया लङ्कार श्री० पं० मक्खनलाल जी शास्त्री अपने गत ट्रैक्ट तथा लेखों द्वारा अच्छी तरह प्रगट कर चुके हैं। कई प्रमाण एवं शास्त्रीय आधार देकर उन्हों ने इस बात की पुष्टि की है। किन्तु उक्त ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये धनिक दातारों ने सहायता दी इसलिये उसका प्रकाशन कार्य शुरू हो गया और उसके कितने ही खण्ड अनुवादित होकर निकल चुके, और सभी को उसका मिलना सुलभ हो गया। एकबार ग्रन्थ मुद्रित हुआ कि फिर उसका प्रचार रुक नहीं सकता। तदनुसार गृहस्थों को इसके स्वाध्याय आदि का अधिकार नहीं होने पर भी उनको इसके लिये मना करना अशक्य हो गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि धवलादि ग्रन्थों के प्रकाशन एवं अनुवादादिक का कार्य जिनके हाथ में दिया गया है वे संस्कृत तथा प्राकृत भाषा के परोत्तीर्ण विद्वान हैं, किन्तु 'ग्रन्थों का अनुवाद करना' यह बात जुदी है, और 'परम्परा शास्त्रानुसार उसका लगा कर अविरोध रूप से समझने की बुद्धि होना' यह बात जुदी है। जैनागम अगाध समुद्र है उसको प्रमाण नय विवक्षा एवं अपेक्षा भेद से समझ कर अनुभव प्राप्त होना यह बात केवल संस्कृत साहित्यके अनुवाद मात्र में प्रवीणतासे साध्य नहीं। इसके लिये पूर्ण अनुभव की जरूरत है और वह बिना वीतराग महर्षियों के चरण सान्निध्य, अथवा अनुभवी विद्वानों के निकट रह कर पठन पाठन किये बिना प्राप्त हो नहीं सकता।

यही कारण है कि आज बड़े २ विद्वान जो अपने को बड़े भारी इतिहासज्ञ समझते हैं उनकी बुद्धि शास्त्र का अर्थ पूर्व परम्परा आगमानुसार नहीं लगाकर अपनी स्वतन्त्र समझ के अनुसार लगाने का ही जाता है, और इसी लिये तत्व का यथार्थ परिज्ञान और उपयोग से वे बहुत दूर रहते हैं।

यही कारण है कि आज प्रोफेसर हीरालाल जी सरीखे संस्कृत प्राकृत भाषा के जानकार आगम वाक्यों का विपरीत अर्थ कर दिग० जैनधर्म के मूल सिद्धांत को ही विपरीत बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं।

इसी प्रकार पहिले बाबू अर्जुनलाल जी सेठी थे, जिन्हों ने गोम्मटसारादि ग्रन्थों को पढ़कर 'दि० जैन आगम के अनुसार स्त्रीमुक्ति इत्यादि विचारों को ट्रैक्ट रूप में लिख मारा था।

आचार्यों के पूर्वापर कथन को नहीं समझ कर अपनी तर्कणानुसार आगम वाक्यों का अर्थ करने का ही यह सब परिणाम है, और इसी से जहां भी अपनी समझ के विपरीत कुछ मालूम हुआ कि— 'अमुक आचार्य का कथन ठीक नहीं है, इसमें यह बात विपरीत लिख दी गई है।' इत्यादि मनमानी कल्पना ये लोग कर बैठते हैं जनता के सामने कुछ नवीन विचार रखने की उनकी भावना प्रबल हो उठती है, और आगे चलकर वे प्राचीन आचार्यों के आर्ष ग्रन्थों को भी अप्रामाणिक बतलाने की चेष्टा किया करते हैं।

गत साल हमें एक विद्वान मिले थे, उनका कहना था कि, हम यह खोज करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि फलाने आचार्य ने अमुक वर्ष में सम्यग्दर्शन का यह लक्षण बतलाया और उसके बाद दूसरे आचार्य ने सम्यक्त्व का कब क्या लक्षण बतलाया। हमें यह जानकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि ये लोग जिसको ऐतिहासिक दृष्टि से खोज करना कहते हैं, उसका क्या परिणाम होगा, और वे इससे क्या सिद्ध करेंगे मान लो कि सम्यग्दर्शन का लक्षण स्वामी समन्तभद्र ने—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥

कहा है.— और उमास्वामी ने उसी का लक्षण 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्" किया है तो क्या यक्त्व के लक्षण में किसी प्रकार बाधा आगई या कोई तत्त्व ही बदल गया? किन्तु इस प्रकार आधुनिक शोध करने वाले की दृष्टि में सम्यक्त्व के लक्षणों में दोनों ही आचार्यों के अभिप्रायों में भेद नजर आवेगा, और यह बात जरूर दृष्टि में आवेगी कि यह बात पहिले आचार्य की है और यह पीछे की, अतः यह मान्य है और यह नहीं। इस प्रकार के वे झट अपने विचारों को पब्लिक के सामने प्रगट कर देंगे। जो लोग अनुभव के कच्चे हैं वे झट कह उठेंगे कि दरअसल में फलाने आचार्य ने सम्यक्त्व का लक्षण ठीक नहीं लिखा है, अतः यह मान्य नहीं और यह मान्य है तब यह जनता को आचार्यों के विषय में भी अप्रामाणिकता का बोध उत्पन्न होने का कारण होगा। अस्तु

(१) दि० जैन आगम में मुक्ति पुरुष को ही मानी गई है, स्त्री का नहीं, अर्थात द्रव्यस्त्री कभी मोक्ष जा नहीं सकती, कारण मोक्ष वज्रवृषभ नाराचसंहनन वाले को ही हो सकती है, और कर्मभूमि की स्त्रियों के अंत के तीन संहनन अर्थात अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपाटिका का ही उदय होता है। वज्रवृषभनाराच संहनन नहीं होता; यह बात गोम्मटसार कर्मकांड श्लोक ३४ से सिद्ध होती है जो कि इस प्रकार है—

अन्तिमतियसंहणणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाण
आदिमतिय संहणणं णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥

(२) स्त्रियां यदि कितनी भी तपश्चर्या करें तो भी उनके शरीर में यह शक्ति नहीं कि ये अच्युत याने १६वें स्वर्ग के आगे जा सकें जिस प्रकार इसके ऊपर जाने की शक्ति नहीं उसी प्रकार उनके ७वें नरक का बंध करने योग्य संहनन नहीं होने के कारण वे छठे नरक तक ही जा सकती हैं दि० जैन

आगम में स्त्रियों को १६वें स्वर्ग से ऊपर जाने का निषेध है तब उन्हें मोक्ष मानना किस आधार से सिद्ध हो सकता है ?

(३) स्त्रियों की प्राकृतिक रचना ही इस प्रकार की है कि जिसके कारण नग्न परीषह को वह नहीं सहन कर सकतीं। मुनि दीक्षाके लिये नग्नता प्रधान कारण है। हीन शक्ति के कारण वह स्त्रियो के हो नहीं सकती और उसके बिना छठा गुणस्थान ही नहीं हो सकता, इससे भी सवस्त्र एवं स्त्रीमुक्ति का स्पष्ट निषेध होता है। स्त्रियो की स्वाभाविक रचना, उनके उत्कृष्ट शुक्लध्यान का अभाव, निरन्तर अशुचिताका सद्भाव आदि कितनी ही बातें उनके मोक्ष प्राप्ति के योग्य चारित्र का अभाव प्रगट करती हैं, ऐसी हालत में उनके मोक्ष मानना कितनी लम्बी बात है। स्वामी शुभचन्द्राचार्य ने इसके लिये स्पष्ट लिखा है कि—

स्त्रीणां निर्वाणसिद्धिः कथमपि न भवेत्सत्यशौर्याद्यभावात्। मायाशौचप्रपचान्मलभयकलुषान्नीच—जातेरशक्तेः॥ साधूनां नत्यभावात्प्रबलचरणता—भावतः पुरुषतोन्य — भावाद्धिसागकत्वात्सकल—विमलसद्ध्यानहीनत्वतश्च॥

अर्थात्—स्त्रियों में सत्य, शूरता आदि गुणों का अभाव होता है, तथा मायाचार अपवित्रता उनमें अधिकतर पाई जाती है। रजमल भय और कलुषता उनमें सदा रहती है उनकी जाति नीच होती है उनमें उत्कृष्ट बल नहीं होता है, वे पुरुषों से भिन्न स्वभाव वाली होती हैं। उनमें सम्पूर्ण निर्मल ध्यान की हीनता होती है। इस कारण स्त्रियों को कदापि मुक्ति नहीं हो सकती।

(४) केवली भगवान के कवलाहार बतलाना यह भी आगम विरुद्ध है। कवलाहार (भोजन) भूख मिटाने के लिये किया जाता है केवली भगवान के क्षुधा तृषादिक दोषों का पूर्ण अभाव है। भूख तो असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा जहा होती है वहा लगती है वेदनीयकर्म की उदीरणा छठे गुणस्थान से आगे नहीं होती। १३वां गुणस्थान ४ घातिया कर्मो के नष्ट होने पर होता है, उनके नष्ट होने पर आत्मा में अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त—दर्शन गुण प्रगट हो जाता है जिसके कारण उन्हें कभी भूख लगती ही नहीं इसी प्रकार उनकी अकाल मृत्यु भी नहीं होती। उपरोक्त कारणों से उनको भोजन के अभाव में किसी प्रकार का दु ख तथा ज्ञान एव शक्ति की मदता, शरीर का नाश आदि कभी सम्भव नहीं हो सकता। उनको क्षायिक लब्धि प्राप्त हो जाती है। अतएव उनके शरीर के पोषण केलिये असाधारण शुभ अनन्त नोकर्म वर्गणायें आती रहती हैं, इसके लिये उनका परम औदारिक शरीर कभी निर्बल नहीं होने पाता।

स्व० प० द्यानतराय जी ने अपने भी कवित्त में इसका इस तरह उल्लेख किया है।

भूख लगे दुख होय अनन्त सुखी कहिये किम केवलज्ञानी। खात विलोकत लोका—लोक देख कुद्रव्य भखे किम ज्ञानी॥ खाय के नींद करे सब जीव न स्वामि के नींद को नाम निशानी। केवली कवलाहार करें नहि, सांची दिगम्बर ग्रन्थ की बानी॥

उपरोक्त कारणों एव शास्त्रीय प्रमाणों से यह बात स्पष्ट है कि दि० जैन शास्त्रानुसार स्त्री—मुक्ति सवस्त्रमुक्ति तथा केवलियो के कवलाहार आदि कभी भी हो नहीं सकता। ये सब बाते श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने ही मान रक्खी हैं जो कि शास्त्राधार तथा प्रमाणों

से असङ्गत एवं विपरीत सिद्ध होती है। किसी भी आचार्य का इसमें किसी प्रकार का मतभेद नहीं है।

गुणस्थानो का विचार भगवान कुन्दकुन्द आचार्य ने पूर्ण रीति से किया है। धवलादि ग्रन्थों में भी इन बातो का कोई विधान सिद्ध नहीं होता। इन बातों पर विद्वानो ने भी अच्छी तरह प्रकाश डाला है। विज्ञ पाठक इस पर पूर्ण विचार करेंगे एव प्रोफेसर साहेब भी अपनी समझ को ठीककर मिथ्या अवर्णवाद से अपने को बचावेंगे, ऐसी आशा है।

श्रीमान् पं० श्रीधर जी जैन,

बम्बई, (प्रवास में)

प्रोफे० हीरालाल जी के आक्षेप निराधार हैं।

उनके तीन आक्षेप हैं उनमें से स्त्री—मुक्ति का आक्षेप तो उन्हीं को कमजोर जचना चाहिये क्योंकि स्त्रीको पाचवें गुणस्थानमे आगे पहुचना असम्भव है उन्हीं के पूर्ण विश्वास वाले और जिस पर खूब समझ सोच कर उन्होने अपना भाष्य बनाया है उस प्रथम सिद्धात धवल मे खुलासा है ग्रन्थकार ने वहा प्रथमाधिकार के ६३वे सूत्र मे स्पष्ट लिखा है कि सर्व प्रकार के परिपूर्ण अवस्था वाली स्त्री भी सयतासयत नाम वाले पाचवे गुणस्थान तक ही चढ़ती है अर्थात आगे के गुणस्थानो मे स्त्री चढ नहीं सकती है उसमें बताया है कि — सञ्जदासञ्जदट्ठाणेणियमा' अर्थात सयतासयत इस नाम के पाचवें गुणस्थान में ही स्त्री नियम से रह सकती। इसी बात को धवलाकार ने भी खूब अच्छी तरह समर्थित किया है और इसकी अधिक पुष्टि प्रमेयकमलमार्तण्ड मे भी की गई है वह इस प्रकार है—

कर्म भूमि की महिलाओ में ऊपर के मजबूत तीनो सहनन नहीं होते हैं उन तीन सहननो के रहने पर ही ऊपर का चढना हो सकता है यह बात उनको भी कर्म सिद्धात द्वारा मान्य है जिनके लिये प्रोफेसर साहेब प्रयत्न कर रहे हैं।

अन्तिमतियसहणणस्सुदओपुणकम्मभूमिमहिलाणं।
आदिमतियसहणणं णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठ॥

क्या इस सिद्धात को श्वेताम्बर भाई भी नहीं मानते कि जिस काल मे मुक्ति की सम्भावना है उस काल मे स्त्री जाति मात्र में ऊपर के सहनन नहीं रहते हैं और ऊपर के सबसे बडे वज्रवृषभनाराचसहनन के बिना मुक्ति के योग्य उग्रध्यानादि साधना नहीं बन पाती है?

आज भी श्वेताम्बरो मे यह रिवाज जारी है कि पुरानी भी आर्यिका नये हुये मुनि साधु को वदना करेगी भले ही साधु आज का ही दीक्षित हो और साध्वी आर्यिका भले ही सौ वर्ष से दीक्षित हो तो भी अभिगमन वदनादि प्रथम उठकर वह स्त्री ही उस साधु को करेगी, पुरुष बाद मे उसको जवाब देगा, इसका कारण एक ही हो सकता है कि स्त्रीजाति मुक्ति के लिये अपात्र है तथा पुरुष जाति मुक्ति का पात्र है इसी लिये पुरुष का आदर स्त्री द्वारा लाजमी मान्य कराया गया है।

'वरिससय (सत) दिक्खियाए अज्जाए अज्जदि—क्खिओ साहू।' इत्यादि आगम रिवाज का समर्थक है और यही रिवाज कि साध्वी साधु को प्रथम वंदन करें आज तक दोनो सम्प्रदायो में जारी है इससे स्त्री जाति का दर्जा उत्कृष्ट नहीं है और उत्कृष्ट सामर्थ्य बिना मुक्ति का प्राप्त होना अथवा क्षपक श्रेणी के गुणस्थानो का चढ़ना असम्भव है।

प्रोफेसर साहेब ने एक बात यह लिखी है कि हम कुन्दकुन्द को नहीं मानेंगे हालांकि यह बात छोटे मुह बड़ी बात, लिखने की आज तक दूसरे किसी को भी हिमाकत नहीं हो पाई थी ब्र० शीतलप्रशाद जी जो सुधारको में अगुवा थे कुन्दकुन्द स्वामी के वचनो के वे भी बडे कायल थे कई बार उन्हो ने लिखा था कि कुन्दकुन्द के वचन सर्वथा मान्य हैं प्रोफेसर सा० ने समाज की आखोमे एक धूल झोकने का साहस और भी किया है वह इस प्रकार है—

प्रोफेसर जी ने खुद तो यह बात मानी है कि स्त्री और पुरुष ऐसे दो ही आकार मनुष्यो मे जुदायगी दिखाते हैं। नपुसक का कोई जुदा आकार नहीं है उसी आशय से पुरुष आकार के अतिरिक्त जो स्त्री आकार है उस आकार वालो को न तो ऊपर के गुणस्थान हैं न क्षपक श्रेणी है और न मुक्ति है वह सब कुछ केवल पुरुष को ही प्राप्तव्य है ऐसा ग्रन्थकार ने ९३वे में सूत्र के आस पास वाले प्रकरण मे स्पष्ट किया है। प्रतिभिन्न वकील लोग कमजोर मामले को हाथ मे नहीं लेते चाहे मवक्कल कितना भी अधिक खुश करने क्यो न तैयार हो, प्रोफेसर साहेब ने इतना कमजोर केस भी न जाने क्यो हाथ मे लिया है वेद जो मोह कर्म के उदयवश परिणाम का विचित्रता है वह 'वहि विसमा' ऐसा खुलासा स्पष्ट होते हुये भी क्या प्रोफेसर जी ने यह न समझ पाया कि यह खेंची पेंची दलील मामला बिगाड देगी ? याद रहे दिगम्बर मान्यता तीनो बातो मे अभेद्य किला है इससे टकराना फिजूल है।
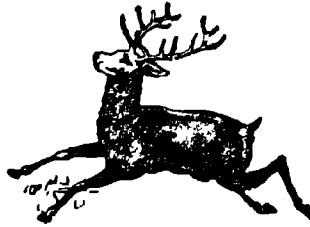
* विद्वानों के प्रश्नोत्तर *

षटखंडागम जीवस्थान सत्प्ररूपणानुयोगद्वार काययोगमार्गणा के सूत्र ९३वें में 'सञ्जद' शब्द है या नहीं?

प्रश्न—९३वे सूत्रमे मनुष्यनीका अर्थ भावस्त्री है इस पर क्षुल्लक जी (श्री सूरिसिंह जी) का यह कहना है कि मनुष्यनी शब्द के पहले यदि पर्याप्त या अपर्याप्त शब्द हो तो उसका अर्थ द्रव्यस्त्री होता है।

उत्तर—षट० सं० प्र० दूसरे खंड के पृष्ठ ५१४ के लेख से मालूम होता है कि पर्याप्त मनुष्यनियो के १४ गुणस्थान होते है। यदि क्षुल्लक जी के कथनानुसार पर्याप्त विशेषण विशिष्ट मनुष्यनी का अर्थ द्रव्य स्त्री रखा जायगा तो इसका यह अर्थ होगा कि द्रव्य स्त्री के १४ गुणस्थान होते हैं। जो कि सिद्धात और आम्नाय से विरुद्ध है।

प्रश्न—श्री धवला द्वितीय पुस्तक मे जो १४ गुणस्थानो का कथन है उसका भाव यह है कि भाव स्त्री के जो पर्याप्तता है वह पुरुष के द्रव्य शरीर की अपेक्षा से है कारण भावस्त्री के लिये आधार भूत द्रव्य शरीर पुरुष का ही है। इसलिये यहा भावस्त्री शब्द से पुरुष शरीर का ही कथन होता है। क्योंकि पुरुष के शरीर से भाव स्त्री कोई भिन्न नहीं है। इस लिये पर्याप्त और अपर्याप्त जो विशेषण भावस्त्री को दिया है वह मुख्य रूप से पुरुष शरीर की अपेक्षा से ही है। गोम्मटसार में भाव स्त्री को यह विशेषण दिया है।

उत्तर ९३वे सूत्र मे मनुष्यणी के साथ जो पर्याप्त शब्द है वह भी द्रव्य पुरुष के शरीर की पर्याप्तता की अपेक्षा से ही व्यवहृत हुआ है जैसा कि क्षुल्लक जी ने ऊपर अपने कथन मे स्वीकार किया है।

प्रश्न—देखिये जो प्रथम षटखण्डागम सूत्र मे पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषण दिया है वह शरीर आधार की अपेक्षा से दिया है क्योंकि प्रकरण काय-योग के प्रकरण मे होने के कारण पर्याप्त और अपर्याप्त पुरुष का कथन तो पहले हो चुका है फिर मनुष्यनी प्रकरण में यानी स्त्री के प्रकरण मे पर्याप्त और अपर्याप्त शब्द मनुष्यनी के साथ सूत्र मे होनेसे द्रव्यस्त्री का ही कथन है। यहा पर मनुष्यनी के साथ पर्याप्त अपर्याप्तता है वह मनुष्यनी के द्रव्य शरीर के साथ संबंध मुख्य रूप रखने से द्रव्यस्त्री का कथन है।

उत्तर—पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषण दिया वह शरीर आधार की अपेक्षा से दिया है कृपया इसका स्पष्टीकरण कीजिये।

प्रश्न—९२ सूत्र की वृत्ति में श्री वीरसेनाचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि—'स्यात् पर्याप्तापर्याप्तनामक-कर्मोदयात् शरीरनिष्पाद्यपेक्षया वा स्यादपर्याप्ता शरीरानिष्पत्त्यपेक्षया वा। इस तरह खुलासा किया है।

उत्तर—पिछले प्रश्न का उत्तरः- जब पर्याप्त और अपर्याप्त व्यवहार शरीर की निष्पत्ति और अनिष्पत्ति की अपेक्षा से माना जाता है तो मनुष्यनी अर्थात् भावस्त्री मनुष्य के जो शरीर होगा उसी के पर्याप्त और अपर्याप्त की अपेक्षा मनुष्यनी पर्याप्त और मनुष्यनी अपर्याप्त कहलायेगा यह क्यो आवश्यक है कि वह शरीर द्रव्यस्त्री का ही होना चाहिये। अब रही काययोग के प्रकरण की बात सो काययोग क्षयोपशम लब्धि रूप है। अतः इससे पूर्वोक्त कथन में कोई बाधा नहीं आती। तथा आपने जो पर्याप्त और अपर्याप्त पुरुष के कथन को द्रव्य पुरुष का कथन समझा है सो यदि वह द्रव्य पुरुष का कथन माना जाय तो द्रव्य नपुंसक के भी १४ गुणस्थान प्राप्त हो जायगे जो आगम विरुद्ध है क्योंकि पर्याप्त मनुष्यो मे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्यो का ग्रहण किया है।

प्रश्न—यहा भाव स्त्री का प्रकरण ही नहीं है यहा तो द्रव्य स्त्री शरीर का सम्बन्ध है क्योंकि पर्याप्त अपर्याप्त शरीर के साथ मानुषी ली गई है। पर्याप्त अपर्याप्त का सम्बन्ध शरीर की पूर्ति अपूर्ति से है अत. द्रव्य स्त्री के शरीर में भाव कैसे भी हो इससे हमारा कथन समुचित है। यहा पर भावस्त्री को मुख्य करके जो कथन होता तो आपके लिखे अनुसार आपत्तियो की सम्भावना भी होती परन्तु यहा पर द्रव्य स्त्री का प्रकरण है इसलिये आपकी दी हुई कोई आपत्ति नहीं है यहा पर्याप्ति का सम्बन्ध है इसलिये द्रव्यस्त्री मे स्त्री का भाववेद भी होगा पुरुष भाववेद भी होगा और नपुंसक वेद भी होगा। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि द्रव्य नपुंसक मोक्ष को जाता है।

योग को मति ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा से क्षयोपशमरूप कहा गया है। परन्तु काय तो औदयिक है अतः उसका पर्याप्ति से ही सम्बन्ध है। इसलिये यहा पर उसका द्रव्य स्त्री से ही सम्बन्ध है आप इस कथन को द्रव्य पुरुष ।। भी नहीं बताते हैं जैसी की आपकी पंक्ति है तो फिर किस शरीर द्रव्य वेद के आधार पर वहा पर भाव वेद का सद्भाव आप बताते हैं? स्पष्ट करे।

उत्तर—यदि पर्याप्त शब्द के साथ मनुष्यनी पद से द्रव्य स्त्री लिया जायगा तो जहा सत्प्ररूपणा भाग ? पृष्ठ ४१४ पर्याप्त मनुष्यनी के १४ गुणस्थान बतलाये हैं वहा वे गुणस्थान आपके कथनानुसार द्रव्य स्त्री के मानने पड़ेंगे। इसस स्पष्ट है कि प्रकृत मे मनुष्यनी के साथ पर्याप्त पद के रहते हुये भी उससे भाव मनुष्यनी का बोध होता है। अत. आपका यह कहना कि यहा भाव स्त्री का प्रकरण नहीं है यहा तो द्रव्य स्त्री शरीर का सम्बन्ध है क्योंकि पर्याप्त अपर्याप्त शरीर की मानुषी ली गई है आगम स बाधित है। तथा आपने जो काय को औदयिक लिखा है सो यहा काय का प्रकरण न होकर काय-योग का प्रकरण है जो कि क्षयोपशमिक है. इसलिये ९३ पर स द्रव्य स्त्री का सम्बन्ध जोड़ना किसी भी तरह ठीक नहीं है। हम किस कथन को द्रव्य पुरुष का नहीं बता रहे हैं स्पष्ट कीजिये। भाव स्त्री द्रव्य स पुरुष भी हो सकता है।

प्रश्न—आपने जो सतप्ररूपणा के ५१४ पृष्ठ के आधार पर वृत्तिगत आलाप के कथन का उल्लेख कर स्त्री के पर्याप्ति का सम्बन्ध प्रगट किया है वह तो भाववेद की ही अपेक्षा से है वहा द्रव्य शरीर का प्रकरण नहीं है जैसा कि—५१३ पृष्ठ पर जेंनिभावो इत्थिवेदो दव्व पुण पुरिसवेदो' पक्ति मे पड़े हुये तहरद (तासि) स भाववेद का ही प्रकरण है यह स्पष्ट है। परन्तु ६३वें सूत्र में पर्याप्ति अपर्याप्ति का उल्लेख है वह द्रव्य स्त्री के शरीर से ही है। अन्यथा मनुष्य गत गुणस्थानो का वर्णन करने वाले ८६वें और ६०वे सूत्र जो द्रव्य मनुष्य का वर्णन करते हैं पुनरुक्त ठहरेंगे। १४ गुणस्थान प्राप्त करने वाली भावस्त्री के लिये द्रव्य पुरुष के शरीर क सिवाय कोई शरीर नहीं है। इसका स्पष्ट उत्तर पहिले दिया जा चुका है।

काययोग प्रकरण मे भी योग को हो मतिज्ञानावरण वीर्यांतरायकर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा क्षयोपशम रूप कहा गया है परन्तु उसके साथ जो काय है उसका कथन तो आहार वर्गणा स्वरूप नोकर्म शरीर रूप औदारिक शरीर होन से पर्याप्ति अपर्याप्ति का सम्बन्ध स्त्री के द्रव्य शरीर से ही है। इसलिये वह आगम बाधित नहीं किन्तु ६२ व ६३ के सूत्रो स आगम प्रमाण सिद्ध है। आपने अपने उत्तर मे यह पक्ति लिखी है कि 'यदि वह द्रव्य पुरुष का कथन माना जाय तो द्रव्य नपुसक के भी १४ गुणस्थान हो जायगे' इस पक्ति से सिद्ध होता है कि आप उस द्रव्य मनुष्य का भी कथन मानत हैं।

उत्तर—आपके उत्तर से यह स्पष्ट है कि मनुष्यनी शब्द क पीछे पर्याप्त और अपर्याप्त शब्द लगा देने पर भी उसका अर्थ भावस्त्री होता है। अब आपका इतना और कहना है कि यहा पर काय का सम्बन्ध होने से मनुष्यनी का अर्थ द्रव्य स्त्री होना चाहिये इस पर यह वक्तव्य है कि आगम में मनुष्यणी शब्द का अर्थ भाव स्त्री वेद वाला सर्वत्र लिया गया है। अब यहा काय का सम्बन्ध और लेना है सो भावस्त्री वाले मनुष्य का जो भी काय हो उसी की पर्याप्त व अपर्याप्त अवस्था ली जायगी क्या यह आवश्यक है कि भावस्त्री वाले जीव का शरीर द्रव्य स्त्री रूप ही हो?

६३वें सूत्र मे मनुष्यनी का अर्थ भाव स्त्री होनेसे आप जो ८६ व ६० सूत्रों से इस कथन को पुनरुक्त बतलातेहैं सो कृपया खुलासा करे कि सामान्य मनुष्य और मनुष्यनी में भेद आगम में किस अपेक्षा से किये है, उत्तर सप्रमाण लिखें।

प्रश्न—आपने जो यह लिखा है कि आपके उत्तर से यह स्पष्ट है कि 'मनुष्यणी शब्द के पीछे पर्याप्त और अपर्याप्त लगा देने पर भी उसका अर्थ भावस्त्री होता है।' हमारे अभिप्राय और हमारी पक्तियो के सर्वथा विरुद्ध है। हमने अपने प्रश्न मे ऐसा नहीं कहा है किन्तु इसके विपरीत ऐसा कहा है कि ६३ सूत्र मे द्रव्य प्रकरण है इसलिये वहा पर्याप्त अपर्याप्ति का सम्बन्ध द्रव्यस्त्री के शरीर से है। भाव स्त्री वेद से नहीं है। इतना स्पष्ट होने पर भी आपने हमारा वैसा अभिप्राय किस शब्द या वाक्य से समझा है सो स्पष्ट कीजिये। 'आगम मे मनुष्यणी शब्द का अर्थ भावस्त्री वेद वाला सर्वत्र लिया गया है' ऐसा जो आपने लिखा है वह भी आगम विरुद्ध है। क्योंकि षटखण्डागम के इसी प्रकरण गत ६३ सूत्र मे मनुष्यणी का अर्थ पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण से द्रव्य स्त्री लिया गया है। भाववेद स्त्री नही किया

गया है केवल मनुष्यणी शब्द से भी द्रव्य स्त्री किसी स्थल में गोम्मटसार जीवकाड बड़ी टीका पृ० ३८४ गाथा १५६ से स्पष्ट सिद्ध होता है। उस गाथा की सस्कृत टीका में लिखा है कि "पर्याप्तमनुष्यराशेः त्रिचतुर्थभागो मानुषीणा द्रव्यस्त्रीणा परिमाण भवति।" इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि 'मानुषी शब्द से सर्वत्र भावस्त्री लिया जाता है' यह आपका कथन आगम विरुद्ध पड़ जाता है। ६३ सूत्र मे द्रव्य स्त्री का शरीर सम्बन्ध होने से वहा पर जो भी भाव वेद हो सके इसमें कोई आपत्ति नहीं है परन्तु पर्याप्ति अपर्याप्ति सम्बन्ध तो द्रव्यस्त्री के शरीर से ही माना जायगा।

भाव स्त्री वाले जीव का शरीर द्रव्य स्त्री या पुरुष शरीर आदि भी हो सकता है इसमें हमें कोई विवाद नहीं है।

सामान्य मनुष्यादिक का कथन प्रकरण के अनुसार द्रव्य और भाव दोनों ही हो सकता है।

उत्तर—इसी योग मार्गणा मे ६२ व ६३ सूत्र के समान ही ८७-८८ सूत्र है फर्क इतना है कि वहा तिर्यंच योनिनी का कथन है और यहा मनुष्यणी का वीरसेन स्वामी ने ८७वे सूत्र की उत्थानिका बाधते हुये लिखा है कि स्त्रीवेदविशिष्ट तिरश्चा विशेषप्रतिपादनार्थमाह। इससे स्पष्ट है कि काययोग मार्गणा तथा पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषण के रहते हुये भी जैसे ८७-८८ सूत्र में भाववेद लिया गया है, उसी प्रकार ६२ व ६३ सूत्रमें भाववेद लिया गया है।

गोम्मटसार गाथा १५६ की टीका मे मनुष्यणी का अर्थ द्रव्य स्त्री लिखा गया है वह खुद्दाबन्ध द्रव्य प्रमाणानुगम सूत्र २८ व २६ की टीका के निम्न भाग के विरुद्ध है।

'एदस्स तिण्णि चदुब्भागा मनुसिणीओ एगो चदुब्भागो पुरिसणबु सयरासी होदि' इससे स्पष्ट है कि मनुष्यणी की संख्या जीव काड गाथा १५६ भाववेद की अपेक्षा से है। आपके उत्तर में यह बड़ी विचित्रता है कि जो ६३वा सूत्र विवाद का विषय है उसे ही आप दृष्टान्त रूप म उपस्थित कर रहे हैं दूसरे उसी उत्तर में आप यह भी लिखते है कि ६३वे सूत्र में मनुष्यणी का अर्थ पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण से द्रव्य स्त्री लिया गया है। जबकि हम पहले धवला सतप्ररूपणा दूसरे भाग के प० ५१४ में पर्याप्त विशेषण रहते हुये मनुष्यणी का अर्थ भावस्त्री बतला आये हैं और उसे आपने स्वीकार कर लिया है। फिर भी ६३वें सूत्रमे आप पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण होने से द्रव्य स्त्री ही लिखे जा रहे हैं। हम पहिले लिख आये है कि यदि भाव स्त्री वाले मनुष्य का लेकर उसके शरीर को पर्याप्त और अपर्याप्त कहा जाय तो इसमें क्या आपत्ति है।

धवला खण्ड २ पृ० ५२२ पर आगे भी मनुष्यणी के छठे आदि गुणस्थानो में व प्रथमादि गुणस्थानो में भी सर्वत्र स्त्रीवेद का उदय बतलाया है सो इससे हमारा कहना है कि मनुष्यणीका अर्थ सर्वत्र भावस्त्रीही लिया है। विवादगत ६३ सूत्र के अतिरिक्त यदि कहीं भी मनुष्यनी का अर्थ द्रव्य स्त्री लिया हो तो कृपया आप प्रमाण देवें।

प्रश्न—आपने जो धवला के पहले खण्ड के पृ० ३२८ के ८७-८८ सूत्रों का अर्थ जो भाववेद किया है वह ग्रन्थ के विरुद्ध है: इन दोनो सूत्रो से स्त्रीवेद विशिष्ट तिर्यंचों के द्रव्यवेद की ही सिद्धि होती है क्योंकि उक्त सूत्रो की वृत्ति मे उत्पत्ति का उल्लेख है, उत्पत्ति बिना द्रव्य शरीर के नहीं होती है। इसी

प्रकार ६२वें व ६३वे सूत्रों द्वारा भी द्रव्य स्त्री का ग्रहण है।

गोम्मटसार जीवकाड गाथा १५६में और उसकी सस्कृत टीका मे जो मनुष्यनी का स्पष्ट अर्थ द्रव्य स्त्री किया गया है उसका अर्थ आपने भाव स्त्री वेद बताया है परन्तु यह अर्थ आप गोम्मटसार ग्रन्थ के आधार पर कहते हैं या धवला के खुद्दाबध के आधार पर कहते हैं सप्रमाण लिखें? गोम्मटसार मे भी प्रत्येक मार्गणा के अन्त में जो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय एव मनोयोगी काययोगी आदि जीवो की सख्या गिनाई गई है सो क्या भाव जीवो की है या द्रव्य जीवोंकी? सो प्रमाण सहित स्पष्ट करें। गोम्मटसार मे जो मनुष्यो की सख्या गिनाई गई है उसके त्रिचतुर्थ भाग प्रमाण मनुष्यणी की सख्या बताई गई है सो क्या वह सख्या द्रव्यस्त्रियों की है या भाववेदी स्त्रियो की? गोम्मटसार ग्रन्थ के आधार से सप्रमाण स्पष्ट करें।

फिर आपने जो धवला के खुद्दाबध के प्रकरण के पृष्ठ २५६ सूत्र २८-२६ का तथा वृत्ति में एदस्स-तिण्णि चदुभागा मणुसिणिओ एगो चदुभागो पुरिसणवु सयरासी होदि, यह प्रमाण देकर मनुष्यणी की संख्या को भाववेद की अपेक्षा से बताया है सो आप ऐसा अर्थ किस प्रकार करते हैं जब कि खुद्दाबद के उक्त सूत्रो का और आपके दिये हुये वृत्तिगत प्रमाण का स्पष्ट अर्थ द्रव्यस्त्री ही होता है। इसी २६वें सूत्र के अनुसार वृत्ति मे पर्याप्त मनुष्यों की सख्या 'तलीनमधुग विमलधूम सिलागा विचोर भयमेरू' इस श्लोक मे द्रव्य मनुष्य सख्या और उसी सख्या के त्रिचतुर्थ भाग स्त्रियो की सख्या गिनाई गई है वहीसख्या उसी 'तलीन मधुग विमल' उसी श्लोक को देकर मनुष्य सख्या और उसी के त्रिचतुर्थ भाग मनुष्यनी की संख्या पज्जत्तमणुस्साणं तिचदुत्थो माणुसीण परिमाण इस गोम्मटसार की गाथा के अनुसार बताई गई है सो भाववेद की अपेक्षा से किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती है। इस कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि खुद्दाबध के उक्त सूत्रों और गोम्मटसार जीवकाड के १५६वीं गाथा दोनो का एक ही अर्थ है। आप उन दोनों को भाववेद स्त्री की अपेक्षा कैसे बताते हैं जबकि उन्हीं सूत्रो मे 'दव्व—पमाणेण से वाक्य पडे हुये हैं। हमें बहुत आश्चर्य होता है कि आप इन ग्रन्थो के जानकार होने पर भी ग्रन्थो से विरुद्ध अर्थ कैसे करते हैं? षटखण्डागम सत्प्ररूपणा योगद्वार सूत्र ६२ व ६३ में जो मानुषी से द्रव्यस्त्री का ग्रहण किया है उसके हेतु निम्नप्रकार हैं–

(१) सूत्रकार की सूत्रण शैली ऐसी है कि जिस स्थान पर तीन से ज्यादा गुणस्थान का वर्णन किया है वहा 'पहुदि' और 'जाव' शब्द लगा कर ही किया है जब सूत्र ६३ मे यदि 'सजद' पद आ जाय तो चार गुणस्थान हो जाते हैं ऐसी स्थिति मे सूत्रकार ने जो 'पहुदि और जाव' शब्द को लेकर वर्णन नहीं किया है उससे विदित होता है कि वहा सजद पद नहीं है सूत्रकार की यह पद्धति सत्प्ररूपणा के ७१वें सूत्र से लेकर बराबर इसी प्रकार से है यहा पर सम्भव है कि यह शङ्का हो कि गति मार्गणा के सूत्रो मे यह नियम लागू नहीं है तो उसका समाधान यह है कि प्रत्येक गति मे सूत्रकार को गुणस्थान निश्चय करने थे इसलिये भिन्न २ गतियो मे कौन २ गुण-स्थान होते हैं इस बात के निश्चय के लिये सख्या अलग २ गिनाई है।

(२) सूत्र ६३ के भाष्य मे जो यह पक्ति है कि

हुडावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टय. किन्नोत्पद्यत इतिचेत न, इस पक्ति में द्रव्य स्त्री के अपर्याप्त अवस्था में सम्यक्त्व मानने का लक्ष्य करके शङ्का की गई है क्योकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे द्रव्य स्त्री को मोक्ष माना है इसलिये यहा का प्रकरण द्रव्य स्त्री के लिये ही है। तथा इस पक्ति मे जो उत्पद्यन्ते क्रिया है वह भी द्रव्य शरीर को सूचित करती है क्योकि उत्पत्ति शरीर की ही होती है। यहा जो समाधान किया गया है। यदि यहा भाव स्त्री का प्रकरण होता तो सूत्रकार 'भावस्त्रीप्रकरणात्' ऐसा शब्द लिखकर समाधान देते क्योकि शङ्का द्रव्यस्त्रीकी प्रधानतासे है।

३-'तुष्यतु सज्जन' न्याय से थोड़ी देर के लिये यहां भाववेद का ही प्रकरण मान लिया जाय तो एक बडा दूषण दिगम्बर जैन सिद्धात के विरुद्ध यह आता है कि जहा २ द्रव्यप्ररूपणा आदि के सूत्रो में मनुष्य पर्याप्त मनुष्यनी के १४ गुणस्थान बतलाये हैं वहां मनुष्य को भी भाववेद से ग्रहण किया जा सकता है ऐसी दशा में जिस द्रव्य स्त्री के वेद वैषम्य की अपेक्षा से मनुष्य के भाव होगे वह द्रव्य स्त्री भाव मनुष्य होगा तब यह परिणाम अनायास ही निकल आयेगा कि द्रव्य स्त्री के १४ गुणस्थान होते हैं सो यह सर्वथा सिद्धात विरुद्ध बात है। इस बात को रोकने के लिये षटखण्डागम का कौन सा सूत्र है वह बताइये। षट्खण्डागम के सूत्र पूछने का हेतु यह है कि विरुद्ध पार्टी ने षटखण्डागम को बहुत प्राचीन माना है और इसके ही आधार से सिद्धात ग्रन्थो की रचना हुई है ऐसी उनकी मान्यता है। यदि द्रव्यस्त्री को १४ गुणस्थानों का निषेधक कोई भी सूत्र नही होगा तो विरुद्ध पार्टी का यह कहना सिद्ध हो जायगा कि षटखण्डागम में तो द्रव्य स्त्री के १४ गुणस्थानो का कहीं भी निषेध नही है इसलिये १४ गुणस्थानो के निषेध की कल्पना द्रव्य स्त्री के प्राचीन नहीं होकर अर्वाचीन है। जोकि स्वामी कुन्दकुन्द ने चलाई है सो यह विरुद्ध पार्टी का मन्तव्य आपको भी मान्य नहीं होगा क्योकि दि० सिद्धात का जो कथन है वह अनादिकालीन है किसी तीर्थंकर या आचार्य की चलाई हुई नहीं है। इसी कारण वह अर्वाचीन नहीं है।

आपने जो सूत्र ९३ का विषय विवादस्थ लिखा है सो यह बात नहीं। वास्तव में यहा का विषय निर्णीत है। सत्प्ररूपणा मुद्रित द्वितीय पुस्तक आलापाधिकार मे जो १४ गुणस्थान वाली मानुषी के साथ पर्याप्ति शब्द के दर्शन हो रहे है उसका जवाब आप को कई बार दिया जा चुका है। परन्तु आप अपने उत्तर में उसी को बार बार लाकर खड़ा कर देते हैं इससे मालूम पडता है कि आपने उस मन्तव्य पर वास्तविक विचार नहीं किया है। अस्तु। अब उसका अच्छी तरह से स्पष्टीकरण समझ लीजिये आलापों मे जो मानुषी के साथ पर्याप्त शब्द है वह पराश्रित है क्योंकि वेदवैषम्यदृष्टिसे उसका पराश्रित होना स्पष्ट है परन्तु सूत्र ९३गत जो मानुषी शब्द है और उसकेसाथ जो पर्याप्त शब्द है वह स्वाश्रित है सूत्रकार की दृष्टिमें पर्याप्ति शब्द गौण है क्योकि मानुषी के १४ गुणस्थान जिस २ स्थान पर आये हैं वहा मानुषी के साथ यदि पर्याप्ति शब्द लगा दिया जाता है तो वह मानुषी द्रव्य स्त्री का ही वाचक होता है। ऐसा होने से फिर उसके १४ गुणस्थान सिद्ध नहीं हो सकते हैं उक्त विवेचन से यह भलीभात सिद्ध होता है कि सूत्र ९३ में सयत शब्द का अस्तित्व होना आगम एवं आगमानुकूल युक्तियो से सर्वथा विरुद्ध है।

उत्तर—८७-८८ सूत्र में यदि द्रव्य लिया होता तो धवलाकार ने स्त्रीवेद विशिष्ट तिर्यंच ऐसा क्यों लिखा ? आपने भी यह खुलासा न किया कि इनके द्रव्यवेद कौन है ? और भाववेद कौन है ? यदि दोनों एक ही हैं तो टीकाकार को स्त्री वेद विशिष्ट ऐसा विशेषण क्यो लगाना पड़ा।

९२-९३ सूत्र में भाववेद लेने पर भी उस भाव-वेद वाले जीव के शरीर की उत्पत्ति अपेक्षा उत्पद्यते क्रिया बन जाती है इसके भाववेद वाले जीव शरीर को वैसा ही होने की क्या आवश्यकता है। गोम्मट-सार जीवकाण्ड की गाथा १५६ में मनुष्यनी का अर्थ भावस्त्री हम गोम्मटसार व धवला दोनों के आधार से करते हैं। गोम्मटसार का प्रमाण निम्न है।

"मणुसिणी एत्थी सहिदा तित्थयराहार पुरिस-सहूणा' इसमें मनुष्यनी के स्त्रीवेद का उदय स्पष्ट बतलाया है। नपु सकवेद व पुरुष वेद का नहीं। हर एक मार्गणा की संख्या को बतलाते समय द्रव्य और भाववेद के बतलाने की आवश्यकता नहीं।

गोम्मटसार में मनुष्यो के त्रिचतुर्थ भाग प्रमाण जो मनुष्यणियों की संख्या बतलाई है वह भाववेद की प्रधानता से है क्योंकि स्वयं गोम्मटसारकार ने मनुष्यनी का अर्थ स्त्री वेद का उदय वाला मनुष्य लिया है, प्रमाण ऊपर कह आये हैं। जीवट्ठाण द्रव्य प्रमाणानुगम मनुष्य गति मे मनुष्यनियों की संख्या १४ गुणस्थानो की अपेक्षा से बतलाई है यथा—

मणुसिणीसुसासणसम्माइट्ठिपहुडि जाव अजोग केवलित्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा।

इसस ज्ञात होता है कि सर्वत्र मनुष्यणी का अर्थ स्त्री वेद वाला मनुष्य है खुद्दाबन्ध मे भी यही समझना। खुद्दाबध के २६वे सूत्र में पर्याप्त मनुष्य का अर्थ आप द्रव्य मनुष्य करते हैं। पर कर्मकाण्डमें पर्याप्त मनुष्य का अर्थ पुरुषवेद और नपु सकवेद के उदय वाला मनुष्य किया है। यथा 'पज्जत्तेविय इत्थिवेदा पज्जत्त परिहीणो।' अब आप ही देखें कि पर्याप्त मनुष्य का अर्थ द्रव्य पुरुष कैसे हो सकता है। इस कथन से आप जान जायगे कि सर्वत्र संख्या भाववेद की अपेक्षा से ही बतलाई है। आपने दव्वपमाणेण पद को लेकर कटाक्ष किया सो भाई यह पद संख्या का वाचक है। यदि ऐसा न हो तो जीवट्ठाण में द्रव्य प्रमाण बतलाते हुये मनुष्यनियों के १४ गुणस्थान नहीं बतलाये जाते। यदा कदाचित द्रव्य प्रमाण पद को द्रव्य परक ले लिया जाय तो जीवट्ठाण में मनु-ष्यनी के द्रव्य प्रमाण को १४ गुणस्थानों में बतलाया है। इसलिये इससे द्रव्यस्त्रियों का ग्रहण होकर उन के १४ गुणस्थान सिद्ध हो जायगे। इसका भी आपने हमारे ऊपर कटाक्ष करते समय विचार किया क्या ? षट्खण्डागम सत्प्ररूपणा योगद्वार सूत्र ९२ व ९३ में आपने जो मानुषी का अर्थ द्रव्य स्त्री लेने के लिये जो हेतु दिये उनका समाधान निम्न प्रकार है।

१-आपने अपने पहले हेतु में यह स्वीकार ही किया है कि गतियो में गुणस्थान बतलाते समय वहा पर सूत्रकार ने 'पहुडि' और 'जाव' शब्द का प्रयोग नही किया है किन्तु स्पष्टत गुणस्थानो के नामो का उल्लेख किया है। यथा सत्प्ररूपणा २० व २८ सूत्र।

आप कहते हैं कि सूत्रकार ने तीन से अधिक गुणस्थान गिनाते समय पहुडि और जाव शब्द का ही प्रयोग किया है सो यह हेतु कोई दमवाला नहीं है क्योकि सूत्र न० १२८ मे चार गुणस्थानो का उल्लेख होने पर भी पहुडि और जाव न लिखकर

बीमें गुणस्थानों के नामों का उल्लेख कर दिया है।

२-सूत्र ६३ की टीकाके उत्तर प्रत्युत्तर को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि हुण्डावसर्पिण्या स्त्रीषु यहां जो स्त्री वेद है उसका अर्थ भावस्त्री ही है यदि ऐसा न होता तो आगे उसकी व्यावृत्ति केलिये द्रव्यस्त्रीणां ऐसा टीकाकार न लिखते। दूसरे अस्मादेव आर्षात् द्रव्यस्त्रीणां-इत्यादि शङ्का तभी उठ सकती है जबकि ६३वे सूत्र में सञ्जद पद हो। यहां पर अस्मादेव आर्षात् से ६३ सूत्र ही विवक्षित है यदि ऐसा न माना जाय तो अस्मादेव आर्षात से यहां कौन सा आर्ष वाक्य विवक्षित है जिससे द्रव्यस्त्री को मोक्ष का प्रसङ्ग प्राप्त होता हो। उपपद्यते क्रिया के सम्बन्ध मे पहले लिख आये है।

३-तीसरे हेतुमें आप जिस आपत्ति को उपस्थित कर रहे हैं उसी के निवारणार्थ हम यह लिख रहे हैं कि मनुष्यणी का अर्थ भावस्त्री विशिष्ट मनुष्य लेना चाहिये। तभी उसके १४ गुणस्थान बन सकते हैं। अन्यथा सर्वत्र मनुष्यनी के १४ गुणस्थान बतलाये गये है। यदि मनुष्यनी का अर्थ द्रव्यस्त्री लिया जायगा तो यह दिगम्बर सम्प्रदाय के ऊपर बड़ी आपत्ति होगी।

दूसरे यदि मनुष्य पर्याप्त का अर्थ द्रव्य पुरुष लिया जाय तो नपुसकवेद वाले पर्याप्त मनुष्यो का अन्तर्भाव आप किस मे करेंगे। सिद्धान्त ग्रन्थो मे तो पर्याप्त मनुष्य से पुरुष वेदी और नपुसकवेदी मनुष्यो का ही ग्रहण किया है। प्रमाण हम पहले दे आये हैं। विवादस्थ और निर्णीय के अन्तर को हम नहीं समझ सके कृपया खुलासा करिये।

पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषण को लेकर हमें कई बार आपत्ति कर चुके हैं किन्तु फिर आप उसी बात को सामने लाते हैं इसलिये पुनः २ लिखना पड़ता है। यदि आप कोई नई बात उपस्थित करते तो हमें भी उस बात को न दुहराना पड़ता।

अब की बार आपने पर्याप्त और अपर्याप्त के साथ स्वाश्रित और पराश्रित भेद लगाये हैं सो ये किस ग्रन्थ के आधार पर आपने इन भेदो की रचना की है कृपया खुलासा करें।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि ६३ सूत्र मे मनुष्यनी से भाव मनुष्यणी ही विवक्षित है। यदि ऐसा न लिया जायगा तो इससे जैन सिद्धान्त पर बड़ी विपत्ति उपस्थित होगी और श्वेताम्बरियों की मनसा पूरी होगी क्योंकि ताड़ पत्र की प्राचीन प्रति मे सजद पद पाया गया है। और आप जैसे विद्वान उस सूत्र का द्रव्य रूप पर जनता को बहका रहे है इससे प्रतिपक्ष जनता को भ्रमम डालकर आसानी से द्रव्यस्त्री के १४ गुणस्थान सिद्ध कर सकेगी।

प्रश्न—आपने जो उत्तर दिया है उसमे यह स्वीकार कर लिया है कि ८७ सूत्र की उत्थानिका मे वेद विशिष्ट विशेषण लगाने से भावस्त्री का ग्रहण होता है इस आप कथन से ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि जहा पर वेद विशेषण नहीं है वहांपर द्रव्यस्त्री का ग्रहण होता है। इसीलिये ९२ व ९३ सूत्रोंकी उत्थानिका मे वेद विशेषण नहीं होनेसे द्रव्यस्त्री का ही ग्रहण होता है यह आपके कथनानुसार भी सिद्ध हो गया।

गोम्मटसार की गाथा नं० १५६ के विषय मे हमारा प्रश्न था परन्तु उसे आपने सर्वथा छोड़ दिया और बिना प्रकरण के गुणस्थान की अपेक्षा से उदय व्युच्छित्ति प्रकरण का उत्तर दिया है जो सर्वथा बे-प्रसङ्ग है। हमने मार्गणा के प्रकरण में १५६ गाथा का उत्तर पूछा था उसका कोई उत्तर आपने नही

दिया है। इसी प्रकार 'तल लीन मधुग विमलं' इस श्लोक के अनुसार पर्याप्त द्रव्य मनुष्यो की सख्या और उसके त्रिचतुर्थ भाग, परिमाण मनुष्यणियों का अर्थात द्रव्यस्त्रियो की सख्या बतलायी है जो कि बहुत स्पष्ट एव निर्णीत है उसे भी नहीं मानकर आपने उस मार्गणा प्रकरण को छोड़कर, जो कि द्रव्य शरीर का ही विधायक है गुणस्थान प्रकरण को उदय व्युच्छित्ति का जो प्रसङ्ग उत्तर दिया है सो सदुत्तर नहीं होने से यहा विचार कोटि मे नहीं लिया जा सकता है। यदि आप हमारे प्रश्न का सदुत्तर देना चाहते हैं तो फिर भी हम पूछते हैं कि १५६वीं गोम्मटसार की गाथा के अनुसार एवं तललीन मधुग विमल इस श्लोक के अनुसार जो पर्याप्त मनुष्यो की अर्थात द्रव्य मनुष्यो की और उस सख्या के त्रिचतुर्थ भाग मनुष्यणियों की अर्थात द्रव्यस्त्रियो की सख्या गिनाई गई है उसे आप मानते है या उस सख्या को भाव पुरुष और भावस्त्री की अपेक्षा बताते हैं उसी मार्गणा प्रकरण के १५६ वीं गाथा के आधार उत्तर दीजिये तभी सदुत्तर माना जायगा। अन्यथा जो बात पूछी जाय उसे छोडकर दूसरा कोई सम्बन्ध एव प्रकरण रहित उत्तर दिया जाय तो वह कभी सदुत्तर नहीं माना जा सकता है।

इसी प्रकार धवला के खुद्दाबंध प्रकरण में भी २८ व २६ सूत्रो द्वारा भी पर्याप्त मनुष्य (द्रव्य मनुष्य) और मनुष्यणी (द्रव्यस्त्री) की सख्या का विधान स्पष्ट रूप से किया है परन्तु उस निर्णीत एव स्पष्ट रूप से कहे गये विधान का स्वीकार नहीं करके उसका अन्यथा उत्तर कर्मकाड के उदय प्रकरण का दिया है जो सर्वथा प्रसङ्ग विरुद्ध होने से सदुत्तर नहीं कहा जा सकता है। इसी आपके उत्तर के प्रश्न १ मे जो यह कहा गया है, कि 'सूत्रकार ने तीन गुणस्थान से ऊपर जहा २ गुणस्थानो का वर्णन किया है वहा पहुडि और जाव शब्द के आधार से वर्णन किया है यह सूत्रकार का नियम कहीं भी बाधित नहीं है।' आपने इस नियम के बाधित करने के जो स्थल दिये हैं वे स्थल इस नियम के बाधक नहीं हैं। कारण कि उन सूत्रो मे चदुसु पंचसु आदि सख्या देकर गुण-स्थान गिनाये है, जहा पर सख्या पहिले निर्देश की जाती है वहा सख्या गिनानी ही पड़ती है आप हमारे अभिप्राय को नहीं समझे। इसी कारण आपका लिखा हुआ उत्तर प्रकृत विषय का बाधक नहीं हो सकता।

प्रश्न दूसरे में जो द्रव्यस्त्रीणा पद आया है वह निर्वृत्ति शब्द के साथ आया है और निर्वृत्ति शब्द का मोक्ष अर्थ किसी भी आगम का वाक्य या कोष प्रमाण से होता नहीं है। निर्वृत्ति शब्द का अर्थ निष्पत्ति होता है, अस्मादेव आर्षात् द्रव्यस्त्रीणा इस पक्ति से टीकाकार ने यह बतलाया है कि आर्ष प्रमाण से द्रव्यस्त्रियो की सिद्धि है यह बात जब ही लिखी जा सकती है कि ६३वे मे सयत पद नहीं हो इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण के पत्र ४६ मे है उसको देखकर यहा के प्रकरण का जो आशय है वह आपको समझ मे आ जायगा। उत्पद्यते क्रिया का सम्बन्ध द्रव्य शरीर से ही हो सकता है इसलिये इस विषय मे आपने जो उत्तर दिया है वह युक्ति सङ्गत नहीं है। यहा श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता से द्रव्य शरीर की सिद्धि मे हेतु दिया है वह हमारा हेतु तदवस्थ ही है उसका आपके उत्तर मे कोई खण्डन वाक्य नहीं है। दूसरे इस सूत्र मे यदि सञ्जद पद होता तो

टीकाकार सञ्जद पद को लेकर ही शङ्का उठाते परन्तु शङ्का १४ गुणस्थान की उठाई है। इससे भी स्पष्ट है कि सूत्र में सञ्जद पद का होना असिद्ध है। हमारा आशय इतना ही है कि मनुष्य पर्याप्त में जो पर्याप्त शब्द है उससे द्रव्य पुरुष का बोध होता है यदि मानुषी के साथ में भी पर्याप्त शब्द होता तो वहां भी द्रव्यस्त्री ली जाती। परन्तु उसके साथ में वह शब्द नहीं है। इसलिये सिर्फ मानुषी से वेद वैषम्य सापेक्ष भावस्त्री अर्थ होता है। आपकी दृष्टि में पर्याप्त शब्द होते हुये भी सर्वत्र भाव ही लिया गया है तो मनुष्य का सापेक्ष वेद वैषम्य में द्रव्यस्त्री का ग्रहण हो जायगा। ऐसा होने से जो आपत्ति पहले बताई जा चुकी है वह यहां उपस्थित हो जायगी। यहां पर्याप्त मनुष्य से द्रव्यपुरुष का ग्रहण है। इसमें नपुंसकवेदी आ जाता है तो कोई हानि नहीं है। अतः मनुष्य के साथ जो पर्याप्त शब्द है उस पर्याप्त शब्द ही का यह प्रयोजन है कि जो द्रव्यस्त्री सापेक्ष भाव पुरुष नहीं लिया जा सकता है अत. पर्याप्त विशेषण होनेसे सर्वत्र द्रव्यशरीर ही लिया जायगा।

जो जिस देह से सम्बन्धित भाववेद होता है वह स्वाश्रित है और जो परदेह से सम्बन्धित भाववेद होता है वह पराश्रित कहा जाता है। यह बात समवेद और वेद वैषम्य से स्पष्ट हो जाती है।

निम्न लिखित विद्वान ९३वें सूत्र के मानुषी शब्द का अर्थ 'भावस्त्री' करते हैं।

१-पं० वंशीधर जी शास्त्री इन्दौर।
२-पं० पन्नालाल जी सोनी बम्बई।
३ पं० कैलाशचन्द्र जी बनारस।
४-पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री बनारस।

द्रव्यस्त्री पक्ष वाले पण्डितों के नाम निम्न प्रकार हैं।

१-क्षुल्लक सूरिसिंह जी।
२-पं० मक्खनलाल जी शास्त्री मोरेना।
३-पं० रामप्रसाद जी शास्त्री बम्बई।
४-पं० तनसुखराय जी नादगाव।
५-पं० उल्फतराय जी भिण्ड।

इसी द्रव्यस्त्री पक्ष में निम्न लिखित विद्वानों ने पत्र द्वारा सहमति भेजी है।

१-पं० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य सहारनपुर।
२-पं० श्रीलाल जी पाटनी अलीगढ।
३-सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर सिवनी।
४-मोतीचन्द्र जी कोठारी फलटण।
५-पं० नन्दकिशोर जी मथुरा।

[सम्पादकीय—श्री वीर निर्वाण सम्वत २४७२ वि० सं० २००२ पौषबदी १ से पौषबदी ५ तक के श्री चन्द्रप्रभ दि० जैन मन्दिर भूलेश्वर के वार्षिक उत्सव पर आमन्त्रित और स्थानीय विद्वानों में जो 'सञ्जद' शब्द को लेकर उपर्युक्त प्रश्नोत्तर हुये हैं उन पर से जो कुछ भी निर्णीत विषय होगा उसे पूज्यपाद श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज प्रकाश में लावेंगे। वह मान्य होगा। ऐसी बम्बई दिगम्बर जैन पञ्चायत की मान्यता है।]

रामप्रसाद जैन शास्त्री,
सम्पादक दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण।

(प्रमादवश २५२वें पृष्ठ की ११वीं पंक्ति में 'निर्णय' शब्द के स्थान पर 'निर्णीत' छप गया है सो पाठक महानुभाव सुधारकर पढ़ें। —मुद्रक)

संयत पद के विषय में कतिपय विद्वानों के विशद विचार

श्रीमान् पूज्य क्षुल्लक सूरिसिंह जी महाराज

मूड़बद्री में ताड़पत्र प्रतियों के निरीक्षण के बाद मेरा सञ्जद शब्द पर विचार

वाचक वर्ग ! हमारे दिगम्बर जैन समाज में दो वर्ष से यह चर्चा चल रही है कि द्रव्यस्त्री मुक्ति प्राप्त कर सकती है या नहीं ? अधिकांश लोगों का कहना है कि द्रव्यस्त्री मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकती तथा प्रोफे० हीरालाल जी और उनके सहयोगी कुछ व्यक्ति कहते हैं कि द्रव्य स्त्री मुक्ति प्राप्त कर सकती है।' इस के लिये प्रोफेसर हीरालाल जी ने श्री षटखण्डागम के नं० ६३ सूत्र का प्रमाण दिया है। इस सूत्र मे 'सञ्जद' शब्द है। इसलिये द्रव्यस्त्री को मुक्ति हो सकती है।

इसके विरुद्ध कई लोगो का विचार है कि सूत्र में 'सञ्जद पद' है इसलिये सूत्रानुसार भावस्त्री को मोक्ष हो सकता है। इस प्रकार अर्थ करते हैं।

प्रोफेसर हीरालाल जी कहते हैं कि सूत्र नं० ६३ का प्रकरण द्रव्यस्त्री का है भावस्त्री का प्रकरण नहीं है। इस प्रकार दो पक्ष पड़े हुये हैं। भावस्त्री का प्रकरण सिद्ध करने के लिये पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री आदि के लेख निकल चुके हैं उन्हें पुस्तक रूप मे श्री० पं० नाथूराम जी ने छापा है। इसके अलावा पं० वंशीधर जी शास्त्री सोलापुर वाले भी भावस्त्री सिद्ध करने के लिये लिख रहे हैं परन्तु सूत्र नं० ६३ का प्रकरण द्रव्यस्त्री का है और सूत्र मे 'सञ्जद' पद जो है वह लेखक के हस्तदोष से पड़ा है, इसलिये ताम्रपत्र की प्रति मे सञ्जद' शब्द नही लिखना चाहिये। इस प्रकार लेख में और पं० रामप्रसाद जी शास्त्री बम्बई लिख रहे हैं। इस प्रकार तीन पक्ष हो गये हैं।

१—प्रोफेसर हीरालाल जी व उनके सहयोगी का पक्ष है कि नं० ६३ सूत्र का प्रकरण द्रव्यस्त्री का है अतः द्रव्यस्त्री को मोक्ष होता है। ताडपत्र मे भी 'सञ्जद' शब्द है अतः द्रव्यस्त्री को मोक्ष प्राप्त करने का मत श्री भूतबली पुष्पदन्ताचार्य का था। श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने द्रव्यस्त्री और भावस्त्री भेद करके द्रव्यस्त्री को मोक्ष प्राप्ति का निषेध कर दिया और श्वेताम्बर तथा दिगम्बर ये दो मत निकाले ?

२—उक्त सूत्र मे 'सञ्जद' शब्द है इसलिये भाव स्त्री को मोक्ष होती है इसलिये ताडपत्र की तरह ताम्र पत्र मे 'सञ्जद' शब्द रख दिया है। इस पक्ष मे पं० खूबचन्द जी शास्त्री इन्दौर तथा पन्नालाल जी मुख्य रूप से हैं और उनका कहना है कि ताम्र पत्र मे हम ने नं० ६३ के सूत्र में जो 'सञ्जद' शब्द रखा है

वह किसी को भी नहीं निकालने देंगे।

ताम्रपत्र पर लिखने में मुख्य रूप से श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती शांतिसागर आचार्य का उपदेश है और उन्हीं की सम्मति से करीब १५०००० डेढलाख का चन्दा किया गया है तदर्थ कमेटी भी बनायी गई है। कमेटी मे कौन २ व्यक्ति है इसकी मुझे पूरी स्मृति नहीं है। इसलिए उनके नाम नहीं लिखे हैं। कमेटी ने और आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने इन दोनों पण्डितो को शायद सर्वाधिकार दिया होगा कि ताम्र पत्र पर कैसे भी लिखाओ वह हमको मान्य है। इसीलिये "किसी को भी नहीं निकालने देंगे" ऐसा खुले रूप में बोल रहे हैं।

इस पर हमारा निजमत यह है कि, यदि कमेटीने इन दोनों पण्डितो को अधिकार दिया हो तो क्या कमेटी को दिगम्बर आम्नाय का घात करने का अधिकार है? लेकिन खुद आचार्य शांतिसागर जी महाराज तथा उनके अनुयायी दिगम्बर आम्नाय का घात करने को तैयार नहीं होंगे यह सत्य है त्रिकाल सत्य है।

३—मै (क्षु० सूरिसिंह) प० रामप्रसाद जी, प० मक्खनलाल जी मोरेना, प० तनसुखलाल जी, प० वर्द्धमान जी, प० उल्फतराय जी मेंड, प० उल्फतराय जी भिण्ड, प० माणिकचन्द जी न्यायाचार्य, प० श्रीलाल जी अलीगढ़ इत्यादि का मत है कि यह प्रकरण द्रव्यस्त्री का है, भावस्त्री का नहीं है, इसलिये ताम्रपत्र में 'सञ्जद' शब्द नहीं होना चाहिये वह निकालना ठीक है, ताड़पत्र मे जो सञ्जद शब्द पड़ा है वह प्रति करने वाले लेखक की भूल है। अस्तु।

मैं अभी ता० २८-१-१९४६ को मूडबिद्री गया था। वहा पर स्वामि श्री भट्टारक पट्टाचार्य से निवेदन किया कि मुझे ताड़पत्र की श्री धवला जी की प्रति देखना है इसलिये मुझे दिखा दीजिये। उन्होने अनुमति देकर श्री प० नागराज शास्त्री को तीनों प्रति अच्छी तरह दिखाने को कहा मैने वहा जो अच्छी तरह से देखा सो आपके सामने रखता हूं।

(बम्बई मे उनके फोटो हैं उनके ब्लौक बना कर के बम्बई पञ्चायत ने यदि छपा दिया तो सबको देखने मे आ जायगे, श्री प० वर्द्धमान जी शास्त्री सोलापुर वालो ने भी सूत्रो को छपाया है मुझे तथा पण्डितो को कहा था कि 'सञ्जदट्ठ' शब्द है लेकिन उस पर किसी ने भी विचार नहीं किया)

मूडबद्री में श्री धवला जी की ताड़पत्र की प्रतिया तीन हैं उनमें दो जीर्ण तथा अपूर्ण है, एक पूर्ण है। फोटो पूर्ण प्रति का निकाला हुआ है। क्योंकि उसके पत्र सम्पूर्ण हैं विवादस्थ विषय के पत्र का फोटो भी दूसरी प्रति स उतारा गया है।

—विशद विवरण—

अ — प्रति जीर्ण और अपूर्ण है इसमें बहुत पत्र नहीं रहे है।

ब — प्रति जीर्ण है किन्तु 'अ' प्रति से कुछ कम पुरानी है इसके पत्र कुछ कम नष्ट हुये है।

क — प्रति उक्त दोनो प्रति से पीछे की लिखी हुई है अत वह साधारणत ठीक है तथा पूर्ण है।

तीनो प्रतिया श्याही मे लिखी हुई हैं।

धवला जी की कागज की प्रतिया (एक कनडी लिपि की, दूसरी देव नागरी लिपि की) जिन ताडपत्र की तीनो प्रतियों से नकल करके लिखी गई हैं वे ताडपत्र की प्रतिया भी अधिक प्राचीन मालूम नहीं होतीं क्योंकि ताडपत्र के प्राचीन ग्रन्थ सुई से ताड़पत्र

पर खोद पर श्याही से भरे पाये जाते हैं। किन्तु ये प्रतियां ताड़पत्र पर सुई से खुदे हुये अक्षरों वाली नहीं हैं, श्याही से लिखी हुई हैं। कागज वाली प्रतिया ५० वर्ष से अधिक पुरानी नहीं हैं।

'क' प्रति के अक्षर सबसे मोटे हैं।

'अ' प्रति में विवादस्थ सञ्जद पद वाले ६३वें सूत्र वाला पत्र नष्ट हो चुका है।

'ब' प्रति मे ६३वा सूत्र इस प्रकार है:—

'सम्मामिच्छादिट्ठि असञ्जदसम्मादिट्ठिसजदा-सजदट्ठ सजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥६३॥

वृत्ति—हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टय किन्नोत्पद्यन्ते इतिचेन्नोत्पद्यन्ते। कुतोवसीयते अस्मादेवार्षात अस्मादेवार्षात द्रव्यस्त्रीणां निव्वृंत्ति· सिद्ध येत इतिचेन्न सवासस्त्वाद प्रत्याख्यानगुणस्थितानां सयमानुपपत्ते भावसयमस्तासा सवाससामप्य-विरुद्ध इतिचेन्न तासां भावासयमोऽस्ति। भावासयमा-विनाभावी वस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तें।

इस प्रति में सूत्र में 'ट्ठ' शब्द है, वृत्ति में स्मा' निव्वृंत्ति ये दो अशुद्धिया हैं। 'मयमानुपत्ते' इस पद में 'प' छूटा हुआ है। इतिचेन्नतासा भावासयमोऽस्ति यह पद अधिक है।

क—प्रति मे यह सूत्र ऐसे लिखा है—

सम्मा इ मिच्छाइट्ठि असञ्जद सम्मा-इट्ठि सञ्जदासञ्जदट्ठाणे णियमापजत्तियाओ ॥६३॥

इस तरह सूत्र म तीसरा अक्षर इ लिखकर फिर काटा हुआ है। वृत्ति में 'निर्वृत्तिः' शब्द है बाकी सब छपे हुए के समान है। तथा 'अस्मादेवार्षात्' की जगह मे यस्मदेवार्षात पद है। अस्तु।

उपरोक्त प्रकार दोनो ताड़पत्र की प्रतियों का उतारा देकर अब मै अपना विचार प्रगट करता हू। इस पर समाज के विद्वान लोग निष्पक्ष भाव से विचार करें।

ब—प्रति के लेखक महाशय जी ने जिस समय यह ताड़पत्र ग्रन्थ लिखा है उस समय की पहिली प्रति में 'सञ्जदासञ्जदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ'। ऐसा ही होगा फिर लिखते समय सञ्जदासञ्जदट्ठ लिखा है फिर उस समय उसकी दृष्टि का सक्रमण हुआ है इसका क्या कारण हुआ यह कुछ नहीं कह सकते, दृष्टि सक्रमण के बाद लिखते समय मैं ने कितना लिखा है इसका विचार न करके आगे फिर संजदट्ठाणे इतना ज्यादा लिखा है ऐसा मालूम पड़ता है।

आगे लिखने के बाद भी उसने फिर मिलान नहीं किया ऐसा मालूम होता है। इस प्रकार 'संजद'ट्ठ पद हस्तदोष (लेखक की गलती) का स्पष्ट द्योतक है। ऐसा न मानने स एक जबरदस्त शङ्का यह खड़ी होती है कि 'सजदासजद' के आगे 'ट्ठ' अक्षर क्यों पड है? यह एक विचारणीय स्थान है।

इस प्रति पर से 'क' प्रति लिखी गई है। उसके लेखक ने 'ट्ठ' अक्षर को छोड़कर सीधा लिख दिया है। क्योकि उसने भी इस सूत्र को लिखते समया एक 'इ' अक्षर अधिक लिखा है फिर उसने उसको काटा है।

इसलिये ज्ञात होता है कि इन उपलब्ध प्रतियो के पहिले यानी 'अ' प्रति मे सञ्जदासञ्जदट्ठाणे प होगा जिससे कागज प्रति के लिपिकारो ने उसी प्रकार लिखा है तथा निर्वृत्ति· शब्द भी उसी प्रति मे होगा इसलिये कागज की प्रति शुद्ध हो गई है ऐसा साफ मालूम होता है। 'अ' प्रति मे जो अब अनेक पत्र नहीं हैं इसका कारण मूडबद्री मे यहीं ज्ञात हुआ है

कि कागज की प्रति लिपियां होने पर २५-३० वर्ष तक यह प्रति लोगों के दर्शन के लिये रखी थी उसके कई दफे निकलने तथा एक के हाथ से ही दर्शनार्थियों का कार्य न होने से कई पत्र टूट गये इस प्रकार होने से पत्र सख्या बराबर नहीं रही उसके बाद 'ब' प्रति दर्शन के लिये रखी थी उसमें से भी थोड़े पत्र नहीं रहे, वे भी नष्ट भ्रष्ट हो गये हैं।

जब कागज पर प्रति लिपि हुई तब तीनो प्रति अच्छी रही थीं इसलिये कागज की प्रति शुद्ध हो गई है ऐसा भी प० नेमिराज जी शास्त्री ने कहा है उन्हो ने भी इन प्रतियों के प्रति लिपि में काम किया है।

एक बात इस प्रमाण को और भी पुष्ट करती है कि कागज की प्रति में 'निर्वृत्ति.' शब्द है। वह किस आधार से लेखक ने लिखा ? क्योंकि 'ब' तथा 'क' प्रतियो में क्रम से 'निव्वुत्तिः' तथा 'निवृत्तिः' ऐसा पाठ भेद साफ है। फिर कागज की प्रतिमे 'निर्वृत्ति.' ऐसा पाठ किस आधार से लिख सकते हैं ? इसके विचार करने पर 'अ' प्रतिमें ही निर्वृत्तिः शब्द होगा और उसीका उतारा किया है अभी 'अ' प्रतिमें सज-दासजदट्ठाणे ऐसा पाठ होगा इसलिये उसी प्रकार कागज के प्रति में आया है, ऐसा ज्ञात होता है।

तथा एक यह भी है कि, 'कागज की प्रति को 'अ' ताड़पत्र पर से सशोधन करके रखा था' यह बात सबके मुख से कही जाती है इसलिये 'अ' प्रति पर से सशोधन हो गया है ऐसा साफ मालुम होता है। अब उसमें वह पत्र नहीं होने से तथा पक्ष की खेंचतानी होनेसे यह सब विवाद हो रहा है।

यह मैं ने निष्पक्ष भाव से विचार करके जो मेरे मनोदेवताने कही है उसी प्रकार आप दिगम्बर जैन समाज के धीमान तथा श्रीमान तथा त्यागी गण तथा श्रावक श्राविका गणादिको के सामने रखी है वह योग्य है या अयोग्य है इसका विचार करें, ऐसा निवेदन है।

श्रीमान् तर्करत्न पं० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य,

सहारनपुर।

"संयत पद के सम्बन्ध में मेरा अभिमत"

षटखण्डागम, राजवार्तिक, तथा अन्य ग्रन्थो का गवेषण करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि षटखण्डा-गम सूत्र ९३वें में 'सयत' शब्द नहीं है ताड़पत्र प्रति में लेखक के प्रमाद से जो सयत पद दृष्टिगोचर हो रहा है वह प्रक्षिप्त है।

इसकारण ताड़पत्र प्रति का साहाय्य लेकर ताम्रपत्र प्रति में सयत नहीं रखना चाहिये।

यदि ताम्रपत्र प्रति में सयत शब्द रहेगा तो श्री दिगम्बर जैन सम्बन्धी प्राचीन आम्नाय में बाधा पहुचना सम्भव होगा।

श्रीमान् पं० श्रीलाल जी पाटनी,

अलीगढ़।

—: सप्रमाण सम्मति :—

माननीय उपस्थित विद्वन्मण्डली !!!

यहां विचार इतना ही है कि जब पहले सूत्रों में सामान्य रूप से निरूपण किया वहां 'संजद' शब्द दिया ही गया—पश्चात्-मनुष्य पर्याप्तो में भी ग्रन्थकारों ने—उसे माना हो—अब इस ६३वें सूत्र में केवल स्त्री पर्याप्तों के लिये कथन है। जब उनमें पञ्चम गुणस्थान से अधिक गुणस्थान होता नहीं-फिर वहां सञ्जद शब्द सर्वथा असम्बद्ध है जो कि सिद्धांत विरुद्ध है। केवल वहां लिख जाने से उसे ठीक मानना भ्रम है। मैं एक नहीं हजारों पुस्तकोंमें 'उत्तम क्षमा मार्दवार्जव' सूत्रमें सत्यधर्मका पाठ शौचसे पहले लिखा दिखा सकता हूं परन्तु पहले शौच है पीछे सत्य इसलिये लिखने मात्र से महत्व नहीं रहता—उसकी परिभाषा ही मिलानी पड़ती है। कोई ग्रन्थकार ने तो उसे लिखा ही नहीं है, लिखा तो लेखक ने ही है।

दूसरी बात यह है कि जब स्त्री पर्याप्तों में ग्रन्थकार के चौथे से १४ गुणस्थान तक लिखने अभीष्ट होते तो—'पहुडिजाव' लिखना था जैसे कि उनकी लेखन शैली है—सो है नहीं। अतः सञ्जद शब्द नहीं चाहिये। इस पर श्री० पं० रामप्रसाद जी का लिखना ठीक है उसमें मेरी पूर्ण सम्मति है।

विशेष सब विद्वान दूसरे अङ्क में लिख ही चुके हैं उसमे काट छांट करना उचित नहीं है।

श्रीमान् पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री,

मथुरा।

वर्तमान में षट्खण्डागम के सूत्र संख्या ६३वे में सञ्जद शब्द रखने, न रखने बाबत विद्वानों पर परस्पर गम्भीर मत भेद चल रहा है समाचार पत्रों में भी अनुकूल प्रतिकूल लेख प्रकाशित हुये हैं वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे सहयोगी विद्वानों ने सूत्र के पूर्वापर सम्बन्ध तथा जैन सिद्धांत पर भली प्रकार गवेषणा नहीं की है अन्यथा इतना विवाद नहीं बढ़ता 'सञ्जद' शब्द के नहीं रखने से ही दि० जैन सिद्धांत का संरक्षण होता है द्रव्यवेद और भाववेद की चर्चा विचारणीय समस्या है संजदको सूत्रमें रखनेसे द्रव्यवेदी स्त्री को चौदह गुणस्थान सिद्ध होते हैं जोकि सिद्धान्त घातक है यदि इस सूत्र से भावस्त्री को लिया जावे तो द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थानों के लिये षट्खण्डागम के किस सूत्र से व्यवस्था हो सकेगी। इसे विद्वान समझाने की कृपा करेंगे तो उभय पक्ष एक मत हो जायगे ऐसी मेरी धारणा है। इस सूत्र की

और इससे पूर्व सूत्रों की धवला टीका के पढने से तो यह स्पष्ट हो रहा है कि यहा का विषय द्रव्यस्त्री का ही है भावस्त्री का होता तो भावस्त्री के द्योतक कोई संकेत होते। सूत्रकार की शैली से तो इस सूत्र मे सञ्जद शब्द को रखने की गुञ्जाइश बिलकुल नहीं है। अतएव ताम्रपत्र प्रति में इस शब्द का संयोजित करना सर्वथा असङ्गत है।

अजितकुमार जैन शास्त्री,

मुलतान।

दि० जैन आर्ष सिद्धात ग्रन्थों का मूल स्रोत षट्खण्ड आगम है, उसी के अनुसार समस्त सिद्धात ग्रन्थों की रचना हुई है। उसके प्रतिकूल सैद्धांतिक विधान किसी भी ग्रन्थ मे नहीं पाया जाता।

दिगम्बर जैन सिद्धांतानुसार स्त्री शरीर मोक्ष प्राप्ति की योग्यता नहीं रखता। उसका यह विधान कर्म सिद्धान से बिलकुल ठीक बैठता है इसका खुलासा विवरण इस ग्रन्थ के प्रथम, द्वितीय अंश में तथा इस तृतीय अंश में (पीछे) आ चुका है।

स्त्री पर्याय से मुक्त होने की अयोग्यता का विधायक सूत्र भी षटखण्ड आगम में अवश्य होना चाहिये जिसके अनुसार आगामी परम्परा मे स्त्रीमुक्ति निषेध का विधान चलता रहा।

षटखण्ड आगम जीवस्थान सत्प्ररूपणा के जिस ९३वें सूत्र के विषय में विवाद चल पड़ा है उसके विषय में पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंह जी ने जो प्रकाश डाला है वह समुचित प्रतीत होता है। अतः यह ज्ञात होता है कि मूडबद्री की सबसे प्राचीन ताड़पत्र की 'अ' धवला प्रति में इस सूत्र में 'सञ्जद' पद न था उससे नकल की गई 'ब' प्रति में लेखक के प्रमाद से कुछ अशुद्धि के साथ 'सञ्जद' शब्द आया फिर उस 'ब' प्रति से नकल की गई 'क' प्रति में लेखक ने बीच की अपभ्रष्ट अशुद्धि 'ड्ड' को भी छोड़ दिया सीधा 'सञ्जदासञ्जद' शब्द के आगे 'सञ्जद' पद जोड़ दिया।

किन्तु कागज पर उतारी गई धवला की प्रति उक्त तीनों ताड़पत्र की प्रतियो से मिलान करके लिखी गई अत 'अ' प्रति के अनुसार उनमें 'सञ्जद' पद न आ पाया।

इस क्रमिक अशुद्धि विकास पर श्रीमान प्रोफेसर हीरालाल जी को तथा ताम्रपत्र पर धवला लिखाने वाले विद्वानो को वीतराग भाव से विचार करना चाहिये क्योंकि कागज प्रति के लेखक प० नेमिराज जी शास्त्री अभी विद्यमान हैं और वे कहते हैं कि—

ताड़पत्र की ब' 'क' प्रतियों की अपेक्षा कागज की प्रतिया इसलिये अधिक शुद्ध हैं कि ताड़पत्र की 'अ' प्रति उस समय पूर्ण थी और हमने तीनो प्रतियों से मिलान करके कागज पर धवला को लिखा है।

उनकी इस सरल बात से परिणाम निकलता है कि इस सूत्र में 'सञ्जद' पद नहीं होना चाहिये।

श्री वीरसेन स्वामी ने धवला में इस ग्रन्थ के अन्य सूत्रो द्वारा बतलाये भावस्त्री के १४ गुणस्थानों को लेकर प्रश्न उत्तर लिखे हैं।

सम्पादकीय—

—सम्पादकदृष्ट सैद्धान्तिक-सुनहला प्रकाश—

दिगम्बर जैन धर्म का अटल सिद्धांत है कि द्रव्य-स्त्री उसी भव से मोक्ष लाभ नहीं प्राप्त करती इस सिद्धांत को श्रीमान प्रोफेसर हीरालाल जी साहब मुनि श्री कुन्दकुन्द स्वामी के द्वारा प्रतिपादित कह कर प्राचीन नहीं मानते हैं इसमे हेतु देते हैं कि 'यह बात प्राचीन होती तो प्राचीन षटखण्डागम के सूत्रों में भी पाई जाती' परन्तु यह आपकी दलील निर्हेतुक है कारण कि एक तो षटखण्डागम श्री कुन्दकुन्द स्वामी से पुराना हो यह बात भी निश्चित नहीं है इस बात का समुचित उत्तर मेरे ट्रैक्ट के आदि मे दिया गया है दूसरे आपने षटखण्डागमके सूत्रोका निरीक्षण भी सावधानी के साथ सैद्धानिक पद्धति से नहीं किया है जो कि पूर्वापर सम्बन्ध की पूर्ण अपेक्षा रखता है। 'षटखण्डागम के ६३वें सूत्र में जो पर्याप्त शब्द दृष्टि-गोचर हो रहा है वह ही इसी बात का सूचक है जो श्री कुन्दकुन्द स्वामी का सिद्धांत है वह अनादि अमर तीर्थङ्कर प्रतिपादित सिद्धांत है क्योंकि मोक्षोपयो-गिता मे जहां कहीं भी व्रत विधानादिका वर्णन है वह पुरुष अपेक्षित है मोक्ष शास्त्र तत्वार्थ सूत्र जो कि उभय सम्प्रदाय-मान्य है तथा प्राचीन श्रावकाचार रत्नकरण्डादिक हैं उनमें भी यही बात है तथा पुराणों में प्राचीन पद्म पुराणादिक हैं उनमें भी कहीं पर यह बात नहीं पाई जाती जो कि द्रव्य स्त्री के मोक्ष की साधक हो। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में (हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च। पाप-प्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्) इस श्लोक में संज्ञस्य शब्द पुरुष के लिये सूचक है न कि स्त्री के लिये। तथा तत्वार्थसूत्र मोक्ष शास्त्रमें 'स्त्रीरागकथा श्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षण' इत्यादि सूत्रों से या श्वेताम्बर मान्य भाष्य से भी यह ही बात पाई जाती है। इससे सिद्ध है कि पुरुषोके लिये ही साक्षात उस शरीर से मोक्ष जाने का विधान है श्वेताम्बर सम्प्र-दाय में जो स्त्री के लिये मोक्ष का विधान किया कहा जाता है या पाया जाता है वह पीछे का सम्प्रदाय भेद के लिये किया गया है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

जो आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त ने षटखण्डागम के सूत्र ६३ में पर्याप्त शब्द के साथ स्त्री के पांच आदि के गुणस्थानो का विधान किया है तथा आगे के सूत्रों में जिस जगह १४ गुणस्थानो का विधान किया है वहां मनुष्य के साथ पर्याप्त शब्द को सूत्रो में रखते हैं परन्तु मनुष्यणी के साथ नहीं देखते इसमे भी स्पष्ट है कि पर्याप्त शब्द द्रव्य का वाचक है। पर्याप्तियां हैं वे छह प्रकार के पुद्गल द्रव्य की शक्ति विशेष है शास्त्रकारो ने शक्ति की पूर्णता को ही तो पर्याप्ति कहा है। शक्ति को गुण कहते हैं जो गुण होते हैं वे द्रव्य के आश्रय ही रहते हैं इसलिये स्पष्ट सिद्ध है कि अपने २ कार्य पूर्ण विशिष्ट जो जो

शक्ति है वह ही पर्याप्ति है वह एक शक्ति विशेष है और शक्तिमान जो पदार्थ है वे सर्व पर्याप्ति के आधार पुद्गल द्रव्य हैं उनसे बना हुआ जो शरीर है वह द्रव्य ही तो हुआ उससे जुदा वह और क्या पदार्थ हो सकता है। षटखण्डागम के समय मे इसे पर्याप्त कहते थे पीछे स्पष्टता के लिये उसीको 'द्रव्य' शब्द से कहा है इसलिये षटखण्डागम के सूत्रों में जो बात है वही बात पीछे के आचार्यों के मत मे है केवल शब्द भेद का फर्क है।

कुछ विद्वानो ने इसी सत्प्ररूपणा के ९३वें सूत्र के टिप्पण में 'सञ्जद' शब्द जोड दिया है उनका विशेष विचार का विषय नहीं है इसका तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि इस सूत्र में आये हुये 'पर्याप्त' शब्द पर ध्यान नहीं दिया है तथा आगे के सूत्रो में भी मनुष्यके साथ आये 'पर्याप्त' शब्द पर और मनुष्यणी के साथ न आये 'पर्याप्त' शब्द पर भी ध्यान नहीं दिया है। असलियत मे बात यह है कि आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि की इस विशेष कृति पर किसी का भी ध्यान नहीं गया है। वेद वैषम्य की सिद्धि तो आचार्य की यह विशेष कृति ही सिद्ध कर देतीहै। यदि वैषम्य कोई पदार्थ ही न होता तो आ-चार्य आगेके सूत्रोमें जहा पर मनुष्य और मनुष्यणी के १४ गुणस्थान बतलाये हैं वहा मनुष्यणीका विधान ही न करते परन्तु वहा पर मनुष्यणी का विधान किया वह भी बिना पर्याप्त के किया है इससे सिद्ध है कि वेद वैषम्य अवश्य होता है। इस विषय की चर्चा प्रोफे० हीरालाल जी ने कलकत्ते में पण्डितों के साथ चलाई थी परन्तु उस चर्चा में हीरालाल जी अपने प्रयोजन की सिद्धि नहीं कर सके थे पण्डितोंने सिद्ध कर दिया था कि वेद वैषम्य दिगम्बर सर्व शास्त्रीय मान्य है तथा युक्ति से भी उसकी सिद्धि होती है यह वेद वैषम्य श्वेताम्बर शास्त्रीय मान्य भी है। फिर अकेले हीरालाल जी के युक्ति आगम शून्य वेद वैषम्य को न मानने को अर्थात् उनकी मानी हुई मान्यता पर कौन विश्वास कर सकता है। वेद वैषम्य की बात को जो शास्त्रकारो ने शास्त्रो में प्रदर्शित की है उसका सिर्फ एक ही मुख्य विषय है और वह केवल मोक्षोपयोगिता के सम्बन्ध से है अन्यथा मोक्षोपयोगी शास्त्रो में उस विषय के लाने की आवश्यकता भी कुछ नहीं थी।

जीव विपाकी—जिसका जीवमें विपाक 'परिणाम' हो। जैसे ज्ञानावरण इसका सम्बन्ध ज्ञान गुण के साथ है इसलिये यह जीव विपाकी है क्योकि ज्ञान गुण खास जीव का गुण है। पर्याप्तिया भी जीव विपाकी हैं। इनका विपाक जीव के किस गुण में होता है जब यह विचार किया जाता है तो किसी एक खास गुण में इनका विपाक न होकर जीवन गुण के कारण जो समुदाय रूप गुण हैं उनमें होता है जैसे कि असिद्धत्व सर्व प्रकृति साध्य है उसी तरह जीवन गुण भी अनेक गुण साध्य है असलियत में आयु प्रकृति के साथ जीवन गुण का सम्बन्ध है जब तक आयु के निमित्त से जीवन का सम्बन्ध रहता है तब तक इनका विपरिणमन जो अपना शक्ति है (गुण है) उसको पूर्णता रूप सामार्थ्य विद्यमान रहता है इसी कारण ये पर्याप्तिया जीव विपाकी कही जाती हैं असलियत मे तो ये पुद्गल ही हैं इनका जो निर्माण हैं वह आगोपाग नामकर्म के निमित्त से होता है इसी लिये इनके निमित्त से पुरुष पर्याय है

वह द्रव्य पुरुष और स्त्री पर्याय है वह द्रव्य स्त्री हो जाते हैं नपुंसक पर्याय है वह भी इन्हीं पर्याप्तियोंके पुद्गल द्रव्य से निर्मित होती है इसलिये द्रव्य-नपुंसक होती है।

षटखण्डागम में इसी हेतु से अर्थात पर्याप्त शब्द विधान और नहीं विधान (अविधान) से द्रव्य और भाव ये दो भेद नियोजित किये हैं। दो भेद नियोजित करके भी जिस भेद में जो गुणस्थान होते हैं उनका भी स्पष्ट रूप से विधान किया है। इसी तत्व को लेकर वीरसेन स्वामी ने अपनी धवला टीका मे द्रव्य और भाव भेद का विधान करके जो वर्णन किया है वह षटखण्डागमके सूत्रोंका मुख्य स्पष्टीकरण है उससे ही ज्ञात होता है कि द्रव्य और भाव यह भेद मुख्य षटखण्डागम का है क्योंकि यह भेद उनकी सूत्र रचना से स्पष्ट प्रतीत है। अतः मानना होगा कि जो षटखण्डागम मान्य है वह ही सर्व आचार्य मान्य है। अन्य ग्रन्थकारो द्वारा जो द्रव्य और भाव भेद द्वारा गुणस्थानोका विधान है वह इन्हीं षटखण्डा गम सूत्रोंका स्पष्टीकरण रूप है। यह सब लेखनशैली की कुशलता है जो कि सूत्र की सूत्रता की सूचक है।

—सम्पादक

—श्रीमान् प्रोफेसर हीरालाल जी से—

* विवादस्थ विषय की चर्चा *

वीर शासन महोत्सव कलकत्ता मे बहुत से विद्वान सम्मिलित हुये थे। उस समय प्रो० हीरालाल जी भी आये हुये थे अत. विद्वत्परिषद में यह विचार हुआ कि जिन विषयो को लेकर प्रोफेसर हीरालाल जी ने चर्चा उठाई है उसके विषय में चर्चा करने के लिये यदि वे तैयार हों तो आमने सामने बातचीत हो जानी अच्छी है। रूपरेखा बनाते समय यह निश्चय हुआ कि विद्वत्समाज की ओर से एक वक्ता ही बोले। तदनुसार यह अधिकार प० राजेन्द्रकुमार जी प्रधानमन्त्री-सङ्घ को दिया गया। साथ ही विद्वत्परिषद के मन्त्री प० सुमेरुचन्द जी दिवाकर से कहा गया कि वे प्रोफेसर सा० से पत्र लिखकर पूछें कि वे कब और कहा चर्चा के लिये तैयार हैं ? प० सुमेरुचन्द जी ने बतलाया कि हमने आज प्रातः उनसे बातचीत की थी वे चर्चा करने के लिये तैयार हैं। तब पण्डित जी से कहा गया कि वे स्वीकृति प्राप्त करलें। तदनुसार प० सुमेरुचन्द्र जी ने प्रोफेसर सा० को निम्न आशय का पत्र लिखा—

प्रिय प्रोफेसर हीरालाल जी !

जुहारु—आज आपके साथ स्त्री मुक्ति, केवली कवलाहार आदि विषयो पर चर्चा निमित्त विद्वन्मण्डल को हमने १२ बजे के लगभग जैन भवन में पधारने की सूचना दे दी है और उनकी स्वीकृति भी प्राप्त हो गई है। आप कृपया उस

समय पधारें। स्नेही-सुमेरुचन्द दिवाकर।

विशेष—कृपया स्वीकृति जरूर भेजें।

यह पत्र प० नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य अध्यक्ष जैन सिद्धांत भवन आरा ले गये थे और उनसे ज्ञात हुआ कि प्रोफेसर सा० करीब १ बजे चर्चा के लिये आने वाले हैं तदनुसार करीब १ बजे प्रोफे० साहब हीरालाल जी प्रेमी जी व बैरिस्टर जमनाप्रसाद जी जज के साथ जैन भवन में विद्वानो के निवासस्थान पर पधारे। तदनन्तर सब मिलकर वहा से व्याख्यान भवन में गये। वहा पहुच कर चर्चा किस क्रम से की जाय यह तय किया गया।

निश्चय हुआ कि प्रोफेसर हीरालाल जी की ओर से वे स्वयं चर्चा करेंगे और दूसरी ओर से प० राजेन्द्र कुमार जी चर्चा करेंगे। तथा जिस उत्तर को दूसरी ओर का विद्वान लिखकर चाहेगा वह लिखकर दे दिया जायगा। मध्यस्थ का काम प० कन्हैयालाल जी मिश्र 'प्रभाकर' को सर्व सम्मति से सौंपा गया। जो अपने समय तक उन्हो ने बड़ी योग्यता से निभाया।

चर्चा का प्रारम्भ प्रोफे० हीरालाल जी ने किया उन्होंने बतलाया ... ऐसा नियम है कि ओरिंटियल कान्फ्रेंस में कुछ विषय विद्वानों में परस्पर चर्चा के लिये रखे जाते हैं। इस साल में इस सभा के प्राकृत व जैनधर्म विभाग का अध्यक्ष था। अत मैंने सोचा कि जिन कारणों से दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो फिरके हैं उन कारणों पर विचार करने के लिये चर्चा उठाई जाय। यह तीन विषय स्त्रीमुक्ति, सवस्त्र सिद्धि और केवली कवलाहारी हैं। दिगम्बर परम्परा में ये तीनों बातें स्वीकार नहीं की गई है किन्तु श्वेताम्बर इन्हें मानते हैं। अत मैंने दिगम्बर परम्पराके ग्रन्थोपर से इनको कान्फ्रेंस में बतलाने का प्रयत्न किया था। इस पर मैं ने पहले से एक पर्चा छपाया था जिसका उद्देश्य चर्चा था, प्रचार नहीं। मैंने इसका प्रचार नहीं किया। किन्तु किसी प्रकार से यह पर्चा बम्बई पञ्चायत को मिल गया। अत. उस ने इसका प्रचार किया है।

मैं दूसरे विद्वानो की सहायता से धवला ग्रन्थ का सम्पादन करता आ रहा हूं। प्रारम्भ में मै इस सैद्धांतिक विषय को बिलकुल नहीं जानता था उस समय जो विद्वान अनुवाद करते थे उन्हीं की सलाह पर मुझे निर्भर रहना पड़ता था। धवलके प्रथम भाग के ९३वें सूत्रमें 'संजद' पद उस समय के विद्वान प० फूलचन्द जी व पं० हीरालाल जी की सलाह से ही जोड़ा गया था। अभी प० फूलचन्द जी के साथ जैन सन्देशमें वेद वैषम्य को लेकर बड़े ही अच्छे ढङ्ग से चर्चा चल रही है। अब भी यदि वेद वैषम्य सिद्ध हो जाय तो मेरी सब शङ्कायें दूर हो जायगी।

इस पर प० राजेन्द्र कुमार जी ने कहा कि मैं प्रोफेसर साहब के इस कथन से सहमत नहीं कि प्रोफेसर सा० ने उक्त पर्चा चर्चा के लिये ही छपाया था। ऐसे प्रमाण है जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि उन्होने उक्त परचे का प्रचार भी किया। जब वे ओरिंटियल कान्फ्रेंस में बनारस आये थे तब तक उन्होंने बनारस के विद्वानों के पास व मेरे पास यह पर्चा नहीं भेजा था किन्तु दूसरी जगह वे इसके पहिले ही परचा भेज चुके थे। एक पत्र से केवल हमें इतना ही मालूम हुआ था कि वे किसी गम्भीर विषय पर चर्चा करना चाहते हैं। मैं भी उस समय बनारस आगया था। प्रोफेसर सा० के आने पर १० बजे दिन के मैं पं० कैलाशचन्द्र जी व पं०

फूलचन्द जी उनसे मिलने को गये। किन्तु मालुम हुआ कि वे प० सुखलाल जी के यहा गये हुये हैं। अतः हम लोग वहा पहुचे। मालुम हुआ कि वे यहा नही है किन्तु पं० सुखलाल जी के साथ पार्श्वनाथ विद्यालय मे भोजन के लिये गये हुये हैं।

तब तक हम लोग वहीं पर कुरसियो पर बैठ गये। सामने एक मेज रखी थी उस पर हम लोगो की दृष्टि गई। देखा कि कुछ छपे हुये परचे रखे हुये हैं उठाकर देखा तो ये वे ही परचे निकले जिनमें स्त्रीमुक्ति आदि की सिद्धि की गई थी। आप लोग भले ही इसे पाप समझें किन्तु हम लोगों ने उनमे से कुछ परचे उठाकर अपनी जेबों मे रख लिये। साथ ही यह निश्चय किया कि जब तक प्रोफे० सा० स्वय इस विषय की चर्चा नहीं करेंगे तब तक इस विषय की चर्चा को नहीं छेड़ना चाहिये। इसके बाद वे शाम को आमन्त्रित होकर विद्यालय में भी आये। उन्होने और विषयों पर अनेक चर्चायें भी की किन्तु इस विषय में एक अक्षर भी नहीं कहा।

हा! रात्रि को जब वे पं० फूलचन्द जी को लेकर शहर घूमने गये तब अवश्य उन्होंने पं० जी को एक परचा दिया। यद्यपि खुले अधिवेशन में अन्त में इस चर्चा का प्रारम्भ प्रोफे० हीरालाल जी ने किया था। मै प० कैलाशचन्द्र जी तथा पं० फूलचन्द जी इसके विरोध में भी बोले थे किन्तु वहा इतना कम समय मिला जिससे इसकी विस्तृत चर्चा न की जा सकी।

इसके बाद मैं व प० कैलाशचन्द्र जी दूसरे दिन प्रोफेसर सा० से मिले थे। कुछ विचार विनियम के बाद हम लोगोंने चुप्पी साध ली आशा थी कि प्रो० साहब अपने विचारों को स्वयं बदल लेंगे। किन्तु अब स्थिति ऐसी आ गई है जिससे इधर ध्यान देना जरूरी है।

इसके बाद पण्डित जी ने कहा कि प्रोफेसर सा० ने जो पर्चा छपाया है उसी क्रम से विचार किया जाय किन्तु प्रोफेसर सा० इस बात से सहमत न हुये और उनका कहना रहा कि मैंने जो इस समय वेद वैषम्य का प्रश्न उपस्थित किया है यदि उसका समाधान हो जाय तो मेरी सब शङ्काओं का समाधान हो जायगा।

अन्त मे पण्डित जी ने उनकी बात स्वीकार कर ली और प्रोफेसर सा० के सामने गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथा २७१ उपस्थित की जिसमें स्पष्टतः वेद-वैषम्य स्वीकार किया गया है। उसके चौथे चरण में बतलाया है कि वेद प्राय सम रहता है और कहीं विषम रहता है। यथा—

'पाएण समा कहिं विसमा'

प्रो० हीरालाल जी—जो पुत्र को जनता है वह पुरुष है, जो गर्भ धारण करती है वह स्त्री है और जिसमें ये दोनों बातें नहीं पाई जाती हैं वह नपुंसक है, पुरुषवेद आदि के उन लक्षणों को देखते हुये विषमता बन नहीं सकती।

प० राजेन्द्रकुमार जी—यह स्त्री, पुरुष और नपुंसक का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है। स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसकवेद के लक्षण इससे भिन्न हैं जो स्वयं जीवकाण्ड की गाथाओं में बतलाये हैं। इसके बाद जीवकांड की वे गाथायें प्रोफेसर सा० को बतलाई गई और आगे पण्डित जी ने कहा कि उन लक्षणों को देखते हुये विषमता को स्वीकार कर लेने में कोई बाधा उपस्थित नही होती। पर इतना सही है कि यह विषमता कर्मभूमि में ही उपस्थित होती है

अन्यत्र नहीं। जैसा कि जीवकाड की २७१वीं गाथा की टीका से विदित होता है।

प्रो० हीरालाल जी—यद्यपि उक्त टीका में वेद वैषम्य के नौ भङ्ग गिनाये गये हैं तो भी वहां इनकी सिद्धि के लिये जो युक्ति दी है (यहा पर प्रोफे० सा० ने उक्त टीका को पढ़कर सुनाया और आगे युक्ति का उल्लेख करते हुये कहा कि उक्त टीका में जो यह युक्ति दी है) कि क्षपक श्रेणी के अनिवृत्ति—करण गुणस्थान तक द्रव्य पुरुष के तीन वेद का करण करने के लिये ही दिगम्बरों ने वेद वैषम्य को स्वीकार किया है।

पं० राजेन्द्रकुमार जी—यदि प्रोफे० सा० का यह कहना सच है कि दिगम्बरों ने स्त्रीमुक्ति के खण्डन केलिये वेद वैषम्य को स्वीकार किया है तो श्वेताबर परम्परा में वेद वैषम्य नहीं पाया जाना चाहिये था। मैं श्वेताम्बर परम्परा के यहा पचासो प्रमाण उपस्थित करने को तैयार हू जिनसे वेद वैषम्य की सिद्धि होती है। (यहा बीचमें ही प्रोफे० सा० बोले कि मुझे मालूम है उनकी आवश्यकता नहीं) आग पण्डित जी ने कहा कि आशा है प्रोफेसर साहब अब भी अपना मत बदल लेंगे।

प्रो० सा०—जब आप श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थ नहीं मानते तब आपको उनके प्रमाण उपस्थित नहीं करना चाहिये। आपको तो केवल दिगम्बर ग्रन्थोके आधारसेही वेदवैषम्य सिद्ध करना चाहिये।

पं० रा०—दिगम्बर ग्रन्थो के आधार से वेद वैषम्य है यह तो जीवकाड की गाथा २७० से ही मालूम पड़ जाता है। अब रही श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थो की बात, सो यहा उनकी प्रमाणता और अप्रमाणता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। यहा दिखाना तो यह है कि यदि स्त्री मुक्ति के खण्डन के लिये दिगम्बरों ने वेद वैषम्य स्वीकार किया होता तो इसका उल्लेख श्वेताम्बर ग्रन्थों में न मिलता। चूंकि यह चर्चा समान रूप से दोनो परम्परा के ग्रन्थों में पाई जाती है इससे स्पष्ट है कि यह मान्यता सत्य है, किसी एक सम्प्रदाय ने किसी कार्य विशेष के लिये इसकी कल्पना नहीं की।

प्रो० ही०—फिर टीकाकार ने उपर्युक्त युक्ति क्यो दी है?

प० रा०—यह तो सिद्धात व्यवस्था के उद्घाटन का एक प्रकार है। आप तो ऐसा आगमिक प्रमाण उपस्थित कीजिये जिससे जीवकाड की गाथा २७० के 'पाएण समा कहिं विसमा' इस अश का खण्डन हो?

प्रो० ही०—कर्म सिद्धात के अनुमार वेद वैषम्य घटित नहीं होता?

प० रा०—कर्म सिद्धात के अनुमार वेद वैषम्य बनता है या नहीं इसका भी स्वपन विचार करेंगे। पर यह तो न रहा कि स्त्रीमुक्ति के खण्डन के लिये दिगम्बर परम्परा मे वेद वैषम्य स्वीकार किया गया है।

(इतनी चर्चा स जनता और अध्यक्ष की समझ में यह निष्कर्ष आ गया था कि जब दोनो परम्परा-ओंमे वेद वैषम्य स्वीकार किया गया है तो 'स्त्रीमुक्ति के खण्डन के लिये वेद-वैषम्य स्वीकार किया गया है।' यह बात नहीं रहती।)

—उक्त चर्चा के होने पर—

साहु शान्तिप्रसाद जी— (जो मध्य में आ गये थे और तब से सर्व सम्मति से वे ही अध्यक्ष पद पर थे) ने निर्णय दिया कि—

वेद वैषम्य जब दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा में लिखा है इसलिये यह तो रहा नहीं कि स्त्रीमुक्ति के खण्डन के लिये दिगम्बरों ने वेद वैषम्य स्वीकार किया है। प्रोफेसर साहब की यह बात तो कट गई फिर भी वे अपनी बात को वापस लेना चाहें तो ले सकते हैं और दूसरे प्रकार से अपना पक्ष रख सकते हैं।

इसके बाद कर्म सिद्धांत के अनुसार वेद वैषम्य बनता है या नहीं इस विषय को लेकर चर्चा हुई—

प्रो० सा०—भाववेद के उदय के अनुसार ही द्रव्यवेद बनेगा, क्योंकि वेद के उदय के अनुसार ही आंगोपांग का उदय होता है ?

प० रा०—भाववेद के अलग कारण हैं और द्रव्यवेद के अलग। जीवकांड की गाथा २७१ में बतलाया है कि पुरुषवेद आदि के उदय से भाव की अपेक्षा पुरुष आदि होते हैं और आंगोपांग नाम-कर्म के उदय से द्रव्यवेद होता है। यहां पण्डित जी ने उस गाथा को उपस्थित किया जो निम्न प्रकार है-

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओभावे।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा ॥२७१॥

आगे पण्डित जी ने कहा कि इससे स्पष्ट है भाव वेद के अनुसार ही द्रव्यवेद होता है यह बात नहीं रहती। यह कहीं भी नहीं बतलाया कि वेद के उदय के अनुसार ही आंगोपांग का उदय होता है। फिर भी प्रोफेसर सा० यदि इसका गठबन्धन मानते हैं तो उसका कारण या प्रमाण उपस्थित करना चाहिये।

इस पर अध्यक्ष ने पण्डित जी से चर्चा की—

शाहु सा०—जब हर एक के अलग अलग कारण बतलाये हैं तब वेद वैषम्य का कारण होगा ही—

प० रा०—अवश्य, वेद वैषम्य का कारण कर्म-भूमि के साधनों की अनियमितता है जहां यह अनियमितता नहीं पाई जाती वहां वैषम्य नहीं होता।

साहु सा०—पुरुष का शरीर रहते हुये भी स्त्री की भावना हो सकती है ?

प० रा०—हो क्या सकती है होती हुई पाई जाती है। जीवकांड की गाथाओं में स्त्रीवेद आदि का लक्षण किया है उसके अनुसार यहां वेद वैषम्य का प्राचुर्य प्रत्यक्ष दिखाई देता है। और थोड़ी देर को यही लक्षण मुख्य मान लिया जाय कि जिससे स्त्री के साथ रमने की अभिलाषा हो वह पुरुष वेद है और जिससे पुरुष के साथ रमने की इच्छा हो वह स्त्रीवेद है और जो इन दोनों से रहित हैं वह नपुंसकवेद हैं तब भी वेद वैषम्य बन जाता है ऐसे कितने ही पुरुष मिलेंगे जो दूसरे पुरुषों से रति करते हुये और उस में आनन्द मानते हुये पाये जाते हैं जिन्हें स्त्री का शृङ्गार अच्छा लगता है, स्त्रियों में ही घुल मिलकर रहना पसन्द करते हैं। ऐसी स्त्रियों की भी कमी नहीं जो पुरुषों का आचरण करती हुई पाई जाती हैं।

प्रोफेसर साहब को एक जगह जाना था इसलिये उस दिन की चर्चा स्थगित कर दी गई और दूसरे दिन प्रातः काल के लिये चर्चा रखी गई।

किन्तु प्रोफेसर सा० के जाने के बाद भी शाहु सा० पण्डित जी से समझने की दृष्टि से चर्चा करते रहे उस चर्चा में उन्हो ने एक प्रश्न यह भी किया कि जब वेद वैषम्य है तो जिस स्त्री के पुरुष की भावना है वह मोक्ष क्यों नहीं जाती। इसका उत्तर

पण्डित जी ने दिया कि स्त्री के पुरुषों के समान दृढ़-संहनन नहीं होता। यह बात प्रत्यक्ष भी दिखाई देती है। अतः द्रव्य स्त्री को मुक्ति लाभ नहीं होता। शाहु जी को यह बात बहुत जची।

—दूसरे दिन की चर्चा—

दूसरे दिन प्रातःकाल प० जुगलकिशोर जी मुख्तार के सभापतित्व में जैन भवन में ही चर्चा हुई। आज चर्चा का प्रारम्भ प० राजेन्द्रकुमार जी ने किया।

पं० राजेन्द्रकुमार—मैं वेद की समानता असमानता का विचार प्रो० सा० के परचे की पंक्तियों पर से करता हूं। दो जोडे आपके सामने हैं इन्द्रिय का और वेद का। अब प्रोफेसर साहब बतलावें कि भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय की समानता के समान भाववेद और द्रव्यवेद में समानता कैसे रहती है?

प्रो० हीरालाल जी—पण्डित जी ही बतलावें कि इन्द्रियों में समानता क्यों रहती है और वेद में समानता क्यों नहीं रहती?

प० रा०—जीव के जाति नामकर्म के उदय प्रारम्भ से ही होता है अतः उसके अनुसार एक ओर ज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है और दूसरी ओर आंगोपांग बनता है अतः द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय में समानता रहती है। किन्तु द्रव्यवेद और भाववेद को जोड़ने वाला वैसा कोई भी माध्यम नहीं है। अतः इन दोनोंमें असमानता भी पाई जाती है जो अधिकतर बाह्य निमित्तों के अनुसार होती है।

प्रोफे० सा०—द्रव्य वेद जीवन में बदलता है या नहीं?

प० रा०—नहीं बदलता?

प्रो० ही०—क्यों नहीं बदलता?

प० रा०—नहीं बदलता उसका स्वभाव है और आगम में भी ऐसा ही बतलाया है।

(इस बीच में यह खबर आई कि कुछ जिम्मेवार भाई जिनका नाम प्रगट करना यहां उचित नहीं श्वेताम्बर भाइयोंको ऊधम करने केलिये भड़का रहे हैं यह पोल तब ही खुली थी किन्तु इस ओर ध्यान न देने का निश्चय किया गया उसका फल भी अच्छा हुआ अर्थात् उन महाशय की यह चाल न चली और श्वेताम्बर भाई भी बडे प्रेम से आत्मीयता के साथ इस चर्चा में भाग लेते रहे।

प्रो० ही०—द्रव्य वेद के कितने भेद हैं?

प० रा०—मुख्य तीन भेद हैं।

प्रो० ही०— द्रव्यवेद किन से बनते हैं?

प० रा०—आंगोपांग नामकर्म के उदय से।

प्रो० सा०—आंगोपांग के कितने भेद हैं?

प० रा०—जितने अङ्ग और उपांग पाये जाते हैं उतने आंगोपांग कर्म के भेद हैं।

प्रो० सा०—आंगोपांग में स्त्री और पुरुष और नपुंसक ये भेद कहां गिनाये हैं?

प० रा०—आंगोपांग का मतलब यही है कि शरीर में जितने अङ्ग और उपाङ्ग हों उनको वह बनावे। स्त्री लिंग, पुरुष लिंग और नपुंसक लिंग ये उपांग हैं अतः इन्हें स्तन पूछ की तरह अलग से नहीं गिनाया। यदि उपांगों को गिनने बैठते तो उनकी संख्या अगणित हो जाती।

इसके बाद कुछ प्रश्न प० राजेन्द्रकुमार जी ने किये

प० रा०- -एकेंद्रियके कौनसा द्रव्यवेद होता है?

प्रो० ही०- नपुंसक।

प० रा०—किस कर्म के उदय से बनता है?

प्रो० ही०—नपुंसकवेद और आंगोपांग से।

पं० रा०—क्या एकेन्द्रिय के आंगोपाग का उदय होता है ?

प्रो० ही०—होता है।

इस पर प० राजेन्द्र कुमार जी ने बतलाया कि एकेन्द्रिय के आगोपाग का उदय नहीं होता तो प्रोफे० सा० चुप हो गये।

प० रा०—दशवें गुणस्थान में भाववेद तो रहता नहीं तब द्रव्यवेद कैसे बना रहता है। इसे भी नष्ट हो जाना चाहिये

प्रो० ही०—शुरू मे ही द्रव्यवेद के बनाने में भाववेद की जरूरत पड़ती है।

प० रा०—तो बीच मे बिना भाववेद के बिना द्रव्यवेद बना रहता है क्या ?

प्रो० ही०—भाववेद तो रहता ही है।

प० रा०—तब तो दशवें गुणस्थान मे भाववेद के न रहने से द्रव्यवेद मे पुद्गल परमाणुओं का मिलना बिछुड़ना नहीं होना चाहिये, क्योंकि वहा भाववेद नहीं पाया जाता।

प्रो० ही०—जैसे एक मकान के बनाने में बनाने वाले की इच्छा आवश्यक है, उसी प्रकार भाववेद आवश्यक है। जड बिना इच्छा के काम नहीं करता।

प० रा०—यहा जड और चेतन का भेद मत डालिये। यह तो ईश्वर वादियो की मान्यता है कि बिना इच्छा के जड़ काम नहीं करता। दो परमाणु बिना इच्छा के ही बन्धते है। कर्म सिद्धान्त इस दोष से परे है।

प्रो० ही०—आप विषयांतर हो रहे है ?

प० रा०-मै विषयांतर नहीं हो रहा हूं। आप यदि योग और बन्ध के पार्थक्य को समझ जावे तो ऐसा न कहे कि बिना इच्छा के चेतन काम नहीं कर सकता। बन्ध में ऐसी आवश्यकता नहीं पडती। बन्ध अपने काल में स्वयं काम करता हैं। ईश्वरवादी यदि बन्ध तत्व को समझ जांय तो ऐसी गलती कभी नही करे। यही मेरा आपसे कहना है।

इसके बाद प० राजेन्द्र कुमार जी ने पूछा कि विग्रह गति मे द्रव्यवेद के बिना भाववेद होगा या नहीं।

प्रो० ही०—यहां वेद का अव्यक्त सत्व रहता है।

प० रा०—वेद में व्यक्त और अव्यक्त भेद बतलाइये।

प्रो० ही०—धवला में बतलाये हैं।

प० रा०—क्या अव्यक्त सत्व काम कर सकता है ?

प्रो० ही०—भाववेद निमित्त है।

प० रा०—निमित्त अव्यक्त नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि भव के प्रारम्भ में द्रव्यवेद की रचना में भाववेद कारण होना ही चाहिये, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

इसके बाद प्रोफेसर साहब ने एक वक्तव्य सा दिया जिसमें बतलाया कि जीव ने जैसा भाव बन्ध कर रखा है उसीके अनुसार शरीर आदि बनायेगा। तथा इसके बाद वे उठ खड़े हुये और बहुत कहने पर उन्होंने चर्चा चलाने से अनिच्छा ही दिखाई और उन्होने कहा कि समय थोड़ा है इसलिये अब यदि चर्चा चलानी होगी तो मै सूचना दे दूगा। आगे कोई सूचना नहीं मिली इसलिये चर्चा नहीं हुई।

फूलचन्द्र सिद्धांत शास्त्री,

संयुक्त मन्त्री विद्वत्परिषद।

-श्रीमान् पं० मांगीलाल जी छाबडा बम्बई की-

❋ सम्मति ❋

श्रीमान मान्यवर पं० रामप्रसाद जी शास्त्री ने जो ट्रैक्ट लिखा है वह युक्ति और आगम से प्रोफेसर साहब के मन्तव्यों को खण्डन करने में पूर्ण समर्थ है इसलिये उस ट्रैक्ट के विषय में मेरी पूर्ण सम्मति है क्योंकि इस लेख को मैं ने आद्योपान्त अच्छी तरह से पढ़ा है और उसको पूर्ण योग्य समझा है।

क्षमा-याचना

श्रीमान् पं० शिखरचन्द जी ईसरी ने प्रोफेसर हीरालाल जी के पूर्वोक्त तीनों मन्तव्यों के खण्डन मे युक्ति आगम पूर्ण एक बहुत बड़ा लेख भेजा था आपके धार्मिक प्रेम तथा तदर्थ परिश्रम के लिये आपको भूरि भूरि धन्यवाद है। परन्तु वह अधिक घना तथा कम्पोजीटरों के लिये सुपाठ्य न था अत एव आपके पास उसे प्रेस कापी करने के लिये वापिस भेजा गया था परन्तु पता नहीं कि (डाक आदि की अव्यवस्था से) क्यों वह वापिस आ गया। यहां किसी लेखक का प्रबन्ध न हो सका। अतः आपका लेख प्रकाशित न हो सका। एतदर्थ आपसे क्षमा चाहते हैं।

प्रार्थी —
निरञ्जनलाल जैन, बम्बई।